कन्हावत : वस्तु, कला और दर्शन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

(शोधप्रबन्ध)

शोधकर्त्री

उमा कान्ती देवी

निदेशक

डॉ० पारसनाथ तिवारी

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

१९९०

प्राक्कथन

हिन्दी- साहित्य की अनुपम विभूति एवं गौरव स्वरूप मलिक मुहम्मद जायसी का "पद्मावत" देश - देशान्तर में सर्वत्र प्रख्यात है। उनकी इस रचना के महत्तम उद्देश्य प्रेम ने मिट्टी के इस मानव- शरीर में सुगन्धि का संचार किया और तद्वत् अवधी भाषा को भी प्रेम- पीयूष से अभिसिंचित कर दिया। प्रेम अमर है, अतः प्रेम की भाषा अवधी भी केवल जीवन्त ही नहीं हुई वरन् अमर बन गई। ठेठ अवधी हिन्दी साहित्य की मानिनी बन गई और साहित्य सर्जना की देदीप्यमान बिन्दी- सी चमक उठी। ऐसे अमोघ रचयिता यशोधर्मा जायसी की कृति के प्रति श्रद्धा और आकर्षण मुझ अवधी- क्षेत्र की निवासिनी के लिए स्वाभाविक था।

उक्त रचना के कथ्य तथा शिल्प के अध्ययन में मनोयोगपूर्वक तत्पर ही थी कि कुटुम्ब- सान्निध्य के कारण बचपन से ही परिचित, प्रयाग-वासी प्रख्यात वैद्यराज स्व० पं० शिवराम पाण्डेय के सुपुत्र पं० देवकीनन्दन पाण्डेय के चरणों में बैठने का सुअवसर हाथ लगा। उन्होंने मुझे 1700 ई० की हस्त- लिखित "पद्मावत" की एक प्रति दिखाई तो मेरी रुचि पंख पसार कर अनन्त में उड़ने को आकुल हो उठी। इस बीच वैद्य जी ने "पद्मावत" के कतिपय विवादित विषयों के सम्बन्ध में भी चर्चाएँ कीं और अनेक सत्परामर्श देकर मेरी रुचि को पक्ष प्रदान किया। इस दीप्ति एवं प्रेरणा के लिए मैं उन महाप्राण की अत्यन्त कृतज्ञ हूँ और उन्हें शत- शत वन्दन करती हूँ।

इन्हीं दिनों जायसी की एक अन्य नवीन कृति "कन्हावत" प्रकाश में आई। जायसी की एक अन्य कृति "चित्ररेखा" की भाँति "कन्हावत" को सर्वप्रथम

प्रकाशित कराने का श्रेय सूफीकाव्य के अप्रतिम विद्वान् प्रो० शिवसहाय पाठक को है। वे जी को जब इसका पता चला तो जिज्ञासा की तुष्टि में मुझे भी साथ ले लिया। प्रसाद-रूप में मुझे श्रद्धेय गुरुप्रवर पं० पारस नाथ तिवारी, भूतपूर्व रीडर, इलाहाबाद विश्वविद्यालय का प्रस्तुत शोध ग्रन्थ पर कुशल निर्देशन प्राप्त हुआ। उनके विनम्र वैदुष्य, विषय में गहरी पैठ और उसे विचारने की नूतन दृष्टि का ही सुफल है मेरे शोध कार्य की सार्थकता। संस्कारों में अनेक जन्मों तक वर्तमान गुरुदेव के इस कृपा-प्रसाद के लिए मैं चिर ऋणी रहूँगी।

महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास की प्रज्ञा ने महाभारत रचा था और भगवान श्रीकृष्ण के प्रति उनकी एकनिष्ठ श्रद्धा और प्रेम ने श्रीमद्भागवत लिखने की प्रेरणा दी है। भगवान कृष्ण के प्रति जो भक्ति मेरे बचपन में अंकुरित हुई थी, आज "कन्हावत" में वर्णित उनके चरित्र पर शोध करके पल्लवित-पुष्पित हो रही है। यह मेरे जीवन का परम आनन्द है। इस वृहद् आयोजन में मैं श्री रामलखन द्विवेदी, प्रधानाचार्य मेवालाल अयोध्या प्रसाद गुप्त स्मारक इण्टर कालेज सोरांव, इलाहाबाद की हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने कृष्ण-चरित्र-सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों को प्रदान करके मुझे उपकृत किया है।

यदि वर्णित प्रेम-पुष्प की सुगन्धि सहृदय सुधी जनों को भी आघ्रायित कर सकी तो मैं अपने को अनुगृहीत समझूँगी।

उमाकान्ती देवी

श्रीमती उमाकान्ती देवी
शोध - छात्रा
हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

अप्रैल - 1990

अनुक्रम

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

"कन्हावत" और जायसी की गुरु - परम्परा

मलिक मुहम्मद जायसी के जीवन के विषय में तत्कालीन ग्रन्थों, लेखों तथा अन्य अभिलेखों से अत्यल्प प्रमाण उपलब्ध होता है। कारण जो भी हो किन्तु उनके गुरु के सम्बन्ध में भी वही समस्या है। केवल अन्तरंग साक्ष्य से ही उनके पीर और मुर्शिद पीर के सम्बन्ध में धुंधली जानकारी मिलती है। विद्वानों के निरन्तर प्रयास से जायसी के "पद्मावत" महाकाव्य का प्रामाणिक रूप लगभग स्थिर हो चुका है और अपने इस रूप में वह अत्यन्त उत्कृष्ट, प्रौढ़ तथा कवि की अन्तिम रचना है। अतः "पद्मावत" की पंक्तियों का आधार लेकर हम उनके विषय में निश्चित मत स्थापित कर सकते हैं, क्योंकि उनकी अन्य रचनाओं में इस सम्बन्ध में किञ्चित् विभिन्नता प्राप्त होती है। "पद्मावत" में अपने पीर और मुर्शिद - पीर का जायसी ने आदरपूर्वक वर्णन किया है जो सूफी शैली की विशेषता भी है।

"सैयद असरफ पीर पियारा । तिन्ह मोहिं पन्थ दीन्ह उजियारा।[1]

कहकर जायसी ने कछौंछा चिश्ती शाखा के महान् सन्त लोक प्रसिद्ध सैयद अशरफ जहाँगीर के महान् गुणों का उल्लेख करते हुए पीर के रूप में उनका स्मरण किया है। सूफी सन्तों की शिष्य- परम्परा में होने वाला प्रत्येक सन्त पीर कहलाता है, किन्तु मुर्शिद पीर वह कहलाता है जो गुरु मंत्र दे। सूफी शैली की परम्परा में आदि सन्तों की वन्दना पारम्परिक है। पूरे भक्ति साहित्य में गुरु का महत्व है ही किन्तु सूफी सन्तों में इसका कुछ विशेष महत्व रहा है। इसी-लिए जायसी ने भी सैयद अशरफ जहाँगीर को कछौंछा शाखा के चिश्ती सम्प्रदाय के आदि पीर के रूप में स्मरण किया है।

1- "जायसी- ग्रन्थावली" : माताप्रसाद गुप्त, कडवक 18-1-

कतिपय विद्वान् इन्हीं सैयद अशरफ जहाँगीर को जायसी का मुर्शिद- पीर अर्थात् दीक्षा गुरु बताते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जायसी को सैयद अशरफ जहाँ- गीर का शिष्य कहते हैं। उनका कथन है कि- "आखिरी कलाम" में केवल सैयद अशरफ जहाँगीर का उल्लेख है। "पीर" शब्द का प्रयोग भी जायसी ने सैयद अशरफ के नाम के पहले किया है और अपने को उनके घर का बन्दा कहा है। इससे हमारा अनुमान है कि उनके दीक्षा- गुरु तो थे सैयद अशरफ, पर पीछे से उन्होंने मुहो- उद्दीन की भी सेवा करके उनसे बहुत कुछ ज्ञानोपदेश और शिक्षा प्राप्त की।"[1] अमर बहादुर सिंह "अमरेश" ने सैयद अशरफ जहाँगीर को मुर्शिद - पीर मानने में आपत्ति की है। उन्होंने कहा है कि- "जायसी का जन्म "भा औतार मोर नौ सदी" के आधार पर नवीं शताब्दी माना जाता है। नवीं शताब्दी का अर्थ विद्वानों ने नवीं शताब्दी के आसपास अर्थात् 906 हिजरी लगाया है। "पद्मावत" का रचनाकाल सं0 947 हि0 है। ऐसी स्थिति में सैयद अशरफ जहाँगीर को जायसी का गुरु सिद्ध करना उचित नहीं प्रतीत होता, क्योंकि सैयद अशरफ साहब का जन्म 705 हि0 है तथा मृत्यु 808 हि0 में है।"[2] अन्यत्र अमरेश जी कहते हैं - "जायसी ने सैयद अशरफ जहाँगीर चिश्ती को "पीर" तो कहा है किन्तु मुरशिद- पीर कहीं भी नहीं कहा है क्योंकि सैयद अशरफ से उन्होंने गुरु मंत्र नहीं लिया। अतः वह उनके "मुरशिद पीर" हो ही नहीं सकते थे।"[3]

1- जायसी ग्रन्थावली : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, भूमिका, पृ0- 9.

2- "कहरानामा और मसलानामा" : अमर बहादुर सिंह "अमरेश", भूमिका, पृ0- 14.

3- वही, पृ0 - 16.

"अखरावट" जिसको जायसी की प्रथम रचना [911 हि0] बताया जाता है, में कवि ने शरीअत का वर्णन करते हुए अशरफ जहाँगीर को पीर के रूप में स्मरण किया है। उदाहरणतया -

" कही सरीयत चिस्ती पीरू ।
उधरित असरफ औ जहँगीरू ।।"[1]

तथा

"साँचो राह सरीयत जेहि विस्वास न होइ ।
पाँव राखि तेहि सीढ़ी निभरम पहुँचे सोइ ।।"[2]

उपर्युक्त कथनों से उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि शरीअत [कर्मकाण्ड] में विश्वास करके ही साधक गन्तव्य मार्ग पर पहुँच सकता है। सरीअत [अ0 शरीअत] मुसलमानों का धर्मशास्त्र, इस्लाम की शरअ या कर्मकाण्ड है। अरबी में "शरअ" कर्म को कहते हैं। अतः शरीअत ईश्वर- सम्बन्धी कर्मकाण्ड है।

"आखिरी कलाम" में भी कवि ने मात्र सैयद अशरफ जहाँगीर को प्यारा पीर कहकर विराम ले लिया है -

"मानिक एक पायउँ उजियारा ।
सैयद असरफ पीर पियारा ।।"[3]

* * *

"तिन्ह घर हौं मुरीद सो पीरू ।
सँवरत बिन गुन लावै तीरू ।।"[4]

वहाँ पर इस परम्परा में किसी अन्य का उल्लेख नहीं किया गया है। इस तरह "अखरावट" और "आखिरी कलाम" दोनों में मात्र सैयद असरफ जहाँगीर का पीर के रूप में उल्लेख किया है और अपने को उनके द्वार का मुरीद कहा है।

1- जायसी ग्रन्थावली"अखरावट", कड़वक 26-2 : माताप्रसाद गुप्त
2- वही, 26 दो0
3- जायसी ग्रन्थावली "आखिरी कलाम" कड़वक 9-1 : माताप्रसाद गुप्त
4- वही, कड़वक 9-5

जायसी की एक अन्य रचना "चित्ररेखा" में "प्यारे पीर" सैयद अशरफ की चर्चा के साथ शेख मुबारक बोदले एवं शेख कमाल का भी उल्लेख इस प्रकार से किया गया है -

"सैद असरफ पीर पियारा । हौं मुरीद सेवों तिन बारा ।।

x x x x

हाजी अहमद हाजी पीरू । दीन्ह बाँह जिन समुँद गँभीरू।।

सेख कमाल जलाल दुन्यारा । दुओ सो गुन्न बहुत बहु बारा।।

अस मखदूम बोहित लइन, धरम करम कर पाल ।

करिखा सेख मुबारक , खेवट सेख जमाल ।।"[1]

इस प्रकार "पद्मावत" और "चित्ररेखा" दोनों में उनके पीर और मुर्शिद-पीर की चर्चा लगभग समान रूप में मिलती है। परन्तु "कन्हावत" जो 947 हि0 की रचना मानकर प्रकाश में आई, इस सन्दर्भ में वहाँ बहुत कुछ भिन्न कहा गया है -

"कहौं सरीअत पीर पियारा ।

सैयद असरफ जग उजियारा ।।"[2]

यह पंक्तियाँ "अखरावट" की तत्सम्बन्धी पंक्तियों से काफी मिलती-जुलती हैं। परन्तु "कन्हावत" में उसके आगे आने वाला सोरठा बहुत कुछ भ्रम उत्पन्न करता है जहाँ कहा गया है -

"महदी अग्रिल मीठ, गुरु सेख बुरहान ।

पेम पंथ गा दीठ , मुहम्द पहि निचिंत पथ ।।"[3]

शेख बुरहान कालपी के थे जिसे जायसी ने स्वयं "नाह कालपी कुत गुरु थेनू" कहकर सिद्ध किया है। अतः "कन्हावत" में कछौछा वाली परम्परा में उनका उल्लेख खटकता है।

1- "चित्ररेखा" - सम्पादक : शिवसहाय पाठक, कड़वक - 9.
2- "कन्हावत" - सम्पादक : शिवसहाय पाठक, कड़वक- 5.
3- वही.

इस प्रकार "सैयद अशरफ जहाँगीर" मलिक मुहम्मद जायसी के "पीर" थे। वह चिश्ती सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे जिसका एक लम्बा इतिहास है। प्राय: सभी इतिहासकार भारतवर्ष में सूफी सम्प्रदाय का प्रवेश ईसा की बारहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में मानते हैं। तत्पश्चात् सम्प्रदायों और उप सम्प्रदायों का विभाजन और नामकरण भिन्न- भिन्न सूफी साधकों के नाम पर हुआ। कालान्तर में सम्प्रदायों की संख्या बढ़कर लगभग चौदह तक पहुँच गई। आइन- ए- अकबरी में अबुल फजल ने चिश्ती, सुहरावर्दी, हबीजी, तुफूरी, करखी, सकती, जुनेदी, काजरूनी तूसी, फिरदौसी, जैदी, इयादी, अधमी और हुबेरी नामक चौदह सूफी सम्प्रदायों का उल्लेख किया है।[1] इनमें से कुछ सम्प्रदाय कालान्तर में विलीन हो गए और कुछ अत्यधिक प्रसिद्ध हुए तथा सूफी मत के अन्तिम काल तक जीवित रहे। भारतवर्ष में चिश्तिया, कादरिया, सुहरावर्दिया और नक्शबन्दिया नामक चार सम्प्रदाय अत्यन्त विख्यात रहे।

चिश्ती सम्प्रदाय भारत में बड़ा महत्वपूर्ण रहा। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक के रूप में ख्वाजा इसहाक शामी का नाम लिया जाता है। कुछ ख्वाजा अबू अब्दाल को प्रवर्तक मानते हैं और कुछ ख्वाजा मुईनउद्दीन को। अबू इसहाक एशिया माइनर से आकर "चिश्त" नामक स्थान [खुरासान] में बस गए, इसीलिए इस सम्प्रदाय का नाम "चिश्ती" पड़ा। लेकिन बहुत से विद्वान् इसे स्वीकार नहीं करते।[2] चिश्तिया सम्प्रदाय के मूल संस्थापक अदब अब्दुल्ला चिश्ती बारहवीं शती के अन्त में भारत आए और अजमेर में रहने लगे।[3] अदब अब्दुल्ला चिश्ती की शिष्य परम्परा में प्रसिद्ध सन्त निजामुद्दीन औलिया हुए। इनका मृत्युकाल 725 हि0 [1324-25 ई0] माना जाता है। शेख अलाउल हक व इन्हीं की

1- "कन्हावत" संपा0- शिवसहाय पाठक, गुरु- परम्परा [निष्कर्ष] पृ0- 40.
2- "सूफीमत : साधना और साहित्य", - रामपूजन तिवारी, पृ0- 443.
3- "पद्मावत" [संजीवनी भाष्य] वासुदेव शरण अग्रवाल, प्राक्कथन , पृ0-37.

शिष्य- परम्परा में थे। इन्हीं से अलाई चिश्ती की एक शाखा मानिकपुर में स्थापित हुई जिसके आरम्भकर्ता शेख हिसामुद्दीन कहे जाते हैं। इनकी मृत्यु 853 हि0 [1449ई0] में हुई। सैयदराजे हामिदशाह इन्हीं के शिष्य थे और इन्हीं की आज्ञा से कुछ समय तक जौनपुर में आ बसे थे, किन्तु किसी कारणवश पुन: मानिकपुर लौट गए। इनकी मृत्यु मानिकपुर में ही 901 हि0 [1495ई0] में हुई। इनके शिष्य शेख दानियाल हुए जो खिज्री विरुद से प्रसिद्ध थे। कहा जाता है कि हजरत ख्वाजा खिज्र से इनकी भेंट हो गई थी जिनसे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। प्रो0 विजयदेव नारायण साही का कहना है कि शेख दानियाल सुलतान हुसेन शाह शर्की [862- 84 ई0] के राज्यकाल में जौनपुर में ही रहते थे। उनके शिष्यों में सैयद मुहम्मद हुए जिन्होंने महदी होने का दावा किया और वे अपने शिष्यों में महदी नाम से ही प्रसिद्ध रहे। बदायुनी ने भी जौनपुर के सैयद मुहम्मद "महदी" का आदरपूर्वक उल्लेख किया है। इनकी मृत्यु 1504 ई0 में हुई। सैयद मुहम्मद के शिष्य अलहदाद हुए और अलहदाद के शिष्य शेख बुढ़ बुरहानउद्दीन अंसारी हुए।

'जायसी के समय कयामत आने की हवा फैली थी। महदीयत का काफी जोर था। सम्भवत: इसी कारण महदियों में लोकप्रिय सैयद मुहम्मद की भी उन्होंने वन्दना की और "आखिरी कलाम" लिख डाला।'[1]

अब हमें डॉ0 ग्रियर्सन तथा अन्य विद्वानों के मत की परीक्षा कर लेनी चाहिए जिसके अनुसार मुहीउद्दीन, मोहदी जायसी के मुर्शिद- पीर माने जाते हैं। स्वाभाविक रूप से प्रश्न उठता है कि यह मोहदी शब्द किसके लिए प्रयुक्त है? उल्लेखनीय है कि डॉ0 श्यामसुन्दरदास भी [इसी] "मोहदी" शेख को जायसी का गुरु मानते हैं।[2]

1- "जायसी" : विजयदेव नारायण साही, पृ0- 28-29.
2- "हिन्दी साहित्य" : श्यामसुन्दरदास, पृ0- 294.

पं० रामचन्द्र शुक्ल प्रथम तत्वान्वेषी थे जिन्होंने जायसी की गुरु - परंपरा पर विचार कर परवर्ती अन्वेषकों का मार्गदर्शन किया। आचार्य शुक्ल जी का ही आधार लेकर बाद में विद्वानों ने थोड़े हेर-फेर के साथ अपने मतों का प्रतिपादन किया। डॉ० ग्रियर्सन ने "पद्मावत" और "अखरावट" दोनों में मानिकपुर कालपी की गुरु-परम्परा का उल्लेख देखकर शेख मोहिदी को दीक्षा-गुरु मान लिया, किन्तु शुक्ल जी गुरु-बन्दना से सन्देह व्यक्त करते हैं कि "जायसी मानिकपुर के मुहीउद्दीन के मुरीद थे या जायस के सैयद अशरफ़ के।" इस सम्बन्ध में "पद्मावत" की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

"सैयद असरफ पीर पियारा ।
तिन्ह मोहि पंथ दीन्ह उजियारा।"[1]

"गुरु मोहदी खेवक मैं सेवा ।
चलै उताइल जेहि कर खेवा।।"[2]

"अखरावट" की निम्नलिखित पंक्तियों में इसी वर्णन का साम्य है -

"कही सरीअत चिस्ती पीरु ।
उधरित असरफ औ जहँगीरु ।।"[3]

"पाएउँ गुरु मोहदी मीठा । मिला पंथ सो दरसन दीठा।।"[4]

डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त का विचार है कि "महदी" जिसका पाठ माता प्रसाद गुप्त ने "पद्मावत" और "अखरावट" में "मोहदी" स्वीकार किया है, वस्तुतः फारसी "महदवी" है जो किसी सम्प्रदाय के एक पंथ का नाम है। शेख बुरहान के सम्बन्ध में आइन-ए-अकबरी में स्पष्ट कहा गया है कि वे महदवी

1- "जायसी ग्रन्थावली", "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक- 18.1
2- वही, पद्मावत, कड़वक - 20.1
3- वही, अखरावट, कड़वक - 26.2
4- वही, अखरावट, कड़वक - 27.1

थे। अख्बार-उल-असफिया, अख्बार-उल, अख्यार और गुल्जारे अबरार में भी उनके महदवी होने का उल्लेख है। वस्तुत: शेख बुरहान महदवी ही जायसी के गुरु थे, कल्पना-प्रसूत मुहीउद्दीन नहीं। इसी से जायसी भी महदवी कहे जाते थे।

इस सम्बन्ध में डॉ० राम खेलावन पाण्डेय का मत द्रष्टव्य है -

" पा पाएउँ गुरु मोहदी मीठा ।
मिला पंथ महँ दरसन दीठा ।।
नाँउ पियार सेख बुरहानू । नगर कालपी हुत गुरु थानू ।।

की तुलना -

गुरु मोहदी खेवक मैं सेवा ।
चले उताइल जेहि कर खेवा ।।

अगुवा भएउ सेख बुरहानू ।
पंथ लाइ जेहि दीन्ह गिआनू ।।

के साथ की जाय तो महदी शब्द और भी स्पष्ट हो जाता है। "अखरावट" वाले पाठ का सीधा अर्थ है कि गुरु महदी अर्थात् ईश्वर का सन्देशवाहक है और ऐसा खेवक, जीवन-नैया के खेने वाले,का मैं सेवक हूँ। उस खेवक का नाम शेख बुरहान है और मैने कालपी को गुरु स्थान बनाया है अर्थात् कालपी नगर में मेरा गुरु स्थान है। "पद्मावत" के पाठ का अर्थ है कि गुरु जैसे खेवक के मिलने से मेरी जीवन-नैया संसार - सागर में उतरा कर चलती है। यहाँ गुरु को महदी कहा गया है और इसमें न तो मुहीउद्दीन चिश्ती के संकेत हैं और न मीर सैयद से तात्पर्य। "अखरावट" का कथन इस सम्बन्ध में स्पष्ट है कि जिस गुरु से पंथ के दर्शन हुए उसका -

"नाव पियार सेख बुरहानू ।
नगर कालपी हुत गुरु थानू।।"

1- "कन्हावत" : परमेश्वरी लाल गुप्त, कवि परिचय, पृ0- 23- 24.

इसका ही समर्थन मिलता है, जब वे कहते हैं कि -

"अगुआ भएउ सेख बुरहानू ।
पंथ लाइ जेहि दीन्ह गिआनू ।।[1]"

इसी सन्दर्भ में डॉ० शिवसहाय पाठक का मत भी द्रष्टव्य है। उनके अनुसार "कन्हावत" में लिखा है -

"कहौं तरीक्त अगुवा गुरू । रौसन दीन दुनी सुरखुरू ।।
नाउं पियार सेख बुरहानूं। कालपि नगर तेहिक अस्थानूं।।
अलहदाद कुल सिद्ध न्वेला। सैयद मुहम्द कै सग चेला ।।
सैयद मुहम्द महदी [मुहीउद्दीन] साजा ।
दानियाल दीने सिध बाजा ।।

महदी अंख्रिल मीठ, गुरू सेख बुरहान ।
पेम पंथ गा दीठ , मुहम्द एहि निचिंत पथ ।।

ऊपर की पंक्तियों से ज्ञात होता है कि जायसी के गुरू शेख बुरहान महदी थे । शुक्ल जी ने बुरहान के शिष्य रूप में शेख मोहदी या मुहीउद्दीन का नाम लिया था। यह "मुहीउद्दीन", "महदी" या "मोहिदी" कोई अन्य नहीं है, बल्कि सैयद बुरहान ही हैं जिन्हें जायसी कहीं "महदी बुरहानूं" कहते हैं, कहीं "मुहीउद्दीन" या मोहदी कहते हैं। शेख बुरहान की ही संज्ञा "महदी" है। निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि जायसी के गुरू कालपी नगर वाले शेख बुरहान "महदी" थे।"[2]

इस प्रकार मोहदी या मुहीउद्दीन के नाम से जो मुर्शिद- पीर कहे जाते थे, वह वास्तव में शेख बुरहान सिद्ध हुए और इन्हें ही जायसी का गुरू कहा जाने लगा ।

1- राम कैलाश पाण्डेय, "हिन्दी अनुशीलन" धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, पृ०- 372.

2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, भूमिका, गुरू परम्परा, पृ०- 45.

वस्तुतः इस्लाम धर्म के अनुयायियों में यह विश्वास प्रचलित है कि संसार में जब अन्याय, अत्याचार बढ़ जायेगा तब भगवान फिर से न्याय की प्रतिष्ठा के लिए किसी शक्तिमान पुरुष को भेजेंगे। यही महदी है। महदी का अर्थ है पथ - प्रदर्शक।

महदी = "अरबी विशेषण, दीक्षित, जिसे हिदायत मिली हो, धर्मनिष्ठा, हादी, शीआ सम्प्रदाय के बारहवें इमाम जिनके प्रति उनका विश्वास है कि क़ियामत के करीब फिर आसमान से आयेंगे।"[1]

आलोच्य ग्रन्थ "कन्हावत" में भी इसी प्रकार जायसी ने "महदी" का उल्लेख किया और उन्हें सैयद अशरफ की परम्परा में बताया है -

"महदी अंब्रित मीठ, गुरु सेख बुरहान।
पेम पंथ गा दीठ, मुहम्मद एहिं निचिंत पथ।।"[2]

अर्थात् गुरु शेख बुरहान महदी पंथ में अमृत के समान मधुर हैं। उन्हीं के कारण प्रेम का पंथ दिखाई पड़ा। जायसी के अनुसार यही निश्चिंत पथ है। दूसरे स्थान पर "कन्हावत" में ही वह लिखते हैं -

"कहौं तरीकत अगुवा गुरु।
रौसन दीन दुनी सुरखरू।।"[3]

दोनों स्थानों पर जायसी ने शेख बुरहान के लिए "महदी" या अगुवा [पथ-प्रदर्शक] शब्द का प्रयोग किया है।

डॉ० शिवसहाय पाठक द्वारा सम्पादित "कन्हावत" में जायसी की गुरु-परम्परा के अन्तर्गत केवल सैयद अशरफ जहाँगीर को पीर के रूप में स्मरण किया गया है जो सभी ग्रन्थों में समान रूप से पाई जाती है किन्तु दूसरी

1- उर्दू शब्द कोश
2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, सोरठा- 5.
3- वही, कड़वक - 6.।

अर्थात् शेख बुरहान वाली परम्परा का उल्लेख बिलकुल नहीं है, केवल शेख बुरहान का नाम उपर्युक्त पाँचवें सोरठे में आ जाता है और उन्हीं की शिष्य परम्परा का वर्णन है। यह भी ज्ञातव्य है कि परमेश्वरी लाल गुप्त द्वारा सम्पादित "कन्हावत" में यह सोरठा नहीं है। "कन्हावत" की प्राप्त सभी प्रतियाँ खण्डित हैं। चन्द्रबली पाण्डेय और जर्मनी से प्राप्त प्रतियों में यह सोरठा नहीं है। केवल पण्डित शम्भूनाथ द्वारा प्राप्त प्रति में ही सोरठा उपलब्ध होता है। अतः डॉ0 शिवसहाय पाठक सम्पादित "कन्हावत" में इस सोरठे की स्थिति भी संदेहास्पद है।

मलिक मुहम्मद जायसी निज़ामुद्दीन औलिया की शिष्य- परम्परा में थे। इस परम्परा की दो शाखाएँ हुई- एक मानिकपुर कालपी की और दूसरी जायसी की कही जाती है। अमरेश जी के अनुसार- "निज़ामुद्दीन औलिया से लेकर शाह अलाउल हक पाण्डवी तक एक शाखा चली है। इसके बाद यह शाखा दो भागों में विभक्त हो गई - कछौंछा एवं मानिकपुर। कछौंछा वाली शाखा पाँच भागों में बंट गई जिसमें एक जायस भी था एवं मानिकपुर की शाखा कालपी तक जा पहुँची।[1]" जायसी ने अपने ग्रन्थों में इन दोनों शाखाओं का वर्णन किया है। प्रथम शाखा जो मानिकपुर कालपी की कही जाती है, इसमें अपने ज्ञान गुरु शेख बुरहान का उन्होंने विशेषरूप से उल्लेख किया है साथ ही उनकी गुरु- परम्परा का भी। जायसी ने शेख बुरहान से बहुत अधिक प्रेरणा प्राप्त की थी। यही कारण है कि अपने सभी ग्रन्थों में उन्होंने उनका नाम बड़े मान- सम्मान के साथ लिया है। "पद्मावत" की पंक्ति "अगुवा भयउ सेख बुरहानू। पंथ लाइ जेहि दीन्ह गियानू।" से ज्ञात होता है कि शेख बुरहान महदवी सम्प्रदाय में अग्रणी थे और उन्होंने जायसी को पंथ पर लगाकर ज्ञान दिया। यही कारण है कि कवि ने शेख शेख

1- "कहरनामा और मसलानामा", भूमिका, पृ०- 14 : अमर बहादुर सिंह "अमरेश"।

बुरहान की गुरु - परम्परा का विस्तार से उल्लेख किया है। "अखरावट" की पंक्ति "नाउँ पियार सेख बुरहानू। नगर कालपी हुत गुरु थानू ।" चित्रेखा में "महदी गुरु सेख बुरहानू। कालपि नगर तेहिक अस्थानू।" एवं "कन्हावत" की एक प्रति में "नाउँ पियार सेख बुरहानू। कालपि नगर तेहिक अस्थानू।" आदि इस बात को प्रमाणित करते हैं कि शेख बुरहान कालपी के निवासी थे। इसीलिए इनके विषय में कहा जाता है कि यह बहुत पहुँचे हुए सन्त थे। "अख्बार- उल - असफिया" के अनुसार इनका नाम शेख बुरहानुद्दीन अंसारी था और वे ताजुद्दीन अंसारी के बेटे थे। उन्होंने एक ऐसी कोठरी में बैठकर साधना आरम्भ की जिसमें वे पूरी तरह टाँग फैलाकर सो नहीं सकते थे। साधना में वे अपने को भूल से गए और पके भोजन का परित्याग कर दिया। केवल थोड़ा सा दूध और दही लिया करते थे। जो लोग उनके पास जाते थे उनका कहना था कि वे पेट के बल पड़े रहते थे। शरीर से वे इतने दुर्बल हो गए थे कि उनका कंकाल मात्र दिखाई पड़ता था। कर्नल जेम्स टॉड ने शेख बुरहान के सम्बन्ध में कहा है कि वे भ्रमणशील, प्रभावकारी मुसलमान फकीर थे। इनके आशीर्वाद से मेवाड़ के राजा मोकल को शेखा नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ जिससे शेखावत वंश चला और शेखावटी राज्य की स्थापना हुई। टॉड ने शेख बुरहान के आशीर्वाद की कहानी इस प्रकार बताई है - किसी समय में अमरसर की सीमा में शेख बुरहान भ्रमण करते हुए पहुँचे। फकीर [शेख बुरहान] ने उस [मोकल] के पास जाकर साधारण अभिवादन के बाद पूछा - "क्या मुझे आप कुछ देंगे?" मोकल जी ने नम्रता के साथ उत्तर दिया- "आप किस चीज की इच्छा करेंगे?" फकीर ने थोड़ा सा दूध माँगा। मोकल जी की आज्ञा से उस फकीर के पास एक भैंस लाई गई जिसका दूध कुछ ही पहले दुह लिया गया था। फकीर ने भैंस के थनों से इस प्रकार दूध निकालना शुरू किया जैसे किसी झरने से पानी निकलता हो। आश्चर्य और दैवी शक्ति के विश्वास से युक्त मोकल ने प्रभावित होकर बड़ी नम्रता के साथ

1- परमेश्वरी लाल गुप्त, "कन्हावत" कवि परिचय, पृ0- 28.

कहा -"मेरे कोई सन्तान नहीं है।" फकीर के आशीर्वाद से मोकल को पुत्र प्राप्त हुआ जिसका नाम उस शेख बुरहान के नाम से शेखा रखा गया जिससे आगे चलकर शेखावत वंश और शेखावटी राज्य प्रसिद्ध हुआ। कर्नल टॉड ने उन रीतियों, पहनावों आदि का भी वर्णन किया है जो उनकी पुस्तक "राजस्थान का इतिहास" लिखते समय तक प्रचलित थे।

उस मुसलमान फकीर की दरगाह अवरोल से छह मील की दूरी पर और मोकल के निवास स्थान से चौदह मील की दूरी पर बनी हुई थी। यह दरगाह अब तक [1832ई०] उस स्थान पर देखी जा सकती है। यह घटना तैमूर के आक्रमण करने के थोड़े ही दिनों [23 दिसम्बर 1398 ई०] बाद की है।[1]

आइन- ए- अकबरी के अनुसार शेख बुरहान की मृत्यु सौ वर्ष की आयु में 970 हि० [1562-63 ई०] में हुई[2]। इस प्रकार उनका जन्म 870 हि० ~~870 हि०~~ के आसपास ठहरता है जो जायसी के जन्म-काल के समीप है। मोकल की घटना के अनुसार शेख बुरहान की आयु 190 वर्ष तक माननी पड़ेगी जो अपने आप में अविश्वसनीय है। कर्नल टॉड का वृत्तान्त अधिकांश जनश्रुति पर आधारित है, अतः पूर्ण प्रमाणिक नहीं माना जा सकता।

वस्तुतः जायसी के मुर्शिद- पीर न तो सैयद अशरफ जहाँगीर थे, न मौलवी मुहीउद्दीन थे और न शेख बुरहान।

शास्त्री जी के विचार से तो "जायसी ने गुरुओं की इतनी लम्बी सूची इसलिए दी कि जितने लोग उन्हें वन्दनीय लगे या जिनकी एक या दो बातें उन्हें अच्छी लगीं, उन सबको उन्होंने पीर और मुर्शिद माना एवं विनत भाव से नमस्कार किया, क्योंकि जायसी किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बद्ध न थे।"[3]

1- कर्नल जेम्स टॉड, "राजस्थान का इतिहास" शेखावटी का इतिहास, पृ०-66
2- परमेश्वरी लाल गुप्त : "कुतुबन" कवि परिचय, पृ०- 26.
3- विजयदेव नारायण साही : "जायसी", पृ०- 28.

लगता है कि यह सारा नमस्कार- प्रदर्शन, मुरीदी, बन्दगी और ख़िदमत-गारी का आग्रह जायसी के लिए सामान्य श्रद्धा से अधिक कुछ भी नहीं है। शास्त्री जी का विनम्र निवेदन है कि जायसी के लिए सभी बाबा वन्दनीय हैं। लेकिन दीक्षित वे किसी से नहीं हैं।[1]

अमर बहादुर सिंह "अमरेश" का कथन है कि जायसी ने इन सूफी सन्तों की वन्दना "पीर" और आदि गुरु के रूप में की है, अपने "मुर्शिद-पीर" (दीक्षा-गुरु) के रूप में नहीं। मुर्शिद- पीर उन्होंने शाह मुबारक बोदले एवं शाह कमाल साहब को ही लिखा है। "पद्मावत" का "स्तुति खण्ड" इसका प्रमाण है जिसमें शाह मुबारक और शेख कमाल के प्रसंग में उन्होंने निम्नलिखित दोहा लिखा है -

> मोहम्मद तेह पथ निरमल, जेहि संग "मुरसिद पीर"।
> जेहिरे नाउ के खेदिआ, बेगि लह पाउ सो तीर ।।

यही पूर्ण चन्द्र की कला से शुभ्र, जगत निरमला शेख मुबारक बोदले एवं कमाल साहब जायसी के मुर्शिद- पीर (दीक्षा- गुरु) थे। आगे उन्होंने स्पष्ट किया है कि शाह मुबारक बोदले एवं शाह कमाल साहब दोनों टक्कर के सन्त थे। दोनों का समान स्थान था और दोनों पूज्य थे। अतः जायसी ने दोनों को "मुरशिद- पीर" कहा है। यहाँ पर भी ध्यान देने योग्य है कि दोनों "पीरों" की गद्दी एक थी। दोनों में समरूपता थी। केवल नाम का अन्तर था। जायसी ने वही सम- भाव व्यक्त किया है।[2]

अमरेश जी को जायसी सम्बन्धी महात्मा "मनदास कृत" एक रचना प्राप्त है जिसमें निम्नलिखित उद्धरण द्रष्टव्य है -

---

1- विजयदेव नारायण शाही : "जायसी", पृ0- 38.
2- अमर बहादुर सिंह "अमरेश" : "कहरानामा और मसलानामा" : भूमिका, पृ0- 16- 17.

बड़े शिष्य कमाल साहब मलिक मुहम्द जानिये ।
तिन्ह को जनम- अस्थान कहिये नगर जायस मानिये ।।
तज्यो तन जब मलिक साहब गढ़ अमेठी जाइके[1] ।।

अभी तक किसी का ध्यान इस ओर नहीं गया कि जायसी ने अपने प्रत्येक ग्रन्थ में सैयद अशरफ की परम्परा का ही परिचय पहले क्यों दिया? यही एक कुंजी है जिससे उनके मुर्शिद - पीर या दीक्षा- गुरु का रहस्य खुल सकता है। मुर्शिद - पीर मानने के ही कारण बिना किसी अपवाद के जायसी ने अपनी प्रत्येक रचना में शेख मुबारक बोदले एवं शेख कमाल का स्तवन पहले किया। परन्तु इस सम्बन्ध में "कन्हावत" की स्थिति शेष समस्त रचनाओं से भिन्न है। "पद्मावत" कवि की प्रौढ़ और प्रामाणिक रचना है। इसमें जायसी ने पीर-परम्परा में अपने प्यारे पीर सैयद अशरफ जहाँगीर को सादर स्मरण करते हुए मुर्शिद- पीर शेख मुबारक बोदले एवं शेख कमाल का भी परिचय दिया है। शेख मुबारक और शेख कमाल के महान् गुणों का स्मरण करते हुए जायसी ने लिखा है -

"दुओ अचल ध्रुव डोलहिं नाहीं ।
मेरु खिखिंद तिन्हहुं उपराहीं ।।
दीन्ह जोति औ रूप गोसाईं।
कीन्ह खंभ दुहुं जगत की ताईं ।।
दुहुं खंभ टेकी सब मही ।
दुहुं के भार सिस्टि थिर रही ।।
जिन्ह दरसे और परसे पाया ।
पाप हरा निरमल भौ काया ।।
महम्मद तहां निचिंत पथ जेहि संग मुरसीद पीर ।
जेहि रे नाव करिआ और खेवक बेग पाव सो तीर।।"[2]

1- अमर बहादुर सिंह "अमरेश" : कहरानामा और मसलानामा", भूमिका, पृ0-1
2- माताप्रसाद गुप्त सम्पादित : "जायसी ग्रन्थावली", "पद्मावत", कड़वक-19.

अर्थात् वे दोनों ध्रुव की तरह अचल हैं, वे सुमेरु और किष्किन्धा से भी ऊँचे हैं। ईश्वर ने उन्हें ज्योति और रूप देकर जगत् का स्तम्भ बना दिया है और पृथ्वी को इन्हीं दोनों कन्धों पर टिका दिया है। इन्हीं के भार से सृष्टि स्थिर रही। इन्हीं के दर्शन और चरण - स्पर्श से मेरे पाप नष्ट हुए और शरीर निर्मल हो गया। अन्त में जायसी का कथन है कि निश्चिंत पथ वह है जिसके साथ "मुर्शिद- पीर" हो। नाव का कर्णधार जिसके साथ हो वह खेने वाला शीघ्र ही किनारा पा जाता है। "चित्ररेखा" में भी कवि ने सैयद अशरफ जहाँगीर के पश्चात् हाजी अहमद, हाजी पीर, शेख जलाल और शेख मुबारक बोदले एवं शेख कमाल का क्रमशः : नामोल्लेख किया है। इन्हें कर्णधार और खेवक बताकर मुर्शिद- पीर (दीक्षागुरु) की ओर संकेत किया है। इस प्रकार "पद्मावत" और "चित्ररेखा" के वर्णनों में बहुत अधिक साम्य है। किन्तु "कन्हावत" में शेख मुबारक बोदले एवं कमाल की कोई चर्चा ही नहीं है, इसलिए उसकी स्थिति विलक्षण हो गई है।

========

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

"कन्हावत" : कथानक का सारांश

"कन्हावत" जैसाकि नाम से ज्ञात है, कृष्ण - चरित का काव्य है। कवि ने प्रस्तुत काव्य में सर्वप्रथम ईश्वर की वंदना की है। उसी ने व्यापक सृष्टि उत्पन्न की। वह इस प्रकार का अपरम्पार समुद्र है कि संसार उसके एक बिन्दु के समान भी नहीं है। उसी ने सात स्वर्ग [आकाश] और सात धरती की सृष्टि की। सभी जीव उसी को आशा भरी दृष्टि से देखते हैं किन्तु वह किसी का आश्रय नहीं लेता। प्राणी को झूठा गर्व नहीं करना चाहिए। संसार का विनाश अभिमान के कारण ही हुआ। जीवन भर मैं- मैं करके भौतिक सम्पदाएँ एकत्रित करता हुआ जीव मृत्यु के समय पश्चात्ताप करता है।

दूसरे, तीसरे और चौथे कड़वक में क्रमशः मुहम्मद साहब, उनके चार मित्रों और शाहेवक्त हुमायूं का वर्णन है। अगले कुछ कड़वकों में अपने पीर [गुरु] का वर्णन कर "कन्हावत" कथा का आरम्भ करता है।

कथा के आरम्भ में जायस नगर को अपना स्थान बताते हुए कवि इसे सत्युग का धार्मिक स्थान निरूपित करता है। उस समय इस नगर को उद्यान नगर कहते थे। द्वापर में अट्ठासी हजार ऋषियों का निवास- स्थान यह चौरासी कूपों, चौरासी पोखरों, भित्तियों, वन, उपवन, देवालयों आदि से सुशोभित था। कलियुग में ऋषीश्वरों के पश्चात् यह तुरकान हो गया। यहाँ के निवासी सभी भक्ति और ऋद्धि- सिद्धि से परिपूर्ण थे। धनी - निर्धनों सबके आवास ऊँचे थे जहाँ से चारों ओर चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यों की महक फैलती थी। यहाँ एक सुन्दर और अत्यधिक ऊँचा कोट था जिसका चौखण्डा विस्तार था। इसके चारों ओर पाताल तक गहरी खाइयाँ थीं। इसकी बारह पौरियों पर नित्य रक्षक विद्यमान रहते थे। बड़ी- बड़ी घण्टे बहराते थे। नृत्य, उछल- कूद तथा अनेक क्रीड़ाएँ देवताओं को भी विमुग्ध करने वाली होती थीं। चारों ओर तीर्थवासियों से सुशोभित नगर में गोरस के पिण्ड सजे रहते थे। मध्य- मध्य में समुद्र की भाँति जलाशयों में हंस, चकोर और मत्स्य तैरते

थे। कुमुद, कमल, पद्मनाल से युक्त उन जलाशयों में नारियाँ विविध क्रीड़ाओं से स्नान करती थीं। झुण्ड-झुण्ड पनिहारियाँ आकर कौतुकपूर्वक जल भरती थीं। ऊपर सुल्तान का अनुपम आवास था जिसके चौपाल में मंत्री, दरबार, पण्डित और कथावाचक सभा करते थे। रस, गीत और नाद से मन मुग्ध हो जाता था। वहीं पर कवि मलिक मुहम्मद भी विराजते थे। नगर के चारों ओर सरोवर, सघन फुलवारियाँ, बारियाँ, चौपाल स्थित थे। वे सब स्वर्ग के समान शोभायमान थे जहाँ नित्य जियारात होता था। - [कन्हावत, कड़वक 7-12]

"कन्हावत" का रचनाकाल कवि नौ सौ बैंतालिस हिजरी बताता है। फिर विष्णु, पद्म, शिव, अग्निपुराण, महाभारत तथा हरिवंशपुराण आदि का उल्लेख करते हुए कवि उनसे अपना परिचय ज्ञापित करता है और बताता है कि भागवतपुराण को उसने विशेष रूप से पढ़ा और सुना और वेदव्यास की ही कृपा से ऐसी प्रेम कहानी प्राप्त हुई जैसी तुर्की, अरबी, फारसी आदि में कहीं नहीं है। यहीं अनेक उत्प्रेक्षाओं के द्वारा कवि अपने एकनयन होने के परोक्ष महत्व का बखान करता है। - [कन्हावत, कड़वक 13-15]

मथुरा नगर में, लंका में रावण के समान समस्त दानवों, राक्षसों और देवों द्वारा सेवित कंस नामक राजा एकछत्र राज्य करता था। शुक्र उसके अगुवा मंत्री थे और नारद नित्य कान भरने वाले थे। सातों द्वीपों और नवों खण्डों तक उसका शासनादेश चलता था। यहाँ तक कि सुर, नर, मुनि और गन्धर्व उसके आज्ञाकारी थे। एक बार राजा ने दैत्यों को बुलाकर रावण के राज्य की अपेक्षा अपना अत्यधिक ऐश्वर्य प्रकट किया। वैश्वानर, पवन, इन्द्र, बलि, वासुकि, ब्रह्मा, विष्णु और महेश कंस के क्रोधित होने पर आकर प्रणाम करते थे। लंका कोट के समान उसके स्वर्णमय दुर्ग के चतुर्दिक् समुद्रवत् खाई थी। दुर्ग में रत्नों से जटित चक्करदार सीढ़ियाँ थीं। सात खण्ड वाले सात राजभवनों की पौरियाँ सोना, रूपा, मोती, माणिक्य, हीरा, गजमुक्ता और पदार्थों से जटित भिन्न -

भिन्न वर्ण की आलोकित होती थीं। उनमें सुवर्ण के दरवाजे थे जिनमें प्रत्येक पर दस लाख पैदल सैनिक बैठते थे। गगनस्पर्शी गढ़ इतना ऊँचा था कि ऊपर देखने पर सिर की पगड़ी नीचे गिर जाती थी। चारों ओर समुद्र की भाँति गम्भीर और अथाह जल वाली खाइयों में मगरमच्छ, सुंस और घड़ियाल तैरते थे। इस प्रकार सुहावने स्थान तथा यमुना तीर के गढ़ से सुशोभित, जग में स्वर्ग जैसा प्रशंसनीय मथुरा नगर था। उसके चित्र- विचित्र चित्रों से उत्कीर्ण, रत्नों से खचित चौदह खंडीय धवलगृहों में सातों द्वीपों से आई हुई रानियाँ स्वर्ग की अप्सराओं की भाँति विराजती थीं। चारों ओर मधुमयी वाटिकाएँ और मण्डप थे। स्थान- स्थान पर विराजमान सज्जन चौपड़ का खेल खेलते थे। घर- घर बसन्त के त्योहार जैसा मंगलाचरण होता था। राजद्वार पर लोकविश्रुत देश- देश के राजा, योद्धा, दानी और बलवान बैठकर सभा करते थे तो बसंत जैसा दृश्य उपस्थित होता था। गढ़ के निम्न भाग में अनुपम बाजार दृष्टिगत होते थे जिनमें वीर, श्रृंगार, योग आदि की मनचाही सभी वस्तुएँ बिकती थीं। यहीं मल्ल, विदूषक, नट, नर्तक नृत्य करते थे। पण्डित बैठकर शास्त्र बाँचते थे तथा गीत, नाद एवं रसमयी कथाओं से गढ़ के लोगों का मनोरंजन होता था। सागर, सरोवरों की गहराई और अनुपम तालों की क्या प्रशंसा करें। इनके घाट कृष्ण पाषाणों एवं स्फटिक शिलाओं से निर्मित थे। जल में कमल और कुमुदिनियाँ खिलती थीं, हंस, चक्रवाक, करंज पक्षी विहार करते थे तथा सिर पर कनक-कलश धारण करके भुजाएँ हिलाती पनिहारिनें जल भरने आती थीं। चारों ओर सघन फुलवारियाँ, मीठे जल वाले कुएँ और फलों से लदे नौलखा आम के बाग भरे पड़े थे। ऊँचे देवालयों और मण्डपों में तपस्वी तप साधना करते और योग- समाधि लगाते थे। इनमें आम, जामुन, नारंगी आदि अनेक वृक्षों

से गिरे फलों से पृथ्वी आच्छादित रहती थी। इन्हीं वृक्षों पर बसेरा लिए हुए पक्षी अपनी- अपनी भाषा में ईश्वर का नामोच्चारण करते थे। - ["कन्हावत", कड़वक 16- 27]

यमुना के उस पार किनारे पर गोकुल में अहीरों की बस्ती थी। इसमें नन्द महर की प्रभुता थी। सात कोस तक सुरभी गायें, बीस लक्ष चरागाह और तीस लक्ष गोशालाएँ थीं। नित्य वंशी बजाते हुए अहीर कपिला गायों को चराते फिरते थे। दही और दूध की क्या प्रशंसा करें? झुण्ड- झुण्ड रूपवती और नवयौवना गोपबालाएँ दही बेचने के लिए गोकुल से मथुरा जाती थीं। उनके प्रकाशमान आभरणों, हंसवत् चाल, कोकिल वचन और फूले वसन्त जैसे आचरण से जगत विमुग्ध हो जाता था। ["कन्हावत", कड़वक 28-29.]

एक दिन राजा कंस ने सैन्य- प्रदर्शन किया जिससे सभी लोग घबड़ा कर प्रलय की आशंका करने लगे। इन्द्र, बलि और वासुकि भयभीत हुए कि सप्त द्वीपों का स्वामी कंस किस पर क्रोधित हो उठा। शुक्र और शनि अगुवा हुए। सभी राक्षस देवता और सातों खण्डों के राजा घबड़ाकर नंगे पाँव मिलने आए। त्रिभुवन की सृष्टि एकत्रित हो गई। ब्रह्मा, महादेव और तैंतीस कोटि देवता भी पहुँच गए। नाग, गन्धर्व, पर्वत और समुद्र सबमें खलबली मच गयी। राजा ने शीघ्र ही शुक्र को बुलाकर बताया कि मैंने सारा संसार छान डाला किन्तु यम को कहीं भी खोज नहीं पाया। यदि उसका कहीं भी पता चल जाय तो पकड़ कर मैं उसे स्वर्ग भेज दूँ। रावण का राज्य छोटा था फिर भी उसने मृत्यु को बाँध लिया था। वह मृत्यु कहाँ रहती है? उसका पता कीजिए और तत्क्षण शीघ्रता से ले आइए जिससे उसका अन्त हो सके। शुक्र ने कहा- देखो, मृत्यु तो सिर पर चढ़ी है,

उसको बाँधने से कुछ न होगा। रावण ने मृत्यु को बाँध कर तपस्या की थी किन्तु काल पूरा होने पर वह भी न बच सका। जिसने रामावतार में रावण- बध किया वही तुम्हारा भी विनाश करेगा। विश्वास न हो तो निकट में वर्तमान यम के दूत ब्रह्मा के पुत्र नारद से पूछ लीजिए। वे इसका भेद और अन्त जानते हैं। राजा ने नारद को शीघ्र बुलाकर पान का बीड़ा देकर बैठाया और उनसे मृत्यु के विषय में पूछा। नारद ने बताया कि विष्णु नन्द महर के यहाँ अवतार लेंगे। तुम्हारी बहन देवकी के गर्भ से अवतार लेकर तुम्हारा संहार करेंगे। उसके पिता ऋषि वसुदेव हैं। विष्णु ने वस्तुतः अवतार ले लिया है। शत्रु तो तुम्हारे घर में है, संसार में क्यों खोजते हो? विष्णु की तपस्या से प्रसन्न होकर कृपालु ईश्वर ने विष्णु द्वारा माँगे गए दस अवतारों का वरदान दिया। विष्णु रूप होकर जिसने समुद्र- मन्थन किया उसके मत्स्य, कच्छप, बाराह, वामन, नृसिंह, परशुराम और श्रीराम आदि दस अवतार हुए। नारद की बात सुनकर विस्मित कंस ने उनसे शंका प्रकट की कि एक बार अवतार लेकर जो मर जाता है वही पुनः कैसे अवतार धारण करता है। उसने कहा कि मिट्टी का बर्तन टुकड़े- टुकड़े हो जाने पर पुनः कैसे जुड़ सकता है? नारद ने राजा से कहा कि बिना मायाहीन हुए ज्ञान नहीं होता। जब सर्वत्र ईश्वर ही व्याप्त है तो वह क्या नहीं कर सकता? पूर्णिमा का चन्द्रमा घटते- घटते द्वितीया को बिल्कुल क्षीण हो जाता है, किन्तु पुनः वह सम्पूर्ण होकर दिखायी पड़ता है। उस ईश्वर को सब कुछ शोभा देता है। उसके कार्य में कोई निषेध नहीं है। - ["कन्हावत", कड़वक 30- 40]

शत्रु के विषय में सुनते ही राजा क्रुद्ध हो उठा। उसने देवकी का वध करना चाहा किन्तु जब उसे ज्ञान हुआ कि स्त्री- वध से महापाप होता है तो उसकी बुद्धि फिर गयी। उसने सोचा कि क्यों न बाँधकर उसे पहरे

में रखूं? उससे उत्पन्न बालक का ही वध करूँ। कंस ने तत्पश्चात् देवकी और वसुदेव को लाकर चौदह सौ दैत्यों के निरीक्षण में रख दिया। जो बालक उत्पन्न होते थे उन्हें वज्र के पाटे पर पटक कर वह मार डालता था। कंस के झूठे गर्व से परमेश्वर रुष्ट हो गए। उन्होंने शीघ्र विष्णु को उत्पन्न किया विष्णु ने विनयपूर्वक कहा कि मैंने रामावतार में बहुत दुःख उठाया, मैंने एक स्त्री सीता को ही जाना जिसे रावण हर ले गया। अतः इस दुःखमय संसार में मैं फिर क्या लौटूं? ईश्वर ने आज्ञा की कि सब चरित मेरे थे उसमें तुम्हारा कोई दोष न था। जिस प्रकार उस जन्म में तुम्हें अत्यन्त दुःख हुआ था उसी प्रकार इस जन्म में तुम्हारे सुख के लिए स्वर्ग की अप्सराओं के समान सोलह सहस्र गोपिकाएँ भोग के लिए उत्पन्न की हैं। इस प्रकार रूपवती स्त्रियों के लोभ में पड़कर विष्णु पिछला दुःख भूलकर अवतरित हुए। - ["कन्हावत", कड़वक 41-43.]

देवकी के सात पुत्रों के वध के पश्चात् उसे पुनः गर्भ हुआ। उसे अत्यन्त आत्मग्लानि हुई। वह विलाप करती हुई यमुना तट पर पहुँची। उसके करुण क्रन्दन को दूसरे किनारे पर आई हुई यशोदा ने सुना और निकट आकर व्यथा का हेतु पूछा। आत्मग्लानिपूर्वक देवकी ने कंस द्वारा मारे गए पुत्रों की करुण कथा यशोदा से कह सुनाई। भावी दुःख का चिन्तन करती हुई देवकी ने यमुना में कूद कर वेदना- शान्ति की अभिलाषा की, क्योंकि उसे इस पीड़ा से उद्धार का कोई सम्बल दृष्टिगत न था। उसने यशोदा से अप्रत्यक्ष रूप से सहायता की याचना की। यशोदा ने भी उसे धैर्य बँधाते हुए अपना बालक देकर प्रतिदान में देवकी के बालक की रक्षा का वचन दिया। - ["कन्हावत", कड़वक 44- 48.]

भादों की अँधेरी रात्रि में कन्ह ने अवतार लिया। उस समय विधि द्वारा योगनिद्रा के संचार से सब सुत सो गए। अंधकार में प्रज्वलित दीपक के प्रकाश की भाँति सम्पूर्ण सदन आलोकित हो उठा। वसुदेव के घर में समस्त कलाओं से ज्योतित चन्द्रमा का मानों अवतार हुआ। ऋषि,देवता, सूर्य-चन्द्र, तारागण आदि सभी आनन्दित हो गए। देवकी ने वसुदेव को उद्बोधित किया कि आप ऋषि और तपस्वी हैं किन्तु कंस ने आपके आठ पुत्रों को मार कर निर्वंश कर दिया। अतः इस पुत्र को कहीं ले जाकर बचाओ; नन्द महर की पत्नी मेरी मित्र हैं। उसने मेरे बालक को लेकर बदले में अपना बालक देना स्वीकार किया है। यदि वहाँ इसे ले जा सकते हो तो ले जाओ और इसी रात्रि उसके बालक को ले आओ,अन्यथा जन्म का पता चल जाने पर प्रातः ही इसका मरण होगा। वसुदेव ने सुवर्ण-वत् अति निर्मल और लावण्ययुक्त बालक को देखकर उसे हृदय से लगा लिया। बाल- रक्षा में चिन्तित वसुदेव के पग की बेड़ियाँ गिर पड़ीं। निद्रा-योग के कारण सभी रक्षक सो गए। दरवाजों के ताले बिना कुंजी के खुल गए। उत्ताल- तरंगों से युक्त [यमुना] नदी के तट पर भादों के घोर अँधेरे में वसुदेव खड़े होकर पार जाने की चिन्ता में डूब गए। नाव आदि न होने के कारण लौटने पर उन्हें कंस रूपी सिंह का डर तथा आगे यमुना में बह जाने का भय सताने लगा। दृढ़ होकर वे यमुना में प्रविष्ट हुए और सहज ही पार हो गए और नन्द महर के द्वार पहुँचे। उसी समय देवबहती दुर्गा ने नन्द के घर अवतार लिया था। पुकारे जाने पर वसुदेव भीतर बुलाए गए। नन्द-पत्नी ने सुन्दर बालक को गोद में ले लिया। वसुदेव ने भी स्वयं दुर्गा की अवतार उस बालिका को ले लिया। तत्पश्चात् नन्द महर वसुदेव को पहुँचाने आए। उन्हें नाव पर चढ़ाकर वे वापस लौट गए। वसु-देव जब देवकी के पास लौट कर आए तब सबकी निद्रा भंग हो गई। दूतों

द्वारा शिशु- जन्म का समाचार पाकर कंस दौड़ा आया। देवकी द्वारा विनय करने पर भी कंस ने जैसे ही बालिका के पैर पकड़ कर शिलापट पर पटकना चाहा, वह विद्युत् की भाँति उसके हाथों से छूटकर आकाश में निकल गई। अन्तरिक्ष में चमकती हुई वह गरज उठी।-{"कन्हा0",क049-55}

प्रातः समाचार फैल गया कि रात्रि में यशोदा को पुत्र हुआ। विविध गीत, वाद्य, नृत्य तथा वेदोच्चार द्वारा मंगलाचरण होने लगे। तीसरे दिन गोकुल में घर- घर न्योता बँटा तथा विविध जेवनार बने। पाँचवे दिन रात्रि- जागरण के मध्य यशोदा ने कन्ह को गोद में लेकर दुग्ध- स्नान कराया। छठ के दिन लग्न विचारने हेतु बुलाए गए पण्डितों ने बताया कि यह महादेव- ब्रह्मा का भाई महापुरुष उत्पन्न हुआ है। विष्णु, जिनके दस दस नाम और दस अवतार हुए हैं, कन्ह के रूप में अवतरित हुए हैं। लग्न-पत्रिका की विवेचना करके उन्होंने आगे कहा कि गोकुल में पद्मिनी जाति की गोपिकाएँ भी उत्पन्न हुई हैं। उनके मध्य एक गोपी अपने सौन्दर्य के लिए जगत- प्रशंसित, राम- रूप के लिए सीता-सदृश, कन्ह अवतार में राधी हुई है। - }"कन्हावत", कड़वक 56-59}

एक रात्रि कंस ने स्वप्न में देखा कि वंशी बजाता हुआ कोई एक पुरुष उस पर आ धमका। वह भय से अवाक् हो गया। पुनः क्षण भर काल-रूप दिखाने के पश्चात् वह पुरुष अदृश्य हो गया। प्रातः कंस ने शुक {शुक्राचार्य} को बुलाकर विगत रात्रि में देखे गए स्वप्न का वर्णन करके उनसे स्वप्न- फल पूछा। शुक ने विचार कर कहा कि तुमने स्वप्न में श्याम वर्ण अवतारी कृष्ण को देखा है। वह बालक जन्म ले चुका है। यदि जमते हुए बिरवा को उखाड़ न फेंका तो वृक्ष बन जाने पर नष्ट कर पाना कठिन होगा। नारद ने कहा कि रात में ही जन्म की घटना भी हुई है। वसुदेव ने उसे गोकुल ले जाकर यशोदा को सौंप दिया। अब वह बालक नन्द महर

के घर में है। उसके मारने का एक ही उपाय है कि कोई स्त्री वहाँ भेज दीजिए जो स्तनों में विष लगाकर उसे दे दे। कंस ने राक्षसियों को बुलाकर कन्ह को विष देकर मारने के बदले आधा राज्य प्रदान करने का लोभ दिया। उनमें से पूतना तैयार हुई। वह बीड़ा लेकर गोकुल गयी। हृदय में कपट, मुख में मीठी बातें और स्तनों में विषम विष धारण करके उसने नन्द महर के घर प्रवेश किया। हिंडोले पर झूलते हुए कन्ह को स्नेह से गोद में लेकर हँसाती-बुलाती हुई विषैले स्तन से लगा लिया। विधि का ऐसा विधान हुआ कि विष भी उनके मुख में अमृत बन गया। कन्ह ने इतने जोर से खींच कर दूध पिया कि हृदय का रक्त सोख लिया और पूतना मर गयी। - ["कन्हावत", कड़वक 60- 64.]

पूतना को मृत देखकर सब डर गए। वे सोचने लगे कि अपनी दुलारी बहिन की मृत्यु सुनकर राजा पता नहीं क्या करे। अतः सभी ने प्रातः गाँव छोड़ देने का विचार किया। नन्द ने यमुना- तट पर जाकर जल में अगर का हवन किया। कंस ने जब यह बात सुनी तो अत्यन्त क्रुद्ध होकर सिर पीटने लगा।

काल और करट दोनों वेगी थे। कंस ने उन्हें बुलाकर द्वारपाल बनाने का प्रलोभन दिया और कन्ह को अंधा बनाने के लिए बीड़ा देकर गोकुल भेजा। काल- करट काग बनकर द- दा- द - दाई बोलते हुए गोकुल पहुँचे। कन्ह ताड़ गए। उन्होंने पहले तो सोने का बहाना किया किन्तु अचानक दोनों बाहें फैलाकर दोनों हाथों से उनकी गर्दन मरोड़ दी। उनका रुण्ड-मुण्ड अलग करके क्रोधपूर्वक ऐसा फेंका कि वे मथुरा में कंस के आगे जा गिरे। राजा ने जब उन्हें सामने देखा तो अत्यन्त चिन्तित हुआ। -["कन्हावत", कड़वक 65-67.]

कंस शुक्र को साथ लेकर कन्ह को मारने का उपाय सोचने बैठा। उसने कंस को सुझाया कि पाताल नगरी में महेश की फुलवारी है जिसके मानसरोवर में सहस्र- दल कमल खिलते हैं। मनुष्य वहाँ जाने पर भस्म हो जाता है। नन्द को कमल लाने के लिए भेजो। वह स्वयं न जाकर बालक को ही भेजेगा जहाँ उसकी मृत्यु निश्चित है। कंस ने नन्द को बुलाकर अपने अनुष्ठान के निमित्त पाताल से सहस्रदल कमल लाकर पहुँचाने का आदेश दिया अन्यथा दुष्परिणाम की चेतावनी दी। नन्द इस मृत्युदायक कार्य से व्यथित हो गए। - {"कन्हावत", कड़वक 68- 69.}

गोपाल पाँच वर्ष के हो गए।अंग- अंग पर आभरणों से सुशोभित वे बलभद्र आदि झुण्ड के झुण्ड साथियों के साथ मिलकर यमुना- तट पर गेंद खेलने पहुँचे। खेलते- खेलते गेंद इतनी तेज मारी कि यमुना की मध्यधारा में जा गिरी। कन्ह स्वयं जल में कूद पड़े और डूब गए। साथियों ने दौड़कर कन्ह के डूबने का समाचार यशोदा को कह सुनाया। गोकुल में गुहार से नर- नारी, नाव के खेवक सब दौड़ पड़े। केवटों ने जाल डाल कर पूरा जल छान डाला किन्तु कन्ह का कहीं पता न चला। नन्द आदि सब विलाप करने लगे। राजा कंस यह समाचार सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। {कन्हावत, कड़वक 70- 72.}

सीढ़ियों से जल में प्रविष्ट होते हुए कन्ह ने मार्ग में अनेक नदियों तथा समुद्र का प्रणाम स्वीकार किया। पाताल स्थित महादेव की बारी वाले अवर्णनीय मानसरोदक में अष्टकुली नागों से रक्षित प्रफुल्लित कमलों को देखकर वे लुभा गए। शेषनाग उस बारी में गेंडुरी मारकर बैठा था। कन्ह बासुकि के मस्तक के पास पहुँचे तो उसकी पत्नी ने कन्ह को भाग जाने की चेतावनी दी। कन्ह ने कहा कि मुझे एक लाख कमलों से काम है,

उन्हें देने पर ही तुम्हें मुक्ति दूँगा अन्यथा नाश करके बलपूर्वक ले लूँगा। नागिन ने पुनः सावधान किया कि यहाँ आकर पुनर्गमन नहीं होता। अतः खिलवाड़ मत करो। कन्ह ने कहा कि यदि चाहूँ तो तुम्हारे पति के समक्ष ही सारी वाटिका का विध्वंस कर दूँ। शेषनाग जग पड़ा और अग्नि की ज्वाला के समान फुफकार छोड़ने लगा। सामने खड़े कन्ह कृष्ण- वर्ण होकर अचेत हो गए। समस्त देवता घबड़ा गए। अमृत- सिंचन से कन्ह सिंह की भाँति क्रोधित होकर सोते हुए जग से पड़े। कन्ह ने अपने हाथों से उसके फन को पकड़कर कमलनाल द्वारा नाथ लिया। दो लाख कमल तोड़कर उसके दोनों ओर लाद लिया और स्वयं भी उस पर चढ़ बैठे। सुरूपवती पद्मिनी नागिन क्रन्दन करने लगी। छोटे से बालक द्वारा अपने बलवान पति को बँधा हुआ देखकर उसने कन्ह को कोई देवता मानकर उनसे नाम पूछा। कन्ह ने अजन्मा ज्योतिस्वरूप परमात्मा की महिमा- वर्णन करके अपने को उसी का अंश, कन्हरूप अवतार बताया। ["कन्हावत", कड़वक 73- 80.]

नाग पर कमल लादे कन्ह जल की धारा में से उतराते हुए पर्वत की भाँति दिखाई दिये। पहले मगर आदि का सन्देह व्यक्त करने के बाद लोगों ने शेषनाग पर कमल लादे कन्ह का निश्चय किया और यशोदा- नन्द से आनन्द मनाने को कहा। कन्ह ने तीर पर आकर कमल उतारकर नाग को छोड़ दिया। लोगों ने उत्सव मनाया, प्रदक्षिणा एवं न्योछावर करके उन्हें लाखों वर्ष जीने की आशीष दी। बलभद्र ने हँसकर कन्ह से पूछा- तुम श्वेत थे, किसुन [कृष्ण] कैसे हो गए? एक रात दो दिन कलेवा कैसे आया? इत्यादि। कन्ह ने कहा तुम जानते हुए भी अनजाने क्यों बनते हो? तुम्हीं तो दस अवतारों में मेरे सदा साथी रहे हो। मैं नन्द को कलंक से बचाने के लिए पाताल से कमल लाने गया था। वहाँ के रखक नाग के फुफ- कार से काला हो गया। - ["कन्हावत", कड़वक 81-86.]

नन्द महर ने राजद्वार पहुँचकर कंस को कमल दिया। बाल कन्ह द्वारा कमल लाने की बात बताने पर सब अचम्भे में पड़ गए। कंस के पेट में खलबली पड़ गई। वह शुक्र और नारद को बुलाकर कन्ह के मारे जाने की युक्ति पर विचार करने लगा। नारद और शुक्र ने कहा- जो गुड़ देने से मर जाए,उसे विष देना व्यर्थ है। दैत्यों से कहो कि जहाँ कन्ह गाय चराते हैं वहाँ मेघ रूप में स्फटिक शिला बरसाकर श्मशान बना दें। राजा ने दैत्यों को पान-बीड़ा देकर भेज दिया। - ["कन्हावत", कड़वक 87-88]

कन्ह बछड़ों को चराने वृन्दावन गए। उन्होंने वहाँ मेघ मल्हार ध्वनि अलापी। दैत्य मेघ बनकर छा गए। कन्ह ने बारह योजन ऊँचे और सात योजन विस्तृत पर्वत को बाँए हाथ पर टेक लिया और उसी के नीचे गायों को उतार दिया। दैत्य विवश होकर लौट गए। ["कन्हा0", कड़वक 89-92.]

कन्ह वन-वन विहार करते हुए गोपियों के साथ विविध क्रीड़ाएं करते थे। तंग आकर ग्वालिनियों ने नन्द को उलाहना दिया। आप अपने बालक को मना कीजिए। यह हमारे साथ बरजोरी करता है। हरि ने जब ग्वालिनियों को विवाद करते देखा तो झट से सिर की पगड़ी उतार दी और जाकर नन्द से कहा- देखो, ये मुझे बहुत खिजाती हैं। कोई मेरी चोटी पकड़ लेती हैं तो कोई सिर पर मटकी रख देती हैं और कोई बलात् गले लगा लेती हैं। - ["कन्हावत", कड़वक 93- 95].

कन्ह का चित्त चाँद [चन्द्रावली] ने हर लिया। वे हृदयदाह से पीड़ित और उदास हो गए। प्रेम की अग्नि गुप्त रूप से जलती है, धुआँ नहीं होता। स्मरण कर-कर के मन सूख जाता है, कोई भेद नहीं जान पाता। सोलह कलाओं से पूर्ण कन्ह की ज्योति क्षीण हो गई, शरीर सूख गया और मुख म्लान हो गया। यह दशा देखकर रोती हुई यशोदा ने नन्द को बुलाकर किसी वैद्य से औषधि कराने के लिए कहा। औषधि से विरह-पीड़ा अधिक बढ़ती गई। गोकुल में यह कानाफूसी होने लगी कि कन्ह को किसी की नज़र लग गई है।

अगस्त नामक धाय किसी कार्य से उस मार्ग से निकली तो कन्ह को देखने गई। यशोदा ने उससे बालक की सारी दशा बताई। धाय ने हँसकर कन्ह से हाल पूछा। कन्ह ने बताया कि उसी वानरि [चन्द्रावली] के दर्शन से मैं हारा गया हूँ। उस ज्योति में मैं पतंगा बन गया। उसने मेरा प्राण काढ़ लिया। धाय अगस्त ने चन्द्रावलि का परिचय बताकर कहा कि शोक मत करो। अभी तुम अबोध हो, तप नहीं जानते। कन्ह ने कहा कि तुम्हारे आने से बड़ी आशा बँधी है। दया करके मुझे जीवन-दान दो। इस प्रकार कन्ह द्वारा चाँद की प्राप्ति की इच्छा सुनकर धाय अगस्त आश्चर्य-चकित हुई कि आई तो थी रोग पूछने, सुनने को मिला भोग। उसने कन्ह से चाँद की प्राप्ति की दुरूहता प्रकट की। कन्ह ने कहा कि अब त तुम मेरी गुरु हो और मैं तुम्हारा चेला हूँ। तुम स्वाती हो और मैं चातक, अतः शीघ्र प्यास बुझा दो। अगस्त ने कहा कि तुम त उस जन्म के बड़े तपस्वी हो। मैं तुम्हें उसका दर्शन करा दूँगी। तुम "उदासी" बनकर वंशी बजाते हुए उस बाटिका में रहना। कन्ह धाय अगस्त के अमृतमय वचन से प्रसन्न होकर घनी छाया-युक्त, पक्षियों के कलरव भरी, सुगन्धित फुलवारी को देखने चल पड़े। अगस्त भी चन्द्रावली के निवासगृह की ओर चल पड़ी। - ["कन्हावत", कड़वक 96-106.]

कन्ह बारी में एक घनी छाया वाले चन्दन-वृक्ष के नीचे चौरा बना कर दर्शन की आशा से चाँद का नाम बार-बार स्मरण करने लगे। कार्तिक के पूर्ण राशियुक्त शरद शोभित थी। चन्द्रावली सखियों के साथ तपा की बारी पहुँची। रात्रि में दिन का सा उजाला छा गया। अधिक उल्लास से वे अपनी-अपनी जोड़ी के साथ परस्पर फलों से मारने की क्रीड़ा करने लगीं जिसमें किसी के गले का हार टूट गया और किसी के हाथ की चूड़ियाँ फूट गईं। चित्रकारी से सज्जित ऊँचे चौरे पर चढ़कर कान्हा मनो-

धारिणी बंशी बजा रहे थे। मृगनयनी ग्वालिनियाँ उसे सुनते ही बेसुध हो गईं। वैरागिनी चन्द्रावली को तो जैसे काम- वाण वेध गया हो। अगस्त ने कहा कि यह बालक देखने में छोटा है किन्तु अपने अकथनीय गुण से बंशी- शब्द द्वारा जगत् को लुभा रहा है। अत्यन्त सुन्दर, कोमल कान्तियुक्त, स्वर्ण से भी अधिक गौर वर्ण वाला, गदा- शंख-चक्र- युक्त वह रुद्र जाप करता हुआ बंशी बजा रहा है। चन्द्रावली उत्कण्ठावश सखियों को लेकर वैरागी के निकट जा खड़ी हुई। कन्ह उसे देखते ही समझ गए कि इसी की भौंह रूपी धनुष के तीव्र वाणों से मैं बेधा गया हूँ। एकटक चन्द्रावली को देखने पर सखियों ने कन्ह की मीठी चुटकी ली कि वैरागी होते हुए भी चन्द्रावली को देखकर तुम्हारा मन भोग की ओर क्यों लग गया? कन्ह ने कहा कि प्रत्येक अवतार में जिस धनुष को मैंने धारण किया था उसे चन्द्रा- वली ने अपने भौंहों में चुरा लिया है। मुझे उससे शीघ्र मिला दो अन्यथा वह मेरे प्राण ले लेगी। सखियों ने गोपाल से वैरागी बनने का रहस्य पूछा। कन्ह ने दुख- सुख, लाभ- हानि से अपने को पृथक् करते हुए ज्ञान दिया कि विधाता ने अपने कौतुक के लिए यह सारा संसार रचा है। यह सब उसी का खेल है। हम तुम सब एक हैं। जितनी सोलह सहस्र ग्वालिनियाँ हैं वे सब मेरे लिए ही विधाता द्वारा अवतरित की गई हैं। उनमें चन्द्रावली प्यारी गोपिका है। वह मुझसे अलग क्यों है? यह सुनकर चन्द्रावली ने जिज्ञासा भरी दृष्टि से अगस्त की ओर देखा। अगस्त ने कन्ह का परिचय बताते हुए कहा कि यही चाणूर- वध करने वाले और तुम्हारे लिए वैरागी बनने वाले कन्ह हैं। विधाता ने इन्हीं को तुम्हारा पति बनाया है। चातक की भाँति ये तुम्हारे प्रेम के प्यासे हैं। स्नेहपूर्ण कृपा करके इन्हें आनन्द दो।

चन्द्रावली ने अपने पति के विषय में ज्योतिषियों द्वारा की गई भविष्यवाणी बताकर कन्ह पर शंका प्रकट की। इस पर अगस्त ने कहा कि कन्ह दश अवतारी हैं। इस नवें अवतार में ये कंस- वध करेंगे। चन्द्रावली ने कन्ह को पहचान कर उल्लसित हो उनसे अनुनय- विनय की। कन्ह उसकी बाँह पकड़कर प्रीति- निर्वाह के लिए मनुहार करने लगे। चन्द्रावली बनावटी क्रोध से झिड़क कर कहने लगीं कि बरबस मेरी बाँह पकड़ने की बात यदि गोकुल वाले तथा निर्दयी कंस सुन लेंगे तो मेरा, तुम्हारा और सब गोपिकाओं का कल्याण नहीं होगा। कृष्ण रूप गोपाल ने पुन: अपने दस अवतारों और प्रतापों का स्मरण दिलाया। चन्द्रावली ने शंका-निवारण के लिए कन्ह से अपना स्वरूप दिखाने की प्रार्थना की। उन्होंने तुरन्त चतुर्भुज रूप धारण कर लिया तथा दस अवतारों का उल्लेख किया। चन्द्रावली ने पुन: हँसकर उनसे आठ प्रश्न पूछे जिनको उन्होंने उत्तर भी दिये। तत्पश्चात् चन्द्रावली के साथ कन्ह ने भोग किया जो उसी प्रकार सब गोपियों को भी प्राप्त हुआ। रात भर केलि चलती रही। फिर कन्ह मढ़ी में लौटे और चन्द्रावली धवलगृह पर चढ़ गई। {"कन्हा०", क० 107-13

प्रात: महरि ने चन्द्रावली को बुलाकर दही मथने को दिया। वह अन्यमनस्क होकर मथ रही थी। विलम्ब होते देखकर महरि ने आकर पूछा, तुम कैसे मथ रही हो कि घी नहीं निकला। तुम कवी- सी क्यों हो? चन्द्रावली ने बहाना बनाकर कहने लगी कि रात स्वप्न में देखा कि मैं सखियों के साथ वन को गई हूँ। वहाँ मार्ग में सिंह ने मुझे दौड़ा लिया। सखियाँ भाग निकलीं। जब वैरियों को जगाया तब वे जगीं, नहीं, गुहार भी नहीं लगीं। रात भर डर के मारे जागती हुई पड़ी रहने से शरीर शिथिल हो गया। वह रूप बार- बार स्मरण हो आता है तो तन काँप ब उठता है। - {"कन्हावत", कड़वक 137- 139}

राधे कन्ह से मिलने के लिए सुन्दर पक्वान्न, लड्डू आदि लेकर वृन्दावन के संकेत- स्थान पर गई ,किन्तु वहाँ उन्हें न पाकर चकई की भाँति विरह से दुखी हो गई। सूर्योदय होने पर कन्ह राही [राधा] के निवास पर गए। राही कुछ उत्तर न देकर रोने लगीं। कन्ह ने कहा कि तुम कुछ विपरीत बातें सुनकर क्रोधित हो गई हो। मैं तो निकट ही गोरा- हाट में रात भर बंसी बजाता रहा। वहाँ दस- पाँच लोग नाचते गाते रहे। तुम मुझ पर शंका मत करो। राधा ने कहा कि मुझे भुलावा मत दो। चन्द्रावली के समस्त श्रृंगार के चिह्न सिन्दूर आदि तुम्हारे शरीर में लगे हैं। तुम्हें यदि चन्द्रावली अच्छी लगती है तो मुझे क्या ईर्ष्या? इस पर कन्ह राधा की मनुहारी करने लगे। तब उसने हँसकर अपनी व्यथा प्रकट की कि क्या मुझसे भी अधिक कोई रूपवती है जिस पर आप रीझ गए? दिन भर राही से विलास करके कन्ह जब रात में चन्द्रावली के पास पहुँचे तो उसने भी राही की ही तरह शंका प्रकट की। गर्वपूर्वक उसने अपने को स्वर्ण जैसी और राही को रावटी जैसी कहा। किन्तु कन्ह राही और चन्द्रावली दोनों के प्रति समान अनुराग दिखाते रहे। एक दिन चन्द्रावली दो सहस्र गोपियों के साथ पूजन-सामग्री लेकर महेन्द्र की पूजा करने गई। पूजन के पश्चात् मनौती की कि कन्ह नित्य मेरे पास रहें, राही के पास न जाँय। जैसे ही चन्द्रावली पूजन करके बाहर आई वैसे ही राही भी वहाँ पहुँची। उसने भी मनौती की कि हे ईश्वर, तू किसी को सौत न दे। यदि मेरा सुहाग लौटकर लौट आयेगा तो मैं रात- दिन तुम्हारी दासी होकर सेवा करूँगी। वहीं पर चाँद [चन्द्रावली] ने राही से व्यंग्यपूर्वक पूछा कि तुमने श्रृंगार क्यों नहीं किया? उसके साथ तुम्हारी कैसे निभ रही है? हँस- हँस कर पूछती हुई चाँदा की बात को राही बिल्कुल न सह सकी। वह तिलमिला उठी।

उसने कहा कि मेरा श्रृंगार चुरा कर मुझसे ही कारण पूछ रही हो? तुमने मेरा प्रिय छीनकर ढिठाई की है और सौतिन की पीड़ा दी है। चन्द्रा ने कहा कि मैं गवाँर नहीं हूँ। सीधी बात जाननी चाही तो उल्टा उत्तर दे रही हो। मैं जगत में प्रकाश करने वाली हूँ और तू अँधेरी निशा। कन्त का संयोग और भोग तो मुझे विधातानेदिया है। राही ने चाँद की भर्त्सना करते हुए कहा कि हँस- हँस कर पर- पुरुष को देखती हो तिस पर शान बघारती हो? राही और चाँदा के मध्य इसी प्रकार परस्पर आत्मश्लाघा और पर- निन्दा की बातें बढ़ती गईं। दोनों ने एक दूसरे के बाल पकड़ लिए और भिड़ गईं। सारा श्रृंगार विनष्ट हो गया, सखियाँ भी उन्हें छुड़ाने में असमर्थ हो गईं तो कन्ह को बुलाने दौड़ीं। कन्ह को इस बात का आभास हुआ तो उन्होंने शीघ्र जाकर दोनों को समझाया- बुझाया। चन्द्रावली सुखासन पर चढ़ कर सखियों से बातें करती हुई चली गई। - {"कन्हावत", कड़वक 140- 162.}

गोपियों की कन्ह- विषयक बातें कंस तक पहुँचीं। तभी शुक्र और नारद ने कंस से यज्ञ- होम करने और उसमें समस्त गोपियों को बुलाकर बलात् विवाह कर लेने की बात सुझाई। तत्क्षण ही राजा ने नन्द-यशोदा को दूतों द्वारा बुलवाकर बन्दी बना लिया। गोकुल में आदेश प्रसारित हुआ कि समस्त प्रजाएँ, गोपियों-सहित दही, घी आदि लेकर होम- जाप- अभिचार में भाग लें। सब गोपियों से राजा का विवाह होगा। गोकुल में खलबली मच गई कि अब कौन उद्धार करेगा? कन्ह को अन्तर्ज्ञान हो गया। उन्होंने सायं गाएँ चराकर लौटने पर माता-पिता से शून्य घर में बलभद्र को अकेला देखा। ग्वालों ने आकर ये सारी बातें कृष्ण से बताईं और दुष्ट राजा के राज्य से प्रातः निकल जाने का विचार किया। कन्ह ने कहा कि जहाँ कहीं जायेंगे, वहीं उसका राज्य होगा। अतः ईश्वर

का स्मरण करके प्रातःकाल होने दीजिए। प्रातः अर्जुन {बलभद्र} को साथ लेकर कन्ह ने रथ सज्जित करके विविध आयुधों के साथ रण जीतने के लिए प्रस्थान किया। - {"कन्हावत", कड़वक 163- 167.}

कंस की सभा बैठी हुई थी। सभी बब गोकुल की ओर दृष्टि लगाए हुए थे। मेघ- गर्जन, विद्युत- ताड़न और वेगवान मारुत देखकर सबने आँधी- पानी की आशंका की। शुक्र ने नारद से बताया कि यह चतुर्भुज विष्णु का क्रोध है। कंस देखते ही घबड़ा गया। उसने दैत्यों को तैयार हो जाने का आदेश दिया। महावत से कुबला {कुवलयापीड} हाथी को द्वार पर खड़ा करने को कहा। उसने महान् दैत्य जरासंध तथा पहलवान मुष्टिक को बुलाया और अन्य बलशाली दैत्यों को एकत्रित करके स्वयं धौराहर पर जा चढ़ा। नारद ने कहा कि उस सिंह रूप कन्ह के समक्ष तुम्हारे दैत्य सियार जैसे निर्बल हैं। उसने बलि को छला, सहस्रबाहु, दशकंध और हिरण्यकशिपु को मार डाला। इसलिए अक्रूर को दूत बनाकर मेल- मिलाप करके उसे हाथी के नीचे कर दो। कंस ने अक्रूर को बुलाकर उससे वह छल करने को कहा जिससे सेना निरस्त्र हो जाय और मैं कन्ह को कुबला हाथी के नीचे दबवा दूँ, जरासंध उसकी चारों भुजाएँ उखाड़ फेंके और अन्य दैत्य शेष मनुष्यों को खा जायँ। के कंस के कथनानुसार अक्रूर मथुपुर से गोकुल गए। वहाँ उन्होंने चतुर्भुज को पहचान कर दण्डवत् प्रणाम किया। कुशल- प्रश्न के पश्चात् अक्रूर ने कंस के अत्याचारों का वर्णन किया। उन्होंने उनसे कंस को पकड़कर मार डालने की भी प्रार्थना की। कन्ह का क्रोध दूर हो गया। उन्होंने कहा कि तुम्हारी बाँह पकड़ कर कहता हूँ कि मैंने ही शुक्र की एक आँख फोड़ी थी। शुक्र ही कंस का प्रधानमंत्री है और वही उसका कान भरता रहता है। मैं कंस के वध की प्रतिज्ञा करता हूँ। अक्रूर ने कहा कि हे स्वामी, कवच आदि

रख दीजिए और मधुपुर चलिए। मैं मामा- भांजे में मेल कराकर वसुदेव-देवकी, नन्द- यशोदा चारों को छुड़ा दूँ, तुम्हारे बहाने मुझे भी यश मिल जाएगा। यदि वह राज्य दे दे तो क्यों युद्ध कीजिएगा? दोनों भाइयों ने जब मधुपुर के लिए प्रस्थान किया तो गोपियाँ विरहजन्य दुःख का स्मरण कर बहुत पीड़ित हुईं। - ["कन्हावत", कड़वक 168- 177.]

मधुपुर पहुँचकर कन्ह ने अक्रूर से सुदामा और कुब्जा से मिलने की इच्छा व्यक्त की। अक्रूर राजा के पास पहुँचे। नगर में यह समाचार फैल गया। राम- लक्ष्मण [कृष्ण- बलराम] सुदामा के द्वार पहुँचे। यह सुनते ही सुदामा दौड़ पड़े। उन्होंने दण्डवत प्रणाम करके उनका स्वागत किया। एक घड़ी सुदामा के यहाँ रुक कर वे कुब्जा के घर चल दिए। कुब्जा कटोरा भर चन्दन लेकर राजद्वार जा ही रही थी कि कन्ह से उसकी भेंट हो गई। वह कन्ह के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गई। उसने उनके अंगों पर चन्दन चढ़ा दिया। कन्ह ने उसके तप से प्रसन्न होकर उसे सुन्दर रूप प्रदान किया।उसे गले लगाकर उन्होंने उससे नित्य प्रीति का और कंस को जीतकर मधुवन में भोग का वचन दिया। कन्ह ने कुब्जा द्वारा कंस को संदेश भेजा कि वह बन्धकों को शीघ्र मुक्त कर दे अन्यथा आज उसका वधकर उसका राज्य उसके पिता को दे देंगे। - ["कन्हावत", कड़वक 178- 181.]

कार्तिक में दिवाली आई। नन्द महर ग्वालों को लेकर गाते-बजाते राजद्वार गए। कंस को जुहार करके निवेदन किया कि आज हम एक घड़ी नाचें- गाएँगे और आपका प्रसाद प्राप्त करेंगे। राजा ने हँसकर नन्द को बुलाया तथा पान देकर बैठाया। उसने कहा कि अपने बालक कन्ह को अहीरों के साथ लाकर खेल दिखाओ। मैंने सुना है, तुम्हारा बालक कन्ह आयु में छोटा है किन्तु अच्छी कुश्ती लड़ता है। मैं सब ग्वालों को तथा तुम्हें बहुत पुरस्कार दूँगा। राजा की आज्ञा से वे बहुत दुःखी हुए और

प्रातः आने का वचन देकर चले गए। प्रातः होते ही राजा के दूत उन्हें बुलाने आए। कन्ह ने हृदय में ठान ली कि आज मल्लों से युद्ध करूँगा। इस बात को केवल बलभद्र ही जान पाए थे। सोंटिये बीस सहस्र ग्वालों को लेकर मल्लों के अखाड़े में पहुँचे। वहाँ कुबला हाथी सहित कोटि दानव और दैत्य ग्वालों से युद्ध के लिए इकट्ठे थे। मधुपुर के लोग भी उत्सव देखने आए थे। कंस क्रोधित होकर मन में सोचने लगा कि कन्ह बचकर कहाँ जायगा। तीनों भुवन में चर्चा फैल गई कि कंस ने विष्णु से युद्ध ठान लिया है। अतः देवता, नाग, यक्ष आदि सब युद्ध देखने आए। कंस ने नन्द को बुलाकर कहा कि युद्ध एकोखा होगा। जो जिसको मारे, वही विजयी होगा। तुम्हारा गोपाल कुश्ती लड़ता है तो मेरे भी दैत्य मल्ल हैं। नन्द आकुल हो उठे कि आज यहाँ आकर बालक कन्ह को गवाँ दिया। उन्होंने कहा- राजन् हम यादव मल्लयुद्ध क्या जानें। आज्ञा हो तो अहीर लोग खेल दिखाएँ किन्तु राजा की आज्ञा टल नहीं सकती थी। इसलिए नन्द पान लेकर लौट पड़े। कन्ह ने कहा- पिता जी। चिन्तित न हों। मैं गोविन्द हूँ। मुझसे कौन जीत सकता है? मैंने ही अनेक दैत्यों का संहार किया है। आज महाभारत के भीम के समान मल्लों से भिड़ूँगा। कन्ह के ऐसा कहने पर ग्वालों को कुछ आशा बँधी। वे मेघ- गर्जन करके आ डटे। बलभद्र ने कन्ह को युद्ध के विषय में परामर्श दिया और अपने को साथी अर्जुन और नित्य सेवक कहा। आज्ञा पाते ही अर्जुन [बलभद्र] क्रोधित हो उठे और अंगद की तरह पैर रोप कर लड़ने को ललकार उठे। मल्ल दैत्य दौड़कर अर्जुन से भिड़ गए। उन्होंने उनमें से एक को घुमाकर ऐसा फेंका कि पुनः वह निकट नहीं आया। इसी प्रकार विविध दाँव- पेंचों से पछाड़े गए दैत्य- दल में भगदड़ मच गई। कंस ने पर्वताकार चाणूर को ललकारा।

चाणूर के पाँव जमाते ही इन्द्रादि डर गए। हाँथ में वज्र गुजा {गदा} लेकर उसने गर्जना की कि आज हजार कन्ह भी हों तो सबको मार डालूँगा। मुरारी ने ध्यान लगाकर देखा तो अर्जुन को पीछे करके कहा, इस चाणूर को इस प्रकार न मारा जा सकेगा। इसका एक बूँद रक्त भूमि पर गिरेगा तो वह फिर चाणूर बन जायगा। इसे स्वयं मैं मारूँगा। कन्ह के रथ पर सवार होते ही श्री भगवान उनके सहायक हो गए। हनुमान जी ध्वजा पर आ बैठे। कन्ह ने भयंकर युद्ध करके दैत्यों का संहार करने, कंस का गर्व नष्ट करने तथा कंस की रंगभूमि को कुरुक्षेत्र बना देने की घोषणा की। चाणूर के साथ रख- बख दैत्य भी लड़ने आए। कन्ह ने अदृश्य होकर उनके यूथों का बड़ा संहार किया। उन्होंने चतुर्भुज रूप धारण करके चारों भुजाओं में मुसल, शंख, गदा, और धनुष धारण कर लिया। वे स्वयं के खेल में खिलाड़ी भी बन गए। चाणूर ने कन्ह पर गदा चलाई। कन्ह ने उसे गदा से टाल दिया। गदाओं की भिड़न्त से वज्राग्नि निकल पड़ी। पुनः दोनों गदा त्यागकर हस्ति-सिंह के समान भिड़ गए। कन्ह से किसी दैत्य की दाल न गली। जैसे हनुमान ने पूँछ घुमायी उसी प्रकार कन्ह ने चक्र घुमाकर निकट आने वालों का संहार कर डाला। अर्जुन एक- एक बार सहस्र बाण छोड़ने लगे। चाणूर ने अपनी मृत्यु निकट समझ लिया। चतुर्भुज कन्ह ने चाणूर को पकड़कर इस प्रकार पिराकर मारा कि भूमि पर रक्त न गिरा। गोपाल गोविन्द की विजय का डंका बज गया। कंस चाणूर का वध और कन्ह का क्रोध देख कर डर गया कि यह अब मुझे भी मार डालेगा। उसने नन्द को पान का बीड़ा देकर कहा कि अहीरों को रोक लो। फिर कन्ह को स्वर्ण चक्र वाला रथ और पहनावा मँगाकर दिया। यादवराय रण जीतकर हँसते हुए गोकुल चले। कंस भागकर दुर्ग में चला गया। ग्वालमण्डली कृष्ण की विजय से उल्लसित हुई और यशोदा ने कृष्ण की आरती उतारी। {कन्हा०, छ०182-204

चन्द्रावली जो राधी से दो वर्ष छोटी थी, धौराहर पर चढ़ी हुई चाणूर का मर्दन करने वाले कन्ह का दर्शन करना चाहती थी। धाय अगस्त से पहिचान कराने के लिए अनुरोध करने पर जब उसने कन्ह को देखा तो अचेत हो गई। अगस्त ने जल छिड़ककर उसे होश में किया और प्रेम के चक्कर में न पड़ने की चेतावनी दी, किन्तु वह प्रेमासक्त बनी ही रही। रात्रि में अगस्त समेत सखियों को बुलाकर उनसे तन- मन की प्यास बुझाने के लिए अमृत- रस पूर्ण बातें करने की प्रार्थना की। अगस्त ने उससे बताया कि आज रात्रि नन्द के द्वार पर खेल- तमाशा होगा। इस पर चन्द्रावली ने उससे अनुरोध किया कि उसे भी अपने साथ ले चलें। अगस्त को आगे करके पूजा का थाल और जयमाल लेकर सखियों-सहित चन्द्रावली नन्द महर के मन्दिर गई। कन्ह और चन्द्रावली का परस्पर मिलन हुआ।-]"कन्हा0," क0 205-213.]

यशोदा ने कन्ह का आगमन सुनकर उत्पाती गोपियों को बहुत फट-कारा। नन्द को कुछ हँसी आई और कुछ दुःख भी हुआ। उन्होंने गोपियों को समझा- बुझाकर घर भेज दिया। अब कन्ह दण्डकारण्य जा पहुँचे।उन्होंने वहाँ ऐसी वंशी बजाई कि मृग भी उससे मुग्ध हो गए। वहाँ उन्होंने शीतल स्थान पर सेज बिछाई। -]"कन्हा0" क0 214-215.]

चन्द्रमुखी मृगनयनी राधी जो देवचन्द महर की पुत्री थी अपनी दो सहस्र सखियों के साथ मधुपुर होकर वृन्दावन जा निकलीं। मार्ग में कन्ह ने उन्हें रोककर दान देने को कहा। उन्होंने स्वयं को राजा का दानी बताया। इस पर पद्मिनी राधी ने कहा कि हम सब व्यापार - सामग्री तो नहीं लादे हैं तथा दही और पानी पर दान भी नहीं लगता। हाँ, गोरस चाहो तो ले लो और जाने दो। शंकाकुल गोपियाँ भाग निकलीं। राधी जब अकेली रह गई तो कन्ह से कहा कि मुझे ज्योतिषियों ने समुद्र- मंथन करने वाले की पत्नी बताया है। तभी कन्ह ने अपना अवतारी परिचय दिया। इस पर

राही को विश्वास न हुआ तो उन्होंने अपना स्वरूप धारण किया। अमर, कोक तथा गीता की ज्ञानी सयानी राही कन्ह को पहिचानते ही लजा गई। वह अकुली घर जाने का उपाय सोचने लगी। उसने कन्ह से वचन माँगा कि श्रृंगार करके वह सखियों सहित आएगी तब उसके साथ वे भाँवर फिरें। पश्चात् स्वयं लौटने का शपथ लेकर जब सखियों के पास आई तो उनसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सखियों ने प्रेमपंथ को कठिन और दुःखदाई निरूपित किया। -{"कन्हा०", छ० 216-232.}

कन्ह के प्रेम में व्याकुल राही गोपियों के साथ फूल चुनने और गौरी-पूजन करने निकल पड़ीं। वे नख से शिख तक इस प्रकार सोलहों श्रृंगार से सुसज्जित थीं कि उन्हें देखकर देवता भी विमुग्ध हो जाते थे। वन में प्रतीक्षारत कन्ह उन्हें आती देखकर छिप गए। गोपियां विविध क्रीड़ापूर्वक फूल चुनने लगीं। जब वे जाने को हुईं तो कन्ह प्रकट हो गए। वहाँ एक अपूर्व कनक- कोट बन गया और सभी मार्ग अवरुद्ध हो गए। एकसठ गोपियों के साथ आई हुई ब रुक्मिणी देवी ने भयभीत गोपियों को धीरज दिया। कन्ह और राही के मध्य प्रेमालाप चलता रहा। सयानी सखियों ने रुक्मिणी देवी को कन्ह की प्रेमयाचना मान लेने का परामर्श दिया। इस पर राही सखियों सहित कन्ह के पास गईं। तब कन्ह और राही का विवाह हुआ जिसमें ब्रह्मा ने वेदोच्चार किया, महादेव ने मण्डप छाया और पार्वती ने मंगल गीत गाया। पश्चात् कन्ह और राही एक हो गए। रात्रि व्यतीत होने पर राही को अपने अस्त- व्यस्त श्रृंगार के कारण घर वालों से डर लगने लगा। उस रात जैसा कुछ राही के साथ घटित हुआ था वैसा ही अन्य गोपियों के साथ भी हुआ। यह जानकर राही ने प्रसन्न होकर घर जाने की आज्ञा माँगी। कन्ह ने कहा- हे रुक्मिणीदेवी मैं तुम्हें प्रधान

पद दिया है। आज शृंगार- मण्डित समस्त गोपियों के साथ वसन्त-धमारी का खेल खेलें। इस प्रकार तीन दिन बीतने पर जब वे घर पहुँची तब घर वालों ने उनकी अस्त- व्यस्त अवस्था देखकर शंका व्यक्त की। गोपियों ने मार्ग में भटक जाने और काँटों में उलझ जाने का बहाना बनाया।

जैसे- जैसे कन्ह भोग करने लगे वैसे- वैसे कंस को अपच रोग होने लगा। उसने नारद और शुक्र को बुलाकर कहा- मैंने जब से कन्ह द्वारा पर्वत को उठाने की बात सुनी है, शिर में पीड़ा हो गई है। इस समय मेरा वही प्रिय मित्र है जो शत्रु का गर्व चूर कर दे। दोनों ने विचार कर कहा- दीवाली आने दीजिए। नन्द दीवाली खेलने आएँ तो अहीरों के साथ मार करा दो। उसी समय कन्ह को बुलाकर मल्लों के साथ स्कोबा युद्ध कराओ। उसमें चाणूर कन्ह का संहार कर देगा। रंगभूमि को सजाकर दूध- खाँड़ से पोषित अच्छे- अच्छे मल्लों को अखाड़े में भिड़ा दो। कंस ने इसी प्रकार की रंगभूमि की व्यवस्था की।

चाँद से भी चौगुनी निर्मल और रूपवती कुब्जा जब घर से निकली तो उसका सुन्दर रूप देखकर सब इतने मुग्ध हो गए कि बनिया नमक माँगने पर सुपाड़ी देने लगा, सोनार ने गहना गढ़ना भूलकर हाथ पैर हथौड़ी मार ली। जब वह राजकुल में पहुँची तो उजाला फैल गया। रानियाँ अवतारी समझकर उसकी स्तुति करने लगीं। सबने जाकर राजा से कहा कि एक पद्मिनी अप्सरा- जैसी नारी आयी है जिसकी उज्ज्वलता सहस्र सूर्य तथा सोलह कलाओं से युक्त चन्द्रमा भी मिलकर नहीं पा सकते। उसे देखकर कंस भी कुछ-कुछ गर्वा बैठा। तत्पुनः सँभलकर उठने पर उसने उसका परिचय पूछा। कुब्जा ने कहा- राजन्, मैं आपकी नित्य सेविका कुरूप कुब्जा हूँ। मार्ग में कन्ह से

भेंट हो गई थी। उन्होंने ही मुझे ऐसा सलोना रूप दिया है। उन्होंने आप से कहा है कि बन्दियों को मुक्त कर दें अन्यथा लंका- दहन की तरह ही मैं कार्य करूँगा। कंस यह सुनकर जल- भुन गया। तत्क्षण अक्रूर द्वारा कन्ह को बुला भेजा। अक्रूर कुब्जा के द्वार पहुँचे। उन्होंने कहा- कन्ह, तुम्हें कंस ने बुलाया है। बहुत समझाया पर मानता नहीं। तुम्हारे साथ कपट होगा, जो कुछ कर सको, करो। लगता है, आज उसका नाश होना है। कन्ह ने ध्यान लगाकर सब कुछ जान लिया। ब्रह्मा, शंकर, गौरा आदि ने जीतने का आशीर्वाद दिया। कन्ह चतुर्भुज रूप धारण करके आठों अस्त्र लिए बलभद्र के साथ युद्ध करने चल पड़े। सब लोग कृष्ण को देखने दौड़ पड़े। सब लोग कृष्ण को देखने दौड़ पड़े। जिसने जैसी भावना की, उसने वैसा ही उनका वर्ण देखा। रानियाँ कन्ह को देखने धौराहर पर चढ़ गईं। उन्होंने कन्ह को पहिचनवाने के लिए कुब्जा से अनुरोध किया। कुब्जा ने उन्हें कन्ह का दर्शन कराया जिससे रानियाँ मोहित हो गईं। पहुँचते ही कन्ह ने रखे हुए गाण्डीव धनुष को दो खण्ड कर दिया। धनुष तोड़ने का शब्द सर्वत्र व्याप्त हो गया। एक राक्षस को पकड़कर उन्होंने आकाश में फेंक दिया। दोनों द्वारों पर वज्र के किवाड़ थे जहाँ अनेक दैत्य जूझने को तैयार खड़े थे। सब पर बड़ी मार पड़ी। गढ़ पर कोटि- कोटि राक्षस चढ़कर स्फटिक शिला बरसाने लगे। अर्जुन- भीम के समान युद्ध करते हुए उन्होंने सबको मारने की ठान ली। सातवीं पौरी पर कुवला हाथी था। उसमें सोलह सहस्र हाथियों के समान बल था। अर्जुन- भीम [बलराम- कृष्ण] ने उसे मार गिराया था। कन्ह ने दोनों दाँत पकड़ लिये थे और बलभद्र ने पूँछ। दोनों ओर से खींचा- तानी करके खेल जैसा किया। फिर उन्हीं दाँतों से मार- मारकर उसे नष्ट कर दिया। उसका माँस पानी बन गया और हड्डियाँ चूना। कुवलयापीड के मरते ही मुष्टिक दौड़ पड़ा। वह बलभद्र से जा भिड़ा। तभी कन्ह ने उसे ऐसा वज्र- सा मुक्का मारा कि

उसने धरती टेक ली। इसके पश्चात् जरासन्ध लड़ने आया। कन्ह ने बलराम से कहा कि यह बहुत बलवान योद्धा है। तुम मेरा साथ दो। कन्ह से उसका गदा- युद्ध शुरू हो गया। फिर वे दोनों गदाएँ छोड़कर अटारी [अट्टालिका] पर चढ़ गए। दोनों में शर्त हुई कि जो एकोशा युद्ध में अटारी से गिर पड़े वह देश छोड़ देगा। कंस साक्षी रहेगा। दोनों परस्पर लड़ने लगे। कन्ह ने उस पर वज्र का मूसल चलाया। उसने सँभल कर फिर वज्र का आघात किया। यह देखकर कंस डर गया और वहीं जरासन्ध के प्राण छूट गये। अंतरिक्ष में बिजली चमक उठी और कंस पर टूट पड़ी। कन्ह ने कंस के बाल पकड़ कर पत्थर पर दे मारा। पैर पकड़कर चारों ओर सात बार घुमाकर ऐसा घसीटा कि उसके शरीर में सात विषम घाव हो गए। पुनः जमुना-किनारे ले जाकर मध्य जल में उसे फेंक दिया। वह डूब गया और उसे मगरमच्छ खा गए।

कंस का संहार होते ही समस्त दैत्य भी मारे गए। कन्ह ने नन्द, यशोदा, वसुदेव, देवकी, कंस के पिता और अन्य बन्दियों को मुक्त कर दिया। कंस के पिता ने कन्ह को आशीष देकर निश्चिंत होकर नित्य भोग- विलास करने को कहा। बलभद्र ने वहाँ का सब द्रव्य ले लिया और कन्ह ने रनिवास। लौटकर कन्ह ने कंस के पिता को टीका करके सिंहासन पर बैठा दिया और शिक्षा दी कि राजभोग करते हुए गर्व न करना। पश्चात् कन्ह मधुवन में कुब्जा के साथ भोग करने लगे। इस प्रकार कुब्जा के साथ विविध प्रकार से भोग करते हुए छह ऋतुएँ बीत गईं। - ["कन्हा०", कड़वक 281- 309.]

गोकुल में गोपियों को बड़ी चिन्ता हुई कि क्या कारण है कि कन्ह लौटे नहीं? वे शंका करने लगीं कि कृष्ण किसी रूपवती में लुभा गए या हमारी सेवा में कोई त्रुटि हुई। गोपियों ने जब कुब्जा से भोग की

बातें सुनीं तो वे दुःखी होकर सोचने लगीं कि हमने गोचारण के समय से ही व्रत किया है। यदि ज्ञात होता कि कन्ह को टेढ़ी चाल ही भाती है तो हम भी वैसी चलतीं। इस प्रकार गोपियाँ वर्ष भर दुःख से रोती रहीं। कन्ह के प्रेम-विरह में उन्होंने तन- यौवन सब नष्ट कर दिया। वे पवन की शरण में जाकर कन्ह तक सन्देश पहुँचाने की विनती करने लगीं। गोपियों ने अपनी विरह- व्यथा प्रकट करके कन्ह के प्रति अपना अतिशय प्रेम व्यक्त किया। उन्होंने सन्देश दिया कि हे कन्ह, आपने प्रीति लगाकर तन में आग लगा दी। उसी अग्नि में चन्द्रावली और राधा भी जल रही थीं। गोपियों का सन्देश लेकर पवन चल पड़ा। गोपियों की विरहाग्नि में जलता हुआ पवन कन्ह के पास पहुँचा तो कन्ह ने हँसकर पवन से पूछा कि तुम क्यों जल रहे हो? पवन ने कहा- मैं तो सुख से हूँ किन्तु आपके वियोग में राधिका, चन्द्रावली तथा समस्त गोपियाँ जल रही हैं। मैं उनका सन्देश लेकर आया हूँ। उनकी ही विरहाग्नि से मैं भी तप रहा हूँ। यदि हो सके तो उस अग्नि को शान्त कीजिए। चाहे आप उनके पास जायँ या उन्हें ही अपने निकट बुला लीजिए। यह सन्देश सुनकर तथा राधिका आदि का पूर्ण स्नेह स्मरण करके कन्ह के हृदय में क्षोभ उत्पन्न हो गया। तत्क्षण कन्ह हिम- पवन को बुलाकर गोपियों के पास पहुँचे और उन्हें शृंगार करके यमुना के किनारे धमारी खेल रचने को कहा। कन्ह की आज्ञा पाकर समस्त गोपियाँ साज- सज्जा सहित प्रसन्न होकर यमुना- तट पर आईं। यमुना के उभय तट पर वसन्त का सा दृश्य छा गया। कन्ह ने गोपियों को आयी देख कर नाव को किनारे लगा दिया। किसी को कन्ह ने बाँह पकड़ कर चढ़ाया, कोई चढ़ते समय जल में गिर पड़ीं। इस प्रकार जिन्हें जाँघ का भरोसा था वे सब चढ़ गईं। सारी रात भोग करते व्यतीत हो गई। उसके पश्चात्

गोपियों को साथ लेकर कन्ह ने मधुवन- रनिवास में रात बिताया। सोलह सहस्र स्त्रियों में वे अकेले ही पुरुष थे। कन्ह ने धर्मशाला चलायी जिसमें सभी याचकों को भरपूर दान दिया जाता था। रात- दिन भक्ति में सभी अपूर्व ब्रह्म का नाम लेते और उसकी महिमा बखानते थे। कन्ह गुप्त रूप से तप करते थे और प्रकट में भोग करते थे। - ["कन्हावत", कड़वक 310- 333•]

उसी समय यमुना- तट पर सदाचारी, जन्म से ही अन्न त्याग किए एवं मात्र दूब का आहार करने वाले दुर्वासा ऋषि तप कर रहे थे। उनका समस्त जीवन एक निर्गुण में रमा हुआ था। कन्ह को जब उनका स्मरण आया तो वे सोचने लगे कि यदि दुर्वासा बिना अन्न खाए रह गए तो मेरे व्रत और सेवा से क्या लाभ? उन्होंने सोलह सहस्र गोपियों को बुलाकर कहा कि तुम लोग एक- एक वर्ण का धान्य लेकर पक्वान्न बनाओ। उसे ले जाकर यमुना- जल में अक्षय तपस्वी दुर्वासा को खिला आओ। पैदल ही यमुना पार करना। यमुना जी से कहना कि यदि हम कन्ह से न रमीं हों तो सूख जाओ। गोपियाँ यमुना जल के भीतर यह झूठ बोलने में हिच- किचाने लगीं। इस पर रुक्मिणी और चन्द्रावली ने समझाया कि यदि प्रिय ही प्राण लेना चाहते हैं तो किसका क्या चलेगा? गोपियाँ यही निश्चय करके वे भिन्न- भिन्न पक्वान्नों के साथ यमुना के किनारे पहुँचीं और उक्त शपथ लेकर पार हो गईं। उन्हें अत्यंत आश्चर्य हुआ। दुर्वासा के निकट पहुँच कर उन्होंने उनका चरण- स्पर्श किया। समस्त पक्वान्न उनके सामने रख दिये गये। ऋषि ने प्रसन्न होकर उन्हें छप्पन कोटि पुत्र-प्राप्ति का आशीर्वाद दिया। दुर्वासा ने भी कहा कि जब यमुना में घुसना तो कहना कि यदि ऋषि ने अन्न कभी न खाया हो तो सूख जाओ। गोपियों के ऐसा कहने पर यमुना सूखा गई और गोपियाँ हँसती हुई घर चली आईं। उन्होंने फिर सोचा कि दोनों बातें तो झूठी थीं तो यमुना क्यों सूख गई? जब तक कन्ह इसका भेद न बता देंगे, हम रूठी रहेंगी। कन्ह जब आए तो देखा कि गोपियों ने रात्रि में दीपक नहीं जलाए हैं। उन्होंने उन्हें बुलाकर इसका कारण पूछा तो गोपियों ने दोनों घटनाएँ बताकर झूठी बातों पर यमुना के सूख जाने का भेद

जानना चाहा। कन्ह ने अपना मुख फैला दिया जिसमें तीनों लोक, स्वर्ग-पाताल, चन्द्रमा, सूर्य आदि सब दिखाई पड़े। एक ही पिण्ड में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड देखकर गोपियाँ आश्चर्यचकित हो गईं।

कन्ह ने कहा- तुम सब अपने अन्त:करण में देखो, ईश्वर ही भोक्ता भी है और वही भोग भी है। वही इस जगत् में विविध खेल करता रहता है। इस प्रकार समझ कर तुम्हें आश्चर्य न करना चाहिए। वह ईश्वर एक है। सारा जगत् उसकी परछाईं है। वह सब में है और समस्त दृश्यमान और अदृष्ट जगत् उसमें स्थित है। कन्ह की इन बातों से गोपियों को समस्त रहस्य का ज्ञान हो गया। -{"कन्हा0", कड़वक 334- 345}

सारे संसार में कन्ह की भक्ति चल पड़ी जिसकी कीर्ति समुद्र- पार जा पहुँची। मच्छेन्द्रनाथ के शिष्य यह सुनकर योगियों के कटक-समेत यमुना के किनारे आए। भोगी कन्ह को भी योगियों के आने का समाचार मिला। इधर सिद्ध और पवन- आहारी, योगी परकाया- प्रवेश आदि अनेक क्रियाओं का प्रदर्शन कर रहे थे। कन्ह जब पहुँचे तो सिद्ध ने उनका स्वागत किया। कन्ह ने पूछा- रावल! आप किस देश से आए हैं? मैं आपकी क्या सेवा करूँ? सिद्ध गोरख ने हँसकर कहा कि मैंने समुद्र पार तुम्हारी कीर्ति सुनी थी। मैं तुम्हें उपदेश देने आया हूँ कि भोग त्याग कर अब योगी बन जाओ। इससे दीर्घायु और अमरता प्राप्त होगी।

कन्ह ने कहा कि तुम्हारा योग लेकर क्या करूँ? योगी भोग क्या जानें? मेरे पास तो सोलह सहस्र गोपियाँ हैं जो हाथ जोड़कर सदा सेवा में तत्पर रहती हैं। वही तपस्वी है और वही वैकुण्ठी भी है जो गृहस्थ होकर भी विरक्त रहता है। गोरख ने कहा कि योग सुख-दु:ख से न्यारा है। योगी का समस्त जीवन तप में ही बीतता है। कन्ह ने कहा कि इस पृथ्वी पर जिसने जन्म लेकर भोग न किया उसका जीवन व्यर्थ है। पुनश्च, काल से न योगी बचता है, न भोगी ही।

इस प्रकार योगी ने योग की और भोगी ने भोग की प्रशंसा में विवाद ठान लिया। श्रेष्ठता- सिद्धि के लिए निश्चय हुआ कि दोनों युद्ध करें। जो मरे वही पराजित समझा जाय। कन्ह और गोरख तैयार हो गए। दोनों ने एक दूसरे से पहले मारने को कहा। दोनों का परस्पर दाँव पेंच से युद्ध प्रारम्भ हो गया।अन्त में, गोरख ने कन्ह को ज्ञानी पुरुष मान लिया तथा सुमेरु पर्वत पर चले गए। कन्ह अपने मन्दिर में लौट आए। -{"कन्हा0", कड़वक 346-354•}

पश्चात् किसी समय क एक वृद्ध काँख में बैसाखी लगाए और पेट में लोहड़ा बाँधे हुए वहाँ आए। उन्होंने कहा- देव, मैंने आपका बड़ा यश सुना है। आप तपस्वियों की बड़ी सेवा करते हैं। मुझे वृद्धावस्था में सेवा करने वाली कोई एक सेविका दे दीजिए। बड़ी आशा से आया हूँ। आपको बहुत पुण्य और यश प्राप्त होगा। कन्ह ने कहा आज आप रुकिए और भोजन कीजिए। रात्रि में जिस नारी का शयनागार आपको पुरुषहीन मिले उसी से जीवन-निर्वाह कीजिए। ऋषि ने रात्रि में जिस गोपी की शैया देखी वहीं कोई एक पुरुष दिखाई पड़ा। हारकर ऋषि प्रातः काल स्वतः प्रस्थान कर गये।

ऋषि को मार्ग में खेलते हुए छप्पन कोटि यदुवंशियों ने देखा तो उनका उपहास करने लगे। वे उन्हें आगे जाने न देते थे। ऋषीश्वर ने क्रोधित होकर शाप दिया कि इसी लोहड़े से तुम सबका विनाश हो जायगा। यादव दौड़कर कन्ह के पास गए और सारा वृत्तान्त कह सुनाया। कन्ह ने ऋषि से लोहडा छीन लाकर यमुना के तट पर घिस- घिस कर जल में फेंक देने को कहा। यदुवंशियों ने वैसा ही किया। लोहडा घिसते- घिसते शैवाल बन आया। घिसते समय कोई किसी की बात न सह सकता था। फलस्वरूप परस्पर मारकाट होने लगी और छप्पन कोटि यादवों का नाम मिट गया।

कन्ह ने जब सुना तो ध्यान लगाकर देखा कि अवस्था सम्पूर्ण हो गई है। अट भाई को बुलाकर कहा कि अब मैं द्वारिका जा रहा हूँ। जिन गोपियों को मेरे संग चलना पसन्द हो उन्हें आने दो। सबकी रक्षा का भार तुम्हारे ऊपर है। अब तुम्हीं सबका समाधान करना। अर्जुन, नन्द, यशोदा, देवकी, वसुदेव आदि वियोग

की दशा स्मरण करके रोने लगे। गोपियाँ घेरकर मनुहार करने लगीं- "हे कन्ह, इसी मधुबन में रहिए।" कन्ह ने पुनः अवतार लेने का आश्वासन दिया और समस्त जगत् को नश्वर कहा। मथुपुर का राज्य अर्जुन को देकर कन्ह चल पड़े। एक वन से दूसरे वन जाकर उन्होंने यमुना में ऐसी डुबकी लगाई कि खो गए। सबने एक दूसरे को संसार की नश्वरता का उपदेश दिया और घर लौट आए।

कन्ह यमुना के भीतर ही भीतर चलते हुए द्वारिका पहुँचे। वहाँ वे पड़े हुए थे कि एक शिकारी धनुष लिए वहाँ आ पहुँचा। कन्ह के तलुवे को रोहू समझकर उसने विषैला बाण चला दिया, जिससे कन्ह के प्राण- पखेरू उड़ गये।

अन्त में कवि मुहम्मद विनयपूर्वक कहते हैं कि मैंने रसमयी भाषा में सबको "कन्हावत" सुना दिया। यह संसार नश्वर है। सबको परदेश जाना है। अतः सन्देह में मत रहो। किसी अगुवा के पीछे चलो जिससे मार्ग न भूले । -("कन्हा०," कड़वक 356-365•)

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

कन्हावत - कथानक के स्रोत

प्रेम मानव की सहज प्रवृत्ति है। प्रेम स्वभावत: उत्पन्न होता है और उत्तरोत्तर व्यापक होता जाता है। इसका आनन्द इतना अनिर्वचनीय होता है कि प्रेमी इसके इतिवृत्त को अन्य व्यक्ति के समक्ष प्रकट किए बिना चैन नहीं लेता। श्रोता - वक्ता भी इसको सुनने और सुनाने में एक अनिर्वचनीय मानसिक तृप्ति तथा आनन्द लाभ करते हैं। फलस्वरूप आख्यान, उपाख्यान, कथा, गाथा आदि ऐसे प्रेम को विषय बनाकर काव्य का रूप ले लेते हैं और इसी कारण साहित्य में प्रेमाख्यान का बाहुल्य भी प्राप्त होता है।

भारतीय प्रेमाख्यानों की परम्परा कितनी प्राचीन है, यह ऋग्वेद के दशम मण्डल के 95 वें सूक्त में वर्णित उर्वशी और पुरूरवस् के प्रेम- प्रसंग के वर्णन से सिद्ध है। सम्भवत: यह विश्व की सर्वप्रथम प्रेमकथा है। इसमें न केवल गम्भीर प्रेमभाव की अभिव्यक्ति हुई है, प्रत्युत् यथेष्ट प्रतीकात्मकताभी प्रकट है। ऋग्वेद के ही दशम मण्डल के दशम सूक्त में यम- यमी- संवाद और 61वें सूक्त में श्यावाश्व का प्रेमाख्यान वर्णित है। ये प्रेम- गाथाएँ शतपथ ब्राह्मण, महाभारत, श्रीमद्भागवत्, विष्णुपुराण, हरिवंश आदि का वर्ण्य- विषय बनती गईं और कालिदास के "विक्रमोर्वशीयम्" में प्रकट हुई। इसी प्रकार महाभारत का शाकुन्तलोपाख्यान, नलोपाख्यान, श्रीमद्भागवत का ऊषा- अनिरूद्ध , श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणी, प्रद्युम्न और मायावती, अर्जुन और सुभद्रा, भीम और हिडिम्बा आदि की अनेक प्रेम- कथाएँ वर्णित होती रहीं। इसके पश्चात् सभी भाषाओं, देशों और साहित्य की विधाओं में बहुरंगी प्रेम- कथाएँ लिखी जाती रहीं।

भारत में मुसलमानों के आगमन के पश्चात् सूफी मतावलम्बी कुछ मुसलमान कवियों ने लोककथाओं और प्राचीन [illegible] का आधार लेकर अनेक प्रेमा-

ख्यानक काव्य लिखे जिसमें मौलाना दाऊद का "चन्दायन" सम्भवत: सर्वप्रथम हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य है। जायसी का "पद्मावत" इस कोटि की प्रसिद्ध रचना है।

"कन्हावत" भी जायसी की कृष्ण- चरित सम्बन्धी रचना है जिसे एक प्रेमाख्यान काव्य कहा जा सकता है। हिन्दू - धर्म में श्रीमद्भागवत, देवी भागवत और हरिवंशपुराण का पृथक् - पृथक् धार्मिक माहात्म्य है। इसीलिए लोक जीवन में प्राचीन काल से ही भिन्न- भिन्न प्रयोजनों से इनके श्रवण का प्रचलन भी रहा है। पण्डितों, पुरोहितों एवं सन्तों ने इनकी कथाओं को सरस, भक्तिपूर्ण और सुबोध बनाने के लिए अपनी विशद व्याख्याओं, प्रवचनों में इतर कथाओं को भी गढ़ कर समाविष्ट कर लिया। यदा- कदा वेदों, उपनिषदों आदि से भी विषय- सामग्री संकलित की। पुराणकारों ने भी दृष्टि- भेद से नई- नई उद्भावनाएँ प्रस्तुत कीं। फलस्वरूप इनकी संख्या और कलेवर तो बढ़े ही, साथ ही संस्कृतेतर ग्रन्थों में कथाओं के रूप भी किंचित् परिवर्तन के सहित प्रस्तुत हुए।

"कन्हावत" के कवि के समक्ष लोक- जीवन में प्रचलित अनुश्रुतियाँ तो थीं ही, भागवत आदि का परिचय भी सम्भवत: उन्हें था।

लोक में कृष्ण की कथाएँ इतनी हैं जितने आकाश में नक्षत्र एवं ताराएँ । ये भी वेद, भागवत और सन्तों द्वारा गाई गई हैं तथा विष्णु, पद्म, शिव, अग्नि- पुराणों, महाभारत तथा श्री हरिवंशपुराण में भी इनका वर्णन प्राप्त होता है। कवि ने भागवत पुराण पढ़ा था और सुना भी था। इसमें से उसने अपने प्रेम- पंथ का लक्ष्य भी प्राप्त किया था और निश्चयपूर्वक उद्घोषणा की थी कि ऐसी प्रेमकहानी संसार में अन्यत्र नहीं है। [कन्हा०, कड़वक - 14] इसी अमृतमय कण्ठ का कवि ने अपनी रसभाषा में गाकर सुना दिया। [कन्हा० कड़वक - 366]।

"अइस प्रेम कहानी दूसर जग मैं नाहिं", इस प्रकार जायसी के उपर्युक्त उद्घोष से यह तो निर्विवाद सत्य है कि "कन्हावत" एक प्रेमाख्यानक काव्य है। पद्मावत आदि अन्य रचनाओं की भाँति इसका भी प्रारम्भ ईश्वर स्तुति से किया गया है और आगे क्रमश: हम्द, नअत, मंकबत, मदह और मुर्शिद आदि के वर्णन भी समान रूप से प्राप्त होते हैं जो मसनवी शैली पर आधारित है। मूलत: मसनवी फारसी साहित्य की एक काव्य- शैली है। "मसनवी" शब्द का व्यवहार बड़े काव्य के लिए किया जाता रहा है। बाद में इसके आकार-प्रकार में परिवर्तन होते चले गए और फारसी के ही कवियों ने मसनवी के नियमों को उल्लंघन कर डाला। जहाँ तक मसनवी शैली का सम्बन्ध है, फारसी साहित्य में इसका सर्वप्रथम उल्लेख रूदकी (9वीं- 10वीं शताब्दी ईस्वी) के काव्य के सम्बन्ध में है।

सामान्यत: मसनवी का प्रारम्भ ईश्वर- स्तुति से होता है। पुन: पैगम्बर, पैगम्बर के चार मित्र, कवि के गुरु और समकालिक राजा की प्रशंसा होती है।

इन मसनवियों के विषय प्रेम, युद्ध, दर्शन, धर्म आदि कुछ भी हो सकते हैं। इस दृष्टि से हिन्दी के प्रेमाख्यानक परम्परा में फारसी के ज्ञाता मुसलमान कवि ही अधिक रहे जिन्होंने ईश्वर- स्तुति आदि रूढ़ियों का अविरल अनु-सरण किया।

मौलाना दाऊद का "चन्दायन" हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य की प्रथम कड़ी है। इसके पश्चात् कुतुबन का "मृगावती" काव्य आता है।

1- "हिन्दी सूफी काव्य का समग्र अनुशीलन" : शिवसहाय पाठक, पृ- 233.

जहाँ तक हम्द अर्थात् ईश्वर- स्तुति का प्रश्न है, यह भारत के प्राचीनतम संस्कृत काव्यों की परम्पराओं में से प्रथम है। यहाँ तक कि आर्ष ग्रन्थों जैसे रामायण, श्रीमद्भागवत्, अध्यात्म रामायण, महाभारत और समस्त पुराणों में भी मंगलाचरण के अन्तर्गत् ईश्वर- स्तुति की गई है। इसका निदर्शन महर्षि पतंजलि ने अपने प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ "महाभाष्य" में इस प्रकार किया है -

"मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते ।
वीर पुरुषाणि आयुष्मत्पुरुषाणि अध्येतारश्च प्रवक्तारो भवन्ति ।।"

अर्थात् ग्रन्थ के आरम्भ, मध्य और अन्त में मंगलाचरण प्रशस्त होते हैं, वीर पुरुष आयुष्मान् तथा अध्येता प्रवक्ता होते हैं। यह प्राक्तन परम्परा काव्यों में अनवरत अद्यप्रभृति प्रचलित रही है। मनीषी कवियों ने अपने नाटकों, काव्यों अथवा अन्य प्रकार के ग्रन्थों में सहज धार्मिक वृत्ति के कारण अथवा निर्विघ्न ग्रन्थ की समाप्ति हेतु आरम्भ में आशीर्नमस्क्रिया अथवा मङ्गलाचरण प्रस्तुत किया है जो किसी देवी, देवता, महापुरुष या भूपालादि को लक्षित करती है।

संस्कृत के महाकवि बाण [606 - 647 ई0] ने अपनी अद्वितीय कथा "कादम्बरी" के कथा- मुख- प्रकरण में मङ्गलाचरण, गुरु- प्रणति, सज्जन - दुर्जन की स्तुति- निन्दा, कथा-प्रशंसा, कवि- वंश- वर्णन का उल्लेख किया है। "हर्षचरित" नामक अपने दूसरे ग्रन्थ में उन्होंने अपने आश्रयदाता सम्राट् हर्षवर्द्धन का विस्तृत जीवन- चरित प्रस्तुत किया है। कालिदास ने अपने "रघुवंश" महाकाव्य में शिव- पार्वती की वन्दना और आत्म- विनय से रचना प्रारम्भ की है। कालिदास के पूर्व भास के नाटकों में भी आरम्भ में नमस्क्रिया प्राप्त होती है।

इसी प्रकार गुरु- महिमा का वर्णन भी आदिकाल से चला आ रहा है। पुराणों के प्रारम्भ में भगवान नारायण तथा वाग्देवी सरस्वती की स्तुति के पश्चात् वेदव्यास और गुरु को सहृदय सादर प्रणाम किया गया है। "शिव-

संहिता" में परब्रह्म की भाँति गुरु की महिमा भी अनन्त गाई गई है -

"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ।।"[1]

अर्थात् गुरु को परब्रह्म तक माना है। कालिदास के परवर्ती भवभूति ने "उत्तररामचरितम्" के मङ्गलाचरण में अपने पहले के गुरुओं या तद्रूप पूर्व कवियों को प्रणाम किया है -

"इदं कविभ्यः[2] पूर्वेभ्यो नमोवाकं प्रशास्महे ।
विन्देम देवतां वाचममृतामात्मनः कलाम् ।।"

भारत में यह मान्यता रही है कि ग्रन्थ के प्रारम्भिक छन्द में यदि कोई देवतावाची शब्द भी आ जाय तो मङ्गलाचरण का विधान पूर्ण मान लिया जाता है, जैसे माघ के "शिशुपाल-वधम्" और भारवि के "किरातार्जुनीयम्" में "श्रियः" शब्द एवं कालिदास के "कुमारसम्भव" में "देवतात्मा" शब्द ।

भरत के "नाट्यसूत्र" के अनुसार संस्कृत के नाटकों में यह नियम रहा है कि स्त्री पात्र और निम्न वर्ग के पात्र संस्कृत न बोलकर प्राकृत भाषा का व्यवहार करते थे। इस दृष्टि से कालिदास के "अभिज्ञानशाकुन्तलम्", "मालविकाग्निमित्रम्" और शूद्रक के "मृच्छकटिक" द्रष्टव्य हैं। किन्तु सर्वप्रथम और अब तक उपलब्ध सबसे प्राचीन राजशेखर की "कर्पूरमञ्जरी" प्राकृत में लिखी गई एक मात्र रचना है। जवनिका के पश्चात् भरत सूत्र के अनुसार नान्दी पाठ के रूप में कवि वाग्देवी सरस्वती को नमन करता है। साथ ही पूर्ववर्ती व्यासादि के आनन्द की कामना की है। इसी मङ्गलाचरण में शिव और पार्वती के समागम की वन्दना की गई है। इसके पश्चात् राजशेखर ने अपने को आश्रयदाता महेन्द्रपाल का गुरु कहलवाया है। सम्पूर्ण कथा उन्हीं को विषय बनाकर

1- "शिव संहिता," अध्याय- 3, श्लोक - 13.
2- "गुरुभ्यः" इति पाठभेदः, "उत्तररामचरितम्"

लिखी गई है। इसी प्रकार " गउड वहो," "गाथा सप्तशती", "लीला-वती" आदि कृतियों में भी ईश - वन्दनादि कवि- परम्परा का समावेश है।

अपभ्रंश काव्यों में भी मङ्गलाचरण के साथ आत्म-विनय, गुरु- वन्दना, आश्रयदाता-प्रशंसा आदि तत्वों का परम्परया वर्णन किया गया है। स्वयम्भू अपने "पउम चरिउ" का प्रारम्भ गुरु और आचार्यों की वन्दना से करते हैं -

" जे काय वायमणे निच्छिरिया, जे काम कोहदुन्नय तिरिया।
ते एक्कमणेण सयंभुएण, वंदिय गुरु परमायरियें ।।"

कवि ने आत्म-विनय और अज्ञता का प्रदर्शन करते हुए सज्जन- दुर्जन स्मरण की परिपाटी का भी पालन किया है। इसी प्रकार पुष्पदन्त ने भी आदि पुराण की "प्रथम दो सन्धियों में परम्परा के अनुसार कवि का आत्म-निवेदन, विनय- प्रदर्शन, आश्रयदाता की प्रशस्ति, दुर्जन-निन्दा, सज्जन- प्रशंसा, ग्रंथ- रचना का उद्देश्य वर्णित करने के साथ- साथ ऋषभदेव के अवतार लेने के पूर्व की भव्य भूमिका बाँधी गई है।[2]" चरित काव्यों में भी जैसे -"जंबु सामिचरिउ", "करकंड चरिउ", "जिणदत्त चरित" "बाहु-बलिचरित", "सुकोशल चरित" आदि उपर्युक्त तत्व दिखाई पड़ते हैं। धन-पाल कृत "बाहुबलि चरित" [सं 1454 वि0] का आरम्भ "स्वस्ति उं नमो वीतरागाय" से करके 24 तीर्थंकरों का स्तवन, सरस्वती- वन्दन, आत्म- परिचय, पूर्व के आचार्यों और कवियों का उल्लेख, सज्जन- दुर्जन-स्मरण के पश्चात् कथा दी गई है। सन्धियों के आरम्भ में ग्रन्थ- समाप्ति पर कवि ने आश्रयदाता वासाधर की स्तुति में संस्कृत पद्य भी दिए हैं -

---

1- अपभ्रंश साहित्य : प्रो0 हरिवंश कोछड़ , पृ0- 55.
2- हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, : डॉ0 नामवर सिंह, पृ0- 205.

सम्मत जुत्तो जिण पाय भत्तो,
दयागुरत्तो बहु लोय मित्तो ।
मिछत्त वत्तो सुविसुद्ध चित्तो,
वासाधरो नंदउ पुण्ण चित्तो[1] ।।

जायसी के ग्रन्थों में मुहम्मद के चार मित्रों का वर्णन उपर्युक्त तीर्थंकरों के वर्णन से मिलता- जुलता है। कुछ ऐसा ही वर्णन हिन्दू- धर्म- ग्रंथों में परब्रह्म परमात्मा की तीन शक्तियों ब्रह्मा, विष्णु और शंकर के रूप में आया है। हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य में मङ्गलाचरण आदि की यह परंपरा केवल अपभ्रंश के प्रबन्ध- काव्यों तक ही सीमित न रही वरन् इसके मुक्तक काव्यों में भी न्यूनाधिक रूप से वर्णन प्राप्त होते हैं। अब्दुल्ल रहमान कृत "सन्देशरासक" और विद्यापति की "कीर्तिलता" भी इस रूढ़ि से अछूती न रह सकी। "बीसलदेवरासो" आदि में भी उपर्युक्त परम्परा का यत्किंचित् निर्वाह किया गया है।

इस तरह "कथा का आरम्भ संस्कृत में जिस शैली से किया गया वही शैली हमें प्राकृत काव्यों में और तदनन्तर अपभ्रंश महाकाव्यों में भी दिखाई देती है। आदि में मंगलाचरण, सरस्वती- वंदन, खल- निन्दा, सज्जन प्रशंसा, कवि का आत्म-विनय इत्यादि अपभ्रंश काव्यों में हमें दिखाई देते हैं। मंगलाचरण जैन धर्म के अनुसार जिन- पूजादि से किया गया है।[2]" हिन्दी साहित्य में भी यही क्रम हमें देखने को मिलता है।

इस प्रकार संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश काव्यों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि जायसी ने जो फारसी के भी ज्ञाता थे, फारसी मसनवी पद्धति का अंधानुकरण नहीं किया बल्कि "भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य की रूप- सर्जना प्राय: संस्कृत के अनुकरण पर ही हुई है। हाँ, प्रेमकाव्य की आकृति में

1- अपभ्रंश साहित्य : प्रो0 हरिवंश कोछड़ , पृ- 235.
2- वही, पृ- 383 - 384.

फारसी की मसनवी शैली का आभास अवश्य मिलता है, पर उपकरण- सज्जा के आदर्श में भारतीयता का रूप अपने ढंग से प्रतिफलित हो रहा है।[1]"

सम्भव है कि जायसी के मस्तिष्क पर काव्य- रचना के समय मसनवी शैली का संस्कार बना रहा हो, किन्तु यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि भारतीय प्रबन्ध- काव्य की परम्परायुक्त शैली के प्रति भी उनकी चेतना रही हो। सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में जायसी के पूर्ववर्ती मुल्लादाऊद के "चन्दायन" तथा समसामयिक और परवर्ती "मृगावती", "चित्रावली" आदि में मसनवी की उपर्युक्त परम्परा का पालन मिलता है किन्तु सभी हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य जैसा कि संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की रचनाओं के विवेचन में पहले ही बतलाया जा चुका है कि कथावस्तु, भाषा- शैली आदि के रूप में भारतीय जैन-चरित काव्यों, धर्म- कथा, महाकाव्यों आदि से प्रभावित रहे हैं। भले ही सज्जन- प्रशंसा, दुर्जन- निन्दा, पूर्व- कवि प्रशंसा, विनम्रता, कथा का सारांश आदि मसनवियों में न हो फिर भी "कन्हावत" में ये तत्व न्यूनाधिक रूप में अवश्य आए हैं। - [कन्हावत, कड़वक- 15.]

इस प्रकार कृष्णप्रेमाख्यानक काव्य लिखते हुए जायसी ने सर्वप्रथम ईश्वर की महिमा का वर्णन किया जिसमें कवि ने जगत में सात धरती और सात आकाश की चर्चा की है। वैसे तो सभी मसनवियों में इस प्रकार की ईश्वर- वंदना आरम्भ में मिलती है किन्तु कुछ पुराणों में भी यह प्राप्त होती है।

पुराणों के अनुसार कंस मथुरा का प्रतापी और आततायी राजा था। जायसी ने शुक्र और नारद को कंस का मंत्री बताया है, किन्तु पुराणों में शुक्र का मंत्री रूप में उल्लेख नहीं आता वरन् उनके शिष्य सत्यक का "ब्रह्म- वैवर्तपुराण" में पुरोहित के रूप में उल्लेख आया है। शुक्राचार्य दैत्यों के गुरु थे।

1- हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव : डॉ० सरनाम सिंह शर्मा, "अरुण", पृ०- 23.

वे अपनी संजीवनी विद्या द्वारा युद्ध में मृत दानवों को पुनर्जीवित करके उनकी विविध प्रकार से सहायता करते थे। कालनेमि जो दूसरे जन्म में कंस हुआ था, समुद्र- मंथन के अवसर पर विष्णु द्वारा मारे जाने पर शुक्र द्वारा पुनर्जीवित कर दिया गया था[1]। इसी कारण परम्परया वे कंस के भी पूज्य और मैत्री रहे होंगे। नारद जी का वर्णन लगभग प्रत्येक पुराण में उपलब्ध है। अधिकांशतः वे भविष्य- वक्ता के रूप में चित्रित किए गए हैं। भगवान् कृष्ण के भविष्य कर्म का कथन करने में तो भगवान की महिमा घटती, इस कारण नारद जी ने श्रीकृष्ण के भविष्य कर्म को स्तुति के माध्यम से व्यक्त किया है। श्रीमद्भागवत् के दशम स्कन्ध के सैंतीसवें अध्याय में इसके श्लोक सोलह से बाइस तक नारद जी द्वारा की गई स्तुति इसका उदाहरण है।

नारद के विषय में श्रीमद्भागवत् में आगे कहा गया है -

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शाड्.र्गधन्वनः।
गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत्[2] ।।

अर्थात् "अहा ! ये देवर्षि नारद धन्य हैं, क्योंकि वे शाड्.र्गपाणि भगवान् की कीर्ति को अपनी वीणा पर गा- गाकर स्वयं तो आनन्दमग्न होते ही हैं, साथ - साथ इस त्रितापतप्त जगत् को भी आनन्दित करते रहते हैं।" ऐसे देवर्षि नारद का प्रवेश सभी लोकों, समस्त युगों, सम्पूर्ण शास्त्रों, समग्र समाजों तथा सभी कार्यों में दृष्टिगोचर होता है। भगवान् विष्णु, शिव आदि से लेकर दानव तक उनका सम्मान, विश्वास और आदर करते रहे हैं। वे कहीं महापुरुषों को उपदेश देते दिखाई देते हैं, तो कहीं परस्पर कलह कराने के प्रयास में लगे दिखाई देते हैं - नारं नरसम्बन्धिज्ञानं

1- "कल्याण अंक", वर्ष 44, "गर्गपुराण - गर्गसंहिता", "गोलोकखण्ड", अध्याय- 6, श्लोक 2- 5.
2- श्रीमद्भागवत, स्कन्ध- 1, अध्याय- 6, श्लोक - 39.

ददाति इति नारद: अर्थात् जो मनुष्य सम्बन्धी ज्ञान दे, वह नारद है तथा "नारं नरसमूहं द्यति खण्डयति इति नारद:" अर्थात् जो मनुष्यों के समूह का खण्डन करे या उनमें कलह कराए वही नारद है। वास्तव में इनका विवाद और कलह कराना भी लोकहितार्थ और भगवान की लीला के साधनार्थ ही हुआ करता है क्योंकि इनकी प्रत्येक चेष्टा भगवान की चेष्टा ही होती है। यद्यपि "कन्हावत" के रचयिता ने इनका कलह-प्रिय रूप ही प्रस्तुत किया है और यमदूत तक कह डाला है - "है गोहन नारद जमदूतू"[1] इसी प्रकार स्वयम्भू कृत "रिट्ठणेमि चरिउ" के यादवकाण्ड की तेरह सन्धियों में कवि ने कृष्ण- जन्म, कृष्ण- बाललीला, कृष्ण- विवाह सम्बन्धी कथाएं, प्रद्युम्न आदि की कथाएं और नेमिजन्म कथा दी है। इन सन्धियों में नारद- कलहप्रिय साधु के रूप में हमारे सामने आते हैं।[2] किन्तु कंस के अत्याचारों से त्रस्त जगत का उद्धार करने के लिए नारद समय-समय पर कंस के अपकार का ही उपाय सुझाया करते थे :- "नारद रहहिं कान नित लागे" उनका ध्येय था कि कंस का जितना अत्याचार बढ़ेगा उतने ही शीघ्र भगवान् पृथ्वी पर अवतार लेंगे।

पुन: कथा आरम्भ करते हुए कवि ने मथुरा नगर का वर्णन किया है। प्राचीन काव्यों में नगर- वर्णन महाकाव्यों की परम्परा के अनुसार जिस प्रकार किया जाता रहा है, जायसी ने उसी पद्धति का पालन किया है। श्रीमद्भागवत् तथा अन्य पुराणों में जहाँ कृष्ण- जन्म वर्णित है, वहीं राजा कंस की राजधानी मथुरा का वर्णन किया गया है। श्रीमद्भागवत् का मथुरा-

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 34•5•

2- अपभ्रंश साहित्य : प्रो० हरिवंश कोछड़, पृ०- 68•

वर्णन[1], अब्दुल रहमानकृत "सन्देश रासक" में सामोर नगर का वर्णन[2] और मौलाना दाऊद रचित "चन्दायन" में गोवर नगर का वर्णन[3] "कन्हावत" के मथुरा नगर के वर्णन के समान है। "चन्दायन" में तो इसकी कुछ पंक्तियाँ भी समान रूप से प्राप्त होती हैं। दोनों में अन्तर इतना ही है कि मथुरा पौराणिक नगरी है और गोवर और सामोर कल्पित साधारण नगर हैं। महाकाव्यों के लक्षणों में सरोवर- वर्णन भी महत्वपूर्ण समझा जाता रहा है। "कन्हावत" में नगर- वर्णन के अन्तर्गत मथुरा के दुर्ग, सरोवर, मन्दिर, खँवाई, अमराइयों, नगर- निवासियों, सैनिकों, बाजार- हाट, नर्तकों, राजदरबार और राजप्रासाद का वर्णन प्राप्त होता है। यह भी यत्र-तत्र "चन्दायन" के वर्णन-सदृश ही है। "चन्दायन" के अनेक विवरण "कन्हावत" और "पद्मावत" में भी मिल जाते हैं, यद्यपि जायसी ने अपने पूर्ववर्ती कवियों और उनकी रचनाओं के उल्लेख में "चन्दायन" को विस्मृत कर दिया है जो आश्चर्यजनक ही है। महान् तीर्थों के सम्बन्ध में यह उक्ति प्रसिद्ध है -

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता: मोक्षदायिका: ।।

इससे मथुरा उन सात तीर्थ नगरियों में से एक गिनी जाती है जो मोक्षदायिनी है। इसका माहात्म्य "पद्मपुराण" में माथुरक और मथुरा-मण्डल के रूप में वर्णित है। "गर्गसंहिता" में भी "मथुरा का वर्णन एक तीर्थ-नगरी के रूप में किया गया है।[4]" इसमें सप्तर्षियों तथा अनेक अन्य ऋषियों

1- श्रीमद्भागवत, 10-41, 20- 23.

2-"संदेशरासक", 2, 42- 43.

3- "चन्दायन" संस्क० परमेश्वरी लाल गुप्त, कड़वक 20-32.

4- "कल्याण अंक", वर्ष 44 अग्निपुराण - गर्गसंहिता, श्रीमथुरा खण्ड, अध्याय- 25, श्लोक 1-39.

द्वारा तप करके योगसिद्धि प्राप्त करने का उल्लेख है। मथुरामण्डल की "चौरासी कोस की यात्रा" वर्तमान समय में भी प्रचलित और प्रसिद्ध है। "कन्हावत" में वर्णित चौरासी पोखरें और चौरासी कुएँ आज भी मथुरा में प्रसिद्ध है। "मथुरा माहात्म्य" इस "वाराहपुराण" के अतिरिक्त "नारद पुराण" उत्तर भाग, अध्याय- 75-80. "पद्मपुराण" पातालखण्ड, अध्याय 69 से 83, उत्तरखण्ड 95, "स्कन्दपुराण" 4/20 आदि में भी है। यह सप्तपुरियों में से एक है। इसका पूर्वनाम मधुरा {वाल्मीकि रामायण, उत्तर-काण्ड, 7/108}, मधुपुरी तथा माहोली भी है। "वाराहपुराण" में इसकी सीमा 20 योजन कही गई है। ह्वेनसांग के समय मथुरामण्डल 833 मील में एवं मथुरा नगर प्राय: चार मील के घेरे में था। जैन- ग्रन्थों में इसका नाम सौरपुर है। पीछे वीरसिंह, जयसिंह तथा पेशवाओं ने यहाँ बार- बार अनेक मन्दिर बनवाए।[1] "मथुरा के वैभव का पता हमें महमूद गजनवी और सिकन्दर लोदी द्वारा लूटी गई अपार धन- सम्पदा से पता चलता है। ग्राउज साहब और फ्रांसीसी यात्री टेवर्नियर ने भी मथुरा के मन्दिर के सौन्दर्य और वैभव का उल्लेख किया है।[2]" -{"कन्हावत" कड़वक- 16-27.}

"मथुरा का राजा कंस द्वन्द्व- युद्ध का प्रेमी था। वह अपने बाहुबल के मद से अकेला ही द्वन्द्व- युद्ध के लिए उन्मुक्त रहता था। इसी मद में उन्मत्त उसने अनेक नगरों, वनों, पर्वतों आदि पर घूमते हुए चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल, द्विविद, केशी, अघासुर, अरिष्टासुर, नरकासुर, प्रलम्बासुर, व्योमासुर, धेनुक, तृणावर्त, बक आदि को पछाड़ा और उन्हें अपना सेवक बनाया। व्योमासुर के पछाड़ते ही नारद जी वहाँ आ पहुँचे। प्रणामपूर्वक कंस

1- "कल्याण" वर्ष 51, वाराहपुराण, पाद टिप्पणी, पृ0- 291.
2- "हिन्दू विश्व पत्रिका", मई 1984 : डॉ0 गयाप्रसाद उपाध्याय, पृ0- 18.

ने पूछा- "हे देव। मेरी युद्ध- विषयक आकांक्षा पूरी नहीं हुई है। मुझे शीघ्र बताइये, अब मैं कहाँ किसके पास जाऊँ?" नारद ने उसे बाणासुर के पास भेज दिया। भगवान् शंकर की मध्यस्थता से बाणासुर और कंस में सन्धि हो गई। तत्पश्चात् वह कालयवन से जा भिड़ा और उसे धराशायी कर दिया। फिर उसने अपने पूर्व के सेवकों चाणूर, मुष्टिक आदि के साथ अमरावती पुरी को घेर लिया तथा इन्द्र समेत देवताओं को परास्त करके राजधानी मथुरा लौट आया।[1] ऐसा प्रतीत होता है कि कंस के इसी दिग्विजय प्रसंग को "कन्हावत" में कवि ने शत्रु को अथवा मृत्यु को ढूढ़ने का अभियान वर्णित किया है। - [कन्हावत, कड़वक 30-33.]

"श्रीमद्भागवत" में कंस की मृत्यु की सूचना आकाशवाणी द्वारा ज्ञात होती है। इसमें ऐसा वृतान्त उपलब्ध है कि कंस अपनी बहिन को विदाई के समय मार्ग में जिस समय घोड़ों की रास पकड़कर रथ हाँक रहा था, उस समय आकाशवाणी ने उसे सम्बोधन करके कहा - "अरे मूर्ख, जिसको तू रथ में बैठाकर लिए जा रहा है, उसकी आठवें गर्भ की सन्तान ब तुझे मार डालेगी।[2] इस प्रकार भागवत् में कंस को अपनी मृत्यु की सूचना आकाशवाणी द्वारा प्राप्त होती है। "देवी भागवत" के अनुसार कंस ने देवकी के प्रथम पुत्र को यह कहकर छोड़ दिया कि "निष्प्रयोजन इस बालक को क्यों मारा जाय? देवकी का आठवाँ पुत्र मेरा काल होगा, यह बात आकाशवाणी से व्यक्त हुई है, अतएव इस पहले बच्चे को मारकर मैं क्यों पाप का बोझ सिर पर लादूं।" मंत्रियों ने भी इसका समर्थन किया और कंस की आज्ञा से स्वगृह चले गए। तत्पश्चात् वहाँ मुनीश्वर नारद पधारे। कुशल प्रश्न के पश्चात् नारद जी

1- "कल्याण अंक" वर्ष 44, अग्निपुराण - गर्गसंहिता, गोलोक खण्ड, अध्याय 6-7.

2- श्रीमद्भागवत, स्कन्ध- 10, अध्याय- 1, श्लोक - 34.

ने हँसकर कहा- "महाभाग कंस! मैं सुमेरु पर्वत पर गया था, वहाँ ब्रह्मा प्रभृति सभी प्रमुख देवता सावधान होकर बैठे थे। उनमें परस्पर परामर्श हो रहा था कि "वसुदेव की धर्मपत्नी के गर्भ से देवाधिदेव भगवान् विष्णु तुम्हें मारने के लिए जन्म धारण करेंगे।" अतएव नीतिज्ञ होते हुए भी तुम देवकी के पुत्र को मारने में क्यों चूक गए?"[1] इसी प्रकार "विष्णुपुराण" में वर्णन है कि "पृथ्वी बोझ से अत्यन्त पीड़ित हुई तब सुमेरु पर्वत स्थित देवताओं की सभा में पहुँची। वहाँ जाकर उसने ब्रह्मा जी सहित सब देवताओं को प्रणाम किया और खेद तथा करुणा भरे स्वर में उसने अपना सब कष्ट कह सुनाया। विष्णु ने देवताओं को आश्वासन दिया और तत्पश्चात् अन्तर्धान हो गए। देवता सुमेरु पर्वत पर चले गए। फिर देवताओं ने पृथ्वी पर देह धारण किया। इसी अवसर पर महर्षि नारद ने कंस के पास जाकर कहा कि देवकी के आठवें गर्भ रूप में भगवान् विष्णु अवतीर्ण होंगे। नारद जी की बात सुनकर कंस अत्यंत क्रोधित हुआ और उसने वसुदेव तथा देवकी को कारागार में डाल दिया।"[2] "कन्हावत" में भी नारद जी ने ही कंस को उसकी मृत्यु के विषय में इसी प्रकार की सूचना दी है।

जायसी ने "कन्हावत" में नारद के मुख से भगवान् विष्णु के दस अवतारों के वर्णन का उपक्रम किया है जिसमें उन्होंने क्रमशः मत्स्य, कच्छप, वाराह, वामन, नृसिंह, परशुराम और दशरथ- पुत्र श्रीराम का अवतार तथा उनके अवतारों के प्रयोजन और महिमा का संक्षिप्त वर्णन किया है। श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणों में दशावतार की यही सूची मिलती है। किन्तु "कन्हावत" में वाराहावतार के पश्चात् नृसिंह अवतार न बताकर

1- "श्रीमद्देवीभागवत", कल्याण अंक, वर्ष 34, अध्याय-21, पृ0-205.
2- "विष्णुपुराण", पंचम अंश, अध्याय- 1, श्लोक संख्या- 11, 65, 66, 67.

वामन अवतार का उल्लेख किया गया है। अवधेय यह है कि जायसी ने केवल सात अवतारों का वर्णन किया है जबकि कड़वक 38 के प्रारम्भ में विष्णु के दस अवतारों की कथा कहने और सुनने की बात कही है। इसके पूर्व के कड़वक के अन्त में दोहे के अन्तर्गत् नवें अवतार में विष्णु द्वारा कृष्ण के रूप में अवतार लेकर कंस के विनाश किए जाने का उल्लेख है। इस प्रकार अष्टम और दशम अवतारों का वर्णन नहीं है, जबकि दशावतार के क्रम में श्रीकृष्ण अष्टम और बुद्ध तथा कल्कि क्रमशः नवम तथा दशम ठहरते हैं। झाँसी मण्डल के अन्तर्गत् देवगढ़ में दशावतार का मन्दिर अब भी वर्तमान है जो सम्पूर्ण भारत में अकेला है। - [कन्हावत, कड़वक 37- 38]

इस्लाम धर्म में पुनर्जन्म का सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया जाता। सम्भवतः इसीलिए जायसी ने पुनर्जन्म सम्बन्धित शंकाएँ उत्पन्न करके नारद जी द्वारा प्रकृति में होने वाले विविध परिवर्तनों के उदाहरण देकर उनका समाधान कराया गया है। ईश्वर को सर्वशक्तिमान बताकर यह स्पष्ट किया गया है कि वह जो चाहे वही काम करने में समर्थ है। यह जायसी की मौलिकता प्रतीत होती है। - [कन्हावत, कड़वक 39-40]

श्रीमद्भागवत के अनुसार "कंस ने जब आकाशवाणी द्वारा सुना कि उसकी प्यारी बहिन देवकी के आठवें गर्भ से उत्पन्न बालक ही उसका वध करेगा तो वह देवकी का ही वध करने को उद्यत हुआ। वसुदेव ने कंस को समझाते हुए कहा कि "इधर एक तो यह स्त्री, दूसरे आपकी बहिन और तीसरे विवाह का शुभ अवसर। ऐसी स्थिति में आप इसे कैसे मार सकते हैं।[1]

1- "श्रीमद्भागवत" , स्कन्ध 10, अध्याय- 1, श्लोक- 37.

"आठवें बालक के जन्म के पूर्व देवकी के देदीप्यमान शरीर की कान्ति को देखकर कंस को जब दृढ़ निश्चय हो गया कि उसके काल ने देवकी के गर्भ में अवश्य ही प्रवेश किया है तब उसके मन में पुनः विचार आया कि देवकी को मारना तो ठीक न होगा क्योंकि एक तो यह स्त्री है, दूसरे बहिन और तीसरे गर्भवती है।[1]" शास्त्रों में भी स्त्री- वध की गणना महापातकों में की गई है। "कन्हावत" में भी कंस को इस बात का ज्ञान हुआ तभी वह देवकी वध के उद्यम से विरत हुआ। (कन्हावत, कड़वक 41)

विष्णु का श्रीकृष्ण के रूप में अवतार ग्रहण करने में सोलह सहस्र गोपियों की प्राप्ति का प्रलोभन पुराणों में नहीं मिलता। यह कवि की कोरी कल्पना जान पड़ती है, क्योंकि श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान हैं, "कृष्णस्तु भगवान स्वयं" अतः वे अवतारी हैं, अवतार नहीं।

"कन्हावत" में कंस द्वारा आठ पुत्रों के वध की बात कही गई है एवं नवें गर्भ में कृष्ण के प्रवेश का उल्लेख है जो श्रीमद्भागवत् अथवा अन्य पुराणों से भिन्न है। भागवत् के अनुसार सातवें गर्भ में भगवान शेष का आधान हुआ था जो योगमाया के द्वारा देवकी के गर्भ से नन्द- पत्नी रोहिणी- गर्भ में स्थापित कर दिए गए थे। आठवीं बार तो स्वयं कृष्ण ने ही अवतार लिया था। आकाशवाणी ने भी कृष्ण को आठवें गर्भ की सन्तान कहा था -

"अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध"[2]

कंस ने देवकी के छह पुत्रों को ही मारा था। वे मरणशील बालक षड्गर्भ नामक देवता थे। इसी प्रकार "श्रीमद्देवीभागवत" में देवकी और

1- "श्रीमद्भागवत्", स्कन्ध 10 अध्याय- 2, श्लोक - 21.

2- वही, स्कन्ध - 10, अध्याय-1, श्लोक- 34.

यशोदा के परस्पर मिलन का तो उल्लेख नहीं है लेकिन प्रसव के समय देवकी ने वसुदेव से बताया है कि पूर्वसमय में मुझसे [देवकी से] नन्दरानी की बात हुई थी। उन्होंने कहा था- "मानिनी। तुम अपने पुत्र को मेरे घर भेज देना। यह निश्चय जानो, मैं भलीभाँति उसे पाल- पोस दूँगी। कंस के मनमें यह विश्वास हो जाय कि यह तुम्हारा पुत्र नहीं है।इसीलिए यह प्रयत्न करना है। तु फिर तुम्हें वापिस कर दूँगी।[1] श्रीमद्भागवत् में उपर्युक्त प्रकार का कोई संकेत या प्रसंग उपलब्ध ही नहीं होता। लोक में देखा जाता है कि ग्रामीण स्त्रियाँ कोई दुःख पड़ने पर कारण कहती हुई विलाप करती हैं। इस बीच यदि दूसरी स्त्री उसे सुनती है तो अवश्य ही उसके दुःख का कारण पूछती हैं। गऊ गुहार, तिरिया गुहार बहुत ही अधिक प्रचलित रहा है। इसके पीछे गाय अथवा स्त्री पर संकट आ पड़ने पर सहायता पहुँ-चाने की प्रबल सामाजिक प्रथा रही है। कवि ने इसी स्वभाव और प्रथा का यथार्थ चित्रण किया है। देवीभागवत का अन्य पुराणों में उल्लेख नहीं मिलता। लगता है, यह बहुत बाद की रचना है इसीलिए उपरोक्त प्रथा का इसमें भी समावेश किया गया है। - [कन्हावत, कड़वक 42- 48]

"कन्हावत" के विपरीत "श्रीमद्भागवत" के अनुसार "वसुदेव जी जब कृष्ण जी को लेकर गोकुल में गए तो उन्होंने देखा कि सबके सब नींद में अचेत पड़े हैं। उन्होंने अपने पुत्र को यशोदा जी की शय्या पर सुला दिया और उनकी नवजात कन्या लेकर वे बन्दी-गृह में लौट आए। योगमाया के प्रभाव से यशोदा को भी इन सबका कुछ पता भी न चल पाया था।"[2] किन्तु देवीभागवत[3] के अनुसार नन्द जी के दरवाजे पर जब वसुदेव जी पहुँचे तब वहाँ यशोदा के गर्भ से योगमाया अवतीर्ण हुई थी। उस अवसर पर

1- "श्रीमद्देवीभागवत", स्कन्ध - 4, अध्याय- 23.
2- "श्रीमद्भागवत्" . स्कन्ध -10, अध्याय- 3, श्लोक 50-53.
3- "कल्याण अंक", वर्ष - 34, श्रीमद्देवीभागवत, अध्याय- 23.

सर्वेश्वरी भगवती ने स्वयं दासी का वेश बना लिया था। अपने कमल जैसे कोमल हाथ पर उस दिव्य कन्या को लेकर वह बाहर आयी और उसे वसुदेव जी को दे दिया। वसुदेव जी ने भी दासी वेश धारण करके पधारने वाली उस सर्वेश्वरी के कर-कमलों पर अपने पुत्र को रख दिया और उस कन्या को लेकर बड़ी प्रसन्नता के साथ शीघ्रतापूर्वक चल दिया। कुछ ही क्षणों बाद वे कारागार में आ पहुँचे और देवकी की शय्या पर उन्होंने उस कन्या को लेटा दिया।" देवीभागवत का यह प्रसंग "कन्हावत" में कुछ विरल रूप से प्राप्त होता है। इसी प्रकार "कन्हावत" में पुत्र-जन्म के समय देवकी ने जो वसुदेव से विनती की वह बात भागवत से भिन्न है पर अन्य पुराणों में कुछ इसी तरह की बात आती है।

विष्णुपुराण में बतलाया गया है कि भगवान को ले जाते हुए वसुदेव जी ने विविध प्रकार की भँवरों से परिपूर्ण यमुना जी को जिस समय पार किया, उस समय उनके घुटनों तक जल रह गया। उसी समय कंस के लिए कर देने के निमित्त आए हुए नन्दादि गोपों को भी उन्होंने यमुना जी के किनारे पर देखा। पश्चात् उस काल योगनिद्रा के प्रभाव से सभी निपुण मनुष्य मोहित हो गए थे जिससे मोहित हुई यशोदा जी ने भी कन्या उत्पन्न की।[1] ऐसा लगता है कि इसी बात को जायसी ने "कन्हावत" में कुछ उलट-फेर करके अपने ढंग से लिख दिया। वसुदेव जी द्वारा श्रीकृष्ण को जब नन्द जी के घर पहुँचाया गया तो उस समय नौ निधियों सहित लक्ष्मी का ऐश्वर्य व्याप्त हो गया। "कन्हावत" के कड़वक 53, 6-7 में वर्णित सन्दर्भ का मिलता-जुलता रूप गर्गसंहिता में भी इस प्रकार उपलब्ध होता है-"व्रज की गली-गली में, घर-घर में, निधि, सिद्धि, वृद्धि, भुक्ति और मुक्ति - ये लोटती सी दिखाई देती थीं। उन्हें पाने की इच्छा वहाँ किसी के भी मन में नहीं होती थी।[2]" कृष्ण -

---

1- "विष्णुपुराण", पंचम अंश, अध्याय- 3.
2- "कल्याण अंक", वर्ष- 44, गर्गसंहिता- गोलोक खण्ड, अध्याय-12, श्लोक 31- 39.

जन्मोत्सव पर होने वाले मंगलाचार, गीतवाद्य, जेवनार आदि का वर्णन श्रीमद्भागवत के सदृश ही है। - {"कन्हावत", कड़वक 49-57}

श्रीमद्भागवत[1] के अनुसार एक दिन यदुवंशियों के कुल पुरोहित श्री गर्गाचार्य जी वसुदेव जी की प्रेरणा से नन्द बाबा के गोकुल में आए। नन्द ने उन्हें भगवान की तरह समझकर यथोचित आतिथ्य- सपर्या की तत्पश्चात् कृष्ण और बलराम के नामकरण संस्कार करने की प्रार्थना की। श्रीगर्गाचार्य जी ने रोहिणी पुत्र का नाम रोहणेय, राम तथा संकर्षण किया और युग-युग में शरीर धारण करने वाले साँवले भगवान का कृष्ण, श्रीमान् वासुदेव आदि विविध नाम कहा। उन्होंने इन्हें नारायण के समान बताया और कहा कि यह गोप- गोपियों सहित तुम्हारा कल्याण करेगा। "कन्हावत" में भी विविध अवतार धारण करने के कारण विष्णु को कन्ह, वासुदेव, उधो, हर, विसुन, राम, नारायण, केशव, किसुन, गोविन्द- गोपाल आदि दशावतारी नाम दिया गया है। "गर्ग-संहिता" में भी श्रीमद्भागवत के अनुसार ही नामकरण संस्कार का उल्लेख है। - {"कन्हावत" कड़वक 58-59}

"कन्हावत" में कंस ने स्वप्न में श्रीकृष्ण को काल रूप में देखा था जो "सूरसागर"[2] में भी है। "श्रीमद्भागवत"[3] के अनुसार "कंस ने जाग्रत और स्वप्नावस्था में ऐसे बहुत से अपशकुन देखे जो उसकी मृत्यु के सूचक थे। उसके कारण उसे बड़ी चिन्ता हो गई, वह मृत्यु से डर गया और उसे नींद न आई।" वह उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते- जागते सदा कृष्ण की ही चिन्ता में लीन रहता था। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि भागवत में कंस ने सभी अपशकुन पूतना

1-"श्रीमद्भागवत," स्कन्ध-10, अध्याय- 8, श्लोक 12-16.
2- "सूरसागर" , स्कन्ध-10, अध्याय-39, पद सं0- 70.
3- "श्रीमद्भागवत", स्कन्ध-10, अध्याय-42, श्लोक 27-31.

आदि वध के पूर्व नहीं देखा था वरन् श्रीकृष्ण और बलराम द्वारा धनुष- भंग के ठीक पश्चात् और व्यायामशाला में अपने वध के पूर्व देखा था। किन्तु "कन्हावत" में जायसी ने कृष्ण- जन्म के पश्चात् और पूतना आदि के वध के पूर्व इसे दिखाया है। स्वप्न-वर्णन की शैली पारम्परिक और आनुश्रुतिक प्रतीत होती है। "ब्रह्मवैवर्तपुराण"[1] में कंस ने सभा के मध्य अपने पुत्र, मित्रगण, बन्धुवर्ग, बान्धव और पुरोहित को बुलाकर उनके समक्ष अर्धरात्रि में देखे गए दुःस्वप्नों का वर्णन किया और उनसे उनका तात्पर्य समझाने के लिए निवेदन किया। स्वप्न विविध थे। इसी प्रकार पुरोहित के रूप में शुक्राचार्य के शिष्य बुद्धिमान सत्यक का उल्लेख है जिन्होंने कंस को आश्वस्त करके सर्वारिष्ट विनाशक शिव का धनुर्मख याग करने का परामर्श दिया। "कन्हावत" में यद्यपि शुक्राचार्य का मंत्री के रूप में उल्लेख मिलता है किन्तु "ब्रह्मवैवर्तपुराण" में शुक्र- शिष्य सत्यक का केवल पुरोहित के रूप में वर्णन आया है। - ["कन्हावत" कड़वक-60-62]

"कन्हावत" में नारद ने बालक की अदला- बदली की बात बताई है जो "गर्गसंहिता"[2] में कुछ विस्तार के साथ वर्णित है। "नारद कंस के पास पहुँचे, उन्होंने उससे कहा - "कंस। जो कन्या तुम्हारे हाथ से छूटकर आकाश में चली गई, वह तो यशोदा की पुत्री थी और व्रज में जो श्रीकृष्ण हैं, वे देवकी के पुत्र हैं। वहाँ जो बलराम जी हैं वे रोहिणी के पुत्र हैं, वसुदेव ने तुमसे डरकर अपने मित्र नन्द के पास उन दोनों को रख दिया है। उन्होंने ही पूतना से लेकर अरिष्टासुर तक तुम्हारे अनुचर दैत्यों का वध किया है। यह बात सुनते ही कंस की एक- एक इन्द्रिय काँप उठी। कंस ने वसुदेव और देवकी दोनों ही पति- पत्नी को हथकड़ी और बेड़ी से जकड़कर फिर जेल में

1- "ब्रह्मवैवर्तपुराण", अध्याय- 73, श्लोक 2-30.

2- "कल्याण अंक", वर्ष - 44, अग्निपुराण- गर्गसंहिता, श्री मथुराखण्ड, अध्याय- 1, श्लोक 4-9.

डाल दिया।[1]" "ब्रह्मपुराण[2]" में नारद जी अरिष्टासुर आदि के वध के पश्चात् कंस के पास आकर बालक की अदला- बदली की बात बताते हैं। परन्तु "कन्हावत" में यह बात पूतना- वध के पूर्व ही दी गई है।
- ["कन्हावत", कड़वक- 63]

"कन्हावत" में नारद ने कंस को उपाय बताया था कि कोई स्त्री जाकर कृष्ण को विष दे दे। कंस ने इस कार्य को करने वाली [स्त्री] को आधा राज्य देने का प्रलोभन दिया। आधा राज्य देने का प्रसंग भागवत से बिलकुल भिन्न है। पूतना के मरने पर कंस के भय से बड़े गोपों ने गाँव छोड़कर भाग जाने की बात सोची। कन्हावत का यह प्रसंग [भी] भागवतेतर है। - ["कन्हावत" कड़वक 64-66]

कालकरट वध की कथा भागवत में नहीं है। "कन्हावत" के "काल-करट" का वृत्तान्त केवल "सूरसागर[3]" और "विश्रामसागर[4]" में कागासुर के रूप में आया है। - ["कन्हावत", कड़वक - 67]

"श्रीमद्भागवत्" में कालियदमन के प्रसंग के अन्तर्गत् गेंद खेलने और कमल लाने आदि का कुछ भी वर्णन नहीं है किन्तु "विश्रामसागर[5]" और "सूरसागर[6]" में सखाओं के साथ गेंद खेलते समय उसके यमुना में गिर जाने के बाद कृष्ण का कदम्ब- वृक्ष से कूदकर पाताल जाने का वर्णन है, परन्तु कमल लाने का उल्लेख "सूरसागर" में है जो "कन्हावत" से मिलता- जुलता है।

1- "श्रीमद्भागवत्", स्कन्ध-10, अध्याय-36, श्लोक 16-18.
2- "कल्याण अंक", वर्ष - 21, "ब्रह्मपुराण", पृ0- 502.
3- "सूरसागर" स्कन्ध-10, पद सं0- 52-54.
4- "विश्रामसागर"पृ0-302, अध्याय- 2. एक दिवस कागासुर आवा। पकरि तासु शिर तोरि बहावा।।
5- "विश्रामसागर", पृ0-319, अ0- 5.
6- "सूरसागर" स्कन्ध-10, अध्याय- 16.

"उत्तरपुराण"[1] में भी कुछ इसी प्रकार का प्रसंग उपलब्ध होता है। "कन्हावत" में कंस ने श्रीकृष्ण को मारने के लिए बार- बार शुक्र और नारद से उपाय पूछा था। सहस्त्र-दल- कमल मँगाने का परामर्श उसे शुक्र ने दिया था, जबकि "सूरसागर" में नारद ने। "कन्हावत" में कन्ह को मारने के लिए दैत्यों द्वारा मेघ बनकर गायों के चराने के स्थान पर पाषाण- वृष्टि करके श्मशान बना देना वर्णित है। यह वर्णन किसी भी पुराण में प्राप्त नहीं होता। गोवर्धन धारण का प्रसंग पुराणों में इन्द्र का गर्व हरण करने के लिए प्रसिद्ध है। बालक कृष्ण द्वारा गोपियों के साथ की गई अनेक प्रकार की चपलताओं का वर्णन हमें "सूरसागर"[2] में विस्तार से प्राप्त होता है। वहाँ भी यशोदा कृष्ण का पक्ष लेती हैं और गोपियों को फटकार सुनाती हैं। "श्रीमद्भागवत" में चीर- हरण और रासलीला के प्रसंग इसी प्रकार के उदाहरण हैं। {68-95}

शशिभूषणदास गुप्त के अनुसार "योगेशचन्द्र ने चन्द्रावली का नाम सोमभा निरूपित किया है। ज्योतिष के अनुसार उन्होंने स्पष्ट किया कि अमावस की रात को सूर्य- चन्द्र का मिलन होता है, कृष्ण गुप्त रूप से चन्द्रावली के कुंज में जाते हैं। इसी प्रकार वृषभानुजा भी वृष- राशिस्थ भानुरश्मि है। योगेशचन्द्र जी के विचार में हम पुराणादि में ब्रज के जिस कृष्ण का उल्लेख पाते हैं उनका काल ईसा पूर्व तीसरी सदी और राधा का काल ईसा की तीसरी सदी है।"[3] चन्द्रावली के विषय में "स्कन्दपुराण" में "यमुना और कृष्ण- पत्नियों का संवाद" के अन्तर्गत कहा गया है कि "श्रीकृष्ण ही राधा है और राधा ही श्रीकृष्ण। उन दोनों का प्रेम ही वंशी है

1- "उत्तरपुराण" मूल आचार्य गुणभद्र, सम्पादक अनुवादक पं0 पन्नालाल साहित्याचार्य, श्लोक 462-472, पृ0- 370-371.

2- "सूरसागर", दशम स्कन्ध, 76-84.

3- "श्रीराधा का क्रमिक विकास", शशिभूषणदास गुप्त, पृ0- 102.

तथा राधा की प्यारी सखी चन्द्रावली श्रीकृष्ण-चरणों के नखरूपी चन्द्रमाओं की सेवा में आसक्त रहने के कारण ही चन्द्रावली के नाम से कही जाती है। श्रीराधा और श्रीकृष्ण की सेवा में उसकी बड़ी लालसा, बड़ी लगन है। इसीलिए वह कोई दूसरा स्वरूप धारण नहीं करती।"[1] यही बात "श्रीमद्भागवत"[2] के माहात्म्य अध्याय में जोड़ी गई है। "गर्ग-संहिता" में उल्लेख प्राप्त होता है कि "वेणुगीत से प्रसन्न हुई चन्द्रानना नाम वाली सखी उनका आदेश पाकर तत्काल चन्द्रावली के प्रति श्रीराधा को ही सम्बोधित करके बोली। पद्मा, पद्मावती, नन्दी, आनन्दी, सुखदायिनी, चन्द्रावली, चन्द्रकला तथा वन्द्या ये गोपाङ्गनाएँ श्री हरि की प्राणवल्लभा हैं।[3] "पद्मपुराण"[4] में कृष्ण की प्राणवल्लभाओं के मध्य चन्द्रावली का भी नाम उल्लिखित है। "ब्रह्मवैवर्त-पुराण"[5] में भी "रासक्रीड़ाप्रस्ताववर्णन" में एक स्थान पर चन्द्रावली का नाम आया है। "काश्चित्तत्र ययुः शीघ्रं यत्र चन्द्रावली मुदा।" इस प्रकार पुराणों में भी चन्द्रावली के वर्णन मिलते हैं। गर्गसंहिता में ही गिरिराज खण्ड के ग्यारहवें अध्याय में कथा आती है कि माघ मास का व्रत करती हुई लक्ष्मी जी की सखियों की प्रेम परीक्षा के लिए श्रीकृष्ण ने योगी का रूप धारण किया था। उनका रूप रंग कुछ वैसा ही था जैसा "कन्हावत" के कड़वक 111 से 119 तक में स्फुट रूप से चित्रित है। लक्ष्मी सखी रूप गोपियाँ श्रीकृष्ण केइ वंशी-वादन से मुग्ध होकर [क0-111] जब श्रीकृष्ण के पास पहुँचती हैं तो उनका संवाद "कन्हावत" [क0119] के परस्परालाप से मिलता-जुलता है। सूर ने "सूरसागर" में कई स्थलों पर चन्द्रावली का वर्णन किया है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र

1-"कल्याण अंक", वर्ष - 25, "स्कन्दपुराण", वैष्णव खण्ड, पृ0- 356.
2- "श्रीमद्भागवत- माहात्म्य" अध्याय- 2, श्लोक 13-14.
3- "कल्याण अंक", वर्ष 45, "अग्निपुराण- गर्गसंहिता", अश्वमेधखण्ड, पृ0- 457.
4- "पद्मपुराण" अ0- 70
5- "ब्रह्मवैवर्तपुराण" - पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य, अ0-74, श्लोक- 46.

की "चन्द्रावली नाटिका" में कृष्ण योगिनी- रूप में ही चन्द्रावली से मिलते हैं, जैसाकि "कन्हावत" में भी उल्लिखित है। नायिकाओं के भेद की उद्भावना के पश्चात् जायसी द्वारा राधा के अतिरिक्त परकीया नायिका के रूप में चन्द्रावली की कथा भी गढ़ ली गई प्रतीत होती है। {"कन्हावत, कड़वक96-139

पुराणों में तो श्रीकृष्ण और राधा एवं समस्त गोपाङ्गनाओं का प्रेम दिव्य है। राधा समेत समस्त ब्रजाङ्गनाएँ श्रीकृष्ण- सुखजीवना, श्रीकृष्णप्राणा, श्रीकृष्ण परिनिष्ठित मति है। श्रीकृष्ण के सुख में ही उनका सुख है। उनका जीवन भगवान की रति है, प्रेम है। इस प्रकार तत्सुखित्व ही उनमें प्रधान है। ईर्ष्या अथवा सौतियाडाह का उसमें स्थान कहाँ ?

कड़वक 148 में चन्द्रावली ने जिस प्रकार राधा से उनकी अस्त- व्यस्त अवस्था को देखकर संशय भरे कारणों की कल्पना की है उसी प्रकार "गर्ग-संहिता" में अनमनी गोपीरूपधारी श्रीकृष्ण से उनकी व्याकुल अवस्था को देख कर राधा ने आशंका प्रकट की है। वे उनसे कहती हैं - "माता, पति, ननद अथवा सास ने कुपित होकर तुम्हें फटकारा तो नहीं है? मनोहरे। किसी सौत के दोष से या अपने पति के वियोग से अथवा अन्यत्र चित्त लग जाने से तो तुम्हारा मन खिन्न नहीं हुआ है।"[1]

"गर्गसंहिता" में गोविन्द के वियोग से खिन्न हुई राधा को अमावस्या में प्रविष्ट चन्द्रकला की भाँति क्षीण होती हुई बताया गया है।[2]

"कन्हावत" में श्रीकृष्ण के संयोगपूर्व वियोग से चिन्तित चन्द्रावली के लिए भी राहुग्रस्त चन्द्रमा और अमावस्या होने का उपमान प्रस्तुत किया गया है -

---

1-"कल्याण अंक", वर्ष 44, अग्निपुराण- गर्गसंहिता, श्रीवृन्दावनखण्ड, अ0- 18, श्लोक 6-13.

2- वही, मथुराखण्ड, अ0- 15, श्लोक 16-21.

"सोरह करा रहत नित, जाइ संपूरन आहु ।
काहे भई अमावस, चाँद गहे म्नु राहु[1] ।।"

यहाँ अमावस होना चन्द्रावली के मुखमण्डल की क्षीणता का द्योतक है। राधा ने भी चन्द्रावली को अमावस्या के रूप में सम्बोधित किया है किन्तु अन्य अर्थ में। पूर्णिमा के पश्चात् चन्द्रमा क्षीण होते- होते अमावस्या की रात्रि में अदृष्ट हो जाता है। शुक्ल पक्ष की चाँदनी रूप चन्द्रावली को राधा ने इसे दुष्ट कार्यों के कारण लज्जा में डूब मरने की संज्ञा दी है -

"घटहि कहत जासि तूं, बूड़ि मरसि नहिं लाज ।
सब जग कहै अमावस, देखि तोर अस काज[2] ।।"

"राहु चाँद सब गहनें लीन्हीं । पुनिउं कुत सो अमावस कीन्हीं।।[3]"

में भी अमावस शब्द द्वारा क्षीण होना ध्वनित है। इसके विपरीत राधा को कृष्ण पक्ष की रात्रि के सम्बन्ध से राहु कहा गया है जो कलंकिनी का अर्थ प्रकट करता है -

"लंक दाह कर दाहे, तबों कहेसि तहं दाह ।
पुनि भतार कर आहसि, सो राही तूं राह।।[4]"

चन्द्रावली राही का अर्थ कृष्णवर्ण {काली} लगाकर उनके दोषों का वर्णन करके नाम से अधिक काली कहती है -

"तूं छुतही जो डोंब छुतिहारी ।
जो नहि नाउं सो बोरहु कारी।।[5]"

1- "कन्हावत" - शिवसहाय पाठक, कड़वक- 138-दोहा
2- वही, कड़वक - 155- दो०
3- वही, कड़वक - 159- दो०
4- वही, कड़वक - 154- दो०
5- वही, कड़वक - 157- 3

इसीलिए उन्हें सदा काली अँधियारी कहा है -

"चौदसि भईं सपूरन, अधिक होउँ उजियारि ।
तूं राधी का बोलसि, सदा कारि अँधियारि।।"[1]

"कन्हावत" में चन्द्रावली और राधा के मध्य विवाद और संघर्ष मौलाना दाउद कृत "चन्दायन" में वर्णित सौतियाडाह के चित्रण पर आधारित लगता है। "पद्मावत" में भी जायसी ने इसी प्रकार नागमती और पद्मावती के मध्य एक पति को चाहने वाली है दो गँवार स्त्रियों के समान संघर्षरत दिखाया है।

वस्तुतः इन प्रेमाख्यानों में दो नायिकाएं इड़ा- पिंगला नाड़ियों की प्रतीक हैं और नायक मन का प्रतीक है। इड़ा- पिंगला का सामरस्य मन को निश्चंचल बनाता है और उनका पारस्परिक संघर्ष उसे चंचल बनाता है। इसी आध्यात्मिक तथ्य का वर्णन कवि ने "कन्हावत" तथा "पद्मावत" में सौतियाडाह के लौकिक चित्रणों द्वारा किया है। -{"कन्हावत", कड़वक-140-162}

श्रीमद्भागवत आदि पुराणों में यह वृत्तान्त नहीं है कि कंस ने गोपियों को मथुरा बुलाकर ब्याहने की योजना बनाई थी और न यही वर्णन है कि उसने नन्द और यशोदा को जेल में डाल दिया हो। भागवत के अनुसार कंस ने अक्रूर को भेजकर नन्द आदि गोपों सहित श्रीकृष्ण और बलराम को मथुरा बुलाकर कुवलयापीड हाथी या मुष्टिक, चाणूर आदि द्वारा मरवा डालने का उपक्रम किया। "नन्दबाबा आदि गोपों ने भी दूध, दही, मक्खन, घी आदि से भरे मटके और भेंट की बहुत सी सामग्रियाँ ले लीं तथा वे छकड़ों पर चढ़कर उनके {कृष्ण- बलराम} के पीछे- पीछे चले।"[2] मार्ग में अक्रूर को चतुर्भुज रूप का

1- "कन्हावत" - शिवसहाय पाठक, कड़वक - 156. दो

2- "श्रीमद्भागवत", स्कन्ध-10, अध्याय- 39, श्लोक- 33.

दर्शन दिया। "कन्हावत" में अक्रूर द्वारा चतुर्भुज का दर्शन और दशावतार की जो स्तुति है वह लगभग "श्रीमद्भागवत"[1] के समान है। "कन्हावत" में कृष्ण द्वारा शुक्राचार्य पर क्रोध करने के प्रसंग में उनकी आँख फोड़ने की बात अक्रूर को बताई गई है। "नरसिंहपुराण"[2] में भी शुक्राचार्य के नेत्र फोड़ने की कथा मिलती है। सुदामा और कुब्जा पर कृपा के प्रसंग भी भागवत् से मिलते-जुलते हैं। श्रीकृष्ण द्वारा कुब्जा से कंस को भेजे गए संदेश का वर्णन पुराणों में नहीं प्राप्त होता।

ऐसा प्रतीत होता है कि दिवाली के अवसर पर मथुरा में मल्लयुद्ध हुआ करता था। "कंस ने श्रीकृष्ण और बलराम को मारने के लिए कार्तिक अमावस्या के दिन मल्लयुद्ध का[3] आयोजन किया था। इसके पूर्व चतुर्दशी को शान्ति के लिए धनुर्यज्ञ रचाया था।" "गर्गसंहिता"[4] में चतुर्दशी को विधिपूर्वक धनुर्यज्ञ प्रारम्भ करने की कंस- आज्ञा वर्णित है। "कन्हावत" में भी मल्लयुद्ध दीपावली के ही अवसर पर वर्णित है। - {"कन्हावत", कड़वक 163-182.}

आगे रंगमंच का किंचित् दृश्य भागवत[5] में भी समान रूप से मिलता है। "विष्णुपुराण"[6] के अनुसार जब प्रातःकाल हुआ तब रंगमंचों पर अपने अनुचरों सहित राजागण तथा सामान्य मन्चों पर सभी नागरिक बैठ गए। मल्लयुद्ध में चाणूर-वध तक का वर्णन कुछ- कुछ अव्य "श्रीमद्भागवत" और "गर्गसंहिता" आदि में मिल जाता है। मल्लयुद्धों के लोकप्रचलित दाँव- पेंचों को "श्रीमद्-भागवत" से लेकर जायसी ने अपनी वर्णन शैली में पिरोया है। चाणूर को

1- "श्रीमद्भागवत", स्कन्ध-10, अध्याय- 40, श्लोक 16-22.
2- "कल्याण अंक", वर्ष - 45, अग्निपुराण- गर्गसंहिता-"नरसिंहपुराण", अध्याय- 45, श्लोक 33-37.
3- "श्रीमद्भागवत्", स्कन्ध-10, अध्याय- 36, श्लोक- 26.
4- "कल्याण अंक", वर्ष-44, अग्निपुराण- गर्गसंहिता, श्री मथुरा खण्ड, अध्याय- 1, श्लोक 12- 15.
5- "श्रीमद्भागवत", स्कन्ध-10, अध्याय- 42, श्लोक 32-38.
6- "विष्णुपुराण", पंचम अंश, अध्याय-20, श्लोक- 24.

रक्तबीज कहकर स्पष्ट किया है कि वे "देवीभागवत" में वर्णित रक्तबीज की कथा से परिचित थे। यह वही रक्तबीज है जिसके एक बूँद रक्त के भूमि पर गिरने पर लाखों रक्तबीज उत्पन्न हो जाते थे -

रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः ।
समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणस्तदासुरः ।।[1]

"कन्हावत" में मल्लों के नामों की लम्बी सूची कल्पित जान पड़ती है। जायसी ने श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम जी को मल्लयुद्ध के समय "अरजुन" भी कहा है। बलराम ने गर्वपूर्वक समस्त दैत्यों को मार डालने के लिए श्री-कृष्ण से आज्ञा प्राप्त करने हेतु उनसे कहा कि मैं तुम्हारे लिए "अरजुन" लायो हूँ। बाद में श्रीकृष्ण ने भी उन्हें "अरजुन" शब्द से अभिहित किया है। यह उक्ति पुराण-विरुद्ध है और जायसी की निजी उद्भावना है। यद्यपि महाभारत का युद्ध कंस की मृत्यु के बाद हुआ था तथापि जायसी ने कृष्ण द्वारा रंगभूमि को कुरुक्षेत्र बना देने की बात कहलवाकर अपनी अल्पज्ञता प्रकट की। रख- बख नामक दैत्यों का और चतुर्भुज रूप धारण करके कृष्ण द्वारा चाणूर- वध का वर्णन पुराणों में नहीं प्राप्त होता। पुराणों के अनु-सार श्रीकृष्ण मथुरा के प्रथम प्रयाण में ही कुवलयापीड, चाणूर और कंस आदि का वध कर डालते हैं। किन्तु "कन्हावत" में अक्रूर जब दुबारा श्रीकृष्ण को कंस की प्रेरणा से बुला लाते हैं तब कुवलयापीड और कंस का वध होता है। इस प्रकार पहली बार चाणूर- वध से अपनी भी मृत्यु की सम्भावना से कंस श्रीकृष्ण को कनकरथ आदि भेंट में देकर विदा कर देता है और श्रीकृष्ण हँसते- गाते- बजाते गोपों के साथ वापस लौट आते हैं। [कन्हा0क्र0183-204

1- "दुर्गासप्तशती", अध्याय- 8, श्लोक - 41।

दुबारा चन्द्रावली की कथा खण्डित प्रति के कारण अस्त- व्यस्त है। उसका तारतम्य खण्डित है क्योंकि चन्द्रावली पहले ही गोकुल से मिल चुकी थी। 204- 213. कड़वक 214- 215 में कृष्ण की बालसुलभ चपलता का वर्णन पुराणों में तो कम है किन्तु "सूरसागर" में इसका बहुत विस्तार से वर्णन है। इसी प्रकार ब्रजलीला, दानलीला का वर्णन किंचित् परिवर्तन के साथ "गर्ग-संहिता"[1] में आया है। "श्रीमद्भागवत" में ऐसा कुछ भी उल्लेख नहीं है। सूरदास ने "सूरसागर"[2] में बड़े विस्तार के साथ इसका वर्णन किया है। "विश्रामसागर"[3] और परवर्ती काव्यों में कृष्ण की दानलीला का वर्णन मिलता है। जायसी भी इससे अछूते न रह सके। - 216- 232.

भारतीय साहित्य में श्रृंगार रस को रसराज कहा गया है, इसका वर्णन संयोग और वियोग दोनों अवस्थाओं में आदिकाल से ही थोड़ा- बहुत होता चला आ रहा है। संस्कृत के महाकवि कालिदास ने "कुमारसम्भव" में पार्वती जी का नखशिख वर्णन करके यह सत्य कर दिया है कि यह मानुषी वर्णन तक सीमित न था वरन् देवियाँ भी इसकी परिधि में आ गईं थीं। हाँ इतना अवश्य है कि देवियों के श्रृंगार- वर्णन मर्यादित थे। एक परम्परा और जुड़ गई थी कि देवियों के नखशिख वर्णन का प्रारम्भ चरण से होता था जबकि मानवीय वर्णन सिर से। इस प्रकार अंग- प्रत्यंग का वर्णन संस्कृत साहित्य से अपभ्रंश साहित्य में होता हुआ हिन्दी साहित्य में आया और रीतिकाल तक आते- आते मर्यादाहीन भी हो गया।

जायसी ने "पद्मावत" में परम्परा का निर्वाह करते हुए नखशिख वर्णन प्रस्तुत किया है। "कन्हावत" में राधा के श्रृंगार का वर्णन उसी के समान ही

1- "कल्याण अंक" वर्ष - 44, अग्निपुराण- गर्गसंहिता, गिरिराज खण्ड, अध्याय- 7, श्लोक 15-21.

2- "सूरसागर", स्कन्ध - 10, अध्याय- 28.

3- "विश्रामसागर", बाबा श्रीरघुनाथदास, रामसनेही, पृ0- 322-323.

है। "कन्हावत" में कन्ह द्वारा राही को रुक्मिणी देवी कहकर सम्बोधित किया गया है। ऐसा सम्भवतः इसलिए है कि श्रीराधा में ही रुक्मिणी आदि देवियों का समावेश श्रीयमुना जी द्वारा श्रीमद्भागवत् के "माहात्म्य वर्णन" में ज्ञापित है।[1] "पद्मपुराण- सृष्टिखण्ड" के अनुसार भी द्वारका की रुक्मिणी वृन्दावन में राधा है। श्रीराधा और श्रीकृष्ण का पाणिग्रहण ब्रह्मा जी द्वारा सम्पादित किया गया था। यह वर्णन "गर्गसंहिता"[2] और तद्वत् "ब्रह्मवैवर्तपुराण"[3] में प्राप्त होता है। "सूरसागर" तथा "विश्रामसागर" में भी इस अलौकिक विवाह का वर्णन किया गया है। कृष्ण की कथा प्रस्तुत करने वाले सभी पुराणों में रास का वर्णन कहीं सूक्ष्म और कहीं विस्तृत रूप में किया गया है। रास-नृत्य में दो गोपियों के बीच में अनेक रूप धारण करने वाले श्रीकृष्ण नृत्य करते थे। इस नृत्य के लिए धमारी, फागु और चाचर शब्द का प्रयोग किया गया है। रास भी अलौकिक है। इस नृत्य में राधा का उल्लेख "ब्रह्मवैवर्तपुराण", "गर्गसंहिता", "हरिवंशपुराण", "पद्मपुराण" आदि में आया है। यह रास इतना प्रसिद्ध रहा कि इसके लिए रासपंचाध्यायी जैसी स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना भी हुई। श्रीकृष्ण का विष्णु- अवतार होना पौराणिक सत्य है। विष्णु व्यापनशील होने के कारण वेदों में सूर्य की उपमा से महिमामण्डित हैं। आगे चलकर विष्णु रूप श्रीकृष्ण को पुराणों ने सूर्य के रूप में प्रतिष्ठित किया। शतपथ ब्राह्मण 13/2/1/7 में चन्द्रमा को कृष्ण तथा ऋग्वेद "सावित्रसूक्त" मं० सं०-2 में सूर्यमण्डल को कृष्ण कहा गया है।भारतीय मनीषी इन्हीं कतिपय प्रमाणों के आधार पर वेदों में श्रीकृष्ण का बीज स्वीकार करते हैं। पुराणों में श्रीकृष्ण का सूर्यरूप समत्वभाव, ज्योतिस्स्वरूपत्व और

1- "श्रीमद्भागवत", माहात्म्य वर्णन, अ०-2, श्लोक 13-14 तथा स्कन्ध-10, अध्याय-60, श्लोक- 9.

2- "कल्याण अंक", वर्ष-44, "धर्मपुराण-गर्गसंहिता", गोलोकखण्ड, अ०-16, श्लोक 11-45.

3- "ब्रह्मवैवर्तपुराण" - पं० श्रीराम शर्मा, आचार्य, अ०-66, श्लोक- 63-77.

व्यापकत्व का परिचायक है जबकि उनका चन्द्ररूप आह्लादकत्व, अमृतत्व, शान्तभाव और अप्रतिम सौन्दर्य के परिचायक हैं। श्रीकृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित प्रामाणिक और प्रसिद्ध ग्रन्थ श्रीमद्भागवत में अनेक स्थलों पर उन्हें सूर्यरूप चित्रित किया गया है।[1]

ज्योतिष व्याख्या के अनुसार विष्णु सूर्य हैं और कृष्ण सूर्य का प्रतिबिम्ब एवं गोपी तारिका का। कृष्ण की समस्त अलौकिक लीलाएं तारों पर ही आधारित हैं। यथा- राधा और विशाखा परस्पर पर्याय हैं। कार्तिकी- पूर्णिमा पर सूर्य विशाखा में रहता है। विशाखा रूप राधा का सूर्य से अदृश्य मिलन होता है, क्योंकि युगपत् तारा और सूर्य दृष्टिगोचर नहीं हो सकते हैं।[2]

"ब्रह्मवैवर्तपुराण"[3] राधा की लीलाओं का समग्र ग्रन्थ है जिसमें उन्हें महालक्ष्मी और सती रुक्मिणी कहा गया है। "गर्गसंहिता" में भी कृष्ण और राधा के सम्बन्ध- निरूपण में कहा गया है - "चन्द्रमुखी राधे! चन्द्रमण्डल में श्रीकृष्ण ही चन्द्ररूप हैं और आप ही सदा चन्द्रिकारूपिणी हैं। आकाशस्थ सूर्यमण्डल में श्रीकृष्ण ही सूर्य हैं और आप ही उनकी प्रभामयी परिधि के रूप में प्रतिष्ठित हैं।[4]

"कन्हावत" के कड़0 262 में श्रीकृष्ण ने अपने को सूर्य रूप तथा चन्द्र रूप दोनों कहा है। सूर्य रूप से गोपियों की नहीं वरन् अपने समस्त भक्तों के प्रति उन्होंने अभेदरहित समभाव व्यक्त किया है और चन्द्ररूप से अनेक रूप धारण करके प्रकट न रहने का रहस्य प्रकट किया है। [कन्हा0क0233-28

1- "श्रीमद्भागवत", स्कन्ध- 2, अ0-6, श्लोक 16 और 21आदि
2- "हिन्दी साहित्य में राधा"- द्वारका प्रसाद मीतल, पृ0- 86.
3- "कल्याण अंक", वर्ष- 37, ब्रह्मवैवर्तपुराण- श्रीकृष्ण जन्म खण्ड, अ0-124, श्लोक- 99.
4- "कल्याण अंक", वर्ष-44, अग्निपुराण-गर्गसंहिता, श्रीमथुराखण्ड, अ0-15, श्लोक 34-41.

"कन्हावत" में श्रीकृष्ण के बढ़ते हुए भोग से अपच रोग के समान कंस की व्याकुलता बढ़ जाने का वर्णन "हरिवंशपुराण" में इस प्रकार है- "श्रीकृष्ण की विजय और उत्कर्ष एवं गोवर्द्धन धारण, पूतना आदि वध को सुनकर कंस को बड़ी व्याकुलता हुई। उसने अपने पिता समेत सत्यक, दारूक प्रभृति अनेक जनों को एकत्रित करके उनकी बड़ी प्रशंसा की और अपनी व्यथा कह सुनाई। उसने उनसे बिना चिकित्सा के बढ़ते हुए रोग के समान कृष्ण को समाप्त करने का आग्रह किया।"[1] मल्लयुद्ध एकोझा ही होता है, उसी का वर्णन जायसी ने किया है। "चन्दायन" में भी एकोझा युद्ध का वर्णन है। "कन्हावत" में कुब्जा के ऊपर कंस आदि का लुभा जाना कुछ विस्तार से है जो और कहीं उपलब्ध नहीं है। "कन्हावत"की "कुगन कुब्जा" श्रीमद्भागवत और गर्गसंहिता की "सैरंध्री कुब्जा" है। "कन्हावत"में अक्रूर को कंस ने पुनः कृष्ण को बुलाने भेजा जो भागवतेतर है। "कन्हावत" में श्रीकृष्ण की विजय के लिए ब्रह्मा, शंकर, गौरी आदि तैंतीस कोटि देवताओं द्वारा जगदीश से प्रार्थना करने का वर्णन है जो श्रीमद्भागवत[2] में कंस- वध के पश्चात् कंस के आठों भाइयों का बलराम जी द्वारा वध किए जाने पर उन्हीं की स्तुति के रूप में है।

जायसी ने कुछ उलट-फेर के साथ कंस-वध के पूर्व इसी का वर्णन किया है। श्रीकृष्ण को विविध रूप में देखा जाना भी "श्रीमद्भागवत"[3]में वर्णित है- "कुवलयापीड के वध के पश्चात् जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण बलराम के साथ रंगभूमि में पधारे उस समय सभाजनों ने श्रीकृष्ण को विविध भावों से देखा।"[4] "गर्गसंहिता" में भी कुवलयापीड के वध का प्रकार "कन्हावत" जैसा ही वर्णित है। "कन्हावत"

1- "हरिवंशपुराण" - पं० श्रीराम शर्मा, आचार्य, विष्णु पर्व, अ०-51, श्लोक 7-18.
2- "श्रीमद्भागवत", स्कन्ध-10, अ०-44, श्लोक 40-42.
3- "श्रीमद्भागवत", स्कन्ध-10, अ०-43, श्लोक 15-17.
4- "कल्याण अंक", वर्ष-44, श्रीगर्गपुराण- गर्गसंहिता, श्रीमथुराखण्ड, अ०- 7, श्लोक 19-31.

में आगे कंस- वध, माता-पिता को मुक्त करने और उग्रसेन को मथुरा का राज्य सौंपने की कथा भागवत जैसी ही है। पुराणों के अनुसार कृष्ण पहली बार मथुरा आते हैं और सबका विनाश करके वहीं निवास करने लगते हैं। इसी प्रकार राधा- विवाह भी कंस- वध के पहले अर्थात् मथुरा जाने से पहले और रासलीला के पूर्व होता है। परन्तु "कन्हावत" में मथुरा का कार्य गोपियों के साथ रासलीला, विवाह, चन्द्रावली से मिलन आदि साथ-साथ चलता है जो कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। कथा का क्रम न मिलने से लगता है कि जायसी ने उपर्युक्त कथा- लेखन में जनश्रुतियों और लोकप्रचलित कथाओं का ही आश्रय लिया था। [कन्हा०,क० 281-303]

"श्रीमद्भागवत" में कंस- वध के पश्चात् श्रीकृष्ण कुब्जा का मनोरथ पूर्ण करते हैं परन्तु षड्ऋतु का वर्णन नहीं है। "श्रीमद्भागवत" में श्रीकृष्ण का कुब्जा के यहाँ कुछ दिन तक और गर्गसंहिता [श्री मथुराखण्ड, अ०-9, श्लोक 48-55] के अन्तर्गत आठ दिनों तक टिके रहने का उल्लेख प्राप्त होता है। जायसी ने यह अवधि एक वर्ष की स्थापित की है। यह उनकी मौलिक उद्-भावना है। वे एक ओर संस्कृत, अपभ्रंश आदि में प्रचलित षड्ऋतु-वर्णन की प्राचीन परम्परा से प्रभावित जान पड़ते हैं, दूसरी ओर गोपियों के विरह की उत्कटता प्रदर्शित करने के लिए षड्ऋतु और बारहमासा वर्णन हेतु यह नितान्त आवश्यक था। गोपियाँ दीर्घकाल तक श्रीकृष्ण के वियोग से तो दुःखी थीं ही, कुब्जा के साथ श्रीकृष्ण का भोग सुनकर उनका संताप और भी द्विगुणित हो गया। उन्हें प्रियतम श्रीकृष्ण से मिलन की आशा बिलकुल धूमिल जान पड़ती थी क्योंकि कुरूप होती हुई भी सैरंध्री, जिसकी कुब्जा ने जब श्रीकृष्ण पर इतना जादू डाल दिया था तो गोपियों की निराशा स्वाभाविक थी। वे दैवाधीन रहकर श्रीकृष्ण का विविध रूप में स्मरण करती हुई अस्थिमात्र शेष रह गई थीं। इस प्रकार दीर्घ अवधि का वियोग और

कुब्जा के प्रति श्रीकृष्ण को निरन्तर आसक्ति दिखाकर जायसी ने शुद्ध प्रेम की व्यंजना के साथ संयोगपूर्वक वियोग का उत्कर्ष निरूपित कर प्रेम का शुद्ध रूप दर्शाने का सफल प्रयास किया है।

जायसी ने "कन्हावत" में षड्ऋतु वर्णन के माध्यम से कुब्जा के घर अनेक भोगविलासपूर्ण सामग्रियों का उल्लेख किया है। "श्रीमद्भागवत" में भी वर्णन मिलता है कि जब श्रीकृष्ण उद्धव के साथ कुब्जा के घर पधारे तो वहाँ बहुमूल्य सामग्रियाँ और श्रृंगार- रस का उद्दीपन करने वाली बहुत सी साधन-सामग्री भरी हुई थी। जायसी के पूर्व संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश में षड्ऋतु- वर्णन या बारहमासा की बड़ी समृद्ध परम्परा रही। किन्तु जायसी के बारहमासा का इस क्षेत्र में अप्रतिम स्थान है।

गोपियों द्वारा पवन के माध्यम से कृष्ण के पास संदेश भेजना जायसी की अपनी मौलिकता प्रतीत होती है। नायक द्वारा नायिका के पास सन्देश भेजने में मेघ, पवन, भ्रमर आदि का आश्रय लेकर पूर्व में भी अनेक ग्रन्थों की रचना हुई है। कालिदास का "मेघदूत" एक ऐसा ही विश्वप्रसिद्ध काव्य है। {कन्हावत, कड़वक 304-328}

"श्रीमद्भागवत" में "कन्हावत" का यह उल्लेख नहीं प्राप्त होता कि गोपियाँ श्रीकृष्ण के आमंत्रित करने पर मथुरा आयीं और अलग- अलग भवनों में रहीं। परन्तु भागवत के अनुसार -"समन्तपंचक तीर्थ कुरुक्षेत्र में ग्रहण के समय में स्नान करने के लिए आई हुई गोपियों की श्रीकृष्ण से वहीं भेंट हुई थी।"[1]

"गर्गसंहिता" में वर्णन आया है कि - "श्रीकृष्ण ने सिद्धाश्रम में गोपियों के साथ रासक्रीड़ा की थी। उन्होंने वहीं पर समस्त व्रजाङ्गनाओं के लिए

1- "श्रीमद्भागवत", स्कन्ध- 10, अध्याय-82, श्लोक 1-2,40-49.

सुखपूर्वक निवास की व्यवस्था भी की थी।[1] श्रीकृष्ण द्वारा महोत्सव कराने, ब्राह्मणों को भोजन, दान आदि देने का वर्णन श्रीमद्भागवत में उपलब्ध होता है। इसमें वेदोक्त धर्म का पालन करते हुए श्रीकृष्ण द्वारा गृहस्थोचित श्रेष्ठ धर्म का आश्रय लेकर व्यवहार करने की प्रशंसा की गई है और उन्हें सत्पुरुषों का एकमात्र आश्रय बताया गया है -

"एवं वेदोदितं धर्ममनुतिष्ठन् सतां गतिः ।
गृहं धर्मार्थकामानां मुहुश्चादर्शयत् पदम् ।।
आस्थितस्य परं धर्मं कृष्णस्य गृहमेधिनाम्।
आसन् षोडशसाहस्रं महिष्यश्च शताधिकम्।।"[2]

भगवान् श्रीकृष्ण सत्पुरुषों के एकमात्र आश्रय हैं। उन्होंने वेदोक्त धर्म का बार-बार आचरण करके लोगों को यह बात दिखला दी कि घर ही धर्म, अर्थ और काम साधन का स्थान है। इसीलिए वे गृहस्थोचित श्रेष्ठ धर्म का आश्रय लेकर व्यवहार कर रहे थे।" अत्यंत सूक्ष्म रूप में यह "ब्रह्मवैवर्त-पुराण"[3] में भी है किन्तु यह श्रीकृष्ण द्वारा बाणासुर से उषा को प्राप्त करने के पश्चात् है। कुछ इसी प्रकार का वर्णन "गर्गसंहिता"[4] में भी आया है। ये गृहस्थोचित कर्म के अन्तर्गत हैं। - [कन्हा०, क०- 329-333]

"कन्हावत" में वर्णित गोपियों द्वारा दुर्वासा- दर्शन का सम्पूर्ण प्रसंग "गर्गसंहिता"[5] में मिलता है किन्तु उसमें ऋषि द्वारा उन्हें छप्पन करोड़ पुत्र प्रदान किए जाने का वरदान नहीं है। - [कन्हा० क० 334- 345].

1- "कल्याण अंक", वर्ष-44, "अग्निपुराण- गर्गसंहिता", द्वारका खण्ड, अ०- 18, श्लोक 41- 45.
2- "श्रीमद्भागवत", स्कन्ध-10, अ०-90, श्लोक 28-29.
3- "ब्रह्मवैवर्तपुराण"- पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, अ०-105, श्लोक-79.
4- "कल्याण अंक", वर्ष- 45, "अग्निपुराण- गर्गसंहिता- नरसिंहपुराण" अश्वमेध खण्ड, अ०- 57, श्लोक 1-40.
5- "कल्याण अंक", अग्निपुराण- गर्गसंहिता, "माधुर्यखण्ड", अ०-1, श्लोक 1- 53.

विद्वानों ने गोरखनाथ और उनके शिष्य मत्स्येन्द्रनाथ के विषय में पर्याप्त गवेषणा की है जिसमें उनसे सम्बन्धित अनेक दन्तकथाओं और जन-श्रुतियों का उल्लेख किया है। महत्वपूर्ण बात यह रही है कि गोरखनाथ को प्रत्येक युग में वर्तमान बताया गया है। वे शिव के अवतार के रूप में भी आते हैं। उनकी भिड़न्त हनुमान, भीम, परशुराम, कृष्ण आदि सबसे हुई थी। "कन्हावत" में गोरखनाथ और कृष्ण का द्वन्द्व-वर्णन किसी जनश्रुति पर आधारित लगता है। जायसी इस सम्प्रदाय से बहुत प्रभावित थे। उनका "पद्मावत" और "कन्हावत" नाथ सम्प्रदाय की बहुत महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करता है। जायसी परकाया- प्रवेश जानते थे, यह जनश्रुति उन पर नाथ- सम्प्रदाय का प्रभाव सिद्ध करती है। जायसी ने "भोगी का भोग भला" और "योगी का योग भला" कहकर "कन्हावत" का समन्वयात्मक पर्यवसान किया है। - {कन्हावत, कड़वक 346- 354.}

"श्रीमद्भागवत"[1] के अनुसार नारद जी भगवान कृष्ण की गृहचर्या देखने द्वारका गए थे। उन्होंने 16 सहस्र रानियों के प्रत्येक भवन में किसी न किसी रूप में श्रीकृष्ण का दर्शन किया था। इसी बात को "कन्हावत" में कुछ परि-वर्तन के साथ एक वृद्ध ब्रह्मचारी तपस्वी के माध्यम से प्रकट किया गया है। पुरुष रूप अर्थात् अन्तर्यामी रूप से श्रीकृष्ण ही अपनी लीलामयी सृष्टि के कण- कण में विराजमान होकर लीला कर रहे हैं, सब कुछ उन्हीं की क्रीड़ा है। इस रहस्य को जायसी ने "कन्हावत" के कड़वक 273 में इस प्रकार प्रकट किया है - "पैन भर करों खेल सब खेलें।" यह उक्त रहस्य का सूत्र वचन है जिसकी व्याख्या - "पुरुष दिष्टि तुम्ह किरन पसारी। सब गोपिन्ह कहँ मिलहि मुरारी।" के माध्यम से की है। - {कन्हा०, कड़०-272 में}.

1- "श्रीमद्भागवत", स्कन्ध-10, अध्याय- 69, श्लोक 1-45.

"जहँ तहँ देखै वहुँ नहिं पासा(?)। भै गोपिन्ह के ग्रारि अवासा।।
ठाँवहिं ठाँव कन्ह सब रहैं । सबै लेहि रंग बिनु रंग बहैं ।।
जइस खेल राधी सेउँ भएउ । तइस खेल सब गोपिन्हि भएउ।।"

सोलह सहस्र गोपियों के अलग- अलग आवास होने का उल्लेख है। श्री-कृष्ण ने उन सबके साथ अलग- अलग रहकर क्रीड़ा की,जो व्यवहार में नितांत असंगत है। इसकी संगति एक ही पुरुष के द्वारा अनेक रूप धारण करने की सामर्थ्य से ही सम्भव हो सकती है। जायसी ने इसीलिए श्रीकृष्ण को सूर्य रूप कहा, क्योंकि जिस प्रकार सूर्य अपनी सहस्र किरणों के द्वारा समान रूप से सर्वत्र व्याप्त होता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण ने भी अद्भुत रूप धारण करके सोलह सहस्र गोपियों के आवास में पृथक् - पृथक् रहकर क्रीड़ा की।

भागवतकार ने भी द्वारका में सोलह सहस्र पत्नियों के आवासों में श्रीकृष्ण द्वारा एक साथ विहार करने का वर्णन किया है। उन्होंने एक ही समय में सबके साथ रहने का कारण श्रीकृष्ण द्वारा विचित्र रूप धारण करना बताया है -

"रेमे षोडशसाहस्रपत्नीनामेकवल्लभः ।
तावद्विचित्ररूपोऽसौ तद्गृहेषु महर्द्धिषु।।"[1]

"श्रीमद्भागवत" के अनुसार उद्दण्ड राजकुमारों ने ऋषियों की अपमान-जनक परीक्षा लेकर उनको शाप के लिए विवश किया था। यदुकुल के विनाश में भगवान की ऐसी ही इच्छा थी। फलस्वरूप उनका विनाश हुआ और जरा नामक बहेलिए के तीर से आहत श्रीकृष्ण स्वधाम गए। "पद्मावत" में इसी प्रसंग को भिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया गया है। इसमें बहेलिए के बाण से

1- "श्रीमद्भागवत", स्कन्ध- 10, अध्याय- 90, श्लोक- 5.

आहत श्रीकृष्ण के प्राण त्याग देने की बात कही गई है और यह भी बताया गया है कि छल करके बलि को मारने के कारण उसने ही बहेलिए के रूप में अपना दाँव चुकाया। ब बदला लेने वाली बात जनश्रुति में भी है।

भागवत के अनुसार "परमात्मा श्रीकृष्ण ने लीला से ही अपना श्री-विग्रह प्रकट किया था और लीला से ही अन्तर्धान भी कर दिया।[1]

वे सशरीर अपने धाम में चले गए।[2]

अन्त में, जायसी ने कहा है कि यह संसार असार है। यह परदेश जैसा है। अन्त में सबको यहाँ से जाना है। संसार में रहते हुए सन्मार्ग पर चलने के लिए जायसी अगुवा के पीछे चलने का सत्परामर्श देकर "कन्हावत" का समापन करते हैं। - {कन्हावत, कड़वक 355-366.}

यद्यपि हिन्दी साहित्य के विद्वान् जायसी को सूरदास जी का पूर्ववर्ती मानते हैं तथापि "कन्हावत" के अधिकांश प्रसंग और यहाँ तक कि पंक्तियाँ भी जब "सूरसागर" में ज्यों की त्यों प्राप्त हो जाती हैं तो यह सोचने पर विवश हो जाना पड़ता है कि "कन्हावत" के रचयिता ने "सूरसागर" को पढ़ा रहा होगा। जायसी ने यद्यपि "कन्हावत" में - "पढ़ेउँ सुनेउँ भागवत पुराना" लिखा है फिर भी "कन्हावत" की कथाएँ और वृत्तान्त श्रीमद्भागवत से बहुत भिन्न हैं। "सूरसागर" से "कन्हावत" के अनेक प्रसंग मिलते- जुलते हैं। उसमें भी भागवत की कुछ घटनाएँ छोड़ दी गई हैं और कुछ बढ़ा भी दी गई हैं। पुनश्च, "श्रीमद्भागवत" की श्लोक संख्या- 18000 बताई जाती है किन्तु सम्प्रति उसमें 16415 श्लोक ही हैं।

1- "श्रीमद्भागवत", स्कन्ध- 3, अ०- 4, श्लोक- 33.
2- वही, स्कन्ध-11, अ०- 31, श्लोक- 6.

सम्भव है, संशोधन, परिवर्तन, परिवर्जन के कारण लगभग 1535 श्लोक लुप्त हो गए हैं जिनमें वे प्रसंग सम्मिलित रहे होंगे जो "सूरसागर" में तो मिलते हैं पर "श्रीमद्भागवत" में नहीं प्राप्त होते।

कहीं पर भी यह प्रमाण उपलब्ध नहीं होता कि जायसी संस्कृत के विद्वान् थे या उन्होंने इसकी शिक्षा ग्रहण की थी। भागवत के सम्बन्ध में "विद्यावतां भागवते परीक्षा" यह उक्ति प्रचलित है। अतः संस्कृत के उद्भट विद्वानों की भाँति जायसी ने इसका अध्ययन किया होगा, यह सम्भावना विवादास्पद जान पड़ती है। हाँ, प्रवचनों या कथावाचकों के माध्यम से इसके अनेक आख्यानों को उन्होंने अवश्य सुना रहा होगा। लोक में कृष्ण की अनेक प्रकार की कथाएँ प्रचलित रही हैं। अधिकतर इनका वर्णन अहीरों के "बिरहा" नामक लोकगीत में होता रहा। निश्चय ही कवि ने अनेक प्रसंग इन्हीं लोकगीतों से ग्रहण किया होगा। लोकगीतों की प्राचीनता निःसंदेह भागवत की रचना से पूर्व की सिद्ध होती है। कृष्ण- कथा भी निश्चय रूप से इसके पूर्व से ही लोकगीतों में गाई जाती रही है। भागवतकार ने गोपिका-गीत शब्द के प्रयोग से इसी की ओर संकेत किया है। सम्भवतः कृष्ण- कथा स्त्रियों के गीतों में अधिक प्रचलित और सुरक्षित थी क्योंकि भागवत में यह भी दर्शाया गया है कि कृष्ण- सम्बन्धी गीत इतने मधुर और मनोहर होते थे कि उन्हें सुनने मात्र से स्त्रियों का मन बलात् उनकी ओर आकृष्ट हो जाता था। भागवतकार का कथन है -

"श्रुतमात्रोऽपि यः स्त्रीणां प्रसह्याकर्षते मनः ।
उरुगायोरुगीतो वा पश्यन्तीनां कुतः पुनः ।।"[1]

1-"श्रीमद्भागवत" स्कन्ध- 10, अध्याय- 90, श्लोक- 26.

इस प्रकार सम्पूर्ण काव्य के अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि जायसी ने किसी एक पुराण का आश्रय लेकर "कन्हावत" की रचना नहीं की क्योंकि इसके अधिकांश प्रसंग किसी एक पुराण में क्रमशः नहीं प्राप्त होते। उनके निर्माण में लोकप्रचलित आख्यानों का योगदान अपेक्षाकृत अधिक जान पड़ता है।

=======

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

कथाक्रम में अन्तर

सम्प्रति डॉ0 शिवसहाय पाठक तथा डॉ0 परमेश्वरीलाल गुप्त द्वारा सम्पादित "कन्हावत" के दो भिन्न- भिन्न संस्करण उपलब्ध हैं। पाठक जी के "कन्हावत" का आधार सर्वप्रथम चन्द्रबलीसिंह द्वारा प्रदत्त अहमदाबाद से प्राप्त 132 पृष्ठों की खण्डित हस्तलिखित प्रति है। दूसरी प्रति काशी-वासी पं0 शम्भुनाथ पाण्डेय की 82 पन्नों की पाण्डुलिपि है। इस ग्रन्थ की विस्तृत प्रति पश्चिम- जर्मनी के डॉ0 स्प्रेंगर को प्राप्त हुई। यह 266 पृष्ठों की है। डॉ0 परमेश्वरी लाल गुप्त ने अपने "कन्हावत" का सम्पादन व प्रकाशन डॉ0 स्प्रेंगर की प्रति के आधार पर ही किया है। इन्हें यह प्रति 132 पन्नों में प्राप्त हुई है। फिर भी पाठक जी के और गुप्त जी के कथा- क्रम में भेद दिखाई देता है।

पाठक जी की प्रति में 366 कड़वक उपलब्ध होते हैं। डॉ0 पाठक "कन्हावत" के प्रारम्भ में सर्वप्रथम दोहा प्रस्तुत करते हैं और इसी कड़वक के अन्त में दूसरा दोहा भी सम्मिलित करते हैं। डॉ0 गुप्त की प्रति के प्रथम कड़वक में केवल दोहा दिया गया है एवं ऊपर की सात पंक्तियों का अभाव है। डॉ0 गुप्त 4-5 कड़वकों का अनुपलब्ध होना अनुमान करते हैं। इस प्रकार डॉ0 गुप्त का प्रथम और द्वितीय कड़वक डॉ0 पाठक के प्रथम कड़वक में ही समाविष्ट हैं।

यह भी अवधेय है कि डॉ0 गुप्त सर्वत्र 7 पंक्तियों के पश्चात् दोहे का विधान मानते हैं। इसलिए इन्होंने दूसरे और तीसरे कड़वक में 7वीं पंक्ति रिक्त दिखाई है और इसी क्रम के अनुसार जहाँ छह छह पंक्तियाँ उपलब्ध हैं, वहीं 7वीं पंक्ति को रिक्त दर्शाया है। पाठक जी ने जहाँ छह पंक्तियाँ उपलब्ध थीं वहाँ 7वीं पंक्ति की रिक्ति न दिखाकर दोहे का विधान स्वीकृत किया है। उन्हें कड़वक 9, 19, 30, 109, 245 आदि में सात पंक्तियों के अनन्तर दोहे से युक्त पूर्ण छन्द मिला है। गुप्त जी ने भी उपर्युक्त कड़वकों में सातवीं पंक्ति रिक्त दिखाई है। पाठक जी को जहाँ कहीं सातवीं पंक्ति के

रिक्त होने की सम्भावना लगी है, वहाँ- वहाँ उन्होंने स्पष्ट निर्देश कर दिया है, जैसाकि कड़वक 13, 140, 219, 271, 274, 276, 294 आदि की टिप्पणियों से स्पष्ट है। इसी प्रकार 2 और 167 कड़वक में सातवीं पंक्ति के लिए स्थान रिक्त रखा है। अन्यत्र पाठक जी का कड़वक 363 स्पष्ट रूप से पूर्ण है जबकि कड़वक 359 की तीसरी, चौथी, पाँचवीं पंक्तियों को गुप्त जी ने अनुमान के आधार पर निर्मित किया है। कतिपय स्थलों पर अपवाद भी है यथा गुप्त जी ने कड़वक 62 की सातवीं पंक्ति दी है किन्तु पाठक जी की प्रति में नहीं है। इसी प्रकार गुप्त जी ने कहीं- कहीं सात पंक्तियों का कड़वक दिखाया है जो पाठक जी की प्रति में अदृश्य है। गुप्त जी के कड़वक 62, 93, 163 और पाठक जी के कड़वक 62, 95, 283 इस सन्दर्भ में तुलनीय हैं। डॉ0 गुप्त वाली "कन्हावत" में 362 कड़वक उपलब्ध हैं और प्रत्येक कड़वक के अंत में दोहा है। केवल कड़वक सं0 198 और 201 के दोहों का पाठ धूमिल हो जाने अथवा मिट जाने के कारण तथा कड़वक 359 की 3,4,5 अर्धालियों को भी अनुमान के आधार पर पुनः निर्मित किया गया है। पाठक जी की "कन्हावत" में कुल 366 कड़वक हैं, जिनके अन्त में दोहा दिया गया है। केवल कड़वक संख्या-283 का दोहा अनुपलब्ध है। इसके अतिरिक्त कड़वक सं0 5,15,104,117,118, 342, 344 के अन्त में दोहों के साथ सोरठे भी प्राप्त होते हैं। सोरठों के समावेश के सम्बन्ध में ध्यातव्य है कि ये पाठक जी को जर्मनी से प्राप्त "कन्हावत" की प्रति में नहीं मिले हैं। ये सोरठे संख्या में केवल 7 हैं जिनमें क0 सं0-5 और 104 का सोरठा केवल पं0 शम्भनाथ की प्रति में प्राप्त है, 342, 344 कड़वक का सोरठा केवल चन्द्रबली सिंह जी की प्रति में है और शेष 3 सोरठे अर्थात् कड़वक सं0 15, 117 और 118 के सोरठे उपर्युक्त दोनों प्रतियों में प्राप्त होते हैं।

"कन्हावत" के प्रारम्भ में कुछ दूर तक की कथा दोनों संस्करणों में समान है। पाठक जी के कड़वक 95 तक की कथा गुप्त जी के 93 वें कड़वक तक चलती है। पाठक जी ने कड़वक की प्रत्येक पंक्ति के अन्त में संख्या नहीं दी है, केवल दोहों का अंक दिया है जबकि गुप्त जी ने प्रत्येक पंक्ति के अन्त में अंक डाल दिया है। साथ ही दोहे की प्रथम पंक्ति को 8 और द्वितीय पंक्ति को 9 संख्या से निर्दिष्ट किया है। पाठक जी और गुप्त जी के कथा- क्रम में कड़वकों का संख्याभेद इस प्रकार है -

पाठक जी	योग	योग	गुप्त जी
क0 1- 95	95	93	क0 1- 93
क096-181	86	84	क0 196- 279
क0 182- 213	32	32	क0 164- 195
क0 214- 283	70	70	क0 94- 163
क0 284- 366	83	83	क0 280- 362
	366	362	

पाठक जी ने "कन्हावत" के प्रथम कड़वक में "झूठा गरब......सुनु संसार हो हउं .... मुँह छार ।। देकर "ताकर अस्तुति .... काहु के चहई।। आदि छः पंक्तियों के पश्चात् पुनः 'पेल बहे............औहि भरा भंडार दोहा प्रथम कड़वक में ही सम्मिलित दिखाया है। गुप्त जी ने इस कड़वक की ऊपर की 7 पंक्तियों को रिक्त दिखाकर "झूठा गरब कीन्ह" वाले दोहे को अन्त में दिखाकर प्रथम कड़वक समाप्त किया है। इन्होंने दूसरे कड़वक को "ताकर अस्तुति कीन्ह न जाई ...... वह न आस काहु के चहई।।" तक छह पंक्तियों के पश्चात् 7वीं पंक्ति रिक्त दिखाकर 'पेल बौ.......... भरा भण्डार" वाला दोहा रख दिया है। इस प्रकार पाठक जी के प्रथम

कड़वक को गुप्त जी ने दो कड़वकों में विभाजित दिखाया है। इससे गुप्त जी का एक कड़वक बढ़ जाता है। [श्री गुप्त जी का विभाजन उचित लगता है] क्योंकि "कन्हावत" के दोनों संस्करणों में आगे चलकर किसी कड़वक के आदि और अन्त में दोहे नहीं मिलते। सम्भवतः पाठक जी की दृष्टि में "झूठा गरब .... परै मुँह छार" "कन्हावत" की शीर्ष पंक्ति है जो इस काव्य की रचना में प्रेरणा बनी होगी, क्योंकि आगे 42 वें कड़वक में कवि ने स्पष्ट किया है कि कंस द्वारा गर्व करने पर परमेश्वर क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने शीघ्र ही उसके विनाश के लिए विष्णु को उत्पन्न किया। अन्त में यदुकुल संहार का भी यही कारण कहा गया है। आगे "हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता" से प्रारम्भ हुआ 14 वाँ कड़वक गुप्त जी की "कन्हा-वत" में नहीं प्राप्त होता। इस प्रकार यहाँ तक दोनों संस्करणों में 14 कड़वकों की संख्या समान हो जाती है और कड़वक 15 से 89 तक की कड़वक संख्या समान रूप से मिलती है। पाठक जी की "कन्हावत" में कड़वक संख्या 89 की 90 में पुनरावृत्ति होने से पुनः 1 कड़वक की वृद्धि हो गई। इसी प्रकार पाठक जी ने कड़वक 91 को 4 पंक्तियों का माना है और अगली दो पंक्तियों के साथ दोहा रखकर उसे 92 संख्यक पृथक् कड़वक माना है, जबकि गुप्त जी ने चार पंक्तियों के पश्चात् 5वीं पंक्ति को रिक्त दिखाकर शेष दो पंक्तियाँ और दोहे को मिलाकर एक ही कड़वक में सम्मिलित कर दिया है। इस प्रकार पाठक जी में एक और कड़वक की वृद्धि होने से कुल दो कड़वक बढ़ जाते हैं एवं पाठक जी के 95 कड़वक तक की कथा गुप्त जी के 93 कड़वक में ही पूरी हो जाती है। पाठक जी ने 129वें कड़वक में केवल चार पंक्तियाँ दी हैं। 130वें में केवल दोहा ही प्रदर्शित किया है, जबकि इसी 129 वें कड़वक को गुप्त जी ने अपने 229 वें कड़वक [?] में 4 पंक्तियों के पश्चात् 3 पंक्तियाँ रिक्त दिखाकर पाठक जी के 130 वें दोहे को भी 229 वें कड़वक में ही सम्मिलित कर लिया है। अतः पाठक जी की "कन्हावत" में एक कड़वक और बढ़ जाने से कुल तीन कड़वकों की वृद्धि हो गई। पाठक जी ने 135 वें कड़वक में भी ऐसा ही किया है। इसमें

केवल 1 पंक्ति दो है। 136 वें में 5 पंक्तियाँ और 1 दोहा दिया है। गुप्त जी ने 134 वें की प्रथम छह पंक्तियों के पश्चात् 7 वीं पंक्ति रिक्त दिखाकर और दोहा रखकर एक कड़वक बना दिया है। इसी कारण पाठक संस्करण में एक कड़वक की और वृद्धि हुई ।

इन चार कड़वकों की वृद्धि के सम्बन्ध में अवधेय है कि गुप्त जी ने कथा-प्रसंग को देखते हुए पाठक जी के उक्त खण्डित कड़वकों को एक में जोड़ दिया है। कथा- प्रवाह तथा प्रसंग आदि की दृष्टि से यह छन्दविधान किसी प्रकार बाधक नहीं हुआ है, अतः गुप्त जी का यह परिवर्तन अग्राह्य नहीं लगता।

स्थान- विपर्यय के कारण पाठक जी की वर्तमान "कन्हावत" की सम्पूर्ण कथा के पाँच खण्ड हो सकते हैं। प्रथम खण्ड कड़वक 1 से 95 तक, द्वितीय 96 से 181 तक, तृतीय 182 से 213, तक, चतुर्थ 214 से 283 तक और पंचम 284 से 366 तक। इनमें प्रथम [1 से 95] और पंचम [284 से 366] यथास्थान ठीक हैं। गुप्त जी ने भी इन्हें उपर्युक्त क्रम में ही रखा है। किन्तु पाठक जी का चतुर्थ खण्ड अर्थात् 214 से 283 प्रथम खण्ड के कड़वक 95 के क्रम में आगे होना चाहिए और तृतीय खण्ड अर्थात् 182 से 213 चतुर्थ खण्ड के अन्तिम कड़वक 283 के आगे जुड़ना चाहिए। इसी प्रकार द्वितीय खण्ड अर्थात् 96 से 181 तृतीय खण्ड अर्थात् 213 के पश्चात् रखा जाना चाहिए। इस प्रकार चतुर्थ खण्ड को द्वितीय तथा द्वितीय को चतुर्थ खण्ड के रूप में होना चाहिए।

पाठक जी के कथा- क्रम विन्यास में यदि कड़वक 95 के पश्चात् कड़वक 214 से 283 तक, पुनः 182 से 213 तक तथा 96 से 181 तक को क्रमशः रख दिया जाय तो सम्पूर्ण कथा का तारतम्य स्थापित हो जाता है। शेष 1 से 95 और 284 से 366 कड़वकों तक की कथा गुप्त जी के "कन्हावत" से मेल खाती है। मध्य के तीन भागों का क्रम- विपर्यय सम्भवतः पुस्तक नकल करते समय हो गया होगा।

कड़वक 93 से 95 तक में कन्ह तथा गोरस बेचने मथुरा जाने वाली गोपियों के मध्य परस्पर जिन चपलताओं का प्रसंग वर्णित है उसकी संगति कड़वक 214 और 215 से बैठती है। कड़वक 94 में है -

" फिर गोकुल सब गई गुयारी ।
नन्द महर सो जाइ पुकारी ।।"

यही प्रसंग आगे कड़वक 95 में भी चलता है किन्तु झींकाझोरी के उलाहने के प्रति नन्द द्वारा दोनों को प्रेमपूर्वक समझाने का प्रसंग कड़वक 215 में इस प्रकार आता है -

" रस सयँ दोउ बरे समुझाई ।
समुझि गोपिता घर- घर आई ।।

कड़वक 215 में पूर्ण होता है।

कड़वक 215 पंक्ति 4, 5, 6 में कन्ह द्वारा गोपियों के संग केलि स्थान दण्डकारण्य के मध्य जाकर सुभावनी वंशी बजाने का वर्णन है। उसी समय कड़वक 216 से 249 तक दो लक्ष सखियों के साथ राधी का मथुरा जाते समय प्रसिद्ध दानलीला, राधी द्वारा कन्ह की परीक्षा, राधी का नख - शिख वर्णन, फुलवारी- लीला, राधी- कन्ह- विवाह, विहार, चाँचर, धमारी या रास का अविरल उल्लेख है। कन्ह के इन सुख भोगों को सुनकर कंस को अपच रोग हो गया। इसी के निदान के लिए बुलाए गए शुक्र और नारद ने दीवाली के अवसर पर षड्यंत्र करके रंगभूमि में दैत्य मल्लों द्वारा कन्ह का वध करने का परामर्श दिया। कड़वक 281 में कवि ने राधी की इस सम्पूर्ण कथा के पूर्व दो घटनाओं का उल्लेख किया है - गोवर्द्धन धारण और दैत्यों द्वारा शिलावृष्टि । अतः कन्ह के जन्मादि के पश्चात् 95 कड़वक के ठीक आगे राधी की कथा उचित लगती है। यहाँ एक और कारण

भी है कि राही "कन्हावत" काव्य की नायिका है। स्वयं कन्ह कहते हैं -

" कन्ह कहा रुक्मिनि देइ रानी ।
तू मैं कोन्ह पाट परधानी [1] ।।"

राही ही रुक्मिणी देवी, पट्टमहिषी हैं। नायक कन्ह के ठीक पश्चात् नायिका राही का वर्णन काव्य में युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

कड़वक 283 में रंगभूमि में मल्लयुद्ध का उपक्रम कड़वक 182 से 213 तक जुड़ा हुआ है। इसका प्रारम्भ कार्तिक अमावस्या पर गोपों सहित नन्द के कंस- दरबार में उत्सव मनाने के लिए जाने के वर्णन से होता है। वहीं कंस द्वारा कन्ह की कुश्ती देखने के लिए नन्द से प्रस्ताव किया जाता है। कन्ह चाणूर आदि का वध करके कंस द्वारा पारितोषिक लेकर वापस गोकुल जाते हैं।

कड़वक 205 में चन्द्रावली धाय अगस्त से चाणूर- वध करने वाले कन्ह की पहिचान कराने का निवेदन करती है। वह राही की जोड़ी है और उससे दो वर्ष छोटी भी है। इससे पूर्व कन्ह का उससे परिचय नहीं है। वह काव्य की प्रतिनायिका प्रतीत होती है। कन्ह के प्रथम दर्शन से ही वह अचेत हो जाती है और पुनः कड़वक 213 में कन्ह भी उसके नयन- सर से बिंध जाते हैं।

उसके आगे कथाक्रम पाठक जी की प्रति में उलटकर कड़वक 96 से 181 तक में रखा गया है।

"[जित] जग फूल तँबोल चढ़ावा ।
चाँद हरा चित कछु न भावा [2] ।।"

1- "कन्हावत" कड़वक 274। : शिवसहाय पाठक
2- वही, कड़वक 96। : शिवसहाय पाठक

अर्थात् संसार जिन श्रीकृष्ण की पुष्प- ताम्बूल से पूजा- अर्चना करता है उसी के चित्त को चन्द्रावली ने हर लिया। यह प्रसंग अकस्मात् बिना चन्द्रावली के पूर्व परिचय के उपस्थित हो गया है। कड़वक वस्तुतः इसकी संगति कड़वक 213 के पश्चात् ही बैठ पाती है।

जिस चन्द्रावली के नयन- सर का उपर्युक्त प्रभाव कड़वक 96 में वर्णित है उसका प्रथम परिचय पाठक संस्करण में कड़वक 205 में -

"चन्द्रावलि राहो के जोटी ।[1]
कुछ वह चाहि बरस दोइ छोटी।।"

से दिया गया है। इसी कड़वक में वह धाय अगस्त से निवेदन करती है कि वह उसे चाणूर - वध का यश पाने वाले, अत्यंत बलवान, गोकुल में गोपियों के रक्षक, मल्ल- विजेता कन्ह की पहचान करा दे। उस समय कन्ह मल्ल- युद्ध में विजयी होकर गाते- बजाते गोपों के मध्य विराजमान थे।

कड़वक 99 में अगस्त जब कन्ह से उनकी "पीर" के विषय में पूछती है तो वे बिना नाम लिए चन्द्रावली को इसका कारण बताते हैं और पहिचान बताते हैं कि वह चाणूर विजयोत्सव के समय धाय अगस्त के पीछे चल रही थी -

"दुई नारंग देखौं काछैं ।[2]
तू ओहि दूनिउ आगैं- पाछैं ।।"

कड़वक 119 में चन्द्रावली द्वारा अगस्त से "को यहि नगर धौठ अस धौटा" पूछे जाने पर वह धौराहर पर चढ़कर चाणूर- वध करने वाले कन्ह का दर्शन करने की पूर्व घटना का स्मरण दिलाकर परिचय देती है -

---

1- "कन्हावत" कड़वक 205 : सं० शिवसहाय पाठक
2- ~~वही, कड़वक 119-13 सं० शिवसहाय पाठक~~

"अहे गो कन्ह सुन रे गोपाला । जेन असुरन मारि रन जीता ।।
अहे गो जो तुँ देउहि बड़ा । अहे पुरुष सो कहँ विधि गड़ा ।।
अहे आहि जासो कर बारा । अहे देखि तुँ गा विसरारा[1] ।।"

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट है कि चन्द्रावली का कृष्ण के साथ यह दूसरी बार के मिलन का प्रसंग है ।

" जस अब कहसि बुरि संवारी । जस अब करहि कंस कर मारी[2] ।।
बड़े धोरेहर देखा जोई । स्याम सरीर मनोहर सोई[3] ।।

इसी प्रकार राधे का परिचय कड़वक 216 में दिया गया है तथा उनकी कन्ह से दानलीला के समय प्रथम भेंट दिखाई गई है। इसी के आगे वृन्दावन की फुलवारी में उनका कन्ह के साथ विवाह वर्णित है। जबकि दुबारा मिलन पूर्व के अंश कड़वक 140 में ही इस प्रकार दिखलाया गया है -

"जेहि बन होत कन्ह सौं मेरा ।
राधे ताकि चली सौं बेरा ।।"

कथा- क्रम की दृष्टि से यह बिलकुल विपरीत है ।

कड़वक 96 से 131 वाले खण्ड के कड़वक 131 में कन्ह ने कुबजा के द्वारा कंस के पास संदेश भेजा था कि -

"जोरे जासि जहँ कंस नरेसू ।
कहसि मोर पुनि एक संदेसू।।"

इस सन्देश की प्राप्ति कड़वक 284 से 366 वाले खण्ड के अन्तर्गत् कड़वक 287 में इस प्रकार वर्णित है -

"जो कछु कहन्ह कहा सो चहऊँ ।
सुने गुसाईं बिनती कहऊँ ।।

1- "कन्हावत", कड़वक 112. 5-8 : सं० शिवसहाय पाठक
2- वही, कड़वक 121. 6 : सं० शिवसहाय पाठक
3- वही, कड़वक 123. 2 : सं० शिवसहाय पाठक

इस प्रकार कड़वक 181 का सन्देश कड़वक 287 में अर्थात् 106 छन्दों के पश्चात् प्राप्त होता है और इस बीच के लम्बे अन्तराल में इस प्रसंग से बिलकुल ही असम्बद्ध प्रसंग आये हैं।

पंचम अध्याय

============

"कन्हावत" : काव्यकला

"कन्हावत" का महाकाव्यत्व -

महाकाव्य के सम्बन्ध में विचार करने वाले सर्वाधिक प्राचीनतम कवि भामह हैं जिनका समय पाँचवीं शताब्दी है। उनके अनुसार "लम्बे कथानक वाला" महान चरित्रों पर आश्रित, नाटकीय, पंचसन्धियों से युक्त, उत्कृष्ट और अलंकृत शैली में लिखित तथा जीवन के विविध रूपों और कार्यों का वर्णन करने वाला सर्गबद्ध सुखान्त काव्य ही महाकाव्य होता है।" आचार्य दण्डी और आचार्य हेमचन्द ने इस पर और अधिक विस्तार से विचार किया है। आगे चलकर आचार्य विश्वनाथ ने "साहित्य दर्पण" में इन सबका समाहार करते हुए महाकाव्य के लक्षण दिए हैं जो बहुत ही प्रसिद्ध हुए। लगभग 14 श्लोकों में महाकाव्य के लक्षण निर्धारित किए- "सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः" इत्यादि रुद्रट की महाकाव्य सम्बन्धी मान्यता उपर्युक्त सभी आचार्यों की मान्यताओं से अधिक व्यापक है। उनके अनुसार महाकाव्य का नायक द्विजकुलोत्पन्न, सर्वगुणसम्पन्न, महान वीर, विजिगीषु, शक्तिमान, नीतिज्ञ, कुशल राजा होता है और अन्त में उसी की विजय होती है। साथ ही महाकाव्य में प्रतिनायक और उसके कुल का भी वर्णन रहता है। उत्पाद्य कथानक वाले महाकाव्यों में रुद्रट के मत से प्रारम्भ में सन्नगरी- वर्णन और नायक के वंश की प्रशंसा होती है और उसमें अलौकिक और अति प्राकृतिक तत्वों का भी समावेश होता है।

पश्चिम के प्राचीन काव्यशास्त्रियों में अरस्तु ने महाकाव्य के सम्बन्ध में सबसे अधिक विचार किया है। उनके अनुसार महाकाव्य वह काव्य रूप

है जिसमें कार्यात्मक अनुकरण होता है, जो षट्पदीय छन्द हेक्सामीटर में लिखा जाता है, जिसका कथानक अन्विति युक्त और सम्पूर्ण घटना का वर्णन करने वाला होता है और जिसमें कथानक का आदि, मध्य और अन्तयुक्त जीवन्त विकास दिखाया जाता है जिससे वह जीवित प्राणी की तरह पूर्ण इकाई प्रतीत हो।

आधुनिक युग के पाश्चात्य आलोचकों ने महाकाव्य की परिभाषा को अधिक व्यापक बनाने का प्रयत्न किया। अंग्रेजी के प्रसिद्ध आलोचक एबर क्रॉम्बी का कहना है कि बड़े आकार के कारण ही कोई काव्य महाकाव्य नहीं बन जाता । जब उसकी शैली महाकाव्य की शैली होगी तभी उसे महाकाव्य होने का गौरव प्रदान किया जायेगा। इस शैली के काव्य हमें एक ऐसे लोक में पहुँचा देते हैं जहाँ कुछ भी महत्वहीन और असारगर्भित नहीं होता। महाकाव्य में एक पुष्ट, स्पष्ट और प्रतीकात्मक उद्देश्य होता है जो उसकी गति का आद्यान्त संचालन करता है। सी० एम० बावरा के अनुसार- "महाकाव्य वृहदाकार कथात्मक काव्यरूप है, जिसमें कुछ महत्वपूर्ण और गरिमा युक्त घटनाओं का वर्णन होता है और जिसमें कुछ चरित्रों का क्रियाशील और भयंकर कार्यों से भरे जीवन की कथा होती है । उसके पढ़ने से हमें एक विशेष प्रकार का आनन्द होता है, क्योंकि घटनाएँ और पात्र हमारे भीतर मनुष्य की महत्ता, गौरव और उपलब्धियों के प्रति आस्था उत्पन्न करते हैं।"[1] स्वच्छन्दतावाद के प्रवर्तक वाल्टेयर का तो कहना है कि "ऐसे काव्य-ग्रन्थ ही महाकाव्य नाम के अधिकारी हैं जिनमें किसी महती घटना का वर्णन होता है और जिन्हें समाज व्यवहारतः महाकाव्य मानने लगते हैं। चाहे उसकी घटना सरल हो या जटिल,चाहे एक स्थान पर घटित होने वाली हो या उस

1- डॉ० धीरेन्द्र वर्मा सम्पादित "हिन्दी साहित्य कोश", पृ०- 578.

नायक संसार भर में भटकता फिरे, चाहे उसमें एक नायक हो या अनेक, चाहे उसका नायक अभागा हो या सौभाग्यशाली, भयंकर क्रोधी हो या धर्मात्मा, चाहे वह राजा हो या सेनापति या इनमें से कुछ भी न हो, चाहे उसके दृश्य महासागर के हों या धरती के, स्वर्ग के हों या नरक के, इनसे कुछ नहीं बनता बिगड़ता। इसके बावजूद कोई मान्य महाकाव्य तब तक महाकाव्य कहा जाता रहेगा जब तक आप उनके गुणों के अनुरूप उसका कुछ और नामकरण नहीं कर देते।[1]"

"कन्हावत" महाकाव्य की कसौटी पर -

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "प्रबन्ध काव्य में मानव जीवन का एक पूर्ण दृश्य होता है। उसमें घटनाओं की सम्बन्ध शृंखला और स्वाभाविक क्रम के ठीक- ठीक निर्वाह के साथ- साथ हृदय को स्पर्श करने वाले उसे नाना भावों का रसात्मक अनुभव कराने वाले प्रसंगों का समावेश होना चाहिए। इतिवृत्त मात्र के निर्वाह से रसानुभव नहीं कराया जा सकता। उसके लिए घटनाक्रम के अन्तर्गत ऐसी वस्तुओं और व्यापारों का प्रतिबिम्बवत् चित्रण चाहिए जो श्रोता के हृदय में रसात्मक तरंगें उठाने में समर्थ हों।"[2]

"कन्हावत" में श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर परमधाम- गमन तक का समग्र चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रसंग में उनके जन्म प्रभृति समस्त घट- नाओं का सहज एवं शृंखलाबद्ध निर्वाह भी किया गया है। इसके प्रत्येक स्थल

1- डॉ० धीरेन्द्र वर्मा सम्पादित "हिन्दी साहित्य कोश", पृ- 578. में डॉ० पारसनाथ तिवारी का निबन्ध "महाकाव्य"
2- "जायसी ग्रन्थावली" : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, भूमिका, पृ- 55.

अत्यंत मनोरम और सरस हैं। उनमें ज्ञान की अपेक्षा रसवत्ता प्रमुख है। भागवत आदि पुराणों में उनकी लीलाओं के वर्णन के माध्यम से आत्मज्ञान द्वारा परमपुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति का महदुद्देश्य स्थापित किया गया है किन्तु "कन्हावत" में इस पौराणिक आख्यान को जनभाषा की सहज कान्तासंमित शैली में प्रेम- रहस्य के प्रकाशन द्वारा सच्चे मानव के चित्रण हेतु यथार्थ के धरातल पर अवतरित कर दिया गया है। इसमें असुर- वध, नागनाथन, दानलीला, राधा- चन्द्रावली- प्रेम- प्रसंग, मल्लयुद्ध, कुब्जा पर अनुग्रह, कंस- वध, विरह, नदी विहार, रास, धर्माचरण, दुर्वासा अन्नग्रहण, योग- भोग का समन्वय, संसार की अनित्यता आदि अनेक मार्मिक स्थलों का चित्रण है। अतः इस प्रबन्धकाव्य को महाकाव्य की कोटि में रखा जा सकता है किन्तु एक अभाव खटकता है। सारी विशेषताएं होते हुए इसमें शैली की वह महनीयता नहीं है जो कवि के अन्य काव्य "पद्मावत" में है। "कन्हावत" का अनुशीलन करने वाले विद्वानों ने उसका रचनाकाल "पद्मावत" के लगभग एक वर्ष बाद माना है किन्तु शैली और अभिव्यक्ति की प्रौढ़ता की दृष्टि से यह उससे काफी पीछे है। अतः इसे मुक्त कण्ठ से महाकाव्य स्वीकार करने में कुछ संकोच होता है।

कथावस्तु का संयोजन -

"कन्हावत" नायक कन्ह के नाम पर आधारित श्रीकृष्ण का आद्यन्त चरित है। नाम, गुण, रूप के अनुसार हरि अर्थात् कृष्ण अनन्त हैं तथा उनकी कथा भी अनन्त है। विष्णु, पद्म, शिव, अग्निपुराण, महाभारत, श्री हरिवंशपुराण तथा भागवत में वेदव्यास ने उनके चरित का सहस्रधा वर्णन किया है जिसमें योग- भोग, तप- शृंगार, धर्म- कर्म, सत्य व्यवहार

के अनेक आख्यान हैं -

"हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता ।
गावहिं वेद, भागवत, संता ।।
विष्नु, पदुम, सिउ, अग्नि पुराना ।
भारथ सिरि हरिबंस बखाना ।।
x x x x
जोग, भोग, तप और सिंगारु ।
धरम, करम, सत के बेवहारु ।।
x x x
सुमिरौं वेद बिआस क बरना ।
जिन्ह हरि चरित सहस्सर बरना ।।[1]

इनमें कवि ने अपनी इष्ट प्रतिपाद्य जैसी प्रेमकथा प्राप्त की वैसी उन्हें तुरकी, अरबी- फारसी, आदि किसी भी भाषा साहित्य में नहीं मिली। इसी अभूतपूर्व प्रेम- प्रसंग की कथा को जायसी ने काव्य रूप दिया -

तो मैं कहा अम्रित ऊँड गाऊँ । कन्ह कथा करि सबहि सुनाऊँ ।।
कथा कहौं कान्ह संजोगु । बिनु मन भा [?] जिन लोगु ।।[2]

सम्पूर्ण कथा में कृष्ण के बाल्यकाल की लीलाओं, प्रेम और युद्ध के वर्णनों तथा उत्तर जीवन के धर्माचरणों के मुख्य- मुख्य प्रसंगों का आख्यान किया गया है। कथा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि छोटे- छोटे प्रसंगों की भी सम्यक् अन्विति वर्तमान है। सभी प्रसंग परस्पर कारण रूप में उपस्थित हुए हैं- अतः उनके शृंखलाबद्ध होने में कवि की महती प्रतिभा का उत्तम योगदान प्रकट हुआ है। पौराणिक आख्यानों में तो इनका पृथक- पृथक

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक - 14
2- वही, कड़वक - 13-3-4-

वर्णन आता है किन्तु जायसी ने इन्हें कारण- माला रूप में निबद्ध कर दिया है जिससे नायक कृष्ण का महान् उज्ज्वल और उदात्त चरित प्रकाशित हो गया है। समग्र कथा में कंस- वध आधिकारिक कथा है। शेष असुर-वध, नागनाथन, दानलीला, चाणूर- वध, चन्द्रावली- प्रेम, षड्ऋतु- वर्णन, बारहमासा, दुर्वासा अन्नग्रहण, गोरख भेंट, ऋषि- याचना आदि गौण अर्थात् प्रासंगिक वृत्त हैं। ये सभी आधिकारिक कथा के साथ अद्भुत रूप से अन्वित हैं।

कड़वक 14 में "अइस प्रेम कहानी, दोसरि जग महँ नाहिं" के उद्घोष से स्पष्ट है कि जायसी का प्रतिपाद्य विषय प्रेम है, अतएव उन्होंने सम्पूर्ण काव्य में प्रेम का ही विविध रूप से वर्णन किया है जो अत्यन्त व्यापक और महान् है। यह प्रेम का आदर्श कृष्ण के विविध प्रसंगों द्वारा यथार्थ रूप ग्रहण कर सका है। आदि में बाल्यकाल के प्रसंग हैं, मध्य में राधा-प्रेम, चाणूर- वध और चन्द्रावली- प्रसंग आते हैं। इसके आगे की कथा अन्तिम भाग में है। इनमें जैसा सर्वाङ्ग समानुपातिक विकास हुआ है वह कहीं भी विशृंखल नहीं हुआ वरन् उनमें सापेक्ष अन्विति निबद्ध है।

महाकाव्य में नाटक की पाँच सन्धियों और कार्यावस्थाओं का भी सम्यक् प्रयोग अपेक्षित माना गया है। जायसी ने "पद्मावत" में इन्हें सुनियोजित किया है। "कन्हावत" में भी इनकी योजना दृष्टिगत होती है। इसकी आधिकारिक कथा कंस- वध में पर्यवसित हुई है। ऐश्वर्य के गर्व में चूर्ण कंस का अत्याचार और कालजयी होने का प्रयास इस आधिकारिक कथा का बीज है। प्रतिक्रिया स्वरूप कृष्ण- जन्म इसका बिन्दु है। बलभद्र और अक्रूर के प्रसंग पताका हैं। कुब्जा की कथा प्रकरी है।

कंस द्वारा कृष्ण- वध की चेष्टाओं में कृष्ण द्वारा पूतना- वध, काल करट वध और शिलावर्क दैत्यों को पराजय मुख्य कथा में "आरम्भ" नामक कार्यावस्था रूप मुख सन्धि है। प्रतिमुख सन्धि एवं "प्रयत्न" रूप कार्यावस्था नारद और शुक्र से परामर्श लेने में निहित है। गर्भ नामक सन्धि रूप "प्राप्त्याशा" नामक कार्यावस्था चाणूर- वध के पूर्व नन्द आदि गोपों द्वारा कृष्ण के मारे जाने की आशंका है। कुबलयापीड, मुष्टिक, जरासन्ध आदि के वध के पश्चात् कंस- वध के निश्चय रूप में "नियताप्ति" नामक कार्यावस्था और विमर्श नामक सन्धि की योजना हुई है। कंस- वध फलागम है एवं इसमें निर्वहण नामक सन्धि का प्रयोग हुआ है।

प्रतिनायक कंस के समस्त दुष्प्रयासों और प्रतिक्रियास्वरूप कृष्ण की सम्पूर्ण चेष्टाओं का फल कंस- वध में फलित होता है। अतः कंस- वध ही "कन्हावत" का कार्य है। समग्र कथा के भीतर जो अनेक प्रासंगिक वृत्त वर्णित हैं उनका परस्पर सहज और श्रृंखलाबद्ध सम्बन्ध- निर्वाह हुआ है। कथा का अविरल प्रवाह निर्विघ्न प्रवाहित है।

आधिकारिक कथा के साथ "कन्हावत" में जो प्रासंगिक वृत्त विनिवेशित हैं उनका परस्पर आगे की कथाओं से कारणात्मक सम्बन्ध स्थापित हुआ है। यह जायसी की प्रातिभचक्षु से उद्भूत उनका गुणात्मक उत्कर्ष है। प्रारम्भ में पूतना- वध, कालकरट- वध, नागनाथन, शिलावर्क दैत्यों का पराजित होकर पलायन, प्रतिनायक कंस के द्वारा नायक कृष्ण के वध- हेतु की गई चेष्टाएँ हैं। अनन्तर कृष्ण द्वारा ग्वालिनियों से बरजोरी करना, राधा तथा उनकी सखियों के साथ उन्हें दूध- दही- बेचने जाते समय रोककर

प्रणय- याचना करना कंस के लिए पराभव का विषय बन गया -

कन्ह करे जस दिन- दिन भोगू ।
लाग कंस कहँ अपचे रोगू[1] ।।

कृष्ण द्वारा प्रतिदिन ऐसा ही भोग करते रहने से कंस को अपच रोग हो गया। इस प्रकार की नित्यप्रति की घटनाओं ने उसकी नींद हराम कर दी। कृष्ण उसके लिए सिर दर्द बन गए। इसी कारण वह उनके वध के लिए कोई ठोस उपाय करने के लिए शुक्र और नारद से परामर्श करने बैठ गया। फलस्वरूप उसे मल्लयुद्ध में चाणूर आदि अतुलित योद्धाओं द्वारा एकोक्षा मल्लयुद्ध में कृष्ण को मरवाने के लिए रंगभूमि का आयोजन करना पड़ा ।

चाणूर अपार समुद्र था। उसके रक्त की एक बूँद भूमि पर गिरने से दूसरा चाणूर उत्पन्न हो जाता था -

"परहिं चानूरउ अपार समुंद्र । मेटि न जाइ परैं एक बिंदू ।।
रकत के बूँद परहिं भुईं जोई। उठि चानूरउ होइ पुनि सोई[2]।।"

कृष्ण ने उसे मल्लयुद्ध में मार डाला। सम्पूर्ण गोकुल आनन्द मग्न हो उठा। कृष्ण के शौर्यादि गुणों को सुनकर उन्हें देखने को लालायित चन्द्रावली की कथा इसी कारणात्मक परम्परा की एक अविच्छिन्न कड़ी बन गई।

पूर्वविवाहिता प्रधान महिषी राधा और पश्चात् परिणीता प्रेमिका चन्द्रावली के मध्य कलह- विवाद को कवि ने चन्द्रावली- कृष्ण प्रेम प्रसंग के भीतर समाविष्ट कर दिया है। पूर्व में कंस ने राधा और उसकी सखियों के साथ कृष्ण का प्रेम- प्रसंग सुना था। उससे पराभूत और क्रोधित होकर उसने रंगशाला में कृष्ण को मार डलवाने का विफल प्रयत्न किया

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक - 281-1-
2- वही, कड़वक - 196- 5-6-

था। उसके कारण उसके पेट का दाना न पचता था। पुनः ऐसी ही चन्द्रावली की घटना सुनकर वह व्याकुल हो गया। उसने शुक्र और नारद के कहने पर धनुर्यज्ञ का आयोजन किया और उसी में सोलह सहस्र ग्वालिनियों को बुलवाकर विवाह रचाने का उपाय किया।

इस प्रकार राधा और चन्द्रावली के प्रेमप्रसंग द्वारा कंस जैसे- जैसे क्रोधित होता गया वैसे- वैसे उसने रंगशाला और धनुर्यज्ञ के कुचक्र भी रचे। जायसी ने रंगशाला में ही चाणूर, मुष्टिक, कंस आदि के वध की श्रीमद्भागवत की एकत्र घटना को दो प्रेमिकाओं के प्रेमप्रसंगों द्वारा दो भिन्न- भिन्न घटनाओं को सृष्टि करके उन्हें परस्पर कारणात्मक रूप में समन्वित कर दिया है।

इतना ही नहीं वरन् कुब्जा के प्रति कृष्ण के प्रेम ने तो कंस का वध ही करा डाला। धनुर्यज्ञ के लिए दल- बल के साथ मधुपुर पहुँचे हुए क्रोधित कृष्ण को शान्त करने के लिए कंस ने मित्र अक्रूर की सहायता पाई। किन्तु जब उसने कृष्ण द्वारा कुब्जा को दिए गए अलौकिक रूप को देखा तथा उससे कृष्ण द्वारा प्रेषित संदेश सुना -

"छाड़ि देहि सब बँदि हमारी। हम नहिं चिंता करहिं तुम्हारी।।
नांहित हौं मधुपुर महँ आवा। पुनि पाछें होइहि पछतावा ।।
लंका दाह कीन्ह जस, तइस करब मैं आइ ।
और जो कही कहा उन्ह, सो डर कहा न जाइ।।"[1]

तो वह सहन न कर सका। संदेश ने उसकी क्रोधाग्नि को घी की भाँति उद्दीप्त करने वाला सिद्ध हुआ, जिसमें उसने स्वयं प्राणों की आहुति दे दी।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 287, 6-7 दो.

इसी प्रकार कंस- वध के पश्चात् कृष्ण के उत्तर जीवन काल की घटनाओं में भी कारणात्मक अन्विति समायोजित हुई है। कुब्जा कृष्ण के साथ भोग के कारण गोपियों का विरह और कृष्ण- मिलन एवं यमुना विहार, गृहस्थाश्रम में धर्माचरण रूप दान आदि कर्म के प्रसंग में दुर्वासा की कथा, अनासक्त रूप से गृहस्थ होकर भोग करने के यश से आकृष्ट गोरखनाथ से भेंट, दान- यश के कारण आगत एक तपस्वी द्वारा कृष्ण से एक स्त्री की याचना करना, मनोरथपूर्ति में विफल और यादवों द्वारा सताए गए तपस्वी के शाप से समग्र यदुकुल का संहार अंततः काल के परवश होने तथा लोहण्डा द्वारा ही शापवश कृष्ण का अन्त परम्परया परस्पर कारण रूप में अनुस्यूत हैं। कंस- वध के पूर्व मध्य श्रृंगारपरक घटनाओं के वर्णन सुनियोजित, मनोरंजक तथा अनुकूल विराम- स्थल भी स्थापित किए गए हैं। अनपेक्षित, अनावश्यक रसात्मकता में बाधा उत्पन्न करने वाले तथा उबाऊ प्रसंग नाम मात्र के भी नहीं हैं।

नायक -

"कन्हावत" काव्य के नायक ईश्वरावतारी श्रीकृष्ण स्वयं हैं। वाणी और मन से अतीत, अनन्त रूप, अनन्त शक्ति, निर्गुण- सगुण रूप, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान ईश्वर के गुणों का वर्णन सहस्र जिह्वाओं वाले शेषनाग भी नहीं कर सकते तो उन्हीं के अंश रूप श्रीकृष्ण में कौन से ऐसे गुण हैं जो न हों। समस्त ब्रह्माण्ड उनके गुणों का ही निदर्शन है। पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करने का महान उद्देश्य सदाचार की प्रतिष्ठा और अनाचार का विनाश सर्वप्रमुख रहा है। श्रीकृष्ण द्वारा अवतार ग्रहण करने के पीछे भी यही मुख्य धारणा रही "गोकुल आए कहौ जब बाढ़ीं।"[1] की

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 222.3.

कृष्णोक्ति से यह स्वतः सिद्ध है। अवतार- ग्रहण करने में लोक कल्याण की भावना के अतिरिक्त अन्य उद्देश्य गौण हैं। हम "पद्मावत" में प्रकाशित कृष्ण के गुणों का निरूपण करेंगे।

जायसी ने उद्भावना की है कि श्रीकृष्ण को जब विष्णु ने सोलह सहस्र पद्मिनी स्त्रियों को उनके भोग के लिए अवतरित करने का लोभ दिया, तभी वे पृथ्वी पर अवतार धारण करने को तैयार हुए।[1] यह लोभ न था वरन् श्रीकृष्ण द्वारा स्थापित आदर्श प्रेम का साधन था जिसके माध्यम से उन्होंने गृहस्थी में रहकर अनासक्त भाव से निष्काम कर्म किया और एक सच्चे मनुष्य के व्यवहारिक जीवन का प्रेमादर्श स्थापित किया। रूप के लोभी और ऐश्वर्य के गर्व में चूर कंस ने सोलह सहस्र गोपियों के साथ बलात् विवाह की अनीति अपनाई। फलस्वरूप गोपियों को अनुष्ठान में आमंत्रित करके उसने काल को आमंत्रण दिया एवं प्राणों की आहुति दे दी।

नायक में जिन महान् गुणों की कल्पना की गई है वे सब श्रीकृष्ण में श्रेष्ठ रूप में प्राप्त हैं। आचार्य विश्वनाथ कहते हैं -

"त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही ।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान्नेता ॥"[2]

अर्थात् "नायक वह है जो त्यागी, महान् कार्यों का कर्ता, कुलीन, बुद्धि- वैभव से सम्पन्न, रूप- यौवन- युक्त, उत्साही, दक्ष, लोकप्रिय, तेजस्वी, विदग्ध तथा शीलवान हो।" स्त्री- पुरुषों की त्रिविध प्रकृति

1- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक - 43.
2- "साहित्यदर्पण" : आचार्य विश्वनाथ, तृतीय परिच्छेद, श्लोक-30.

के अन्तर्गत् उत्तम तथा मध्यम प्रकृति पुरुषों को धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित, तथा धीरप्रशान्त नामक चार प्रकार के नायकों के रूप निर्दिष्ट किए गए हैं। उनमें श्रीकृष्ण धीरोदात्त प्रकृति के नायक हैं। धीरोदात्त नायक के गुणों में समय- समय पर परिवर्तन निर्दिष्ट किए जाते रहे हैं तथापि अधोलिखित गुणों में उनका परिगणन किया गया है -

अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्वः ।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः ।।[1]

अर्थात् आत्मश्लाघा की भावनाओं से रहित, क्षमाशील, अतिगंभीर, दुःख- सुख में प्रकृतिस्थ, स्वभावतः स्थिर और स्वाभिमानी किन्तु विनीत कहा गया है। "कन्हावत" के कृष्ण उपर्युक्त समस्त औदार्य गुणों से समलंकृत महाकाव्योचित नायक हैं। वे एक आदर्श प्रेमी, निष्काम कर्मी, सच्चे मानव हैं।

राधा, चन्द्रावली, कुब्जा, गोपियाँ और कंस की रानियाँ कृष्ण के प्रति उत्कृष्ट प्रेमिकाएँ हैं। इनमें राधा आदर्श भारतीय पतिव्रता नारी है और चन्द्रावली अनन्य प्रेयसी। कुब्जा कृष्ण की कृपापात्र प्रेमिका है। गोपियाँ अविच्छिन्न अनुरागवती ललनाएँ हैं। इनका यथावसर जायसी ने सम्यक् निरूपण किया है। प्रतिनायक कंस के चरित निरूपण से कृष्ण का चरित अत्यधिक उज्ज्वल बन गया है। सहनायक बलराम का भ्रातृ-प्रेम शौर्य और सहयोग का भी सुन्दर विकास हुआ है। शुक्र और नारद का "कन्हावत" में सन्निवेश आसुरी प्रवृत्ति का निरूपण है। अक्रूर की कृष्ण के प्रति भक्ति का सुन्दर चित्रण भी कृष्ण- अक्रूर- मिलन में किया गया है। पात्रों के चरित्र- चित्रण और विकास में जायसी को महान सफलता मिली है।

1- "साहित्य दर्पण" : आचार्य विश्वनाथ, तृतीय परिच्छेद, श्लोक-32.

रसाभिव्यंजना -

काव्य की आत्मा- सम्बन्धी विवाद संस्कृत के काव्यशास्त्रियों में बहुत दिनों तक चलता रहा। इसमें रसवाद की प्रतिष्ठा प्रमुख रही। इसीलिए महाकाव्य में श्रृंगार, वीर और शान्त रसों में से एक को आवश्यक माना गया है। अन्य सभी रस प्रसंगतः गौण रूप में उपस्थित होते हैं। "कन्हावत" में श्रृंगार रस ही प्रधान है क्योंकि प्रेमकथा का वर्णन ही कवि को अभीष्ट है। काव्य के अन्त में करुण रस एवं शान्त रस की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। यदि "पद्मावत" का लक्ष्य लौकिक प्रेम पंथ के माध्यम से अलौकिक प्रेमपंथ का निरूपण है तो "कन्हावत" में आध्यात्मिक प्रेम की लोकजीवन में मधुर अभिव्यक्ति हुई है। श्रीकृष्ण सूर्य के प्रकाश की भाँति अपने प्रेम पीयूष की सर्वतः वृष्टि करते हैं। अतः उनका प्रेम भी बहुरंगी है। यह प्रेम राधा, चन्द्रावली, गोपियों, कुब्जा और कंस की रानियों में श्रृंगारपरक है तो माता-पिता में वात्सल्यपरक, बलराम आदि गोपों में भ्रातृत्वनिष्ठ और अक्रूर में भक्तिजन्य है। कड़वक 361 और 362 में कृष्ण द्वारा संसार त्यागने के कथन पर करुण- रस की अभिव्यक्ति हुई है। 363-64 में जगत की असारता का विवेचन होने से निर्वेद ही प्रकट हुआ है जिसकी परिणति शान्त रस में हुई है।

कथा का आरम्भ कंस की झूठी गर्वोक्ति से हुआ है जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप परमेश्वर क्रोधित हो उठा और कंस- वध का कारणस्वरूप श्रीकृष्ण का अवतार हुआ -

> [कंस] जो गरब कीन्ह मन झूठा । अपनी रिस परमेसुर रूठा ।।
> दई बेगि बिस्नु उपराजा । भा आपसु मथुरा भो राजा।।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 42.1-2

श्रीकृष्ण ने अपने प्रेम- प्रसार द्वारा रहस्यात्मक ढंग से सिद्ध किया कि संसार में प्रेम ही सार है। रागात्मक वृत्ति से मनुष्य सच्चा मानव होता है क्योंकि सृष्टि का कारण भी परमात्म प्रेम ही है। अतएव श्रीकृष्ण ने सबमें समान रूप से आत्मविस्तार किया, रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किया और जीवनकाल पूर्ण होने पर अनासक्त भाव से संसार त्याग भी दिया। इस प्रकार "कन्हावत" पूर्णतः श्रृंगार प्रधान काव्य है। श्रृंगार रस के संयोग और वियोग दोनों पक्षों की समान अभिव्यक्ति हुई है। षड्ऋतु वर्णन और बारहमासा इसके सुन्दर उदाहरण हैं।

संसार क्या है? इसमें सार क्या है? असार संसार में किस रूप से जीवन व्यतीत करना चाहिए? इन्हीं तीनों प्रश्नों का समाधान काव्य में खोजा गया है। जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में प्रकट भावों का काव्य के अन्तर्गत सुन्दर चित्रण किया गया है। इसमें कृष्ण के बालकाल्य की क्रीड़ाओं, यौवन के प्रेम- प्रसंग एवं शौर्य तथा वृद्धावस्था के वैराग्य का निरूपण हुआ है। श्रृंगार और वीर रस का समन्वय राधा- चन्द्रावली आदि का कृष्ण के प्रति प्रेम और ईर्ष्यावश कंस द्वारा कृष्ण को युद्ध में मारने के प्रयास में युद्ध- वर्णन के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार काव्य में श्रृंगार, वीर, करुण और शान्त रस की क्रमशः सहज प्रभावाभिव्यक्ति मिलती है।

भाषा- शैली :-

"कन्हावत" कृष्ण- चरित्र पर आधारित काव्य है। विषय निःसंदेह महत्त्वपूर्ण है। तदनुरूप कवि ने लोकप्रिय, मधुर तथा प्रभावकारी ब्रजभाषा का भी प्रयोग किया है। संस्कृत के महाकाव्यों, अपभ्रंश के चरित- काव्यों और

मसनवी काव्यों की शैलियों के समन्वय से तथा लोक कल्याणकारी भावनाओं एवं तत्वों के समावेश से "कन्हावत" लगभग वैसी ही सार्वकालिक, सार्वभौमिक और सार्वदेशिक बन गयी है जैसी गोस्वामी तुलसीदास जी कृत "रामचरितमानस"। उदात्त तत्वों के साथ ही भाषा- शैली में भी "कन्हावत" और मानस में अद्भुत साम्य का संयोग बन गया है। दोनों की भाषा अवधी है और छन्द प्रमुखतः दोहा और चौपाई। "कन्हावत" में श्रीकृष्ण सच्चे मनुष्य के रूप में चित्रित हैं तो मानस में श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में।

दोहा, चौपाई, छन्दों के महान गुणों, तत्वों एवं विषयों के प्रकाशन की सामर्थ्य स्वयम्भू द्वारा रचित विशाल महाकाव्य "पउमचरिउ" से सिद्ध है। सोरठा भी जिसे सौराष्ट्र से व्युत्पन्न माना जाता है, आभीर गुर्जरों का अत्यन्त प्रिय छन्द रहा है। अतः जायसी ने अहीरों में प्रचलित कृष्ण कथा को उन्हीं की प्रिय वाणी में और छन्द में स्वर देना अधिक श्रेयस्कर समझा होगा। अहीरों का प्रिय विरहागान कदाचित् दोहे का ही अवतार है। कृष्ण चरित का विषय भी बहुत कुछ विरहागानों से ही उद्भूत है। जायसी स्वयं कहते हैं -

"कातिक महँ जो परत देवारी। गावहिं आहर अटके तारी।[1]
तो मैं कहा अमिय कुंड गाऊँ। कन्ह कथा करि सबहिं सुनाऊँ।"

दोहा, चौपाई तुकान्त हैं और सोरठा अतुकान्त। यद्यपि "कन्हावत" की प्र0 सं0 प्रति में सोरठे मिलते हैं और उनमें केवल उपदेशात्मक वृत्ति

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़बक 13. 2-3

अधिक है तथापि उसके प्रति जायसी का मोह प्रच्छन्न नहीं रह सका।
दोहा- चौपाई पद्धति में प्रेमाख्यान लिखे जाने की अविच्छिन्न परम्परा
रही है। सूफी प्रेमाख्यानक कवियों को इस शैली ने बहुत अधिक आकृष्ट
किया। जायसी के पूर्व ऐसी रचनाओं की भरमार रही है। अपभ्रंश का
कड़वक "कन्हावत" में कड़वक रूप में प्रस्तुत है जो चौपाई छन्द में है। प्रत्येक
कड़वक में सात अर्धालियाँ, साढ़े तीन चौपाइयाँ रखी गई हैं। कड़वक में
घत्ता रूप में दोहा छन्द का प्रयोग है।

"चौपाई - दोहा" की शैली अपभ्रंश के प्रबन्ध काव्यों में अत्यधिक
प्रचलित रही। पूर्वी प्रदेश के कवि ने अपने प्रबन्ध काव्यों में चौपाई-
दोहा से बने कड़वकों का प्रयोग किया था। दाऊद, जायसी आदि कवियों
ने इस पद्धति को ग्रहण किया है। सरहपा के यहाँ भी दोहे- चौपाई की
पद्धति मिलती है और सम्भवतः यह सबसे पुराने प्रयोगों में से एक है। जिस
प्रकार संस्कृत के समस्त शास्त्रों पुराणों का प्रिय छन्द मुख्य रूप से अनुष्टुप्
रहा, उसी प्रकार "रामचरितमानस" तक लिखे गए समस्त अवधी काव्यों में
दोहा- चौपाई का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। चौपाई तो इतनी लचीली,
मधुर और भावप्रवण है कि इसे बिरहा, आल्हा, सोहर, होली आदि अनेक
तर्जों में बदल कर गाया जाता है। इससे चौपाई की भावाभिव्यंजकता,
विभिन्न अर्थों के बोध की सामर्थ्य, लोकप्रियता, सरलता, सहजता स्वतः
सिद्ध है। "कन्हावत" में प्रयुक्त इस शैली से कृष्ण - कथा की व्यापकता और
अधिक उजागर हुई है। "पद्मावत" की शैली के विषय में डॉ० शम्भूनाथ सिंह
ने जो उद्गार प्रकट किया है वह "कन्हावत" में भी बहुत कुछ खरा उतरता
है। वे कहते हैं कि "सरल किन्तु गम्भीर, सहज किन्तु उदात्त, माधुर्यपूर्ण
किन्तु गरिमामयी शैली के प्रयोग की दृष्टि से पद्मावत हिन्दी में अपने ढंग
का विशिष्ट महाकाव्य है।[1] कान्ता सम्मित शैली में ईश्वर, जीव और सृष्टि

1- "मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य" : शिवसहाय पाठक, पृ०196.

के रहस्य, परस्पर सम्बन्ध की अपेक्षा में प्रेम का सरस निरूपण करके जायसी ठेठ अवधी में कृष्ण काव्य लिखने वाले प्रथम कवि बन गये हैं। फारसी में लिपिबद्ध प्रतियों के उपलब्ध होने से चौपाइयों और दोहों में कहीं- कहीं मात्रा- सम्बन्धी कमी- बेशी दिखाई पड़ती है। इसका कारण फारसी लिपि- जन्य पाठ- भेद है। कहीं- कहीं चौपाइयों की दो- दो अर्द्धालियाँ गायब हैं, कहीं सुपाठ्य न होने से अनुमानित पाठ रखे गए हैं और कहीं तो किन्हीं कारणवश शब्द या शब्दों का भी तिरोभाव हो गया है।

ठेठ अवधी भाषा का आश्रय कवि ने इसलिए ग्रहण किया कि उसकी उदात्त भावनाएँ जन- जन में प्रचारित व प्रसारित हों। मधुरता, बोध- गम्यता, स्वाभाविकता, चुटीलापन भी अवधी में कम नहीं है। बौद्धों ने जिस प्रकार अपने धर्म के प्रचार व प्रसार के लिए जनभाषा "पालि" को अपनाया, दादू, नानक, कबीर आदि सन्तों ने भी उपदेश के लिए जन- भाषाओं को ग्रहण किया, सूफी प्रेमाख्यानक कवियों ने अपने प्रेम- निरूपण के लिए ठेठ अवधी का आधार लिया। इसमें प्रयुक्त मुहावरे, सुभाषित, लोकोक्तियाँ, काव्य को सरस, मार्मिक, प्रभावशाली और सुन्दर तथा स्वाभाविक बनाने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई हैं। अतः भाषा- भावों को व्यक्त करने में पूर्ण समर्थ हुई है। इस भाषा की रचनाएँ साधारण जनों की भी कंठहार बन गईं। यही भाषा की परिपक्वावस्था है।

महाकाव्य सर्गबद्ध रचना मानी जाती है। किन्तु अब तक प्राप्त "कन्हावत" की प्रतियों से उसकी सर्गबद्धता का निश्चय नहीं हो पाता। "सर जार्ज ग्रियर्सन और पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सम्पादित "पद्मावत" में खण्ड- विभाजन किया हुआ है।[1] सम्पूर्ण कथा 58 खण्डों में विभाजित है। सामान्यतः मसनवियों में यदा- कदा मध्य- मध्य में सुर्खियाँ या शीर्षक

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, खण्डविभाजन, पृ०- 63.

देने की परम्परा रही है। हिन्दी सूफी काव्यों में भी यही विधान स्वीकृत रहा है। "हिन्दी के सूफी काव्यों की हस्तलिखित प्रतियों में फारसी में सुर्खियाँ दी गई हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि वे सुर्खियाँ मूल लेखकों द्वारा दी गई हैं। इन काव्यों की कथा का विभाजन खण्डों में प्राय: नहीं हुआ है।"[1] "कन्हावत" की कथा में भी प्राय: खण्ड- विभाजन नहीं है। उदाहरणस्वरूप श्री चन्द्रबली सिंह की प्रति में बारह खण्ड या सुर्खियाँ प्राप्त होती हैं जबकि पं० शोभनाथ की प्रति में आठ शीर्षक दिए गए हैं। महाकाव्य के लिए सर्गबद्धता कोई आवश्यक दृढ़ और आन्तरिक लक्षण भी नहीं है। प्राकृत और अपभ्रंश में भी बिना सर्ग- विभाजन के प्रबन्ध काव्य लिखे गए हैं। पुनश्च "कन्हावत" की सम्प्रति तीन ही प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं। भविष्य में यदि प्राचीन हस्तलिपियाँ प्राप्त हुई तो खण्ड विभाजन सम्बन्धी स्थिति और अधिक स्पष्ट हो जाएगी। सर्गबद्धता न होने पर भी "कन्हावत" की कथावस्तु का इतना दृढ़ समानुपातिक और धाराप्रवाह संयोजन है कि शीर्षकों के अभाव का आभास ही नहीं होता।

वस्तु वर्णन:-

प्रबन्ध काव्य या महाकाव्य किसी नायक के सम्पूर्ण जीवन का चित्र होता है। जीवन में उत्थान- पतन, हर्ष- विषाद, सुख- दु:ख की विविध परिस्थितियाँ उपस्थित होती हैं। अत: कवि ऐसे अवसरों पर प्रकट अनेक भावों को काव्य का विषय बनाता है। उसे युग की परिस्थितियाँ और तत्कालीन परिवेश भी प्रेरित करते हैं। कभी- कभी यह कवि-परम्पराओं और रूढ़ियों से भी आबद्ध होता है। अत: इनमें भावाभिव्यक्ति के लिए जीवन

1- "हिन्दी सूफी काव्य का समग्र अनुशीलन" : शिवसहाय पाठक, पृ०-245.

के अनेक मार्मिक प्रसंग आते हैं और रसानुकूल प्रकृति के विविध रूपों का भी विशद, काव्यमय तथा प्रभावकारी वर्णन किया जाता है।

वस्तु वर्णन के अन्तर्गत "कन्हावत" में नगर, अमराई, जलाशय, हाट, दुर्ग, बारी, फुलवारी, सैन्य- प्रदर्शन, युद्ध- प्रयाण, युद्ध, विवाह, रास, नौका- विहार, शिकार, द्यूत आदि का अत्यन्त सहज, मनोरम तथा सरस वर्णन उपलब्ध होता है। इन वर्णनों के माध्यम से जायसी ने कृष्णकालीन समाज का काव्यमय चित्र प्रस्तुत किया है। प्रत्येक वर्णन समानुपातिक विस्तारमय है, उनसे कथा- प्रवाह में तनिक भी अवरोध नहीं उत्पन्न होता वरन् वे कथा- सौन्दर्य को अभिवृद्धि करने वाले हैं एवं एक शृंखला में अनुस्यूत हैं। कथा में किसी एक प्रसंग का लोप रिक्तता ला देता है। वे काव्यमय चित्र में सजीव और जीवन्त हो उठे हैं। विलासोचित रमणीय वातावरण का एक दृश्य ब द्रष्टव्य है -

> पुहुप सुगंधि अमिय रस केली । केवरा, केतकि, कूँद, चमेली ।।
> सोन बरन रूप मंजरी । बिव- बिव जाही जूही छिरी।।
>
> * * * *
>
> देवता तरसे कतहुँ, बास होइ मझकार ।
> और फूल को बरने, बादर औ कचनार।।
>
> चहुँ दिसि दिपहि सेत रतनारे । रैनि माँझ जस दीपक बारे।
>
> * * *
>
> तेहि पर कन्ह बोलावे, चाहै कीन्ह बिलास ।
> चंप माल जिमि राही काँपे परम तरास[1] ।।"

<u>रचना का नाम -</u>

काव्य के नामकरण के सम्बन्ध में आचार्यों का विचार रहा है कि यह कवि, नायक या कथातत्व के आधार पर होना चाहिए। कवि अपने नाम परक यदि काव्य का अभिधान करता है तो सम्भवतः यश प्राप्ति

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, पृष्ठ 226- 227.

हो उसका उद्देश्य रहता है। यदि नायक या कथातत्त्व के आधार पर नाम-करण करता है तो विषयगत महत्त्व उसके समक्ष अधिक रहता है। इन दोनों में से जिसमें कवि की वृत्ति अधिक रमती है, उसी के आधार पर वह काव्य का अभिधान कर देता है। प्रथम दृष्टिपात में प्रतिपाद्य का आभास कराना किसी रचना के नामकरण का लक्ष्य होता है। यदि प्रतिपाद्य ख्यातवृत्त हुआ तो पाठक के हृदय में उससे सम्बन्ध पूर्व ज्ञान अथवा राग पुनः उद्बुद्ध और पुष्ट हो उठता है। कवि का समस्त आयास इसी भावना को जागृत करना होता है।

गार्सां द तासी ने "इस्त्वार दल लितरेत्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी" में प्रस्तुत काव्य का नाम "कनावत" दिया है। इसकी हस्तलिखित प्रति जर्मनी के डॉ० ए० स्प्रेंगर को प्राप्त हुई थी। जर्मनी वाली प्रति की पुष्पिका में लिपिक ने लिखा है :- "तमाम शुद किताब कन्हावत मिन तसनीफ़ मलिक मुहम्मद जायसी बरोज़ चहार शंबह तारीख 23 शाबान्- अल्- मुअज़्ज़म सन् 3। जुलूस साहब कुरान सानी शाहजहाँ बादशाह ग़ाज़ी मुवाफ़िक़ सन् 1067 हिजरी.... फ़िलइ..... बन्देह फ़क़ीर ज़ईफ़ हक़ीर सैयद अब्द- अल्-रहीम [अब्दुल रहीम] हुसैनी साकिन कन्नौज बखत ।

बरखुदार सआदत अत्तार राजाराम वल्द रामदत्त इसकलिया...
कौम कायथ सक्सेनह ..... मौजा कासिमपुर दाखिलह मिन आमाल, पर-गनह .... ग्राम सरकार कन्नौज नवाशतह आमद ।

"हर कि ख्वान्द दुआ तमा दारम् ।
ज़ांकि मिन बन्दह गुनहगारम् ।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, पृ- 2.

कथा का प्रारम्भ करते हुए जायसी लिखते हैं -

तो मैं कहा अम्रित खंड गाऊँ । कन्ह कथा करि सबहिं सुनाऊँ ।।[1]

कन्ह की कथा लिखने की स्पष्ट उक्ति है। काव्य के अन्त में भी कहा है:-

"मुहम्मद कवि कन्हावत गाई ।
रस भाखा कै सभैं सोनाई ।।[2]"

अतः जर्मनी वाली प्रति की पुष्पिका और रचना के कड़वक 13.3 और 366.1 से काव्य का "कन्हावत" नाम स्पष्ट है। इस प्रकार इसका समर्थन नेशनल बिब्लिओथेक जर्मनी की प्रति से भी हो जाता है।

1973 ई0 में सैयद मुजाहिद हुसैन जैदी ने पश्चिमी जर्मनी के राजकीय पुस्तकालयों में सुरक्षित उर्दू के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची में "कन्हावत" को "कुन्हावत" [KUNHAVAT] नाम दिया और कोष्ठक में तासी के अनुसार "कनावत" नाम भी रख दिया। "कुन्हावत" रोमन लिपि में "कन्हावत" भी पठनीय है।

"कनावत" शब्द भागवत[3] में प्रयुक्त "कनावदात" शब्द के समानान्तर प्रतीत होता है जिसका अर्थ है कनवत् अवदात । किन्तु उससे इसका सम्बन्ध जोड़ना क्लिष्ट कल्पना ही होगी। इसी प्रकार कनश्याम शब्द भी "कनावत" की प्रकृति से दूर ही लगता है। वी0 एस0 आप्टे के संस्कृत शब्दकोष में आवट का अर्थ "जगलर" [जादूगर] दिया हुआ है। सम्भव है "अखरावट" की तरह "कन्हावत" का मूल नाम "कन्हावट" हो जिसका अर्थ होगा कन्ह + आवट अर्थात् "कन्हैया जादूगर"। कृष्ण की जादुई वंशी के स्वर से

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 13.3
2- वही, कड़वक 366.1
3- श्रीमद्भागवत, अ0 - 16, स्कन्ध-10, श्लोक- 9.

ने समस्त प्राणिजगत को विमुग्ध कर लिया था। उनकी मोहिनी मूर्ति और अलौकिक शक्ति भी कम जादुई न थी। वंशी के अलौकिक नाद ने ही गोपियों को अपना सर्वस्व निछावर कर देने को विवश कर दिया था। भागवत की भाँति "कन्हावत" में भी जायसी ने अपनी शैली में इसका मधुर चित्रण किया है।

परमेश्वरी लाल गुप्त ने स्प्रैंगर की सूची क्रम संख्या 170। में फारसी अक्षरों में लिखित "काफ हे, नून, अलिफ, वाव और ते से संयुक्त "कन्हावत" को स्प्रैंगर द्वारा "खनावत" पढ़ा जाना भ्रम सिद्ध किया है। वे लिखते हैं - तासी ने काफ और हे को संयुक्त मानकर ख और घ पढ़ा जाना तथा अलग-अलग मानकर कह और गह पढ़ा जाना सिद्ध किया था। इसी कारण स्प्रैंगर को भी भ्रम हो गया। "कनावत" शब्द राजस्थानी प्रभाव का द्योतक है जो "कन्हावत" में कहीं नहीं दृष्टिगत होता। अतः अमान्य है। "कुन्हावत" की भी संगति "कन्हावत" के विषय से नहीं होती।

डॉ० गुप्त ने कन्ह के साथ "आवत" या "वत" जोड़कर व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने "आवत" से "आते हुए" अर्थ करके कृष्णावतार अर्थ कल्पित किया है। उन्होंने आवृत्ति का "आवत" रूप अनुमानित किया है। पुनः "वत" को वृत्त [कथा], "वत" [की सम्बन्धी] अथवा अनुकरण पर गठित शब्द मानकर अनेक अर्थों की कल्पना की है। अन्त में वे न अपनी "आवत" की व्याख्या से सन्तुष्ट हुए और न "वत" के अर्थ से ही सहमत हुए क्योंकि भाषाविज्ञान या व्याकरण सम्बन्धी अनेक जटिलताएँ आड़े आ गईं।

जायसी की अन्य अप्राप्त रचनाओं "अखरावत", "चम्पावत", "इतरावत", "मटकावत", "चित्रावत", "खखावत", "नैनावत" आदि में भी ऐसी ही समस्या उपस्थित होगी। "पद्मावत" और "कन्हावत" दोनों प्राप्त रचनाओं में एक समान प्रत्यय जुड़े हैं। "अखरावट" में अन्त्य वर्ण त का स्थान

ट ने ले लिया है। दोनों के मूल में "आवत" सम्बन्ध- प्रत्यय ही प्रतीत होता है। चन्द्रावली, अमरावती, इन्द्रावती, पद्मावती, चम्पावती, प्रभृति नारीपरक शब्दों में "वती" जुड़ा हुआ है जो चिरपरिचित शब्द हैं। प्रतापगढ़ जिले की कुण्डा तहसील के अन्तर्गत् सराय चन्द्रावत एक गाँव है। "चन्द्रावत" पुल्लिंग शब्द है और "कन्हावत" आदि की भाँति इसमें भी "आवत" जुड़ा है।

"राजस्थान के इतिहास" में कर्नल टॉड ने कुछ राजाओं की वंशावली जागीर सहित प्रस्तुत की है[1] :-

नाम	शाखा	जागीर
कांधलजी	कांधलोत	बीकानेर
मण्डलाजी	माण्डलोत	सरोदा
शक्ता जी	शक्तावत	अधीन
बालो जी	बालावत	धुनार
करन जी	करनोत	लूनावास
बीरा जी	बीरोत	अधीन
नाथ जी	नाथावत	बीकानेर
केतसी	ओत	अधीन
बीदा जी	बीदावती	बीदावती
दूदा जी	मेरतिया	मेरता
पाता जी	पत्तावत	कुम्भिवरी, बरोह, देसनोख
शेखा जी	शेखावत	आमेर

1- "राजस्थान का इतिहास" : जेम्स कर्नल टॉड, पृ- 357.

उपर्युक्त वंशावली में राजाओं के नाम से गढ़े गए शब्दों में विभिन्न नियम दिखाई पड़ते हैं। हृस्वान्त नाथ से नाथावत"आवत" जोड़कर बना है जबकि आकारान्त पाता जी से "प" को हृस्व बनाकर पत्तावत हो गया है। बोदा जी से बोदावती में "आवती" जोड़ा गया है। इसी प्रकार कुछ अन्य शब्दों में "ओत" का प्रयोग हुआ है जो वंश सम्बन्ध को ही व्यक्त करता है। ये वंश 14वीं- 15वीं शताब्दी में आवतों से पूर्व प्रतिष्ठित थे। "कन्हावत" भी उपर्युक्त शब्दों के आधार पर ही कृष्ण सम्बन्धी काव्य के लिए गढ़ लिया गया प्रतीत होता है। व्याकरण के किसी नियम से "कन्हावत" शब्द की सिद्धि सम्भव नहीं लगती।

कन्ह कोई अपरिचित नाम भी नहीं कहा जा सकता। राणा कुम्भा [सं० 1475 सन् 1419] जिसके 1600 रानियाँ बताई जाती हैं और जिसकी तुलना श्रीकृष्ण से की गई है, के दरबार में कन्हव्यास नामक एक कवि भी थे जिन्होंने "एकलिङ्ग महात्म्य"[1] लिखा था। इसी कुम्भा के वंश में कान्हा नाम के राजपूत हुए थे। "कन्हावत" में कृष्ण और गोरखनाथ भेंट के अन्तर्गत् बताया गया है कि गोरखनाथ के शिष्य परकाया प्रवेश में प्रवीण थे।

1- कुम्भा के जन्म के सम्बन्ध में भी परकाया प्रवेश के प्रभाव की किंवदन्ती है।

2- दूसरी घटना नापा सांखला द्वारा कुम्भा के शरीर में प्रवेश करके राजकीय वैभव माँगने की है।

3- एक चारण द्वारा कुम्भा से एक महारानी की याचना "कन्हावत" में एक वृद्ध तपस्वी द्वारा कृष्ण से एक स्त्री माँगने से मिलती- जुलती है।

1- "महाराणा कुम्भा" : राम वल्लभ सोमानी, पृ०- 220.

उपर्युक्त घटनाएँ काल्पनिक हैं। भागवत में नारद जी द्वारा कृष्ण से एक स्त्री माँगने का वर्णन है। कृष्ण से कुब्भा का साम्य बताने के लिए भागवत की उपर्युक्त घटना को कुब्भा में आरोपित कर दिया गया है।

एक ज्वलंत प्रश्न यह भी उठता है कि जायसी ने प्रस्तुत काव्य का नाम "कन्हावत" ही क्यों रखा जबकि श्रीकृष्ण के माधो, मुरारि, गोपाल, गोविंद कृष्ण आदि अनेक नाम प्रयुक्त हैं। सबसे प्रबल कारण तो यही ज्ञात होता है कि उन्हें जनभाषा में एक ऐसा सरस काव्य लिखना अभीष्ट था जिसका सामान्य जन आनन्द उठा सकें तथा प्रबुद्ध जनों में भी वह समान रूप से समादृत हो। शिक्षित व्यक्ति तो इसे पुराणों से पढ़ ही लेते हैं। कृष्ण- कथा का सम्पूर्ण कलेवर तो जायसी को भी पुराणों से उपलब्ध था किन्तु उन्होंने इसे जन-जातियों से ही अधिकांश रूप में ग्रहण किया। यह उनके इस कथन से ही सिद्ध है :-

"कातिक महँ जो परत देवारी । गावहिं आहर उठके तारी ।।
तौं मैं कहा अमिय छँड गाऊँ । कन्ह कथा करि सबहि सुनाऊँ।।
कथा कहौं कान्ह संजोगु । बिनु मन भा[1] जिन लोगु ।।"

अतः ऐसा प्रतीत होता है कि अहीरों के बिरहागानों आदि में प्रयुक्त कृष्ण- कथा ने उन्हें सर्वाधिक आकृष्ट किया। अहीर जाति के नन्द के घर पालित- पोषित कन्ह पर अहीरों को बहुत गर्व रहा है। इसीलिए वे अपने गीतों में उनके प्रेम सम्बन्ध को विविध रूप में गाते रहे हैं जिनमें कन्ह, कान्हा, कन्हाई नाम अत्यंत लोकप्रिय और चर्चित रहे। कवि ने भी कन्ह नाम ही वरण किया क्योंकि उन्हें जनभाषा में सामान्य जनों में प्रचलित कन्ह की विविध प्रेम कथा का जन साधारण को आस्वाद कराना लक्ष्य था

1- 'कन्हावत' : शिवसहाय पाठक, कड़वक 13. 2-4

और इसी के व्याज से प्रेम को ईश्वर की सृष्टि का रहस्य बताकर मानव-मानव में परस्पर प्रेम सम्बन्ध की आवश्यकता निरूपित करके सम्प्रदायगत समन्वय भी स्थापित करना था। उस युग और समाज में इस समन्वयवाद की चेतना ही जागृत और मुखर हो उठी थी। तुलसी ने अनेक समन्वयों के साथ शाक्त, वैष्णव, शैवादि मतों में भी समन्वय कर दिखाया। सम्राट अकबर का दीन इलाही धर्म भी इसी भावना से प्रेरित हुआ था। जायसी से पूर्व कबीर ने इसे ज्ञान की अक्खड़ वाणी में प्रस्तुत किया जो नीरसता के कारण अधिक ग्राह्य न हुआ लेकिन जायसी ने प्रेम के माध्यम से मधुर प्रेम की भाषा में इसे सुप्रतिष्ठित कर दिया।

अहीरों के विरहागान के सम्बन्ध में अनेक लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं। एक ऐसी ही कहावत में स्पष्ट किया गया है कि अहीर चाहे जितना "विष्णुपुराण" पढ़ें लेकिन वे अपने विरहागीतों में श्रीकृष्ण के प्रेम विरह का ही गान करते हैं - "कितनो अहिर बिसुन पद पढ़े, बिरहा छोड़ आन नहिं कहै।"[1] श्रीकृष्ण भी "वासुकि नाग खण्ड" में "यादव जाति अहीर" कहकर अपना परिचय देते हैं। अहीरों के लिए आभीर, ग्वाल, गोप, चरवाहा शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। दीवाली के अवसर पर कंस की प्रजा के रूप में ग्वाल-बाल राज दरबार में पहुँचकर धमारी, धमाचौकड़ी, उछल-कूद खेल करते थे। मल्लयुद्ध भी इसी का एक अंग था। कुश्ती लड़ना अहीरों का सबसे प्रिय खेल, व्यायाम या जाति का प्रतीक रहा है, जिसका जायसी ने चाणूर-वध के अवसर पर सुन्दर वर्णन किया है।[2] अहीरों की नामावली भी उनके जातिगत स्वरूप का संकेत करती हैं। अहीर श्रीकृष्ण को धनुर्भंग के अवसर पर देखकर उन्हें अहीर ही समझते हैं -

"छत्री बीर कहहिं यह बीरू। अहिर कहहिं यह आहि अहीरू।।"[3]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 182-183.
2- वही, कड़वक 190-191.
3- वही, कड़वक 291.5

इससे स्पष्ट है कि जायसी ने कृष्ण- कथा का बाह्य रूप पुराणों से भले ही ग्रहण किया हो जैसाकि कड़वक 14 में उन्होंने बताया है, तथापि अहीरों का विरहागीत भी उनका प्रेरणास्रोत अवश्य रहा होगा जिससे उन्होंने कन्ह शब्द ग्रहण किया और तत्सम्बन्धी काव्य को "कन्हावत" नाम दे दिया।

रचना का उद्देश्य -

महाकाव्य किसी नायक के जीवन की विविध सम- विषम परिस्थितियों, घटनाओं एवं चेष्टाओं का वृहत् निरूपण होता है। नायक को किसी महान उद्देश्य की प्राप्ति- हेतु संघर्ष करता हुआ चित्रित किया जाता है जिसमें लोक कल्याण ही निहित होता है। इसीलिए भारतीय आचार्यों ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से किसी एक की प्राप्ति को महाकाव्य का उद्देश्य निश्चित किया है। परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति ही मानव जीवन का चरम उद्देश्य होता है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए ही वह यावत् जीवन तत्पर और आतुर रहता है। इस चेष्टा में वह संस्कारित बनता है और अनुकरणीय महान आदर्श से मानव जीवन का भी उत्थान करता है।

काव्यों में किसी एक रस की प्रधानता तो होनी ही चाहिए साथ ही एक पुरुषार्थ की भी प्रधानता अपेक्षित होती है। अन्य पुरुषार्थों की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि केवल एक पुरुषार्थ में आसक्त व्यक्ति जघन्य कहा जाता है। सफल जीवन वही होता है जिसमें धर्म, अर्थ और काम तीनों का समुचित समन्वय हो। अर्थ साधन मात्र है। इससे सम्पन्न और धर्म से अनुप्राणित काम प्राय: काव्यों का प्रधान पुरुषार्थ रहा है। शान्त रस प्रधान काव्यों का प्रधान पुरुषार्थ मोक्ष व्यक्त किया गया है। धर्मपूर्वक अर्थ और काम की प्राप्ति को भी मोक्ष के लिए प्रशस्त माना गया है।

"कन्हावत" का प्रधान उद्देश्य काम- प्राप्ति है। कृष्ण ने सुख-भोग को शिव से ही पृथ्वी पर अवतरित होना स्वीकार किया था, ऐसा जायसी ने विचार प्रकट किया है -

"सोरह सहस गोपिता साजों। ते सब मैं तौ कहि उपराजौं।।
गेह करौं ले तोहि सम जोगू। औतरि जगत मान रस भोगू।।"[1]

परमेश्वर ने कृष्ण के लिए सोलह सहस्त्र गोपियों को अवतरित करके कृष्ण के रस भोग का प्रबन्ध किया तभी वे जग में अवतरित हुए। सम्पूर्ण काव्य में काम की ही प्रधानता है। राधा, चन्द्रावली, कुब्जा और गोपियों के साथ सुख- भोग की विविध श्रृंगारपूर्ण प्रसंगों की "कन्हावत" में भरमार है। राधा से प्रेम तथा पश्चात् विवाह के द्वारा कृष्ण को काम की प्राप्ति हो जाती है।

"कन्ह करै जस दिन- दिन भोगू । लाग कंस कहँ अपचै रोगू।।"[2]

किन्तु दिन- प्रतिदिन सोलह सहस्त्र गोपियों के साथ भोग का आनन्द लेते हुए भी कृष्ण को उसमें आसक्ति का लेशमात्र भी नहीं था, क्योंकि सारा संसार ईश्वर का खेल है। ईश्वर ने इसे अपने प्रीत्यर्थ उत्पन्न किया और काष्ठ में अग्नि की भांति उसमें प्रविष्ट होकर वह स्वयं क्रीड़ा करता रहता है। दुर्वासा द्वारा अन्नग्रहण की कथा के माध्यम से तथा कृष्ण द्वारा गोपियों को अपने विराट् स्वरूप के प्रदर्शन द्वारा यही सिद्ध किया गया है।

गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुए बताया है -

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ।।

क्योंकि हे अर्जुन। शरीर रूप यंत्र में आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमाता हुआ सब भूत- प्राणियों के हृदय में स्थित है।"[3]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 43.5-6
2- वही, कड़वक 281.1
3- श्रीमद्भगवद्गीता स्कन्ध-3, अ0-18 श्लोक-61, अ0-7 श्लोक ।।

"बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् । धर्मविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।।

और हे भरतश्रेष्ठ! मैं बलवानों का आसक्ति और कामनाओं से रहित बल अर्थात् सामर्थ्य हूँ और सब भूतों में धर्म के अनुकूल अर्थात् शास्त्र के अनुकूल काम हूँ।"[1]

चाणूर- वध के पश्चात् कंस द्वारा कृष्ण को कनकरथ तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ पारितोषिक रूप में दी गईं :-

कनक चक्र रथ बेगि मँगावा ।
दीन्ह कनुहि कहँ औरु पहिरावा[2]।।

यहाँ अर्थ- सम्पन्नता दिखाई गई है।

धर्मरूप पुरुषार्थ की प्राप्ति का दर्शन हमें कृष्ण द्वारा धर्मशाला चलाए जाने के कार्य में प्राप्त होता है। धर्मशाला में वे भूखे- दूखे तथा [illegible] सन्यासियों आदि को दान देते थे, सबका सत्कार करते थे, याचक जिस वस्तु की याचना करता था उसे वह वस्तु प्रदान करते थे। वे दिन- प्रतिदिन ईश्वर का नाम स्मरण करके उसकी भक्ति करते थे। धर्म को छोड़कर धर्मशाला में पाप का नाम न था। भक्ति देवविषयक रति ही है और वह मोक्ष प्राप्ति का साधन है। अतः भक्ति के द्वारा मोक्ष की भी प्राप्ति ध्वनित है। इस प्रकार "कन्हावत" में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों की प्राप्ति दिखाई गई है। धर्म और काम में समन्वय का अत्यन्त सुन्दर प्रयास जायसी की प्रतिभा की देन है, जब वे कहते हैं -

"पंडित पढ़हिं सासतर, जोगी पढ़हिं सो जोग[2] ।
कन्ह गुपुत तप साधै, परगट मानै भोग ।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 203.7

इस प्रकार धर्मपूर्वक काम की प्राप्ति मोक्ष के लिए प्रशस्त है। कृष्ण ने धर्मपूर्वक अर्थ की भी प्राप्ति की थी। कंस वध के पश्चात् उन्होंने कंस के पिता को बुलाकर राज्याभिषिक्त कर दिया। अतः विजय में प्राप्त राज्य को उन्होंने धर्मार्थ त्याग दिया।

"कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" कृष्ण स्वयं भगवान हैं। अतः मोक्ष उनके लिए प्राप्तव्य नहीं माना जा सकता। उनके द्वारा प्रसारित दिव्य अनुकम्पा प्रेम ही अनुग्रह रूप में सबको प्राप्त होता है, जाति, धर्म, सम्प्रदाय, ऊँच-नीच, छोटे- बड़े, गरीब- अमीर के भाव से ऊपर उठकर प्रेम के द्वारा ही मानव- मानव में ऐक्य स्थापित किया जा सकता है। यही जायसी ने काव्य के द्वारा प्रदर्शित किया और श्रीकृष्ण ने ऐसे ही आदर्श प्रेम की स्थापना की। वे गृहस्थ रहे, योग- साधना की, विषय- भोगों से अनासक्त रहे। इस प्रकार सच्चे मनुष्य बन गए। ज्ञान की दृष्टि से कृष्ण न तुर्क थे न हिन्दु। उन्होंने केवल गोपाल- गोविन्द का प्रकट वेश ही धारण किया था। इस रहस्यमय स्थिति का प्रकाशन वे चन्द्रावली से करते हैं।[1]

मानव धर्म की स्थापना में मनुष्य के अनेक उदात्त गुणों को जायसी ने श्रीकृष्ण में अनुगत दिखाया है। उनके कृष्ण प्रेम, उदारता, त्याग, सहिष्णुता, परोपकार आदि गुणों के प्रतीक हैं। इनके अतिरिक्त कवि ने काव्य के भीतर योग, भोग, तप, शृंगार, धर्म, कर्म, सत्य व्यवहार, ज्ञान भक्ति का भी निरूपण श्रीकृष्ण के माध्यम से ही किया है। अंततः श्रीकृष्ण दिव्य पुरुष से आदर्श मनुष्य सिद्ध हो जाते हैं। आदर्श मनुष्य की स्थापना ही जायसी का काव्य प्रयोजन था। वे कहते हैं -

> जोगि, ओदासी, दास, प्रेम पियाला चाखि के।
> गिरही मांझ ओदास, सांचा मानुस बनि रहा[2]।।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक - 117.

2- वही, सोरठा - 15.

यह अद्वैत वेदान्त के जीवन्मुक्त के समान प्रेम अनुप्राणित गृहस्थ का सच्चा मनुष्य होने की उदात्त कल्पना है। "योगी, उदासी, दास सभी गृहस्थी में रहते हुए प्रेम का व्यापार करकर सच्चे मानव बन जाते हैं।" यह जायसी की प्रबल धारणा है जिसे कृष्ण में आरोपित करके उन्होंने चरितार्थ कराया। जायसी थे भी सच्चे मानव क्योंकि मुसलमान होकर उन्होंने श्रीकृष्णचरित लिखकर अपने सच्चे हृदय के उद्गारों को व्यक्त कर दिया।

"कन्हावत" में रसनिष्पत्ति -

"कन्हावत" में श्रृंगार प्रधान रस है और रति उसका स्थायीभाव। जीवन में एकरसता नीरस प्रतीत होती है तथा सम-विषम परिस्थितियों में उसमें विविधता के दर्शन होते हैं। कभी हास- परिहास होता है तो कभी रुदन, कभी उत्साह तो कभी शोक, कभी क्रोध की ज्वाला भड़कती है तो कभी वत्सलता की सरसधारा प्रवाहित होती है। इसी विविधता में जीवन का स्वारस्य है क्योंकि महाकाव्य किसी नायक या नायिका के सम्पूर्ण जीवन का वृत्त चित्रण होता है, अतः स्वभावतः उसमें विविध भावों की व्यंजना हो ही जाती है। कवि अथवा नायक पुरुषार्थ चतुष्टय में से किसी एक को लक्ष्य बनाता है, अतः काव्य में किसी एक रस की प्रधानता होती है अन्य रस गौण होकर अनुगामी बनते हैं। श्रृंगार रस तो "कन्हावत" का प्रधान रस ही है यद्यपि भयानक, अद्भुत, वीर, रौद्र, करुण, वात्सल्य, शान्त, हास्य रसों को भी उसमें सुन्दर चित्रण हुआ है।

"कन्हावत" में श्रृंगार के संयोग- वियोग दोनों पक्षों का सुन्दर चित्रण हुआ है। संयोग का चित्रण राधा- प्रेम- प्रसंग के अन्तर्गत पूर्व में उपस्थित हुआ है। चन्द्रावली और कुब्जा के प्रेम इससे भिन्न प्रकार के हैं। अन्य गोपियां राधा और चन्द्रावली के साथ कृष्ण के प्रेम में निर्लिप्त रहती हैं। कंस की

रानियाँ भी कृष्ण के प्रति रहस्यमय प्रेम धारण करती हैं -

स्रवन न सुनौं तू एहि दिन, नैन न देखा काउ ।
सुनी प्रीति रहस जियँ, कन्हहिं बेगि देखाउ।।[1]

यह विभिन्नता "रति" को उत्तरोत्तर विकासावस्था के कारण सम्भव हुई है।

प्रेम प्रकार :-

प्रेमाख्यानों में वर्णित प्रेम को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम प्रकार में प्रेम विवाह के पश्चात् अत्यन्त स्वाभाविक गति से आरम्भ होता है और विषम परिस्थितियों में तप कर स्वर्ण के समान खरा उतरता है। प्रेम की ऐसी उदात्त भावना का दर्शन "रामचरितमानस" के सीता तथा राम में दिखाई देती है। यह अत्यन्त शुद्ध, निर्मल एवं सात्त्विक है। इसमें आनन्द है पर विलास नहीं, सुख है पर कामुकता नहीं। इसमें भारतीय पतिव्रता नारी के आदर्श प्रेम और सुदृढ़ दाम्पत्य जीवन के मर्यादित सुखोपभोग का अकुण्ठित चित्रण होता है जिसमें नायक का भी नायिका के प्रति एक निष्ठ प्रेम प्रतिष्ठित होता है और वह एक पत्नी व्रतधारी होता है। "पद्मावत" में प्रारम्भ में नागमती- रत्नसेन का प्रेम भी इसी प्रकार का ही रखा है।

दूसरे प्रकार का प्रेम नयनानुराग कहा जा सकता है जो गान्धर्व विवाह के प्रसंग में प्रायः देखा जाता है। इसमें न जनापवाद की चिन्ता बाधक बनती है न शील, सदाचार और कुल की मर्यादा ही, केवल अनुराग सूत्र ही युगल- प्रेमियों को दाम्पत्य सूत्र में बाँध देता है। पिता के अभिनन्दन और माता के अनुमोदन की भी अपेक्षा नहीं की जाती। बस, युगल प्रेमी अकस्मात् कहीं मिल गए, नयनानुराग उत्पन्न हो गया और

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 292.

फिर मिलन के लिए बेचैन हो उठे। प्रेम की परिणति परिणय में सम्पन्न हो गई। इसके पश्चात् कवि उनके प्रेम की चर्चा नहीं करता क्योंकि दाम्पत्य जीवन के प्रेम की अपेक्षा विवाह-पूर्व का प्रेम अत्यन्त उत्कृष्ट, सहृदय तीव्र और चित्ताकर्षक होता है। "कन्हावत" में राधा-कृष्ण का प्रेम इसी कोटि का है। राधा-कृष्ण का प्रथम मिलन मार्ग में होता है। कृष्ण दान लेने के बहाने राधा आदि गोपियों को प्रेमपूर्ण बातों में उलझा कर क्षमावतार द्वारा अपना परिचय देते हैं। वे यह भी बताते हैं कि राधा सहित सोलह सहस्र गोपियाँ उन्हीं के लिए अवतरित हैं। राधा लक्ष्मी की अवतारिणी हैं। इस प्रकार अभेद दर्शन से राधा कृष्ण का समग्र परिचय और परीक्षा लेकर आत्मसमर्पण कर देती हैं जो विवाह में परिणत हो जाता है। यहाँ [illegible] का भी उल्लेख किया गया है जो केवल कृष्णकृत है। श्रीकृष्ण राधा की प्राप्ति के लिए वैरागी बनकर चन्दन के ऊँचे वृक्ष पर चढ़कर राधा की प्रतीक्षा करते चित्रित किए गए हैं -

> "पूजे अवधि बार जो लागी । बन महँ कन्ह भएउ बैरागी।।
> अब वसन्त वहो रितु पाई । कहाँ सो रहो राधिका [राई]।।
> ऊँच बिरिख बुत चन्दन केरा। तेहि चढ़ि कन्ह बैठि सो हेरा।।"[1]

विवाह के पश्चात् राधा का वर्णन [illegible]-खण्ड में आया है। वियोग दशा के चित्रण में कवि ने समस्त गोपियों के साथ राधा का भी समन्वय कर दिया है।

तीसरे प्रकार का प्रेम राजाओं के अन्तःपुर में भोगविलास या रंग रहस्य के चित्रण में प्रकट होता है। इसमें रानियों के मान, ईर्ष्या, कलह, द्वेष, विदूषकों के हास-परिहास तथा राजाओं की स्त्रैणता आदि का ही वर्णन होता है। इसमें तनिक भी प्रयत्न नहीं होता, केवल फलभोग ही रहता है। जायसी का प्रेम अधिकांश साधनात्मक है। अतः केवल फल-भोग युक्त प्रेम का "कन्हावत" में स्थान नहीं है।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 250. 1-3

चौथे प्रकार का प्रेम वह है जो गुण- श्रवण, चित्र-दर्शन, स्वप्न-दर्शन आदि से उत्पन्न होता है। इसमें प्राप्ति के लिए प्रयत्न दोनों ओर से चित्रित किया जाता है। यह प्राय: नायिका के चित्त में ही उत्पन्न दिखाया जाता है। "पद्मावत" में हीरामन शुक द्वारा "पद्मावती" के सौन्दर्य- वर्णन से आकृष्ट रत्नसेन अपार समुद्र रूप संकटों को पार करके सिंहलद्वीप पहुँच जाता है और साध्य पद्मावती रूप परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। "कन्हावत" में बल के अपार समुद्र चाणूर को रण में पछाड़ने वाले कृष्ण का यश श्रवण करके चन्द्रावली उनके सुन्दर रूप का दर्शन करके मोहित हो जाती है। पहले चन्द्रावली पुन: कृष्ण परस्पर रूप दर्शन से मूर्च्छित हो जाते हैं। धाय अगस्त की मध्यस्थता से वाटिका में दोनों का मिलन होता है तथा वे परिणय-सूत्र में बँध जाते हैं। राधा की तरह चन्द्रावली भी कृष्ण की परीक्षा लेती है। विराट रूप दर्शन के पश्चात् ही उसे विश्वास पड़ता है कि दशावतार धारण करने वाले कृष्ण यही हैं। कृष्ण ने चन्द्रावली को भी राधा की तरह अपने लिए अवतरित गोपी बताया था और पिण्ड और ब्रह्माण्ड में अभेद निरूपण द्वारा चन्द्रावली तथा स्वयं में एकत्व स्थापित किया था।

उपर्युक्त चार प्रेम प्रकारों के अतिरिक्त [तीसरे प्रकार को छोड़कर] "कन्हावत में अन्य प्रेम प्रकार भी है जो निम्नवत् हैं :-

पाँचवें प्रकार का प्रेम "कन्हावत" में कृष्ण और गोपियों के माध्यम से प्रकट किया गया है। राधा के साथ जो सखा गोपियाँ तथा चन्द्रावली के संग भी इतनी ही गोपियाँ रहती हैं जिन्हें कृष्ण से उसी प्रकार का मिलन- सुख और प्रेम प्राप्त हुआ जैसा राधा और चन्द्रावली को मिला था। यहाँ कृष्ण के अलौकिक प्रेम का उल्लेख है जिसमें श्रीकृष्ण को ही

संसार में एक मात्र पुरुष माना जाता है, शेष जगत के प्राणियों को स्त्री। वे सूर्य की किरणों के समान अपनी कलाओं का प्रसार करके सबमें व्याप्त है, और सम्पूर्ण जगत उन्हीं में लीन है -

"धनि सो कन्त तुम्ह पुरुष अकेले । जेन भर करा खेल सब खेले ।।
सूरज बाटि तुम्ह किरन पसारी । सब गोपिन्ह कहँ मिलहिँ मुरारी।[1]

छठें प्रकार का प्रेम 292- 93 में वर्णित है। कंस की रानियाँ कृष्ण के प्रति मन में अनुराग रखती हुई कुब्जा से उन्हें दिखाने का अनुरोध करती हैं। कुब्जा के अपूर्व रूप देने वाले, सूर्य की कलाओं से परिपूर्ण अत्यंत बलवान और अत्यन्त सुन्दर रूप के गुणों का श्रवण करके रानियों के मन में कृष्ण के दर्शन की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई और जब उन्होंने कृष्ण के निर्मल और चतुर्भुज कलाओं से युक्त रूप को देखा तो वे मोह उठीं। उनके मन में यह कामना उत्पन्न हुई कि ऐसा पुरुष प्राप्त हो जाए तो मन की समस्त आशायें पूर्ण हो जाय । इस प्रकार का प्रेम परकीया नायिका का है जिसमें वासना की दुर्गन्ध है तथा यह अनुभयनिष्ठ प्रेम है। कृष्ण के मन में उनके प्रति किसी प्रकार की रति की चर्चा तक नहीं है। अतः शृंगार रस के अन्तर्गत इसे सम्मिलित नहीं किया जा सकता। केवल कंस- वध के पश्चात् कृष्ण द्वारा रनिवास ग्रहण करने का उल्लेख है ।

सातवें प्रकार का प्रेम हमें कुब्जा के प्रसंग में प्राप्त होता है। "गर्ग-संहिता"[2] के अनुसार कुब्जा पूर्वजन्म में शूर्पणखा थी । महादेव जी की कृपा से वह श्रीकृष्ण की प्रिया हुई । वह कंस की दासी थी जो प्रतिदिन चन्दन अर्पित करती थी। कृष्ण के दर्शन से वह विमुग्ध हो गई। उसने कृष्ण के मनोहर शरीर पर चन्दन चर्चित किया। प्रसन्न होकर कृष्ण ने उसे

1- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 273. 2-3

2- "कल्याण अंक", वर्ष 44, "अग्निपुराण", "गर्गसंहिता", श्रीमथुरा खण्ड, अध्याय- 11.

अत्यंत निर्मल और दिव्य रूप दिया, कुब्जा ने कृष्ण के निमित्त तप-साधना की थी। फलस्वरूप दोनों का समागम हुआ। जायसी ने कृष्ण और कुब्जा के सम्भोग सुख का षड्ऋतु- वर्णन के अन्तर्गत् मनोहारी चित्रण किया है। इस प्रकार यह प्रेम पूर्वजन्म के संस्कार से उत्पन्न प्रेम ही कहा जायगा। जायसी ने इनके विवाह की कोई चर्चा नहीं की है, तथापि वर्ष भर रति- सुख का चित्रण प्रस्तुत किया है जो षड्ऋतु- वर्णन के अन्तर्गत् श्रृंगार रस का सांगोपांग मनोरम चित्रण है।

"कन्हावत" में केवल तीसरे प्रकार का प्रेम नहीं है। भागवत आदि पुराणों में जहाँ कृष्ण के प्रेम का वर्णन आया है, वह बहुमुखी और निरंतर प्राणोन्मुखी है। उनमें प्रसिद्ध रास- वर्णन में तो परकीया नायिकाएँ भी कृष्ण के प्रति अनन्य- प्रेम व्यक्त करती हैं। वहाँ कृष्ण का परमात्मत्व ही सिद्ध है और उनके प्रति स्वकीया- परकीया का भेदरहित अनन्य भक्तिपूर्ण प्रेम प्रबल है।

"कन्हावत" में प्रेम का चित्रण :-

योगीश्वर, अनन्त सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण ने सूर्यवत् सहस्र किरणों को सोलह कलाओं से गुणान्वित करके सजीकृत सोलह सहस्र गोपियों के साथ जो आत्मरमण किया, प्रेम सुधा का सबको समान रूप से पान कराया वह एक से अनेकत्व रूप मानव- मानव में परस्पर प्रेम- सम्बन्ध से आत्मविस्तार द्वारा अनुकरणीय दिव्य झाँकी है जिसके प्रकाश में स्व-पर का अज्ञानतम मिट गया। एक के बाद एक राधा, चन्द्रावली, सहेली गोपियों और कुब्जा ने ऐसी प्रेम ज्योति प्रकाशित की कि कृष्ण के संपूर्ण जीवन-वृत्त के प्रत्येक वातायन से वह आलोक सम्पूर्ण मथुरा व गोकुल मण्डल में छा गया जिसमें कंस की रानियाँ भी उस प्रेम सुधा का पान करने को बेचैन हो उठीं। कृष्ण प्रेम पुरुषोत्तम बन गए, उनका जीवन अथ से इति

तक प्रेमकथा बन गया। उस प्रेम की विशेषता यह रही कि वह लोक-हित विमुख ऐकान्तिक प्रेम नहीं बनने पाया। उसमें वियोग के निःश्वासों के साथ लोकव्यवहार और गृहस्थी की भी चिन्ता है, तथा सम्भोग के सुख के साथ कर्तव्य का उत्साह भी है। कृष्ण-प्रेम- पगी गोपियों को रोती-बिलखती छोड़कर कंस के बुलावे पर अक्रूर के साथ मथुरा चले जाते हैं और कंस- वध के पश्चात् भी तब तक गोपियों से भेंट नहीं कर पाते जब तक उन्हें कार्य करना पड़ता है।

राधा का प्रेम सती का प्रेम था, वे विष्णु की चिरसंगिनी, ह्लादिनी शक्ति लक्ष्मी थीं जो विष्णु रूप कृष्ण के लिए पृथ्वी पर अवतरित हुईं। उन्हें अपने सतीत्व का गर्व है। अतः चन्द्रावली के साथ कृष्ण का प्रेम असहनीय हो उठता है। सपत्नी ईर्ष्यावश वे चन्द्रावली से लड़ खड़ी होती हैं। पति सेवा परायणा होना उनका विशिष्ट गुण है। चन्द्रावली से झगड़ने के कारण जब कृष्ण को उनकी स्वार्थपरता दिखाई पड़ती है तो वे राधा को फटकार देते हैं क्योंकि प्रेम एकाधिकार की वस्तु नहीं, स्वार्थ या वासना का उसमें कोई स्थान नहीं। चन्द्रावली का कृष्ण से प्रेम कुछ साधनापरक है। अतः दोनों में एक दूसरे की प्राप्ति के लिए चेष्टाएँ की जाती हैं। कुब्जा का प्रेम कृष्ण के प्रसाद का फल है। राधा और चन्द्रावली दोनों कृष्ण के विष्णु होने की परीक्षा लेती हैं। उन्हें ज्योतिषियों से ज्ञात हुआ था कि कृष्ण ही पति रूप में उन्हें प्राप्त होंगे। कृष्ण के अतिरिक्त पर पुरुष को देखना उनके सतीत्व के प्रतिकूल पड़ता था। प्राणों के मूल्य पर भी उन्हें परपुरुष वरीय नहीं था। कंस द्वारा बलात् समस्त गोपियों के साथ विवाह करने के संदेश से वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो उठती हैं। कृष्ण उन्हें रक्षा का आश्वासन देते हैं और उन्हें संकट से उबारते भी हैं। इस प्रकार कृष्ण का भी प्रेम कर्त्तव्य की आँच में तप कर खरा उतरता है। प्रेम के साथ अपने अवतार के प्रयोजन लोकमंगल की भावना का भी उन्हें ज्ञान है और उसके

प्रति निरन्तर सचेष्ट बने रहते हैं। कंस गोपियों के प्रति आसक्त नहीं था। यह केवल लोभ मात्र था कृष्ण की आकर्षणमयी गोपियों को हरणकर उन्हें आश्रय बना देने का प्रयास था। प्रेम की यहाँ तनिक भी भावना नहीं है क्योंकि प्रेम प्रेमी और प्रेमिका के हृदयों का पवित्र एवं निष्काम सम्बन्ध है। जहाँ दो हृदय परस्पर एक दूसरे को पाने के लिए तीव्रतया सचेष्ट रहते हैं। प्रेम इसीलिए व्यक्ति से होता है क्योंकि उसमें दोनों ओर से सजीवता रहती है। इसके विपरीत वस्तु के प्रति प्रेम लोभ होता है।

संयोग श्रृंगार -

जायसी ने "कन्हावत" में श्रृंगार रस के दोनों पक्षों संयोग और वियोग का सांगोपांग मार्मिक चित्रण किया है जिसमें संयोग- पक्ष के अन्तर्गत् षड्ऋतु- वर्णन और वियोग- पक्ष में बारहमासा का विशेष महत्व है। यह भी उल्लेखनीय है कि राधा के प्रेम में नायक कृष्ण की ओर से प्रथम प्रयास किया गया है जबकि चन्द्रावली के प्रेम में चन्द्रावली का प्रयत्न प्रथम है। कृष्ण के मनोज - श्याम शरीर, मोहिनी मुद्रा, सर्वांग सुन्दर आकार और महापुरुषत्व को देखकर कुब्जा के मन में उसके प्रति प्रेम का उदय होता है और वह विधाता की ऐसी सुन्दर रचना के लिए सराहना करती है।

कृष्ण उसे प्रीतिमानुकूल तथा स्वानुकूल रूप देकर हर्षित हो उठते हैं तथा हँसते हुए कुब्जा को गले लगा लेते हैं। वियोग के पश्चात् संयोग का सुख अतिशय आनन्ददायी होता है। गोपियों के विरह के पश्चात् जब संयोग- सुख की प्राप्ति हुई तो वे सूखी बेलि की भाँति लहलहा उठीं -

अब प्रसन्न सुख भयउ गुसाईं। सूखि बेलि जानहिं पलुहाईं[1]।।

कृष्ण को देखकर समस्त गोपियाँ उसी प्रकार प्रफुल्लित हो गईं जैसे फुलवारी में फूल खिल खिल गए हों। यहाँ कृष्ण आलम्बन हैं और गोपियाँ आश्रय। यमुना-तट का सुहावना वातावरण उद्दीपन विभाव है। कृष्ण को देखकर हर्षित होना अनु

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 330.2

है तथा हर्षोल्लास में नाव पर चढ़ने को उतावली में गिर- गिर पड़ना संचारी भाव है। इस प्रकार गोपियों में उत्पन्न रति स्थायीभाव से पुष्ट होकर श्रृंगार रस को अभिव्यक्ति हुई है। कृष्ण गोपियों को रात- दिन साथ लिए हुए उनके सिर के नीचे बाँह का उपधान लगाए निरन्तर रमण करते हैं। यहाँ सोलह सहस्र गोपियों के साथ अकेले पुरुष द्वारा एक साथ सम्भोग की शंका का समाधान जायसी की यह धारणा स्पष्ट करती है कि जगत् में केवल कृष्ण ही पुरुष हैं, शेष जीव स्त्री हैं। गोपियों को अपने विराट् स्वरूप का दर्शन कराकर कृष्ण ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि संसार की सृष्टि परमात्मा के विलास हेतु हुआ। संसार की सर्जना करके वह परमात्मा उसमें प्रविष्ट हो गया। वही परमात्मा योग माया से नाना प्रकार के रूप धारण करके अकेले आनन्द लेता है -

"सो अपने रस कारन, खेल अंत सब खेल ।
होइ नानां परकारन, सब रस लेइ अकेल।।
अपने कौतुक लागि, कीन्हेसि सब जग निरन्तरा।
देखि देखि लेहु सो जागि, तहि साईं के खेल सबै।।

सृष्टिकर्ता और भोक्ता वही है। अतः न उसमें कालुष्य है और न इतनी गोपियों के साथ रमण करने में आश्चर्य हो।

राधा और उनकी सखियों के साथ कृष्ण का प्रणय सर्वप्रथम दानी वेश में उनके द्वारा दूध बेचने जाती हुई गोपियों को रोककर प्रणय-याचना में प्राप्त होता है। यहाँ राधा और उनकी सखियाँ आलम्बन हैं और कृष्ण आश्रय। आश्रय कृष्ण धूप और छाया से रहित दण्डकारण्य के मध्य रति के उद्दीपनकारी विलासोचित शैया तैयार किए हुए राधा आदि की प्रतीक्षा में पशुओं को भी मोहने वाली वंशी बजाते बैठे हैं। इसी बीच समस्त गोपियों की सौन्दर्य- शिरोमणि, चन्द्रवदनी, मृगलोचनी, केहरि- लंकिनी, कोकिल कण्ठ, हंसगामिनी पद्मिनी राधा और उनकी दो सहस्र सखियाँ जो एक- एक से अधिक सुन्दर हैं, दिखाई पड़ जाती हैं। वे इस

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, दो0 सं0 117.

प्रकार रूप- गर्व और यौवन- मद में बाँह डुलाती चलती हैं कि देवता भी उनकी प्राप्ति के लिए लालायित हो उठते हैं। कृष्ण का भी मन उन्हें देखकर चंचल हो उठता है और वे उन्हें मार्ग में रोके बिना नहीं रहते। वे अपने मन में उत्पन्न रति का गोपन नहीं कर पाते और बर- बस प्रणय- याचना करने लगते हैं :-

कवि "भोग-भगति मन मैल न कीजै ।
रति मागै कीरति सौं दीजै ।।"[1]

कारण भी स्पष्ट बता देते हैं :-

"[तुँ] मैं देखी नारि सलोनी। देवि सरूप मदर सुठि लोनी।।"[2]

प्रेम भाव में राधा आदि को रोकना संचारीभाव के लक्षण हैं। गोपियों द्वारा कृष्ण के का राधा के प्रति प्रेम समझकर हँसना, मुस्कराना, आँचल से मुख ढँक लेना आदि भी संचारीभाव के कारण प्रकट हुआ है। राधा के मन में कृष्ण के प्रति प्रेम का उदय कुछ बाद में होता है। ज्योतिषियों की भविष्यवाणी के अनुसार वे समुद्र- मंथन करने वाले विष्णु के लिए ही अवतरित हैं। उनके अतिरिक्त परपुरुष से बातें करना वे पाप समझती हैं, चाहे प्राण ही चला जाय। कृष्ण अपने को सर्वव्यापक विष्णु का अवतार बताते हैं और अवतार का प्रयोजन कहकर राधा की याचना पर विराट् स्वरूप का दर्शन भी कराते हैं। पति को पहिचान होते ही मार्ग में अकेली भारतीय नारी की जो दशा होती है उसे जायसी की समर्थ लेखनी ने अत्यंत स्वाभाविक और सूक्ष्म रूप से ही चित्रित किया है -

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 219.7

2- वही, कड़वक 219.5

करत जो बात गरब के थोठी । मन लजानि के तरकुल दीठी ।।
घूँघट काढ़ि रही मुख झाँपी । गहि तिय लीन्ह जोन्ह मुख काँपी ।।
हौं रे दई जा कहँ सुत गढ़ी । तेहि के सेज आइ हौं चढ़ी ।।
अब कस करौं कौन चतुराई । जेहिं अछूट घर पावउँ जाई ।।[1]

रति के भूषण सात्विक भाव राधा के शरीर और मन में उमड़ पड़े। इष्ट की प्राप्ति से रति में बाधक स्वाभिमान दूर भाग निकला। सहज लज्जा ने दृष्टि को झुका दिया। मुख-चन्द्र ने घूँघट का आवरण डाल लिया। एकान्त में पति के मिल जाने और उसके स्पर्श- सुख से चन्द्रमुखी के कम्पन में जायसी ने रति के भावों का एकत्र व्यंजन किया है, वह केवल सहृदय-हृदय संवेद्य है। मुग्धा की लज्जा का इतना सरस एवं सूक्ष्म चित्रीकरण विरले कवियों में मिलता है। राधा का मुग्धा रूप इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है। जब वे सखियों से कहती हैं कि मेरा मन न जाने कैसा हो गया। न जाने प्रिय कैसा होता है। मैं तो फूल और भ्रमर में अन्तर भी नहीं जानती। मुझे तो दूध और छाछ दोनों धवल लगते हैं -

अब लहि मोर हुतो तस जीऊ । जानत नहिं उनहिं कस पीऊ ।।[2]
न जनौं कस रे फूल कस भौंरा । छाछौ थोरि दूध पुनि धौरा ।।

राधा परिचित होने पर भी कृष्ण द्वारा पकड़ ली जाने पर अचेत हो जाती है।

रूप- सौन्दर्य आकर्षण का विषय बनता है जिससे लालसा और तत्-पश्चात् वासना का उदय होता है। इसीलिए कवि श्रृंगार रस के परिपाक में आलम्बन के लिए सौन्दर्य का चित्ताकर्षक वर्णन करते हैं। नख-शिख वर्णन की परम्परा इसी भावना की कड़ी है। जायसी ने राधा के शिख से लेकर नख तक प्रत्येक अंग का मनोमुग्धकारी वर्णन किया है जो पद्मिनी जाति

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 225 [6-7]
2- वही, कड़वक 231 [3-4]

को उत्तम कोटि की नारियों के लक्षणों में ख्यात है। इस उद्दीपन विभावकारी वर्णन के अतिरिक्त कवि ने रति विलासोचित चित्रशाला का जो वर्णन किया है, वह भी अत्यंत मनोरम है। वसन्त ऋतु में चन्दन की रात-दिन शीतल छाया, चारों ओर लाल- लाल पुष्पों की छटा रात को और अधिक उद्दीप्त करती है। अनेक वाद्यों के मधुर झंकार से झंकृत और सुरम्य वातावरण को देखकर वसन्त भी लजा जाता है। गोपियों का अनुपम रूप, चित्र- विचित्र रंग- बिरंगा परिधान,अंगों को दीप्त करने वाले आभूषण, सोलहों श्रृंगार और रुन- झुन के शब्दों से एक अनुपम चित्रशाला बन जाती है। ऐसा प्रतीत होता है मानों पूरा वन टेसू के पुष्पों से सुसज्जित हो उठा हो।

जह लगि दिष्टि पसारै, देखै राता भेसु।
देखि सुरंग रंग तिन्ह कर, लाग भीग बन टेसु[1] ।।

यहाँ कवि ने अपने स्वप्निल स्वर्ग के सौन्दर्य का कल्पनात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है।

प्रेम की उपर्युक्त उद्बोधावस्था के पश्चात् जायसी ने राधा और कृष्ण द्वारा परस्पर प्राप्ति की चेष्टा रूप आकांक्षावस्था का वर्णन किया है। कृष्ण द्वारा बार- बार परिचय देने पर भी राधा तब तक विश्वास नहीं करती है जब तक कृष्ण अपना विराट स्वरूप राधा के समक्ष प्रस्तुत नहीं कर देते। राधा को पाने की कृष्ण द्वारा चेष्टा यहीं समाप्त हो जाती है। राधा कृष्ण से पुनः मिलने की शपथ लेकर चली जाती है। उनके हृदय में काम विकार उत्पन्न हो जाता है। वे चातक की भाँति "पिउ-पिउ" रटती हुई कृष्ण से मिलने के लिए बेचैन हो उठती हैं। फलस्वरूप वे पुनः सखियों समेत उसी स्थल पर जाती हैं जहाँ कृष्ण से पहले भेंट हुई थी।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 249.7

राधा और कृष्ण परस्पर फुलवारी में मिलते हैं। कृष्ण गोपियों पर चोरी से फूल तोड़ने का अपराध लगाते हैं। चोरी को लेकर परस्पर रूप प्रशंसा का क्रम प्रारम्भ होता है। इसमें राधा कृष्ण के व्यक्त और अव्यक्त गुणों का वर्णन करती हैं। वे कहती हैं कि हे कृष्ण। आप व्यक्ताव्यक्त परमात्मा रूप हैं। आप स्वर्ग हैं, मैं धरती। अतः मेरा आपका संयोग कहाँ ?

विवाह के बाद जायसी ने राधा और कृष्ण के मिलन- सुख का वर्णन किया है जिसमें चातक को स्वाती, कोकिला को वसन्त की प्राप्ति की तरह दोनों का घी में खाँड़ की तरह मिलना दर्शाया गया है -

> तइस गरउ मिलि जिय सौं जोउ। मिरुवा जइस खाँड़ मह घीऊ।।
> जनु स्वाति कन्ह चातक मिला। औ रितु लेइ बोलइ कोकिला।।[1]

मिलन-हर्ष के साथ कुम्हलाने आदि संचारी भाव से रति की उसी प्रकार उत्पत्ति दिखाई गई है जिस प्रकार जीव परमात्मा से मिलकर अनुभव करता है। यहाँ प्रेम की सिद्धावस्था का निरूपण है। इसी प्रकार का वर्णन राधा और गोपियों के साथ धमारी वर्णन में भी प्राप्त होता है।

चन्द्रावली- कृष्ण का संयोग वर्णन -

चन्द्रावली और कृष्ण के प्रेम में साधनावस्था का चित्रण जायसी ने बड़े मनोयोगपूर्वक किया है। यह रत्नसेन और पद्मावती के मध्य प्रेम जैसा है। चन्द्रावली कृष्ण के अतिशय सौन्दर्य और शौर्य के सुयश को सुनकर उन्हें देखने धौराहर पर चढ़ती है। वह धाय अगस्त के द्वारा कृष्ण की पहिचान मिलने पर कामासक्त होकर अचेत हो जाती है। उसके समक्ष कृष्ण का शुद्ध स्वर्णवत् प्रकाशमान गौर वर्ण, सुन्दर रूप, मस्तक पर मुकुट, गले में माला,

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 266- 5-6

श्रवणों में कुण्डल और कुछ- कुछ कालिमायुक्त मूँछों वाला नवयौवन जब आ जाता है तो जगत को मोहने वाला रूप उसकी आँखों में नहीं समाता। उसकी शारीरिक और मानसिक अवस्थाओं में विकार उत्पन्न हो जाता है। पुनः चन्द्रावली को देखकर कृष्ण की भी वही दशा हो जाती है। दोनों एक दूसरे के लिए दीपक और पतंगा बन जाते हैं जिसमें हृदय का दाह, अव्यक्त पीड़ा, शीतल चन्दन लेप को चीटियों के काटने जैसा अनुभव करना और प्रकट रूप में जलते चले जाना सात्विक अनुभावों का सहज दिग्दर्शन है।

कृष्ण और चन्द्रावली दोनों गुरु रूप अगस्त के मार्गदर्शन पर फुलवारी में मिलते हैं। यहाँ जायसी ने विलासानुकूल फुलवारी और चित्रशाला का चित्रण किया है। योगी रूप कृष्ण की भोग में लालसा के विषय में चन्द्रावली तथा सखियाँ शंका करती हैं। राधा की भाँति चन्द्रावली भी कृष्ण के विष्णु रूप की परीक्षा लेने के पश्चात् ही आत्मसमर्पण करती हैं। दोनों का विवाह सम्पन्न होता है। इसके पश्चात् चन्द्रावली में रतिजन्य आलस्य, खुमारी आदि का वर्णन किया गया है। यहाँ जायसी श्रृंगार रस में साधनावस्था की अपेक्षा सिद्धावस्था की ओर कम आकृष्ट रहे हैं।

कुब्जा- कृष्ण- संयोग-वर्णन :-

कुब्जा पूर्वजन्म में शूर्पणखा {रावण की भगिनी} थी जिसे महेश की कृपा से कृष्ण की प्रिया होने का वरदान प्राप्त हुआ था। वह कंस को चन्दन घिसकर देने वाली दासी बनी। वह त्रिभंगी एवं देखने में कुरूप थी। चन्दन लेकर कंस को अर्पण करने के लिए वह निकली ही थी कि अचानक कृष्ण का दर्शन होते ही उन पर मुग्ध हो गई तथा कृष्ण के मनोहर श्याम अंग पर चर्चित कर दिया। प्रत्यक्षतः कुब्जा के मन में कृष्ण के प्रति प्रेमोदय का हेतु उनका अलौकिक सौन्दर्य है जिससे अनुभावित होकर वह सराहना किए बिना नहीं रहती-

धनि सूरत, धनि मुंद्रा, धनि सो कन्ह कै देह ।
धनि गुसाईं बड़ पूरुख , जाकर अइस उरेह[1] ।।

कुब्जा कृष्ण के दिव्य रूप को चकित नेत्रों से देखती रही। फिर क्या था, कृष्ण अपनी प्रिया को पहिचान गए और हँस दिए। उसके मन में आह्लाद उत्पन्न हो गया। कृष्ण के हृदय में भी रति जागृत हुई और प्रिया को अभिलाषित स्वानुरूप सुन्दरता रूप प्रसाद प्रदान करने के लिए निकट बुला लिया ।

तूँ पुनि महि बहुते तप कीन्हा । अब तोहि रूप गुसाईं दीन्हा ।।
"तस पुरवौं हिरदै कै साधा । फलु है तन जो विरह दुःख दाधा[2] ।।"

कृष्णोक्ति से प्रकट है कि कुब्जा ने कृष्ण की प्राप्ति हेतु कठिन तप साधना की थी। अँधेरे के पश्चात् दीप- दर्शन की भाँति ही दुःख के बाद सुख में निरतिशय आनन्द प्राप्त होता है। सूखी लता की भाँति तपसाधना से दग्ध कुब्जा के तन में हरियाली छा गई।

कृष्ण ने कुब्जा को जो सुन्दर रूप प्रदान किया उससे सर्वत्र आलोक फैल गया -

"सुरुज सहस उवहिं जो, सोरह चंद दिपाहिं ।
करहिं अजोर सबै मिलि, तोहु सो पूजि न जाहिं[3] ।।"

सोलहों कलाओं से कलित किंवा सोलहों चन्द्रसमेत यदि सहस्त्र सूर्य एक साथ दीप्त हों तो भी कुब्जा की लावण्यज्योति की समानता नहीं कर सकते थे। ऐसा अनूप रूप जो कठिन साधना के पश्चात् प्रसाद रूप में उसे प्राप्त हुआ था वह न तो राधा में था, न चन्द्रावली अथवा किसी अन्य गोपी में। यहाँ तक कि इन सबके समन्वित सौन्दर्यालोक भी उस अप्रतिम आलोक के समक्ष हीन ही तो थे। राधा का लावण्य द्रष्टव्य है -

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक - 179.
2- वही, कड़वक - 180-2-3
3- वही, कड़वक - 285.

"तहि महँ एक गोपिता रावो । अधिक रूप संसार सराहीं ।
सहस करों होइ तहस दिपाईं । सबै ज्योति ओहि जोति छिपाईं ।।
नखतहिं माहँ चन्द्र वह गोपी । भई प्रगट हुत सरग अलोपी ।।"[1]

जायसी ने ऐसे कृपा- फल की उत्कृष्टता का वर्णन करके परमोत्कृष्ट कुब्जा की साधना की सिद्धि की है। सब प्रकार की ज्योतियों को धर्षित करने वाला तथा सभी रूपों को लजा देने वाला रूप तो केवल कृष्ण में ही था -

सबै जोति ओहि जोति छिपावहि । और रूप तेहि रूप लजावहि।।[2]

इस प्रकार कुब्जा की साधनावस्था के अनुरूप ही सिद्धावस्था भी सफल और परमोत्कृष्ट चित्रित हुई है।

परम रूपवान, शक्तिमान और स्नेही कृष्ण और कुब्जा का परमोत्कृष्ट प्रेम और संयोग-सुख बाद में राधा, चन्द्रावली आदि समस्त गोपियों की ईर्ष्या, विरह और स्पृहा का कारण और उसके उद्दीपन बन जाता है। कृष्ण का हँसकर कुब्जा को गले लगाना, कंस को जीतकर मधुबन में निर्विघ्न रूप से सदा प्रीति तथा भोग करने, मधुराश्वस्त वचन कहना संयोग श्रृंगार के अनुभाव रूप में वर्णित है। इनसे ध्वनित कुब्जा- कृष्ण का हर्ष व्यभिचारी भाव है। इस प्रकार संयोग श्रृंगार का सम्यक् परिपाक हो जाता है।

<u>विप्रलम्भ श्रृंगार -</u>

प्रिय- मिलन की अभाव- दशा अथवा व्यवधान- दशा में जो तीव्र वेदना उत्पन्न होती है, उसे विरह कहते हैं।[3] यह विरह या विप्रलम्भ संयोग-पश्चात् की अनुभूति है क्योंकि बिना योग के वियोग कहाँ? दोनों में सापेक्ष सम्बन्ध है। संयोग की उत्पत्ति के साथ ही प्रकृति नियमवशात् वियोग का भी जन्म

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 59. 5-7
2- वही, कड़वक 120.7
3- "खड़ी बोली कविता में विरह- वर्णन" : रामप्रसाद मिश्र, पृ0- 13.

उसी प्रकार हो जाता है जैसे मरणधर्मा के जन्म के साथ मृत्यु का। संयोग की अनुभूतियों के परिपाक से विरह अपेक्षाकृत अतिविशद, गम्भीर एवं मर्म-स्पर्शी होता है क्योंकि इसमें संवेदनशीलता इतनी गहरी होती है कि वह स्व से विकेन्द्रित होकर दृष्टिव्यापी बन जाती है। जायसी के "पद्मावत" में पद्मावती का यदि अलौकिक सौन्दर्य दृष्टिव्यापी आलोक से ज्योतित है तो नागमती की विरह- वेदना ने भी समस्त चराचर जगत को अभिभूत कर दिया है। नागमती की पीर तो अवर में भी आभासित होती है। दुःख की स्थिति में भी ऐसी ही समानता दृष्टिगत होती है। अतः संयोग की स्थिति को सुख और विरह को दुःख की स्थिति की सानिध्य में देखा जाता है। आचार्य विश्वनाथ कहते हैं - "यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीष्ट-मुपैति विप्रलम्भोऽसौ अभीष्टं नायकं नायिका वा।"[1] यहाँ भी उनका संकेत विरह में विषाद की स्थिति की ओर ही है।

प्रेम की पवित्रता, उत्तमता, अनन्यता एवं दर्शनीयता विरहावस्था में ही प्रकाशित होती है किन्तु संयोग में प्रेम का मात्र विग्रह दृष्टिगत होता है, उसकी आत्मा का दर्शन तो विरह में ही हो पाता है। लोभ, कपट, वासना आदि काम विकार विरहाग्नि में विलीन हो जाते हैं। वास्तव में प्रेम कनक है तो विरह परीक्षक निकष है। वियोग के द्वारा ही मिलन का रंग चटक बनता है। विरह की महिमा इतनी व्यापक है कि अपनी पराकाष्ठा में भी वह सुखद और दुखद दोनों प्रकार की वस्तुओं से दुःख का ही वरण करती है क्योंकि उस समय सुखद मिलन की अनुभूतियों का स्मरण भी दुःखदायी रूप में बन जाता है। इसीलिए यह मानव की सर्वाधिक व्यापक भावमयी दशा है। इसमें प्रेमी अत्यधिक अन्तर्मुखी हो

1- "साहित्य दर्पण" : विश्वनाथ , परिच्छेद - 3, श्लोक - 187.

जाता है। भावों के उत्स निरन्तर फूटते रहते हैं, आशा की किरणें सम्बल बनी हुई उसके पथ को आलोकित करती रहती हैं और प्रेम की सत्यता की परख भी होती रहती है। करुण, वात्सल्य तथा भक्ति रस में भी विरह की स्थिति अवधि, गुण, मात्रादि भेद से पृथक् स्वीकार करने से इसकी व्यापकता स्वतः सिद्ध होती है।

विरह का मूल काम मानव-हृदय ही नहीं सकल प्राणियों की सहज प्रवृत्ति, सम्पूर्ण कार्यों का प्रेरक, सृष्टि के प्रणयन एवं आकर्षण का बीज और सर्वव्यापक भाव है। नर-नारी का परस्पर प्रेम-सम्बन्ध काम का ही परिणाम है। मानव जीवन में यह रति अत्यन्त विशद तथा गहरी होती है। संयोग में इसकी स्थिति प्रमुखतः बहिर्मुखी प्रवृत्ति और इन्द्रिय-व्यापार में वेष्टित होने के कारण प्रायः एक सी ही रहती है किन्तु विरह अनेक स्थितियों, दशाओं और रूपों में सर्वाधिक व्यापक, गम्भीर, हृदयस्पर्शी, सरस और महत्वपूर्ण हो जाता है। इसीलिए कवियों ने नर-नारी की विरह-वेदना के वर्णन में अपेक्षाकृत अधिक रुचि दिखाई। इसकी अजस्र धारा प्रवाहित होती रही। संवेदात्मक विराटता इन विरह-वर्णनों का महान धर्म रहा जिसमें विरह-वेदना जड़ प्रकृति के तत्वों को भी अभिभूत किए हुई दिखाई पड़ती है।

हिन्दी में मैथिल कोकिल शृंगारी कवि विद्यापति ने अपनी पदावली में मधुर-कोमल शैली में विरहानुभूति का सर्वप्रथम पारम्परिक वर्णन प्रस्तुत किया है। इसमें आश्रय का आलम्बन बन जाना विरहजन्य आत्मविस्मृति दशा की सुन्दर और मार्मिक अभिव्यक्ति है। विद्यापति जी आध्यात्मिकता या रहस्यवाद की ओर अधिक उन्मुख रहे। कबीर ने भी रहस्यवादी प्रवृत्ति के कारण निराकार को प्रियतम तथा आत्मा को प्रिय मानकर विरहिणी आत्मा की वास्तविक तीव्र विरहानुभूतियों को तीखे शब्दों में व्यक्त किया। नानक, दादू आदि ने भी इसकी परम्परा को आगे बढ़ाया। मनोविनोदी स्वच्छन्द प्रकृति के अमीर खुसरो ने भी मन की उमंग में कुछ विरह की कवि-

काएँ बिखेरीं। फारसी से प्रभावित और लोकरंजन की दृष्टि वाले खुसरो का अब्दुलरहीम खानखाना ने भी साथ दिया। इनकी लौ तो शीघ्र ही बुझ गई किन्तु विद्यापति की कोमलकान्त पदावली और संगीतात्मकता ने "गीत गोविन्द" की वासनात्मकता- दोषयुक्त लुभावनी वर्णनात्मकता से रीतिकालीन कवियों का मन मोह लिया और प्रभावित कवियों ने "राधा-कृष्ण" को भी इस ऐन्द्रिय जाल में लपेट लिया।

नानक, रैदास और दादू ने रीतिकाल के कवियों की धारा को उलटी कर दिया जिसमें वासना डूब गई एवं साधना ने सिर ऊँचा किया। कबीर ने तो अपनी साधनामयी सर्वतः शुद्ध और खरी रहस्यवादी भक्ति-धारा के प्रवाह में योग का पुट देकर वासना की गन्ध ही नहीं उड़ा दी बल्कि खरी- खोटी भी सुनाई। जायसी ने भी उनका लोहा माना फिर भी उन्होंने सूफियों की प्रेमगंगा में डुबकियाँ लगाने में भी श्रेयात्मक गुण का वरण किया और वे निराकार भक्तिधारा की प्रेममार्गी शाखा के युग-प्रवर्तक कवि बन गए। लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना में उनका "पद्मावत" युगों तक अविस्मरणीय रहेगा। वास्तव में अहिन्दू कवियों में ही नहीं हिन्दू कवियों में भी जायसी को सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ है। विरह- वर्णन में जितनी उन्हें सफलता मिली है तथा लौकिक प्रेम के द्वारा निर्गुण परमात्मा की प्राप्ति की साधनात्मक कल्पना उन्होंने जैसी व्यक्त की है, वह उनकी अमरता की सच्ची निशानी है। "पद्मावत" में तो एक लौकिक एवं कल्पित कहानी में इतिहास तथा कल्पना का अद्भुत सम्मिश्रण करके ईश्वरप्रेम व्यक्त किया है किन्तु "कन्हावत" में रीतिकालीन राधा-कृष्ण की वासनामयी शृंगारिकता को विकाररहित परिमार्जित और संस्कृत करके उन्होंने कृष्ण के यथार्थ पवित्र एवं लोकव्यापी प्रेम का दिग्दर्शन कराकर सांख्यदर्शन, अद्वैतवादी दर्शन तथा इस्लामी एकेश्वरवाद के समन्वय द्वारा

असार संसार में सार, अनुकरणीय तथा आदर्श प्रेम की स्थापना की है। यहाँ श्रृंगार के सम्भोग- वियोग दोनों पक्षों का सन्तुलित सफल एवं हृदयस्पर्शी चित्रण प्राप्त होता है। रीतिकालीन कवियों ने जिस वासनात्मक सम्भोग को इति रूप में चित्रित किया था उसे जायसी ने "पद्मावत" में प्रेम का पवित्र और उज्ज्वल रूप देकर उसे सृष्टि का सार, सृष्टि का प्रयोजन और ईश्वर की अव्यक्त सत्ता का प्रतीक निरूपित करके जगत के लिए अनुकरणीय सिद्ध किया है। गृहस्थ होकर भी जल में कमल की भाँति संसार के विषयों से उदासीन रहकर ईश्वर को हृदय में प्रेम के द्वारा अनुभव किया जा सकता है तथा उसे साक्षात्कार करके जीवन को सार्थक और स्पृहणीय बनाया जा सकता है। ऐसे प्रेम में प्रेमी प्रेमास्पद ईश्वर में लय कर चुका होता है। दोनों में भेद मिट जाता है। ऐसा है "पद्मावत" का उच्च आदर्श प्रेम ।

प्रेम की तीव्रतम अनुभूति कराने के लिए जायसी ने राधा और चन्द्रावली सहित सोलह सहस्र गोपियों को माध्यम बनाया है। शाप को छोड़कर अभिलाष, विरह, ईर्ष्या, और प्रवास प्रवास से विरह के निमित्त चित्रित किये गये हैं। विरह की विशदता, हृदयग्राहिता और प्रेम के लोक तथा प्रकृति-व्यापी चित्रण की प्रवृत्ति जायसी को पूर्ववर्ती सूफी कवियों से विरासत में मिली थी।

जायसी का "पद्मावत" तो प्रेम और विरह का शास्त्र ही बन गया है। विरह की जिन- जिन कोटियों की उन्होंने सृष्टि की वे अन्यत्र ढूंढ़े नहीं मिलतीं। इसका सृष्टिव्यापी प्रभाव वाल्मीकि, भास, कालिदास, भवभूति आदि संस्कृत कवियों सहित तुलसी के वर्णन को भी संकुचित सा कर देता है। विरही कामार्त होकर जड़ चेतन के भेद में असमर्थ हो जाते हैं और प्रिया की खोज में अनुत्तरदायी खग, मृग और मधुकर आदि से प्रश्न करते हैं; मेघ, हंस, पवन, भ्रमरादि से प्रिय तक संदेश भिजवाते हैं किन्तु जायसी

का दूत "पक्षी" विरह-करुणार्द्र होकर स्वयं नागमती से कुशल- क्षेम पूछता है। ऐसी संवेदना, सहृदयता अन्यत्र कहाँ? वास्तव में कालिदास के मेघ के बाद जायसी का विहंगम भारतीय विरह काव्य का सबसे अधिक सहृदय दूत है। "कन्हावत" का दूत पवन "विहंगम" की तुलना में हीन प्रतीत होता है।

"कन्हावत" में राधा और चन्द्रावली का वियोग दाम्पत्य विरह है तथा सोलह हजार अन्य गोपिकाओं का विरह दाम्पत्येतर विरह है किन्तु जायसी ने इन्हें पृथक् न करके संवलित रूप से उपस्थित किया है -

"भा बैसाख भानु आबधिका । झूरे चन्द्रावली- राधिका ।।
ओ गोपीं सब सोरहो सहसा। बिनु पिउ कस रै कोउ कस रहसा।।"[1]

गोपिकाओं को कृष्ण का दाम्पत्य प्रेम न प्राप्त था तथापि उन्हें राधा और चन्द्रावली जैसा भोगानन्द अवश्य मिला था। राही के साथ कृष्ण की जैसी केलि क्रीड़ा हुई थी वैसी ही अन्य गोपियों को भी प्राप्त हुई थी -

जइस खेल राही सैंउ भयऊ । तइस खेल सब गोपिहिं भयऊ ।।[2]

गोपीं जितीं साथ मिलि आईं। ते तुम्ह काम कला सब राईं।।[3]

राधा पट्टमहिषी थीं। अतः उनका वियोग भी मूर्धन्य है। उनकी विरह की अग्नि से ही ताप लेकर आकाश-स्थित सूर्य तपता है। उसकी एक चिन-गारी से धरती- आकाश जलने लगते हैं। चन्द्रावली की दीप्ति को ग्रहण लग जाता है और गोपियों की दशा तो इतनी अवर्णनीय है कि पवन अपनी उष्णता को गोपियों की विरह-ज्वाला के निमित्त बताता है -

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 322.1-2
2- वही, कड़वक 272. 5
3- वही, कड़वक 273. 5

देखेउँ बिरह जरत राधिका । तेहि के आँच गगन-रवि धिका ।।
चंद्राबलि तपत जो अहे । सो तोहि बाजि गहन अस गहे ।।
औं जो गोपीं मुहिं का कहऊँ। तब कें जरत जरत हौं अहऊँ[1] ।।

सभी मिलकर पवन के शरण में जाती हैं और कृष्ण के कारण घटित अपनी विरह व्यथा बताकर उनके पास सन्देश ले जाने के लिए विनय करती हैं -

"पायन्ह परि बिनवहिं गोपिता । ऐ हनुवंत बीर के पिता ।
कन्ह पेम हम कौं भा मरनां । विरह जरत ताके तब सरनां[2]।।"

कृष्ण कंस का वध करने के पश्चात् उसके राज्य की व्यवस्था करके कुब्जा के साथ भोग करते हुए मधुबन में ही समय व्यतीत करने जाते हैं -

समाधान के सब कहं जोरे, बहहिं जेहिं जोग ।
आपु रहे मधुबन होइ, रचि कुब्जा सों भोग[3] ।।

फलतः कृष्णानुरागिणी गोपियाँ जो तन और मन से कृष्णमय बन चुकी थीं, तिल- तिल करके दिन काटने लगी थीं। यहाँ स्मरणीय है कि कृष्ण परमात्मा के अंशावतार हैं जिसकी उन्होंने बार- बार दशावतार वर्णन करके और विराट स्वरूप का दर्शन कराकर प्रतीति कराई है। अपनी कलाओं से उन्होंने सूर्य की सहस्र किरणों की भांति सहस्रशः रूप धारण किया। सोलह कलाओं से युक्त गोपियों से उनका मिलन हुआ। इस प्रकार उनके सोलह हजार अथवा अनन्त गुणात्मक रूप प्रकट हुए जो अव्यक्त रूप से दर्पण में प्रतिबिम्ब के समान सम्पूर्ण सृष्टि में व्यक्त हुए -

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 328. 5-7
2- वही, कड़वक 324. 3-4
3- वही, दोहा 303.

धनि सो कन्ह तुम्ह पुरुख अकेले । जेन भर करौं खेल सब खेले ।।
सुरुज बदि तुम्ह किरन पसारी । सब गोपिन्ह कहँ मिलहि मुरारी[1]।।

इससे स्पष्ट है कि यह महामिलन आत्मा और परमात्मा का है। अतः आत्मा रूप गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेमभाव दृढ़, सत्यनिष्ठ, आस्था और विश्वास पर आधारित है। उन्हें कृष्ण का निमेष भर का वियोग असहनीय हो जाता था। फिर गोकुल से मधुबन की दूरी ऐसे अंतः करण के लिए तो कल्पनातीत दूरी ही कही जाएगी। वे कृष्ण को अपने हृदय से पल भर भी विलग न कर पाती थीं, और हार को अपने तथा कृष्ण के मध्य विघ्न समझकर धारण ही न करती थीं। उन्हीं ऐसे कृष्ण के अदर्शन अथवा प्रयास से उनके हृदय पर विपत्ति या विघ्न का पहाड़ टूट पड़ा। भला वे इसे कैसे सहन करतीं ?

जेहि बिच हार न संवरत, तेहि बिच परा पहार ।
कै रे मरन दूखन जिउब , यह रे बिरह दुख भार[2] ।।

एक बार राधा गोपियों के साथ कृष्ण के मिलन- स्थल वृन्दावन में पहुँची तो उन्हें वहाँ न देखकर दुःखी हो गईं। रात्रि भर अंबे बं जंगल का कोना- कोना छान डालती हैं, उन्हें तनिक भी चैन नहीं मिलता। वन का सारा वातावरण ही विरह में डूबा हुआ भयानक बन जाता है। मेघ गरजते हैं, पतिंगे झंकारते हैं और मोर मानों राधा की व्यथा को व्यक्त करते हुए "मुअउ- मुअउ" [मरे- मरे] बोलने लगते हैं। इस प्रकार झंखती- सुखती व्याकुल होती राधा और गोपियों की दशा चकई की भाँति हो जाती है जो रात्रि में चकवाक से बिछुड़ जाने पर चारों ओर ढूँढ़ती- फिरती, क्रन्दन करती बिरह में तड़पती हुई बन- बन में भटकती रहती है[3]। राधा ने बाद में अपने पति कृष्ण के अनुराग का अभाव अनुभव किया तभी तो वो रूठकर मान करती हैं और चन्द्रावली के साथ प्रेम की जानकारी होने

1- "चन्दायन" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 273, 2-3
2- वही, दोहा- 312.
3- वही, कड़वक - 140.

पर उससे झगड़ पड़ती है। विरहयुक्त विरह का यह अत्यन्त मार्मिक और सूक्ष्म अनुभूति का यह चित्रण है जो परमात्मा से वियुक्त आत्मा की आकुलता का सुन्दर चित्रण है।

कृष्ण और गोपियों का प्रेम सारस- जोड़ी की भाँति था। लोक में ऐसा प्रवाद है कि सारस- दम्पति में से किसी एक की मृत्यु हो जाने पर दूसरा शोक में बिलख- बिलख कर ही प्राण दे देता है। इनका प्रेम सापेक्ष है। जब कंस कृष्ण को अक्रूर द्वारा मथुरा बुलवाता है और कृष्ण बलराम दोनों अक्रूर के साथ प्रस्थान करने लगते हैं तो गोपियों के मानों प्राण निकले जा रहे हों। वे इस भयानक एवं अचानक मर्मान्तिक विपत्ति से किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाती हैं। उस समय अक्रूर उनको क्रूर बधिक के समान दिखाई पड़ते हैं। इस प्राण विपत्ति के समान मर्मान्तिकारी आघात और आसन्न विरह के दुःख की कल्पना को जायसी ने एक ही पंक्ति में ध्वनित कर दी है -

"उर अर अक्रूर कोरे अनखले ।
प्रान हमार कहाँ ले चले[1] ।।"

प्रस्तुत लोक दुःखमय है क्योंकि यह परमात्मा से बिछुड़ी आत्मा के लिए परदेश है। परदेश में प्राणस्वरूप प्रियतम परमात्मा का सहारा भी छिन गया तो कष्ट कल्पनातीत क्यों न हो? पुनः गोपाल की गोकुल लौटकर न आने की आशंका से दिन- रात झुककर गोपियों की मरण- दशा आसन्न हो जाती है। कवि ने यहाँ सारस- जोड़ी शब्द का प्रयोग करके गोपांग- नाओं के स्वाभाविक और ऐकान्तिक प्रेम की सुन्दर सचित्र वर्णना की है। एक ही कड़वक के अन्तर्गत् समस्त गोपियों की कृष्ण के प्रति रति को अभि- व्यक्त करके जीवात्मा और परमात्मा के बिछुड़ने की मार्मिक दशा को भी ध्वनित कर दिया है।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक - 177.3

"षड्ऋतु- वर्णन" के तत्काल बाद "बारहमासा" के अन्तर्गत् क्रमशः सम्भोग और वियोग के वर्णन सुख- दुःख रूप मानव जीवन- रथ के दो चक्रों की भाँति अनिवार्य, अनुकूल, स्पृहणीय और मनोवैज्ञानिक प्रतीत होते हैं। ये इस मनोवैज्ञानिक सत्य को प्रमाणित करते हैं कि सुख के बाद दुःख अतीव प्रबल होता है जैसे कि दुःख के बाद सुख अत्यन्त आनन्ददायी तथा ग्राह्य बनता है -

"अब मिलि बिछुरन भरउ दुहेला । प्रेम तराइ बिरह तन मेला।।"[1]

ग्रीष्म ऋतु ताप की ऋतु है जिसमें कृष्ण- कुब्जा का भोगानन्द प्रारम्भ होता है, आषाढ़ शीत-बहुल मास है जिसमें प्रेमी- युगल को सम्भोग- सुख प्राप्त होता है। तभी तो विरह का वर्णन भी जायसी ने कामोद्दीपक मास से किया है। कालिदास का यक्ष भी आषाढ़ के प्रथम दिन पर्वत- शिखरों पर आच्छादित मेघों को देखकर कामातुर हो उठता है। यक्ष ने विरह के अन्य मास काट लिए थे किन्तु वर्षा में कंठलग्न प्रणयीजनों का भी चित्त और हो जाता है तब विरही प्रेमियों का क्या पूँछना ?

"मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कंठाश्लेष प्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ।"[2]

जायसी ने भी स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक अनुकूल के अनुभूतिपरक स्थल का चयन इसीलिए किया। गोपियों का विरह प्रवासजन्य है।सपत्नी कुब्जा के प्रति ईर्ष्या ने उनके विरह जन्य ताप को हवा दे दी। कृष्ण ने मथुरा जाते समय उन्हें आश्वस्त किया था कि वे पुनः लौटेंगे। यही आश्वासन और विश्वास उनके प्राण धारण का सम्बल बने। वे पवन से कृष्ण के

1- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 325.6
2- "मेघदूत" : कालिदास, श्लोक- 3.

प्रति अपने प्रेम की आस्था व्यक्त करती हैं किन्तु कृष्ण से किञ्चित् आदान की अभिलाषा नहीं प्रकट करतीं।

संसार के बहुमूल्य पदार्थ अथवा शृंगार की वस्तुएँ भी कृष्ण की तुलना में तुच्छ थीं। गोपियाँ समर्पित भाव से ही कृष्ण को भजती थीं। उन्होंने हृदय से कृष्ण का सामीप्य प्राप्त किया था। वे शरीर और आत्मा की भाँति कृष्ण से अपृथक् थीं -

"मन सौं मन तन सौं लगगहा । होइ गए एक न अन्तर रहा।।"[1]

दोनों के हृदयों के मध्य कोई अन्तराय नहीं था। जब बहुमूल्य हार प्रेमी युगल के हृदयों के मध्य विघ्न बना तो उन गोपियों ने हार को भी तिलांजलि दे दी। ऐसे श्रीकृष्ण जब यमुना पार हो गए, आँखों से ओझल हो गए तो ब हृदय- हृदय के लिए तड़पने लगा। गोपियों की कृष्ण के प्रति प्रेम की अनन्यता कितनी मार्मिक है -

होया बीच न रखतहिं हारा। अब होइ रहे जउन के पारा।।[2]

गोपियाँ कृष्ण के न लौटने में अनेक तर्क- वितर्कपूर्वक आशंकाएँ करती हैं जो सामान्य गृहिणी के जीवन में प्रायः घटित होती हैं। जायसी ने यहाँ मानव जीवन को प्रभावित करने वाले सुख और दुःख को प्रथम कारण के रूप में सम्भावित किया है क्योंकि मानव- मन के समस्त भावों का इन्हीं के अन्तर्गत् अथ और इति होता है।

विरह में विवशता का भी बड़ा योगदान होता है। लोकलज्जा के भय से अथवा गोकुल से किसी मनुष्य के मथुरा न जाने या उधर से न आने के कारण गोपियों द्वारा अपनी विरह-वेदना का सम्प्रेषण असम्भव था -

"भूलि रहे पिउ तेहिं परदेसा । पथि न चले न आव सँदेसा।।
भरे हिलोरे बाढ़े जउनाँ । पिया केउ नहिं पार जो गवनाँ।।"[3]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 266.4
2- वही, कड़वक 325.2
3- वही, कड़वक 314.3-5

मधुबन तो गोकुल- स्थित गोपियों के नेत्रों के निकट था किन्तु चरणों के लिए अत्यन्त दूर। मधुबन और गोकुल के बीच में बढ़ी हुई यमुना हिलोरें ले रहीं थी। इस प्रकार गोपियों को जीवन- नौका मध्यधारा में जा पहुँची। खेवक रूप कृष्ण के बिना उन्हें कौन पार उतारता? उनकी जीवन नौका भी जर्जर और शिथिल हो गई थीं। ऐसे में जबकि खेवक का ध्यान कहीं अन्यत्र लग गया हो तो नौका की क्या दशा होगी। यहाँ जायसी ने जीव और परमात्मा के बिछोह में जीव की कातरता और ईश्वर से आश्रय की याचना का चित्रण किया है। वे अभिलाषा करती हैं कि प्राणाधार दया करके आवें और उनकी उजड़ी हृदय की बस्ती को पुन: बसाएं -

"आवहु कन्ह मया कै, गोपिन्ह प्रान अधार ।
उजर हिया बसावहु, करहु हमारह सार ।।"[1]

कृष्ण के जाने से गोकुल तो मृगारण्य बन ही गया था साथ ही गोपियों की हृदय- बस्ती भी सुनी हो गई थी :-

"कै उजार गोकुल हरि गए । को बसाउ निरगारन भए।।"[2]

सपत्नी- डाह उन्हें सबसे अधिक पीड़ित करता है। जब - जब उन्हें सपत्नी कुब्जा के साथ कृष्ण की संयोग- दशा स्मरण आती है, वह उन्हें काम बाणों से मर्माहत कर देती है :-

जनहु मदन सर लागहिं, सौंर सौत कर साल ।
सब दिन बैठि गँवावत , रैनि आव जनु काल।।[3]

कृष्ण ने कुब्जा को तो सुख दिया, किन्तु दु:ख गोपियों के हिस्से में डाल दिया। इसीलिए सुख-शैया भी अग्नि बन गई और फूल शूल हो गए :-

---

1- "कन्हावत" ; शिवसहाय पाठक, दोहा- 318.
2- "कन्हावत" ; कड़वक 321.6
3- वही, दोहा- 321.

सुख कुबजा दुःख गोपिन्ह बाँटे । सेजवाँ अगिन फूल जस काँटे ।।[1]

गोपियों को कृष्ण के साथ अपने पूर्व मिलन की स्मृति भी कम व्यथित नहीं करती -

सावन बरस सबन कन मेंहू । झुरहिं गोपिता सँवर(सनेहू)।।[2]

प्रत्येक मास में संयोगिनियाँ अपने पतियों के साथ ऋतु और मास के अनुकूल श्रृंगार करके क्रीड़ा करती हैं तो गोपियों के मन में एक विचित्र पीड़ा का अनुभव होता है जो पूर्व संयोग के स्मरण से अत्यधिक उद्दीप्त हो जाता है।

संयोग दशा में प्रकृति के पदार्थों, श्रृंगार की वस्तुओं और शीतल, सुखावह चन्दनादि को कवियों ने विरहावस्था में तापकारी चित्रित किया है। ये प्रत्येक मास में होने वाले प्रकृति के परिवर्तनों के साथ ताप को अतिशायित करते रहते हैं। इसीलिए बारहमासा में इनका वर्णन किया जाता है। जायसी ने भी इन्हें सहज किन्तु मार्मिक शैली में उद्-घाटित किया :-

"चढ़ा असाढ़ लोग घर आवा । कन्ह जाइ मधुबन होइ छावा ।।
उनये मेघ चहुँ दिसि गाजे । चमकि-चमकि घन बीजु तराजे ।।
बोले कोकिल सबद सोहावा । आइ पपीहन पीउ बोलावा ।।
दादुर ररहिं कुहूकहिं मोरा । भा बरखा को घर कंदोरा ।।
अति पुरवा आवै नित घेरी । भा बियोग जियँ गोपिन्ह केरी।।
रहब अकेलीं कन्ह न पासा । कहसें हम अँगउब [चौमासा] ।।
कंत लोभाइ और सँग रहा । सो दुःख सँवर जाइ नहिं (सहा)।।[3]"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़क 321.5
2- वही, कड़क 313.1
3- वही, कड़क 312.1-7

आषाढ़ लगते ही चतुर्दिक् मेघ घिर आए। विद्युत चमक-चमक डराने लगी। कोयल, पपीहा पीउ-पीउ रटने लगे। दादुर, मोर कूकने लगे। शीतल पूर्वा पवन बहने लगा। गोपियों के हृदय में वियोग की पीड़ा व्याप्त हो गई। उन्हें चिन्ता होने लगी कि कंत कृष्ण पास में नहीं है, जब आषाढ़ में हमारी ऐसी व्यथा है तो वर्षा के चार महीने हम कैसे काट सकेंगी? प्रकृति की संयोग दशा में उपर्युक्त वस्तुएँ विरह में पूर्व अनुभव की स्मृति के कारण ही दुःखी करने वाली होती हैं। अतः इन्हें स्मृति के अन्तर्गत ही रखा जाना चाहिए।

जायसी के अनुसार प्रेम ऐसी चिनगारी है जो हृदय में स्थित होकर शरीरावयवों के माध्यम से सारे तन को व्याप्त कर लेती है। इस प्रच्छन्न ज्वाला का धुआँ बाहर प्रकाशित नहीं होता। निश्वासों के द्वारा ही उसका आभास मिलता है। वह सबको जला देती है, चन्द्रावली और राधी उसकी ज्वाला से जलकर विवर्ण ही नहीं रावटी बन गईं। उनके निःश्वास की एक चिनगारी धरती और आकाश को भी जला देती है। ऐसी अवस्था में वे कृष्ण की शरण लेती हुई कहती हैं कि हमने बड़ी सेवा की है, यदि आपको मारना ही अच्छा लगता है तो साथ ले जाकर मारिए -

"पेम चिनगी सुलुगे तस हिया । जनु तेलती पाले निसि दिया ।।
कंत जरहिं बिरहें सब गोपीं । आगि के ओप क्या सब ओपीं ।।
धुवाँ न पावे परगट होई । मुखें सार दाधे सब कोई ।।
चन्द्रावली कहे जस राधाँ । राधी जरे अधिक दुःख माहाँ।।
चिनगि एक बाहर होइ परे । धरती दाध सरग पुनि जरे ।।
हौं सेवौं जस रावट, चलि आवहु रघुनाथ।
जस सुहाइ अस मारहु, हमहि जाहु लेइ साथ।।[1]"

यहाँ गोपियाँ मृत्यु के समय भी कृष्ण को अपने नेत्रों के समक्ष देखना चाहती हैं।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक - 326.

नई- नई ऋतु आती है, सुहागिनियाँ कंत से मिलकर सारा दुःख दूर कर लेती हैं। वे प्रत्येक मास में ऋतु- अनुकूल शृंगार करती हैं जिसे देखकर गोपियों का विरह और बढ़ जाता है। उनका तो भाग्य ही फूट फूट गया है। लेकिन गोपियों का "निछोहा" प्रिय इतना निष्ठुर है कि संदेश भी नहीं भेजता, और परदेशी चिट्ठी- पत्री लिखते हैं या संदेश भेजते हैं लेकिन मधुबन से न कोई आया न इधर से कोई पथिक गया, न इधर से सन्देश ही मिला। क्या वहाँ कागज स्याही नहीं है या हम उन्हें भूल गई हैं कि मन में स्मरण ही नहीं आतीं -

"और जो जगत जाइ परदेसी । पठवे लिखा कि आव संदेसी ।।
तेहिं मधुबन हुत कोउ न आवा। पंथि न चले संदेस न पावा ।।
कै रे तहाँ कागद- मसि नाहीं। कै बिसरीं हम चित्त न वहाँहीं।।"[1]

नारी की स्वाभाविक ईर्ष्या, प्रोषितपतिका का शृंगार त्याग, अव्यक्त हृदय- दाह, सन्देश न भेजने पर कंत पर खीज, परस्त्री के प्रति अनुरक्त होने का प्रिय पर सन्देह, तिल- तिल करके रात- दिन गँवाना, प्रेमी की निष्ठुरता के कारण प्रेम करने पर पछताना, प्रकृति के तत्वों और वस्तुओं द्वारा सताया जाना, पूर्व- स्नेह का स्मरण, कंत-मिलन की आकुलता और लालसा, भाग्य को कोसना, अपनी व्यथा- दशा को अभिव्यक्त करना आदि नारी की ऐसी कोमल भावनाएँ हैं जो विरह में सोये हृदय से फूट फूट- फूट कर निकलती हैं न उसमें कोई दुराव है न बनाव। जायसी ने इन भावनाओं का इतना सरस और सहज वर्णन किया है कि वे सीधे हृदय पर चोट करती हैं। यहाँ न वे अत्युक्ति के चक्कर में पड़े और न अलंकार का भार ही डाला। वे मानों नारी बनकर नारी की भावनाओं का यथार्थ चित्रण कर रहे हों। सौत के अतिरिक्त प्रकृति और सुहागिनियाँ भी सौत

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 316- 5-7

की सहेलियाँ बनी हुई सी वियोगिनी को अपने हाव- भाव और क्रिया- कलापों से निरन्तर खिझाती सी प्रतीत होती हैं। उनका दुःख गहरा जाता है और वह पिघल- पिघल कर अश्रु बनकर फूट पड़ता है।

उधर सावन के मेघों ने झड़ी लगा दी तो गोपियों के नेत्रों ने अश्रु- सरिता बहाकर होड़ लगा ली -

"बादर घटाटोप होइ छाए । झिरे नसैनिन्हि हम अर झाए।।
भरे नैन जलधर अति वानो । बरनैं बुवहिं बान दरवानो[1] ।।"

सावन के मेघों की झड़ी के संग विरहिणी के नेत्रों से अश्रुसरिता की धारा की समानता भावचित्रण का अनुपम काव्य सौन्दर्य है। वियोगिनी की भावनाओं के साथ प्रकृतिगत तद्रूपता के वहाँ दर्शन होते हैं जहाँ राधा की विरहाग्नि की एक चिनगारी से धरती और आकाश जलते दिखाई देते हैं। विरह का प्रभाव सृष्टिव्यापी बन जाता है। देखिए -

"चिनगि एक बाहर होइ परै। धरती दाह सरग पुनि जरै।।[2]"

मानव मन सुख- दुःख की अवस्था में निखिल सृष्टि को अपने मनो- भावों के अनुकूल देखा करता है। वह अपने मनोभावों को सृष्टि में आरो- पित कर देता है। "अभिज्ञानशाकुन्तल" में दुष्यन्त शकुन्तला की प्रेमपूर्ण विलास चेष्टाओं को देखकर निश्चय कर लेते हैं कि वह उन्हीं के प्रति प्रेम जता रही है। कालिदास ने इस भावना को "कामी स्वतां पश्यति" के द्वारा व्यक्त किया। जायसी ने भी इस भाव को व्यक्त करते हुए लिखा है -

सरद चँद सीतल केहि कहा । देखि विरह गोपिन्ह तन दहा[3]।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 313. 2-3
2- वही, कड़वक 326. 7
3- वही, कड़वक 316. 2

की सहेलियाँ बनी हुई सी वियोगिनी को अपने हाव- भाव और क्रिया- कलापों से निरन्तर चिढ़ाती सी प्रतीत होती हैं। उनका दुःख गहरा जाता है और वह पिघल- पिघल कर अश्रु बनकर फूट पड़ता है।

उधर सावन के मेघों ने झड़ी लगा दी तो गोपियों के नेत्रों ने अश्रु-सरिता बहाकर होड़ लगा ली -

"बादर घटाटोप होइ छाए । फिरे नसैनिन्हिं तस अरझाए ।।
भरे नैन जलधर अति बानी । बरनैं चुवहिं बान बरजानी[1] ।।"

सावन के मेघों की झड़ी के संग विरहिणी के नेत्रों से अश्रुसरिता की धारा की समानता भावचित्रण का अनुपम काव्य सौन्दर्य है। वियोगिनी की भावनाओं के साथ प्रकृतिगत तद्रूपता के वहाँ दर्शन होते हैं जहाँ राधा की विरहाग्नि की एक चिनगारी से धरती और आकाश जलते दिखाई देते हैं। विरह का प्रभाव सृष्टिव्यापी बन जाता है। देखिए -

"चिनगि एक बाहर होइ परै। धरती दाह सरग पुनि जरै।।[2]"

मानव मन सुख- दुःख की अवस्था में निखिल सृष्टि को अपने मनो-भावों के अनुकूल देखा करता है। वह अपने मनोभावों को सृष्टि में आरो-पित कर देता है। "अभिज्ञानशाकुन्तल" में दुष्यन्त शकुन्तला की प्रेमपूर्ण विलास चेष्टाओं को देखकर निश्चय कर लेते हैं कि वह उन्हीं के प्रति प्रेम जता रही है। कालिदास ने इस भावना को "कामी स्वतां पश्यति" के द्वारा व्यक्त किया। जायसी ने भी इस भाव को व्यक्त करते हुए लिखा है -

सरद चंद सीतल कैहि कहा । देखि बिरह गोपिन्ह तन दहा[3]।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 313. 2-3
2- वही, कड़वक 326. 7
3- वही, कड़वक 316. 2

यहाँ यह बताना आवश्यक है कि जायसी शास्त्रीय परम्परा में आबद्ध होकर विरह का वर्णन नहीं किए हैं क्योंकि विरह- वर्णन उच्च स्तर के अनु- भूति तत्व के बिना उत्कृष्ट और सहज नहीं हो सकता। अतः स्वतन्त्र होकर उन्होंने अपने मनोवेगों का प्रकाशन किया है। इसीलिए जड़ता-भाव को सुंदर ढंग से प्रकाशित करने का ध्यान भी नहीं दिया होगा। उनके मनोभाव मनो- वैज्ञानिक ढंग से चित्रपट की रील के समान पाठक के सामने सहज रूप से भावों के चित्र शृंखलाबद्ध रूप में उपस्थित करते चलते हैं।

प्रेमी कवि काव्यों में काम की दसवीं दशा मृत्यु का वर्णन इसलिए नहीं करते क्योंकि वह करुणा का विषय है, इसीलिए विरह की पराकाष्ठा में प्राणों का अधरों तक आ जाने का वर्णन करते रहे हैं। इसमें प्रियतम की तीव्र- तम अभिलाषा और उसके अभाव में महती पीड़ा ध्वनित होती है। जायसी कहते हैं कि गोपियों के कंकाल मात्र शरीर में प्राण उसी प्रकार कैद हैं जिस प्रकार पिंजड़े में कोई पक्षी। पंजरस्थ पक्षी बन्धन तोड़कर सदा स्वतन्त्र होने के लिए छटपटाता रहता है। गोपियों के प्राण भी शरीर-बन्धन त्याग कर मुक्त होने के लिए व्याकुल हो रहे हैं। यहाँ आध्यात्मिक व्यंजना भी रमणीय है। जीव भी परमात्मा में लीन होने के लिए इसी प्रकार व्याकुल रहता है -

"कया छूँछ पिंजर जस रेवा। रहै न रहै परान परेवा।।"[1]

विरहाग्नि की दारुण दशा में जब विरही का मन आकुलता की सीमा लाँघ जाता है; प्राणाधार प्रिय को पाने की लालसा में कोई भी प्रयत्न शेष नहीं रहता तो विरही का उन्माद इतना बढ़ जाता है कि वह चेतन- अचेतन का भेद करने में भी असमर्थ हो जाता है। यदि उसकी चेतना सजग रहती है तो वह मानवीय प्रयत्न में सब सचेष्ट होता है और मानव द्वारा ही प्रिय के पास सन्देश प्रेषित करता है। इससे अधिक उन्माद

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 318-7

के कारण वह सन्देश के लिए पशु- पक्षियों से भी काम लेता है किन्तु उन्माद की पराकाष्ठा में तो उसे ज्ञान ही नहीं रहता कि वह किससे और क्या संदेश भेज रहा है। कालिदास का मेघ इसी का परिणाम है। जायसी के "पद्मावत" का विहंगम तो नागमती से स्वयं सन्देश का विषय पूछता है पर "कन्हावत" में तो माध्यम जड़ पवन है जो गोपियों के विरह से स्वयं तपकर कृष्ण के पास पहुँचने पर विरह-ताप द्वारा ही कृष्ण को अपनी उपस्थिति का आभास कराता है। वह गोपियों का विरह बनकर उनके समक्ष जाता है। मानव- प्राणीय संदेश को सजीवता, मार्मिकता और मूक संवेदना की इतनी उत्कृष्ट अभिव्यंजना को जायसी ने जड़ पवन के माध्यम से अभिव्यक्त करके अमरवाणी सम्पन्न महती प्रतिभा का परिचय दिया जो सम्भवतः खोजने पर भी अन्यत्र काव्यों में न मिले।

संस्कृत के महाकाव्यों में पुरुष पात्रों की विरहावस्था का भी वर्णन किया गया है। "रामायण" और "मानस" के श्रीराम, "मेघदूत" का यक्ष "रघुवंश" के अज, "उत्तररामचरित" के राम, "नैषध" के नल, "गीत-गोविन्द" के कृष्ण प्रिया- विरह में सन्तप्त चित्रित किये गये हैं। इनमें केवल कालिदास ने यक्ष के द्वारा प्रिया को संदेश भेजना वर्णित किया है। हिन्दी के पृथ्वीराजरासो, "पद्मावत" तथा विद्यापति पदावली में भी पुरुष पात्रों का चित्रण हुआ है।

मध्यकालीन प्रेम काव्यों के रचयिताओं ने इसकी दिशा ही बदल दी। मधुरोपासना के साथ स्त्रियों के विरह-वर्णन का चित्रण प्रारम्भ हो गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि ध्यान देने की बात यह है कि "विरह की व्याकुलता और असह्य वेदना स्त्रियों के मत्थे अधिक मढ़ी गयी है। प्रेम के वेग की मात्रा स्त्रियों में अधिक दिखायी गई है। नायक के दिन- दिन

क्षीण होने, विरहताप से भस्म होने, सूखकर ठठरी होने के वर्णन में कवियों का जी उतना नहीं लगता है।[1] इसका कारण बताते हुए शुक्ल जी आगे लिखते हैं, बात यह है कि "स्त्रियों की श्रृंगार चेष्टा वर्णन करने में पुरुषों को जो आनन्द आता है वह पुरुषों की दशा वर्णन करने में नहीं। इसी से स्त्रियों का विरह- वर्णन हिन्दी काव्य का एक प्रधान अंग हो बन गया।[2]"

हिन्दी में नायिकाओं के ही विरह- वर्णन की परम्परा फूली- फली। यह कहना अनुचित होगा कि पुरुष होने के कारण उनकी वृत्ति स्त्रियों की ही श्रृंगार चेष्टाओं में अधिक रमी क्योंकि उपरिलिखित पुरुष-विरह का चित्रण करने वाले कवि भी तो पुरुष ही थे। मेरी धारणा यह है कि नायिकाओं के विरह-वर्णन की परम्परा का सूत्रपात वैष्णवों की मधुरोपासना से हुआ। सूफी कवियों ने नायक और नायिका दोनों को समान प्रेमानुरक्त और विरह- संतप्त दिखाकर भारतीय और फारसी प्रेम पद्धतियों में समन्वय कर दिया।

संदेश प्रेषण का उद्देश्य एक ओर विरहिणी की दारुण विरह- व्यथा का निमित्त रूप में मार्मिक चित्रण होता है और दूसरी ओर प्रिय को द्रवित करके घर लौटने के लिए प्रेरित करना होता है।

भावों की संप्रेषणीयता में पटु जायसी ने "कन्हावत" में गोपियों द्वारा पवन के माध्यम से प्रेषित संदेश का प्रारम्भ अत्यन्त सहज, मार्मिक और उत्कृष्ट ढंग से किया है। यह वैसे ही है जैसे लोक में किसी के नाम कोई खैरनामा चिट्ठी लिखे। वे कहती हैं कि "हम यहाँ कुशल से हैं और कामना है कि जब तक ईश्वर संसार में जीवन रखे, आप कुशल से रहें।"

1- "सन्देश रासक", सम्पादक हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ०- 125-126.

2- वही.

"कुशल कन्ह हम तुम्ह कह सदा । जौं लहि द्यौं जीवें जग बदा।।"[1]

प्रत्येक स्थिति में भारतीय नारी द्वारा अपने प्रिय की कुशल- कामना करना उनकी समर्पित प्रेम- भावना का सर्वोत्कृष्ट गुण है जिसे कवि ने उपर्युक्त पंक्ति में ध्वनित किया है। प्रिय के मन में अपनी उपेक्षा का संकेत करके दया जागृत करना भी अभीष्ट है।

अपने प्रति किये गये अन्याय के प्रति उपालम्भ का उपक्रम भी वे अत्यंत मनोवैज्ञानिक ढंग से रखती हैं। वे कहती हैं :-

"जो सुख- भोग जीव जस लाहा । जौ रे देवहि पुरवै मन लाहा ।।
पिय अलेख बड़ कीन्ह गुसाईं । तजि गोकुल गोपी बिसराईं ।।
रोवतहिं छाड़ि लियहु परदेसू । आपउँ कन्ह कर कहन संदेसू[2] ।।"

सुख- भोग और जीवन- लाभ ईश्वरेच्छा पर निर्भर हैं किन्तु हे प्रिय कृष्ण । आपने हमें अपनाकर जो गोकुल त्यागकर भुला दिया, यह बड़ी अनरीति की। हमें रोती- बिलखती छोड़कर परदेश- गमन और विस्मृति दोनों अनुचित है। जिस कृष्ण के साथ वे तन- मन से अनुरक्त हो गई हों, उनसे विरह की दशा में उनका कष्ट अवर्णनीय ही है। आत्मा- परमात्मा का महा-मिलन विरह कैसे सहे ?

प्रवास विरह में कवियों ने विरहिणी की ओर से अपने प्रेमी को उपालम्भ देना आवश्यक रूप में वर्णित किया है।

हमें भुला दिया, धोखा दिया, हमसे छल- कपट किया, पहले प्रेम करके फिर विरह की आग में झोंक दिया। आदि के उपालम्भ बाह्य दृष्टि से अनुराग-न्यूनता कहे जा सकते हैं। लेकिन ये भी हृदय के सहज व्यापार हैं। इन्हें

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 328-1
2- वही, कड़वक 328 2-4

अनुराग की परिपक्वता के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। इनमें वासनोत्तेजना भले ही आभासित होती हो लेकिन वे मर्म को स्पर्श किए बिना नहीं रहते। इसीलिए ऐसे उपालम्भ लोकगीतों के आधारभूत तत्त्व रहे हैं। प्रेम में भला कौन पूर्ण तृप्त हो सकता है? इसी की अभिव्यंजना यहाँ प्रधान है, शारीरिक सुख का अभाव गौण।

"औ धन- जोबन बरस अढ़ाई। भोगबार का अवधि बुढ़ाई।।"

"हे कृष्ण! यौवन- धन थोड़े दिनों का है। भोग क्या वृद्धावस्था में होता है?" गोपियों की इस आमंत्रण में तार्किक वृत्ति वालों को वासना की गन्ध का आभास मिल सकता है। किन्तु तन और मन का सापेक्ष सम्बन्ध है। वे एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। चिन्ता मन में उत्पन्न होती है किन्तु शरीर की भी दुर्दशा उसी का प्रभाव होता है। इसी प्रकार काम-वासना मन में उपजती है और शरीर में व्याप्त होती है। अतः गोपियों द्वारा अपनी पूर्व संयोग दशा की स्मृति कराकर कृष्ण को विकल करने का प्रयास ही यहाँ साध्य है। एक सीमा तक काम-वेदना, तीव्र मिलनेच्छा अथवा वासनात्मक विकलता का वर्णन यथार्थ की दृष्टि से मानवीय सहित रूप में अनुचित नहीं प्रतीत होते। ऐसे वर्णनों के अभाव में श्रृंगार रस का गौरव क्षीण सा प्रतीत होगा क्योंकि "शरीर माद्यं खलु धर्मसाधनम्" शरीर किसी भी धर्म का प्रथम साधन है।

भागवत का विरह शुद्ध भावनात्मक है तो "पद्मावत" का "साधनात्मक" किन्तु "कन्हावत" का विशुद्ध व्यावहारिक। गोपियों की विरह वेदना सीधे सहृदय (हृदय) को स्पर्श करती हुई उसे झकझोर देती है। वह उनकी पीड़ा से सहानुभूति करने लगता है और उसी भाव में खो जाता है। वह कवि की अमरवाणी को भी साधुवाद दिए बिना भला कैसे रह सकता है?

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 325.4

जायसी ने नारी विरह की टीस का केवल सूक्ष्म निरीक्षण ही नहीं किया, उसे पहचाना, हृदयंगम किया तथा अपने अत्यन्त भावगम्य, सरल एवं मार्मिक शब्दों तथा सहज शैली में व्यंजित भी किया। "मानव-हृदय से निःसृत भाव को प्रदान की जाने वाली अकृत्रिम अभिव्यक्ति अपने में स्वयं सबसे बड़ा अलंकार है। यह सहज अभिव्यक्ति वह हृदयालंकार है जिसमें रस भी समाहित हो जाता है। भाव को सरलतापूर्वक वही कह सकता है, जिसके पास भाव का सच्चा अनुभव करने वाला हृदय है। ऐसा हृदय लाखों मनुष्यों में से किसी एक के पास ही होता है, जो आवेश- मुक्त होकर भाव को समझ और परख सके तथा उसे अभिव्यक्ति प्रदान कर सके।[1]" ऐसी सहज शैली हृदय पर सीधे एवं सद्यः प्रभाव डालती है। जायसी की विरह वेदना "प्रसाद" की "श्रद्धा" के समान "हृदय की अनुकृति बाह्य उदार" है। उन्होंने भाव और कला का ऐसा मधुर मिलन कराया कि उन्हें परस्पर भार के दोषा-रोपण का अवकाश ही न रह गया। भाव आगे बढ़ा तो कला अनुचरी हो गई, कला आई तो भावों ने आलिंगन कर लिया। बस, असीम रस बरबस बरस पड़ा ।

अलंकार, इसमें हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति में मात्र सहायक हुए हैं, यदि कल्पना का संयोग हुआ तो वह भी यथार्थ के धरातल पर चरण रखे हुए दिखती है। "कन्हावत" के वियोग में ऐसे ही सुयोग प्राप्त हैं। गोपियां कहती हैं कि यदि उन्हें यह आशंका होती कि कृष्ण गोकुल से मथुरा जाने पर पुनः न लौटेंगे तो वे उन्हें घेरकर रोके रहतीं, चरण पकड़ कर विनय करतीं, बाँहें पकड़ कर दैन्य दर्शाती और मना लेतीं :-

"जौ जानति हरि रहिहहिं, जरम छाइ बन माँह ।
हम रे सबै मिलि रहतीं, पाउ टेकि गहि बाँह[2]।।"

1- "खड़ी बोली कविता में विरह वर्णन" : रामप्रसाद मिश्र, पृ0-169.
2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, दोहा- 322.

भारतीय नारियों का अपने प्रियतम को मनाने का ऐसा मुग्धकारी, स्वाभाविक, दैन्य-मुक्त, मर्यादित और प्रेम जताने वाला तथा निष्ठुर प्रेमी के हृदय को भी द्रवित करने वाला अनुपम ढंग और क्या हो सकता है। कवि ने एक दोहे में कितने भावों की एक साथ सचित्र व्यंजना की है।

उपर्युक्त दोहे में करुणा का भी स्पर्श हुआ है। अतः करुण विप्रलम्भ को एक नई कोटि का उदय हुआ है। भरत मुनि श्रृंगार को "सर्वभाव संयुक्त" कहकर विरह- वेदना में शोकाभास को प्रतीति के कारण विप्रलम्भ के अन्तर्गत् ही करुण- विप्रलम्भ को भी मानते हैं जो नितान्त वैज्ञानिक तथा दृढ़ है। वे करुण- विप्रलम्भ तथा करुण रस में अन्तर को मूल आलम्बन के प्रति क्रमशः उनकी सापेक्षता और निरपेक्षता के कारण मानते हैं। करुण रस में वेदना निरपेक्ष रहती है, श्रृंगार में सापेक्ष। विप्रलम्भ में आशा की स्फूर्ति निरन्तर बनी रहती है जबकि करुण रस में आशा के लिए किंचित् भी स्थान नहीं रहता तथा रति या प्रेम शोक में परिणत हो जाता है। विनष्ट प्रेमी यदि वरदानादि से जन्मान्तर मिलन की प्रबल आशा रखते हों तो वहाँ विरही के वियोग को करुण विप्रलम्भ कहा जायगा। उदाहरणार्थ काम- दहन पश्चात् रति को काम की पुनर्प्राप्ति का वरदान मिला था। इसीलिए रति में रति भाव बना रह जाता है। ऐसी स्थापनाएँ यथार्थ से दूर और अस्वाभाविक होने के कारण अस्पृश्य हो गई हैं। जरासंध द्वारा लगातार आक्रमण करने से कृष्ण द्वारा मथुरा त्याग देने पर "प्रिय प्रवास" में व्यक्त विरह- वेदना करुण विप्रलम्भ होगा। पुनश्च, करुण का स्थायी भाव शोक टिकाऊ रहता है किन्तु विप्रलम्भ में विरह- वेदना प्रिय मिलन तक सीमित रहती है। "कन्हावत" में कृष्ण द्वारा गोपियों को लौटने का आश्वासन दिए जाने के कारण शुद्ध विप्रलम्भ ही है।

जायसी ने संयोग-अवस्था में संलाप, वियोग में विलाप, प्रलाप एवं रुदन की अत्यन्त सहज अभिव्यक्ति की है। संलाप कृष्ण और राधा के मिलन के अवसर पर व्यक्त हुआ है। वे हर्षित होकर तोता- मैना की तरह चहचहाते हैं। तोता- मैना का दृष्टान्त नैसर्गिक, मधुर और सरस प्रेमी-

प्रेमिका के चहचहाने की व्यंजना करता है।

विलाप देवकी के करुण क्रन्दन में अधिक निखरा है। उनके सात पुत्रों के मार डाले जाने से हृदय के टुकड़े- टुकड़े हो गए। आठवें पुत्र के भाव्य - वध से उनका धैर्य उच्छिन्न हो गया। अपने नेत्रों के सामने ही दुधमुंहे बच्चों का वध देखना अब उनके वश की बात न रही।

लोक में कारण बताते हुए रोना इतना मार्मिक होता है कि सुनकर पाषाण- हृदय भी द्रवित हो जाता है। वधू- विदा अथवा कुटुम्बी जनों से मिलन के अवसर पर प्राकृत नारियों का इस प्रकार विलाप करना लोक-गीतों में सर्वाधिक अभिव्यक्त हुआ है। उपर्युक्त अवसर पर देवकी करुणा की मूर्ति बन गई है और यशोदा ममता की देवी। जायसी ने यहाँ ममत्व के भाव को जीवन्त उपस्थित किया है, नारी का हृदय ही ममता में उमड़ पड़ा है। सूक्ष्म भावों के पारखी कवि ने इसे अत्यन्त निकट से देखा-परखा तो था ही, अमरवाणी और लेखनी से साकार भी कर दिया।

विरही का प्रलाप वह दशा है जब सुखद वस्तुएँ भी उसे अनिष्टकारी प्रतीत होती हैं। जाड़े के कार्तिक, अगहन, पूस, माघ महीने में सूर्य का ताप जाड़े को भगा देता है। अगहन में गोपियाँ कृष्ण- मिलन को सूर्योदय की भाँति सुखद होना मानती हैं। उनके कंठश्लेष से जाड़े को देश निकाला का दण्ड मिल जाएगा :-

"कान्ह कुँवर जो यहि रितु आवै । जाड़ महल जस सुरुज दिखावै।।
हमहि जियाइ लइ कंठ लेई । जाड़हि देस निसारा देई।।"[1]

किन्तु पूस आया जाड़ा बढ़ा तो विरह-ताप अँगीठी के समान झुलसाने लगा । सूर्य की स्थिति उलटी हो गई। वह विरह- दग्ध शरीर को

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 317.6-7

भस्मसात् करने वाला है, संतापकारी है, जाड़े में भी गोपियों को जाड़ा नहीं, फिर सूर्य का तापकारी रूप उन्हें क्यों सुखद होता। जाड़े में या कभी वह तापहारी तो होता भी नहीं ।

संताप के लिए "बड़बड़ाइ" विलाप के लिए "कारन रोदन" प्रलाप के लिए शरीर को कँपाने वाले जाड़े में सूर्य को भस्म करने वाला चित्रित करना तथा रुदन के लिए "मेले धाहा" अर्थात् धाड़ मार कर रोना शब्दों का प्रयोग काव्यात्मक सौन्दर्य के साथ चित्र भी उतार देने वाले हैं। कृष्ण के द्वारिका जाने के समय बड़े भाई उन्मुक्त आर्तनाद "धाड़" मारकर रो पड़ते हैं। नन्द- यशोदा को अपना पितृत्व- मातृत्व भाव भूल जाता है, वे पुत्र कृष्ण के पाँव पड़ने लगते हैं कि वे न जाँय। रोते हुए वसुदेव और देवकी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए, स्वयं कृष्ण को रोकने में असमर्थ होकर वे विनय करने लगे कि कोई किसी प्रकार उनके पुत्र को रोक ले। गोपियाँ अपने रोदन जल से कृष्ण के केश डुबो देती हैं, मनाने के लिए चारों ओर से घेर कर उनके पैर पकड़ती हैं। वे कहती हैं नाथ, हमारी बाँह छोड़कर क्यों परदेश जा रहे हो ? यह संसार अर्थ- भण्डार किसके लिए छोड़ रहे हो? हमारी कौन सुधि- बुधि लेगा, हमारा सुहाग कौन पूरा करेगा ?

यहाँ रुदन का साम्राज्य है जिसमें कश, ममता, वात्सल्य, शृंगार सभी कैद हो गए हैं, मुक्ति के लिए रुदन ही मात्र उपाय शेष बचा है जो मनुष्य की जीवन लीला समाप्ति के अवसर का दृश्य उपस्थित कर रहा है। - [कड़वक - 362.]

"पद्मावत" जायसी की प्रौढ़ रचना है। इसीलिए उसमें शृंगार रस के संयोग- वियोग दोनों का सामंजस्य है। इसमें सहज, ऊहात्मक तथा आलंकारिक तीनों वर्णनात्मक शैलियों के दर्शन होते हैं। सहजता प्रति-स्फुत

नैसर्गिक या दिव्य गुण हैं जिसमें हृदय के उद्गारों की कोमलताएँ अकृत्रिम अनवरत छायी रहती है जिससे सहृदय पाठक सराबोर हो जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं कि "आत्मा ही आत्मा को छूती है, हृदय ही हृदय को छूता है। केवल कल्पना या केवल चमत्कार बुद्धि को छूते हैं, आत्मा या हृदय को नहीं, यदि कभी आत्मा या हृदय को छूने में सफलता भी पाते हैं तो बुद्धि के माध्यम से ही आत्मा या हृदय तक उनका सीधा प्रवेश नहीं हो पाता।"[1]

पुष्य नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाँह मँदिर को छावा।।[2]

नागमती रानी है। विरह में उसे दैन्य ने आ दबोचा है। वह साधारण नारी की भाँति सोचने लगती है, पुष्य नक्षत्र सिर पर आ गया है। नाथ नहीं हैं तो घर कौन छायेगा? उसे प्रिय का अभाव गृहस्थ जीवन की रिक्तता का आभास तो कराता ही है, साथ ही उसके उजड़े हुए हृदय-मन्दिर की रसहीनता की भी प्रतीति कराता है। हृदय तो एक पवित्र मन्दिर है। उसमें प्रियतम रूप परमात्मा का निवास रहता है। यदि उसमें इष्ट की मूर्ति न रही तो हृदय- मन्दिर भी खण्डहर हो जाता है। इतनी सारी व्याकुलताएँ जो नागमती के अन्तस् से प्रकट होती हैं उन्हें कवि का हृदय सहज शैली में अभिव्यक्त कर रहा है। इसी प्रकार "पद्मावत" की यह पंक्ति भी मनोवैज्ञानिक आधार पर सहज भावों को सहज शैली में व्यक्त करती है -

बिरह बियोग रहे जिय छाई। सून मन्दिर जागहु उठि धाई।।[3]

ऊहात्मक शैली को आचार्य शुक्ल ने तीन प्रकार का माना है :-

1) ऊहा की आधारभूत वस्तु असत्य अर्थात् कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध है।

उदाहरणार्थ -

"देखेउँ बिरह जरत राधिका। तेहि के आँच गगन- रविधिका।।"[4]

1- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 344.7
3- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 314.2
4- वही, कड़वक 323.5

सूर्य तो स्वयं तपता है किन्तु राधा के विरह ताप से सूर्य के तपन का हेतु कल्पित करना असत्य किन्तु कवि- प्रौढ़ोक्ति है। [2] ऊहा की आधारभूत वस्तु का स्वरूप सत्य या स्वतः सम्भवी है और किसी प्रकार की कल्पना नहीं की गई है। "पद्मावत" का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :-

सरद चंद सीतल केहि कहा । देखि बिरह गोपिन्ह तन दहा[1]।।

शरद चन्द्र की शीतलता प्रसिद्ध है किन्तु कवि गोपियों पर तापकारी प्रभाव के परिणाम के कारण सत्य के प्रति जो शंका उठाता है वह उसकी शोभा में और वृद्धि कर देता है। चन्द्रमा का तापकारी होना तो गोपियों के विरहदशा के कारण परिवर्तित मनोवैज्ञानिक परिणाम है। दोनों सत्य चमत्कारपूर्ण हो गए हैं जो ऊहा के कारण ही सम्भव हुआ है। [3] ऊहा की आधारभूत वस्तु का स्वरूप तो सत्य है पर उसके हेतु की कल्पना की गई है। "पद्मावत" की पंक्ति से स्पष्ट है :-

"जिउ अधरन्ह होइ जाइ असाता । सँवरि- सँवरि आछै पिय आसा[2]।।"

कृष्ण के वियोग में गोपियों के प्राण अधरों तक आ गए हैं। वे प्रियागमन की आशा से ही रुके हैं अन्यथा कबके उड़ गए होते। यहाँ प्राणों के रुके रहने में प्रिय- मिलन की आशा हेतु रूप में कल्पित की गई है। विरह में अत्यन्त दुर्बलता के कारण प्राणों का अधरों तक आ जाना तो सत्य ही है।

शुक्ल जी का "ऊहा" से तात्पर्य कवियों द्वारा भाव को अभिव्यक्त करने के लिए किये जाने वाले कल्पना-विधान तथा यथार्थ वस्तु निरूपण से है। इनमें से प्रथम चमत्कारपूर्ण, कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध या शुद्ध काल्पनिक होती है। दूसरे प्रकार में अधिकतर बाह्य प्रतीकों के माध्यम से वेदना व्यक्त की जाती है और सहज शैली में मानसिक व्यथा अधिक व्यक्त की जाती है। लोकगीतों में ही ऐसे

1- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, कड़क 316.2

2- वही, कड़क 318.6

वर्णन अधिक प्रचलित रहे हैं। तीसरे प्रकार की शैली में हेतूत्प्रेक्षा के द्वारा अप्रस्तुत वस्तुओं का वास्तविक गृहीत दृश्य चित्रित होता है, केवल उसका हेतु कल्पित होता है। हेतु परोक्ष हुआ करता है जिससे उसकी अतथ्यता सामने आकर प्रतीति में बाधा डालती नहीं जान पड़ती। ऐसे वर्णनों से कवि विरह ताप के प्रभाव की व्यापकता को बढ़ाता- चढ़ाता सृष्टि भर में दिखा देता है। जायसी ऐसे वर्णन में बहुत सिद्धहस्त रहे। "पद्मावत" में नागमती की विरह वेदना का सृष्टिव्यापी प्रभाव निम्न पंक्तियों में दृष्टिगत होता है -

अस परजरा बिरह कर कठा । मेघ स्याम भै धुआँ जो उठा ।।
दाधै राहु केतु गा दाधा । सूरुज जरा चाँद जरि आधा ।।
औ सब नखत तराईं जरहीं । टूटहिं लूक धरनि महँ परहीं ।।
जरी सो धरती ठाँवहिं ठाँवाँ। ढंक परास जरे तेहि दाँवाँ[1] ।।

"कन्हावत" में भी राधा, चन्द्रावली और गोपियों का विरह का प्रसार जगद्व्यापी चित्रित किया गया है। किन्तु "पद्मावत" की अपेक्षा "कन्हावत" का वर्णन मर्यादित है। उसमें "पद्मावत" की तरह किसी प्रकार की अत्युक्ति नहीं जान पड़ती। "कन्हावत" की निम्न कुछ पंक्तियाँ इस संदर्भ में द्रष्टव्य हैं -

देखेउँ बिरह जरत राधिका । तेहि के आँच गगन- रबिधिका ।।
चन्द्रावलि तपत जो अहै । सो तोहि बाजि गहन अस गहै ।।
औ जो गोपीं गुहिं का कहऊँ। सब के जरत जरत हौं अहऊँ ।।
उठै आग सो जग महँ, कबहि तौ बेगि बुझाउ ।
कै चलि पावउ आपु तहँ, कै उन्ह निकट बुलाउ[2]।।

1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 370।-4.
2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 328.5-7 दोहा

जात

के व

उदा

वि

युग

अशि

पूर्व

हुई

जि

अर्थ

होने

दूस

प्रदा

यहा

अने

पर

होगी

वि

1-

2-

है, वे भाव में अन्तर्निहित रहते हैं। साधारणतः दिखाई नहीं पड़ते। इनसे विरह भाव के सोने में अलंकार की सुगन्धि मिल जाती है। दूसरे में अलंकार के हटा देने पर अर्थ को क्षति पहुँचती है, भाव बोध नहीं हो पाता। तीसरे प्रकार की अलंकार शैली वहाँ दिखाई देती है जहाँ अलंकार के लिए भाव प्रयोग किया जाता है, भाव के लिए अलंकार का प्रयोग नहीं किया जाता। उर्दू के कुछ शायर तथा रीतिकालीन कवि केशव आदि ने इसका अत्यधिक आश्रय लिया।

चमत्कार-प्रेम मध्यकालीन काव्य रचना की एक विशेष प्रवृत्ति रही है, जिसका मूल संस्कृत के "किरात", "शिशुपाल वध", "नैषध" आदि प्रबन्ध काव्यों में है। शुक्ल जी ने ऊहात्मक विरह वर्णनों की बड़ी प्रशंसा की है क्योंकि इसकी आधारभूत वस्तु सत्य या स्वतः सम्भवी रहती है। इनमें अद्वितीय सादगी रहती है, भोलापन बरसता रहता है, पर उसका क्षेत्र इतना सीमित है कि कविगण उधर नहीं बढ़ सके। जायसी ने ऐसे ऊहात्मक वर्णन किये हैं जिनकी आधारभूत वस्तु का स्वरूप तो सत्य रहता है पर उसका हेतु काल्पनिक रहता है। शुक्ल जी ने इसकी भी प्रशंसा की है।

विरह- वर्णन की वही शैली सर्वश्रेष्ठ है जिसमें विरही या विरहिणी की मर्मस्पर्शी वेदना को व्यक्त करने का प्रयास सर्वोपरि महत्व रखता है, ऊहा अथवा अलंकार आदि का प्रयोग इसी साध्य के साधनों के रूपों में हुआ हो। पर विरह निरा "स्व" परक होने पर विशद नहीं हो सकता। उसके विशदीकरण के लिए "स्व" के साथ जगद् पर पड़ने वाली व्यापक दृष्टि तथा भाव को उत्कर्ष देने वाली कला भी बहुत दूर तक आवश्यक है।

जायसी विरह वर्णन करने वाले कवियों में अग्रणी हैं। उनका प्रतीक-विधान, विरह का सृष्टिव्यापी प्रभाव, भावाश्रित आलंकारिकता आदि उनके विरह-वर्णन में सर्वोत्कृष्ट सहज रूप में चित्रित हैं। इस दृष्टि से यद्यपि

"कन्हावत" को "पद्मावत" की तुलना में स्थापित नहीं किया जा सकता किन्तु ऐसा स्थलों के अभाव के कारण ही सम्भव हुआ है क्योंकि "पद्मावत" की कथा स्वयं कल्पना और इतिहास का संगम है और उसमें व्यक्त प्रेम - विरह साधना- प्रधान है जबकि "कन्हावत" की कथा पौराणिक है जिसमें परिवर्तन का कम अवसर रहा तथापि व्यष्टि में समष्टि और समष्टि में व्यष्टि के एकता- स्थापन द्वारा जायसी ने "कन्हावत" को भी विरह-काव्य शृंखला में गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

"कन्हावत" के अनुषंगी रस -

"कन्हावत" में जिन अन्य रसों की अभिव्यक्ति हुई है उन्हें क्रमशः नीचे दिया जा रहा है -

हास्य रस :- काम रूप फल की प्राप्ति के साधन रूप से हास्य को द्वितीय स्थान प्राप्त होता है। इसका स्थायीभाव हास है। हास्य का आविर्भाव आकारविकृति, वाग्विशेषविकृति, चेष्टाविकृति अथवा अन्य प्रकार की विकृतियों से हुआ करता है। इसका आलम्बन वह व्यक्ति हुआ करता है जिसमें आकार, वाणी और चेष्टा की विकृतियाँ दिखाई दिया करती हैं और जिसे देख- देख कर लोग हँसा करते हैं। ऐसे हास्यास्पद व्यक्ति की चेष्टाएँ उद्दीपन का कार्य करती हैं। आँखें मूँद लेना, मुख का विकसित होना, खिलखिलाना आदि की गणना इसके अनुभाव वर्ग में की जाती है। चंचलता, हर्ष, गर्व इसके व्यभिचारी भाव हैं। हास्य के स्वनिष्ठ, परनिष्ठ तथा स्मित, हसित, विहसित, अवहसित, अपहसित और अतिहसित नामक भेद किये गये हैं।

"कन्हावत" में एक वृद्ध तपस्वी जिसमें वृद्धावस्था के समय रजस् का भाव उदय हो गया, कृष्ण से सेवार्थ एक स्त्री की याचना करने जाता है। उसके

हाथ और कॉख में बेसाखी थी तथा पेट में लोहण्डा बाँधे था। मार्ग में उसके रूप विकार को देखकर सभी यदुवंशी हँसने लगते हैं। उसके पेट को छू-छू कर चिढ़ाने के लिए कोई नाचने लगता है, कोई बातों में उलझाये रखता है। ऐसे हास- परिहास की दशा में हास्य रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। - [कड़वक - 357.]

श्रीकृष्ण द्वारा गोपियों के साथ की गई बरजोरी के प्रसंग में भी हास्य रस की छटा देखने को मिलती है। गोपियाँ तो उलाहना देने नन्द के पास पहुँचती हैं किन्तु रोने का अभिनय करते हुए श्रीकृष्ण उल्टे गोपियों की ही शिकायत करने लगते हैं। इस पर यशोदा गोपियों को फटकार सुनाती है तथा परस्पर विरोधी बातों से सभी हँसने लगते हैं। उसे सुनकर सहृदय जनों में विस्मय-मिश्रित हास्य की सुन्दर गूढ़ व्यंजना प्रकट होती है।

करूण रस :-
---------- कविता का प्रादुर्भाव करूणा से ही उत्पन्न माना जाता है क्योंकि आदि कवि बाल्मीकि के मुख से शोक ही श्लोक रूप में परिणत हो गया था। अत: भवभूति ने "उत्तररामचरित" में शोक को महत्ता स्वीकार करते हुए करूण को ही एक मात्र रस माना तथा आचार्यों ने करूण, अति करूण, महाकरूण, लघु करूण और सुख करूण आदि मात्रात्मक भेद भी कर डाला। इसमें करूण की सर्वव्यापकता ही प्रकाशित हुई है। महाकरूण "कन्हावत" के देवकी विलाप में सर्वाधिक अभिव्यक्त हुआ है। देवकी के परिवेदन का कारण कंस द्वारा मार डाले गये उनके सात पुत्र आलम्बन हैं। आश्रय स्वयं देवकी हैं। सात- सात पुत्रों का वध और आठवें पुत्र के वध की निश्चयता में महान शोक असह्य होने से महाकरूण की तीव्र व्यंजना हुई है। कारण बताते हुए देवकी के विलाप से शोक अत्यधिक उद्दीप्त हो जाता है। कंस द्वारा शिला पर पटक कर नवजात शिशुओं के वध का दृश्य स्मरण होते ही शोक-पारावार उमड़ पड़ता है।

"आठे हनी कवर के पाटा । अस भय बूढ़ देखि हिय फाटा।।"[1]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 46.5

असह्य करूण वेदना से देवकी ने यमुना पार स्थित यशोदा को भी अधीर कर दिया। ममता और करूणा ने यशोदा को इतना अभिभूत कर दिया कि वे बिना यमुना पार आए और विलाप का कारण पूछे न रह सकीं -

" प्रगट न होइ रोइ नहिं पारे। सुने कंस तोहे जिय मारे।।"[1]

कंस का इतना अधिक भय व्याप्त है कि देवकी अपनी व्यथा- कथा किसी से बता भी नहीं सकती और न सहन ही कर सकती है। कंस के ऐसे अत्याचार से देवकी की त्रस्त गात्रता का अनुभाव वर्णन निश्चय ही अनुपम है। देवकी जब अपने को तथा अपने प्रारब्ध को कोसती है तो उनकी ग्लानि विषाद दैन्य रूप संचारी भाव का प्रकाशन हो जाता है -

"आठ पूत जरमे मैं पापिन । आठहु खाई कारी साँपिन।।
ना जानौं केन कोसा रहा। आठौ पूत निपूती कहा[2] ।।"

देवकी को इस असहनीय कष्ट से उबारने वाला कोई नहीं दिखता था। अत: उन्होंने यमुना में डूब मरने का निश्चय कर लिया था। विषाद की तीव्रता में मृत्यु को वरण करने में शोक के संचारी भाव की ही अभिव्यक्ति हुई है।

कृष्ण द्वारा नाग को नाथ कर तथा महेश की बारी का विध्वंस करके चल देने पर पति की प्राण रक्षा के लिए व्याकुल छटपटाती - बिलखती नागिन के क्रन्दन में भी करूणा व्याप्त है। स्वर्ग और पाताल को अपने फणों पर टेकने वाले, अत्यन्त बलवान पति को एक नन्हे बालक के समक्ष असहाय देखकर तथा स्वयं भी छुड़ाने में असमर्थ पाकर नागिन को भय एवं व्याकुलता घेर लेती है। कृष्ण के अपार शौर्य से विस्मय में पड़ी नागिन उनका परिचय पूछने लगती है। इस प्रकार उसकी असहाय अवस्था, दीनता, कातरता और व्याकुलता में शोक से परिपुष्ट करूण रस की अभिव्यक्ति प्रस्फुटित हुई है।[2] "कन्हावत" में इसी प्रकार के कुछ अन्य प्रसंग भी करूण रस के आये हैं।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 44.3-4
2- वही, कड़वक - 46.3-4

जायसी जितने अधिक श्रृंगार रस के कवि हैं उतने अन्य किसी भी रस के नहीं। इसके पश्चात् करूण और वीर रस में उनको सफलता प्राप्त हुई है। इसका कारण सम्भवत: यह है कि मनुष्य के जीवन में इन्हीं तीनों रसों का प्रभुत्व रहता है। प्रेम, उत्साह और शोक समग्र जीवन का न्यूनाधिक सार हैं। शेष स्थायी भाव इन्हीं तीनों में समाहित से लगते हैं।

रौद्र रस :-

"कन्हावत" में नागनाथन का प्रसंग विस्तार के साथ वर्णित है जिसमें वीर तथा करूण रस के साथ रौद्र रस की भी अभिव्यक्ति हुई है। वीर तथा रौद्र रस का इतना सामीप्य सम्बन्ध है कि वे परस्पर घुले-मिले से प्रतीत होते हैं किन्तु वीर रस की अनुभूति "उत्साह" का संचार करने वाली होती है जबकि रौद्र रस की अनुभूति क्रोध की जननी होती है।जहाँ अनिष्टकर्ता अथवा अपमानकर्ता के विनाश की भावना प्रबल होती है,उपकार के बदले अपकार पाने, अनादृत होने, स्वाभिमान को ठेस पहुँचने, अभीष्ट के अपूर्ण एवं अतृप्त रहने और विरोध को न सहन कर पाने के कारण व्यक्ति-विशेष के मन में उत्पन्न हुआ क्रोध भाव रौद्र रस का उत्पादक होता है।

नागनाथन के प्रसंग में दुर्गम पाताल में कृष्ण का जीवित पहुँचना आश्रय नागिन के क्रोध का कारण बनता है।

कहसि रे बाल तूं आतहि आवा । जहाँ जियत केउ जाइ न [पावा]।।
जौं लहि न जागा मोरा पीऊ । तौ लहि भागि जाहि लै [जीऊ]।।
उठहि आइ नाग फुंकारा । बैठि आगि फों-फ्स जरि [छारा]।।[1]

अरे बालक। तू कहाँ मरने चला आया? यहाँ तो कोई जीवित आ ही नहीं पाया। जब तक मेरा पति न जगे, प्राण लेकर भाग जा। अगर

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 75.3-5

वह फुफकारता हुआ उठा तो उस फुफकार की आग में तू जलकर भस्म हो जायेगा।" नागिन की गर्वोक्ति भरी फटकार कृष्ण को सहन न हुई। वे अपना मन्तव्य और दृढ़ संकल्प व्यक्त कर देते हैं -

"जो लइ चले कँवल सें, मोख मुकुति तो देऊँ।
नाहिंत नाथ चलाऊँ, औ बरियाइहिं लेऊँ।।"[1]

नन्हें कृष्ण के दुःसाहसपूर्ण, गर्वित, उद्दीपनकारी वचन नागिन के क्रोधाग्नि के लिए घी के समान बन गया। फिर क्या था, नागिन का क्रोध तीव्रतर हो उठा और वह कठोर वचनों की झड़ी लगाने लगी -

"नागिन सुनत कोह महँ आई। देखहु बालक कर दोठाई।।
कँवलहिं लागि पुहुप अस मूई। काहुँ न पाए भौंर बिछूई।।
जहाँ आइ फिर होइ न गोना। सेउ तुँ बासकि कीन्ह खिलौना।।
जिन एहिं दीप भिंग होइ परसो। जिउ लेइ जाहि कल रै जरवसो।।
जो पतार ते कँवल बिगासा। हाथ चढ़े के छाड़हु आसा[2]।।"

प्रत्युत्तर में असम्भव को भी सम्भव बनाने वाली कृष्ण की दर्पोक्ति और अभिमान क्रोध की उद्दीपनकारी पराकाष्ठा पर पहुँच गए। यहाँ तक कहीं कृष्ण आलम्बन बने हैं तो कहीं नागिन। तथापि नागिन ही आश्चर्यचकित रूप में अधिक प्रकट है। वह कृष्ण के क्रोध से तिलमिला उठती है। नाग का सोते हुए जगकर आकाश में अग्नि की लपटों के समान फुंकार करना भी अनुभाव के अन्तर्गत समझा जाना चाहिए। यहाँ नाग शत्रु द्वारा कृष्ण का जलकर काला हो जाना क्रोध का विनाशकारी परिणाम वर्णित है। कृष्ण का विष से अचेत होना, रक्षा के लिए ब्रह्मा, महादेव- पार्वती और गरुण द्वारा उपचार करुण भाव को जागृत करता है। पुनः "उठा सिंह अस कोपि" कृष्ण का सिंह के समान क्रोध करके नाग को नाथ लेना तथा

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, दोहा- 75.
2- वही, कड़वक 76. 1-5.

विजित नाग पर कमल लाद कर विजयोल्लास में नागिन को फटकारना संचारी भाव में व्यक्त है जो रौद्र रस में परिणत हो गया है।

क्रोध भाव की अभिव्यक्ति कंस के सैन्य- प्रयाण कड़वक 30 से 32 तक में भी द्रष्टव्य है। शत्रु के प्रति कंस की यह दर्प- भरी ललकार क्रोध की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है। मृत्यु रूप शत्रु के प्रति उसका क्रोध देखिए -

"सो है कहाँ सत्रु बरियारा । मारौं खोजि जो सरग- पतारा ।।
जहँ ताकर सुनि पाउँ नाऊँ । कटक सहित छेकौं सो ठाऊँ ।।
इन्द्र होइ इन्द्रासन टारौं । बासुकि होइ पतारहिं फारौं।।
मिरत लोक अस आहि न कोई। जा कहि चढ़ौं जाइ बरि सोई ।।
और बरै अस कोई, मो सौं करै विरोध ।
कहु सो बेगि मोहि नारद, टारौं जेहिक नरमोध[1]।।"

इसी प्रकार कृष्ण के सैन्य- प्रयाण कड़वक 163-69 में कृष्ण की सेना का रौद्र रूप ही व्यक्त है।

वीर रस -

---------- उत्साह नामक स्थायीभाव से परिपुष्ट वीर रस का अभिव्यंजन "कन्हावत" में कई स्थानों पर देखने को मिलता है। यह उत्साह युद्ध, दान, दया और धर्म में प्रदर्शित होने के कारण युद्धवीर, दानवीर, दयावीर और धर्मवीर के चार रूपों में अभिव्यक्त होता है। इसमें नाग, चाणूरादि मल्लों और कंस के साथ कृष्ण के युद्धों का विस्तृत वर्णन किया गया है। काल करट- वध और पर्वत को हाथ से उठा रखने में भी कृष्ण की वीरता का चित्रण किया गया है। किन्तु दोनों स्थानों पर अलौकिकता की प्रधानता के कारण उत्साह विस्मय से मिश्रित है। काल करट के वध में सहस्र योजन भर बाँहें फैलाना और दोनों की गर्दन मरोड़कर गोकुल से मथुरा में कंस के समक्ष फेंक देना, कंस तथा सामाजिक जनों में विस्मयपूर्ण भय

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक- 35.

को उत्पन्न करता है। बालक में इतने बड़े उत्साह को स्थिति सम्भव नहीं है। कंस के मन में भ्रम द्विगुणित हो गया और वह भविष्य की चिन्ता करने लगा। यहाँ उत्साह के साथ विस्मय के मिश्रण से वीर भावाभास हो उपयुक्त है।

"कन्हावत" में मल्लशाला की आयोजना द्वारा जायसी ने वीर रस की योजना की है। इस रंगभूमि में मल्लों का वर्णन रोमांचकारी है। रंगशाला अत्यन्त ऊँचा बना है जिस पर राजा कंस मल्लयुद्ध देखने के लिए बैठा है। मेघाडम्बर छत्र लगा है। चवंरधारी प्रधान सन्नद्ध खड़े हैं। कुवलयापीड हाथी आगे खड़ा है। उसके गन्ध से अन्य गज दूर खड़े हैं। कोटि-कोटि मेघों के समान काले-काले राक्षस, दैत्य-दानव खड़े हैं। -[कड़वक-135.]

वीरों से पूर्ण ऐसी रंगशाला में दैत्यों और ग्वालों का मल्लयुद्ध सुनकर मथुरावासी देखने जुट गए। तीनों लोक में हाहाकार मच गया कि कंस ने विष्णु से युद्ध ठान लिया है। अतः घबड़ाकर ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन्द्र, पर्वत, नाग, सिद्ध, तपस्वी सभी सपरिवार, वाहन और गणों सहित युद्ध देखने आ पहुँचे। ऐसे उत्साहपूर्ण वातावरण में कृष्ण की गर्वोक्ति उद्दीपनकारी है। वे कृष्ण को मात्र बालक समझने वाले अधीर नन्द को धैर्य प्रदान करते हुए दसों अवतारों में अपने वीरतापूर्ण कार्यों का उल्लेख करते हुए उन्हें निश्चिन्त करते हैं और महाभारत में भीम की तरह युद्ध करके मल्लों को पराजित करने का विश्वास दिलाते हैं। [कड़वक-189] क्षत्रियों और वीर ग्वालों की लम्बी नामावली और उनका गर्जन-तर्जन उत्साह को बढ़ाने वाला है। बलभद्र का कृष्ण से आज्ञा लेकर मल्लों समेत कंस को मार डालने का अनुरोध वीरतापूर्ण है। अंगद के समान युद्धभूमि में पाँव रोपने, पुरानी खीज को मिटाने, अनेक दाँवपेंच बताने और अनेक मल्लों को पछाड़ने, गेंद की तरह आकाश में फेंकने एवं उनके मल्लों के यूथ में सिंह के समान कूदकर भगाने में भी सामाजिकों पर उनकी वीरता का प्रभाव पड़ता है। [कड़वक-190

शत्रु चाणूर का युद्ध-स्थल में पधारना, गर्वीली उक्ति से इन्द्रादि अग्नि को भी आतंकित करना उसकी वीरता की प्रतीति कराता है। [छन्द-195] कृष्ण और चाणूर बार- बार भिड़ते हैं, गर्व प्रकट करते हैं, गदा और धनुष-बाण से विस्मयकारी युद्ध करते हैं। अन्त में कृष्ण की अलौकिक बाहों से चाणूर का अन्त हो जाता है। यह देखकर मल्लों सहित कंस काँपने लगता है और कृष्ण कंस से पारितोषिक प्राप्त कर सभी ग्वाल-बालों के साथ हँसते- गाते- बजाते घर लौट पड़ते हैं।

शत्रु चाणूर आदि मल्ल यहाँ आलम्बन हैं, उनके गर्वीले वचन उद्दीपन विभाव हैं। गदा, धनुष-बाण से छलपूर्वक घेर- घेर कर लड़ना अनुभाव, व गर्व, आवेग, उत्सुकता आदि संचारी भाव की सृष्टि करते हैं। इनसे परिपूर्ण उत्साह नामक स्थायी भाव से परिपुष्ट होकर वीर रस व्यक्त करते हैं। धनुष यज्ञशाला में पहुँचे हुए कृष्ण को विभिन्न लोगों ने अपनी भावनात्मक दृष्टि से भिन्न- भिन्न रूपों में देखा था। बलशाली कृष्ण अपने भ्राता पराक्रमी बलराम के साथ जैसे ही यज्ञशाला में पधारे,कृष्ण ने धनुष तोड़ डाला। इसी के बाद अनेक वीर और मल्ल राक्षसों, कुवलयापीड हाथी, रुक्म, जरासन्ध, मुष्टिक आदि के साथ भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध में परस्पर मारामारी, गर्जन- तर्जन और संहार का पारम्परिक वर्णन उसी तरह प्राप्त होता है जैसा चाणूर के साथ युद्ध में हुआ था। यहाँ कोई अतिरिक्त या विशेष उत्साह का भाव नहीं प्रदर्शित हुआ है।

"पद्मावत" में उत्साह के अनेक रोमांचकारी स्थल सहृदय सामाजिकों में वीर रस की प्रतीति कराते हैं। "कन्हावत" में ऐसे दृश्य दृष्टिगत नहीं होते। कवि की प्रौढ़ता में न्यूनता यहाँ स्पष्ट परिलक्षित हो जाती है। अलौकिकता के समावेश से भी वीर रस की वर्णना यथार्थ से दूर होकर सामाजिकों के हृदय में वीर रस की अभिव्यक्ति में बाधक बनी प्रतीत होती है।

दयावीरता की अभिव्यक्ति कृष्ण द्वारा कंस- वध के पश्चात् बंदियों के मोक्ष के सुन्दर अवसर पर चरितार्थ हुई है। कृष्ण ने न केवल अपने माता-पिता को बन्धन-मुक्त किया वरन् अन्य सभी बन्दियों को भी छुड़ाया। दयामिश्रित उत्साह की शोभा में तब और अधिक अभिवृद्धि हो गई जब उन्होंने अपने शत्रु कंस के पिता को भी मुक्त कराया तथा बदले में उससे आशीष लाभ किया। कंस के पिता ने हत्यारे पुत्र का पिता होने पर आत्मग्लानि प्रकट की और कंस के वध का समर्थन किया। उसके ये विनीत वचन उद्दीपक बनकर अनुभावित हो गए। कंस के पिता को स्वार्थत्याग किए कृष्ण द्वारा राज्याभिषिक्त किया जाना दान और दया दोनों के परिणामस्वरूप शोभादायक हो गए हैं। अपने अन्तर्मन में कृष्ण के प्रति प्रेम धारण किए हुई रानियों का कृष्ण द्वारा ग्रहण अनुकम्पा व्यक्त करता है।

कृष्ण द्वारा दान और दया का एकत्र भाव धर्मशाला चलाने में प्राप्त होता है। धर्मशाला में दान क्रिया के अन्तर्गत् समस्त याचक आलम्बन विभाव हैं। कृष्ण की दान प्रशस्ति उद्दीपन विभाव हैं। याचकों का आदर-सत्कार तथा याचनानुकूल दान की प्राप्ति अनुभाव के अन्तर्गत् वर्णित है। {कड़वक- 333.}

इसी प्रसंग में धर्मवीरता का भी भाव दर्शनीय है। दान आदि कर्म धर्म के अन्तर्गत् माने जाते हैं जो वृद्धावस्था में पुण्य अथवा मोक्ष के लिए कल्पित हैं। धर्मशाला वही स्थान है जहाँ धर्म प्रधान कार्य किए जाते हैं-

"पंडित पढ़हिं सासतर, जोगी पढ़हिं सो जोग।
कन्ह गुपुत तप साधै , परगट माने भोग।।"

शास्त्र- अध्ययन, योग- साधना और तप- साधना का धार्मिक वातावरण प्रस्तुत किया गया है जो धर्मवीर रूप रस का आलम्बन है।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, दोहा- 333.

"कन्हावत" में युद्ध-वीरता का दान, धर्म, दया वीरता की अपेक्षा उत्कृष्ट वर्णन उपलब्ध होता है। "पद्मावत" में तो गोरा का वीरत्व जायसी की अप्रतिम प्रतिभा की प्रसूति है।

भयानक रस -

---------- भयानक रस का स्थायीभाव "भय" होता है। भयोत्पादक पदार्थ इसके आलम्बन हैं और तद् तद् पदार्थों की चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव होती हैं। कंस स्वप्न में देखता है कि कोई वंशी बजाते हुए आया, ऊपर चढ़कर घोर गर्जना की तत्पश्चात् क्रोधित होकर काल रूप में दिखाई पड़ा। तत्क्षण लुप्त भी हो गया। इन भय की उद्दीपनकारी चेष्टाओं से कंस का हृदय काँपने लगा, ज्ञान विलुप्त हो गया। ये चेष्टाएँ अनुभाव रूप में व्यक्त हुई हैं। अदृश्य भयानक वस्तु के पुनः प्रकट होने की आशंका से निर्निमेष दृष्टि से देखते रहना, निद्रा न आना तथा स्वप्न के रहस्य के ज्ञान के लिए शुक्र और नारद से विचार विमर्श करना आदि व्यभिचारी भाव हैं। इनसे आविर्भूत भय द्वारा परिपुष्ट भयानक रस की अभिव्यक्ति हो गई है।

सौख्याधारी ऋषीश्वर के शाप से व्याकुल गोपों का उपाय के लिए कृष्ण के पास जाने में भय से अनुगत भाव का वर्णन हुआ है। अन्य भावों का वर्णन न होने से यहाँ केवल भय की ही सृष्टि हो पाई है। अतः भयानक रस की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हो पाई।

भय, संशय और धैर्य भावशबलता का किंचित् दर्शन हमें वसुदेव तथा कृष्ण को लेकर गोकुल जाते हुए यमुना के तट पर दिखाई देता है। यमुना का विकराल रूप देखकर वसुदेव भयान्वित हो जाते हैं। आगे जाने पर उन्हें डूबने का संशय होता है और वापस लौटने पर कंस द्वारा कृष्ण को मार डाले जाने की आशंका घेर लेती है। धैर्य धारण कर वे पार उतर जाते हैं।

अद्भुत रस - "कन्हावत" में अद्भुत रस के भी अनेक मनोरम अभिव्यंजक स्थल हैं जहाँ लौकिक और अलौकिक दोनों वस्तुओं को विस्मय का आलंबन बनाया गया है। नाग पर कमल लादे और स्वयं विराजमान कृष्ण को देख कर पहिचान न सकने के कारण अनेक संशयात्मक तर्क- वितर्क करते हुए गोपों के मन में जो कौतूहल जगता है वह इतना प्रबि प्रबल है कि उन्हें कृष्ण के डूब जाने का शोक ही अविस्मृत हो गया। सम्पूर्ण यमुना जल पुष्पमय हो गया जो उनके विस्मय को और अधिक बढ़ाने लगा। चारों ओर से सब दौड़े चले आ रहे थे। दृश्यमान उस अलौकिक वस्तु का वे नामकरण नहीं कर पा रहे थे, सम्भ्रम में पड़े थे। कृष्ण को जानकर वे अतीव ब हर्षित हुए तथापि उनके नेत्रों के समक्ष दृश्य अलौकिक एवं विस्मयकारी ही बना रहा जो अद्भुत रस को ही पुष्टि करता है। कृष्ण के मिलते ही सारा दु:ख- भय सुख में बदल जाता है।

राधा और उनकी सखियों का कृष्ण-माया-निर्मित दुर्ग में घिर जाने का दृश्य भी आश्चर्यजनक है। अकस्मात् दुर्ग बन जाना तो विस्मय का हेतु ही है, पुन: उसमें घिर जाना, मार्ग बन्द हो जाना उद्दीपन विभाव हैं। रक्षार्थ उपाय को जिज्ञासा में परस्पर विलोकन अनुभाव है तथा उपाय न सूझने पर पुकारना, छटपटाना, व्याकुलता-मिश्रित विस्मय के संचारी भाव रूप में उपस्थित हैं। यद्यपि कवि ने "अचम्भा" शब्द का प्रयोग किया है जिसमें "स्वशब्दवाच्यत्वदोष" का आभास लगता है किन्तु वह केवल स्ववाचक अनुवादमात्र है।

कुब्जा के जिस अलौकिक सौन्दर्य की सृष्टि जायसी ने की है वह पूरे काव्य में सर्वाधिक विस्मयकारी है। एक सहस्र सूर्य और सोलह चन्द्रों के एक साथ होने वाले आलोक से भी वह अधिक प्रकाशमान थी। हाट में निर्निमेष दृष्टि से देखते हुए विक्रेता इतने मुग्ध हो गए कि ग्राहक माँगता कुछ था और देते कोई अन्य वस्तु। उससे सारा रनिवास जगमगा गया, सब रानियाँ

उसके कर्मनार्य दौड़ पड़ीं, देवी अथवा अप्सरा उर्वशी के भ्रम में स्तुति करने लगीं। यही दशा कंस की भी हुई, वह तो मूर्च्छित तक हो गया।

राधा और चन्द्रावली को दिखाए गए विराट् रूप में भी अद्भुत रस का परिपाक हुआ है। इसी से मिलता-जुलता रूप गोरखनाथ तथा उनके शिष्यों द्वारा दिखाई गई परकाया-प्रवेश आदि कलाओं में भी मिलता है। यद्यपि यहाँ मात्र योगी रूप आलम्बन का चित्रण कम हुआ है तथापि अभीष्ट विस्मय रूप स्थायी भाव को उद्बुद्ध करने में समर्थ हो जाने के कारण अद्भुत रस का आस्वाद पूर्ण हो गया है। कंस को मारने पहुँचे हुए कृष्ण को विविध लोगों द्वारा अपनी-अपनी भावना के अनुरूप देखे जाने में भी यही बात सार्थक होती है।

"एक बार जो औतरि मरै। सो दोसरैं कहसैं औतरैं।।"[1]

कृष्ण को मारने के लिए नन्द महर के घर पहुँची हुई राक्षसी पूतना का प्रच्छन्न रूप विस्मयकारी दिखाया गया है। उसका मीठी-मीठी बातें करना सामाजिक जनों में विस्मय को अधिक तीव्र बनाता है। नन्द, यशोदा आदि मृत पूतना को देखते ही अचम्भे में पड़ जाते हैं कि कृष्ण ने इसे कैसे मारा होगा। उन्हें इस बात की चिन्ता होने लगी कि कंस अपनी बहिन की मृत्यु से रुष्ट होकर पता नहीं क्या कष्ट दे। वे डर से काँपने लगे। यहाँ राक्षसी की मृत्यु से सबका आश्चर्यचकित होना अनुभाव तथा घबड़ाकर कंस के भय से गाँव त्यागने का विचार संचारीभाव है जिससे अद्भुत रस का ही परिपाक हुआ है। आलम्बन पूतना का सौम्य रूप भय को नहीं प्रकट करता और न चेष्टाएँ ही भयानक हैं। अतः भयानक रस का यहाँ परिपाक नहीं हुआ है। पूतना की मृत्यु में अलौकिकता अथवा विधि की विडम्बना विस्मय की सृष्टि करती है।

1- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 39.2

शान्त रस:-

शान्त रस का स्थायी भाव स्वात्मविश्रान्ति रूप शम या तत्व ज्ञानज निर्वेद माना जाता है। इसके आश्रय उत्तम प्रकृति के व्यक्ति, वर्ण कुन्द श्वेत अथवा चन्द्र श्वेत तथा देवता श्रीभगवान नारायण देव हैं। अनित्यता अथवा दुःखमयता के कारण सम्पूर्ण सांसारिक विषयों की निःसारता का ज्ञान ही इसका आलम्बन विभाव है। पवित्र आश्रम, भगवान की लीलाभूमियाँ, तीर्थस्थान, रम्य कानन, साधु- सन्तों की सेवा आदि इसके उद्दीपन विभाव माने गए हैं। रोमांच, अश्रु, ग्लानि, भीरुता, पश्चात्ताप आदि अनुभाव हैं तथा हर्ष, मति, धृति, स्मरण, विबोध, जीव-दया आदि व्यभिचारी भाव हैं। लौकिक मायाजाल और सुख- दुःखों का तत्वज्ञान के आधार पर उच्छेद कर उनसे विशिष्ट रूप से विरक्ति की भावना रूप निर्वेद से पुष्ट शान्त रस का उसी प्रकार पार्यन्तिक आस्वाद सिद्ध है जैसे पुरुषार्थ चतुष्टय में मोक्ष का। इसी कारण भरत के नाट्यशास्त्र में एक स्थान पर शान्त रस को प्रमुख मानकर रति आदि आठ स्थायी भावों में उसी से उत्पन्न और उसी में विलीन होते दिखाया गया है -

"स्वं स्वं निमित्तमासाद्य शान्ताद्भाव: प्रवर्तते ।
पुनर्निमित्तापाये च शान्त एव उपलीयते[1] ।।"

श्रीकृष्ण जब समझ जाते हैं कि उनका तप समाप्त हो चुका, काल निकट आ गया और शीघ्र ही स्वर्ग-गमन का बुलावा भी आ गया तो वे अपने भाई बलराम से यह रहस्य प्रकट कर देते हैं। कुटुम्बी जनों को प्रबोध देने और उनका समाधान करने का भी भार भाई पर ही छोड़ देते हैं। किन्तु इस अकल्पित अचानक असहनीय पीड़ा को माता- पिता, भाई- बन्धु और अन्य प्रेमी जन नहीं सहन कर पाते। वे रोने- बिलखने और कृष्ण को मनाने लगते हैं।

1- आचार्य भरत का नाट्यशास्त्र , 6- 108.

इस पर श्रीकृष्ण उनसे संसार की असारता का ज्ञान कराते हुए कहते हैं -

"को काकर को काकर, माया मोहु सब आहि ।
मोह करहु जियँ समझु, औ समुझहु जियँ आहि।।"[1]

"यह दृश्यमान सब कुछ माया- मोह है। कोई किसी का नहीं है। हृदय में ऐसा अनुभाव करके सन्तोष करो।"

इसी के साथ वे जन्म- मृत्यु का रहस्य भी समझाते हैं -

"मरउ जीउ मरन सबु [?] होई । जो रे उवा अँथवा पुनि सोई।।
कोउ न रहा आइ संसारा । जो मो फेरि न भा अवतारा ।।
झूठा अंध पिरिथिमीं, जग माया लिपटान ।
मोह कर आदि चला सब, औ पाछैं पछितान।।"[2]

"जीव चल बसा, मृत्यु ही यहाँ सत्य है। जिसका उदय हुआ है उसका अस्त होना ही है। यही स्वरूप शान्त रस का आलम्बन विभाव है।

समस्त पृथ्वी का छूट जाना और अनिष्ठ प्रेम सम्बन्ध रूप मोह का टूट जाना उद्दीपन रूप में उल्लिखित है -

"मारसि बुझकी गयउ हिराई । रोवे जगत लाग समुझाई ।।
अब रहु भए बाट बटाऊ । मधुबन लौटि न म ऐहहिं काऊ।।"[3]

आश्रय रूप समस्त मथुरावासियों का रुदन, कृष्ण का लौटकर कभी मधुबन न आने का पश्चात्ताप तथा जीव के पथ-पथिक रूप पर ग्लानि होना अनुभाव रूप में सूचित है। "हर- हरि कहि बहुरा सँसारा।" सब लोग हर हरि कहकर लौट आए और उन्हें संसार के स्वरूप तथा आत्म-स्वरूप का ज्ञान हो गया। यही शान्त रस का व्यभिचारी भाव है। इस प्रकार जायसी के भोगवाद का मनोवैज्ञानिक शान्त रस में पर्यवसान हो गया

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, दोहा- 363.
2- वही, कड़वक- 364
3- वही, कड़वक- 364. 3-4

कड़वक 342- 345 में श्रीकृष्ण के विराट स्वरूप के दर्शन द्वारा तथा 350- 356 के अन्तर्गत् श्रीकृष्ण और गोरखनाथ के भेंट प्रसंग में भी शान्त रस का ही उद्घाटन हुआ है। प्रथम में तत्वज्ञान से और द्वितीय में लौकिक सुखों के भीतर जल में कमल की भाँति तटस्थ रहकर निर्वेद के द्वारा शान्त रस की प्रतिष्ठा हुई है। पूर्व की भाँति इन प्रसंगों में भी आलम्बन, उद्दीपन, आश्रय, अनुभाव और संचारी भाव आकलनीय हैं।

वात्सल्य रस :-

भक्ति, वात्सल्य और शान्त रसों की स्थिति के विषय में आचार्यों में बड़ा विवाद चला आ रहा है। पुत्र- स्नेह को स्थायीभाव मानकर वात्सल्य का निदर्शन, देवि देवविषयक रति के हेतु से भक्तिरस की प्रतिष्ठा तथा निर्वेद को स्थायीभाव बताकर शान्त रस की स्थिति स्वीकार की गई। काव्य प्रकाशकार मम्मट तथा साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने वात्सल्य रस का महत्व और पृथक् रसवत्ता का अनुमोदन किया है। तदनुसार "कन्हावत" में बालकृष्ण द्वारा गोपियों के साथ की गई चपल चेष्टाओं के प्रसंग में वात्सल्य रस देखा जा सकता है। कृष्ण यहाँ आलम्बन हैं। उनके द्वारा की गई बाल- सुलभ चपल चेष्टाओं को छिपाने के लिए रोने लगना और उल्टे गोपियों की शिकायत करना उद्दीपन विभाव हैं, जैसे :-

> "[दिधि] जलोदैं कन्ह स्वाई । आपु रूप भये कोधुकेउआई ।।
> [दिधि] छिये ओठों उदमादीं। हसि बारै सौं आइ बेवादीं।।
> [जहँ] न रहहिं दुहउ औरवरा। तहँ धरि बार मोर कझोरा।।"[1]

नन्द और यशोदा कृष्ण और गोपियों के मध्य परस्पर शिकायत सुनने वाले आश्रय हैं। पुत्र- स्नेह के कारण कृष्ण में मुग्धत्व, निर्दोषत्व, बालस्वभाव देखना अनुभाव है -

> "बालक मोर दूध कर पोवा। सो कत खिझावहिं जो अस रोवा।।"[2]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 214, 1-2.
2- वही,

बच्चों के इस आपसी झगड़े- झन्झट को सुनना तथा परस्पर आरोप-प्रत्यारोप में हर्षित होना व्यभिचारी भाव है। नन्द तो उनका बाल-स्वभाव देखकर हर्षित होते हैं कि कोई उनमें से अपना दोष नहीं कह रहा था। वे दुःखी हो रहे थे कि झगड़ा- झन्झट करना उचित न था-

"नन्द के मन कछु दुःख कछु हसो। सये न कोइ गोपी जन बसो[1]।।"

यशोदा तो पुत्रस्नेह के कारण कृष्ण के सम्बन्ध में दोष सुनना ही नहीं चाहती। वे उलटे गोपियों को ही फटकारती हुयी यहाँ तक कह डालती हैं -

"जो रे सम जोबन मैमाती। तहवाँ जाहु जोइ जिय साँती ।।
बारहिं बार केवादे आईं। गोवहु नारिहं हो नैन झुठाई[2] ।।"

यहाँ सर्वत्र यशोदा और नन्द में पुत्र स्नेह के कारण वात्सल्य रस की ही अभिव्यंजना हुई है। इसे संयोग शृंगार रस में इसलिए नहीं अभिव्या-लित किया जा सकता क्योंकि गोपियाँ भले ही युवती रही हों किन्तु कृष्ण तो दुधमुँहे बच्चे ही थे। अतः प्रेमीयुगल की न रति है और न प्रणय-कलह ही है वरन् बाल- सुलभ छोटे- छोटे झगड़े हैं। साथ ही गोपियों का नन्हें बालक श्रीकृष्ण के मनमोहक रूप और सौन्दर्य एवं चंचल स्वभाव के कारण खिझाना ही अभीष्ट रहा है। अन्यथा वे झगड़े की शिकायत न करतीं। "सूरसागर" में ऐसी अनेक बालसुलभ चपलताओं का वर्णन करके सूरदास वात्सल्य रस के सम्राट् कहलाने लगे। पूरे "चन्दायन" में वात्सल्य रस का यही जीता- जागता अवसरानुकूल चित्र उपस्थित हुआ है।

"पद्मावत" का वात्सल्य रस "चन्दायन" की अपेक्षा कुछ अधिक विस्तृत और परिपुष्ट है। रत्नसेन द्वारा जोगी बनकर सिंहल प्रस्थान करने पर उसकी माता का विलाप माँ की ममता का सुन्दर निदर्शन है।

1- "चन्दायन" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 215-1.
2- वही, कड़वक 214. 6-7.

वह तुलसी की कौशल्या और सूर की यशोदा की ही भांति अपने पुत्र के खाने, पीने, सोने, पैदल चलने, धूप आदि सहने के भावी कष्टों का स्मरण करके द्रवित हो उठती हैं। इस सुख के अनिश्चय और शंका की अभिव्यक्ति में जिस संचारी भाव का उपस्थापन हुआ है उससे सहृदय-हृदय में वात्सल्य रस का आस्वाद ही प्राप्त होता है।

भक्ति रस :- भक्ति रस को रस रूप में प्रतिष्ठित करने वाले मधुसूदन सरस्वती और रूप गोस्वामी ने इसे परम रस रूप माना है। पण्डित राज जगन्नाथ भी भक्ति रस को स्वतन्त्र रस मानते हैं। सबसे पहले पण्डितराज ने ही अकाट्य तर्कों के आधार पर इसकी स्थापना करते हुए लिखा है - भगवान जिसके आलम्बन हैं, रोमांच, हर्ष, अश्रुपात आदि जिसके अनुभाव हैं, भागवत आदि पुराण- श्रवण के समय भगवद्भक्त जिसका प्रकट अनुभव करते हैं और भगवान के प्रति अनुरागस्वरूपा भक्ति ही जिसका स्थायी भाव है, उस भक्ति रस का शान्त रस में अन्तर्भाव नहीं किया जा सकता क्योंकि अनुराग और विराग परस्पर विरोधी हैं।

यहाँ शान्त और भक्ति में भेद का आधार वैराग्य और अनुराग के कारण प्रदर्शित किया गया है।

"रतिर्देवादिविषये" में आदि शब्द के द्वारा ऋद्धि- सिद्धि प्राप्त ऋषियों- मुनियों, साधकों- सन्तों की ओर भी संकेत है क्योंकि भक्ति भी चित्तवृत्ति की पृथक् अभिव्यंजना के कारण ऋषियों- मुनियों में भी ईश्वर की भांति ही भक्ति देखी जाती है और इनसे भी पुरुषार्थ की सिद्धि होती है। ये भी अमोघ फलदाता हैं। अतः इनका भजन और सेवा भी भक्ति रस के अन्तर्गत् मानी जानी चाहिए।

"कन्हावत" में श्रीकृष्ण की प्रेरणा से सोलह सहस्र गोपियाँ इतने ही प्रकार के पकवान्न लेकर जीवन भर अन्न न ग्रहण करने वाले और केवल दूर्वा का सेवन करने वाले दुर्वासा ऋषि को खिलाने जाती हैं। वे यमुना लाँघने

का कष्ट उठाकर दुर्वासा के पास पहुँचती हैं और प्रणाम करती हैं। यह सेवा और अनुराग भक्ति रस का स्थायीभाव है। सेवा अयाचित प्राप्त होती है और दुर्वासा को भी ऐसी ही मिली। दुर्वासा को गोपियों द्वारा सोलह सहस्र प्रकार के अन्न खिलाकर तृप्ति का अनुभव अनुभाव है। छप्पन कोटि पुत्र-प्राप्ति के आशीष से गोपियों का हर्ष संचारीभाव रूप में व्यक्त है। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय के दाता दुर्वासा भी भगवत्कृपा से उन्हीं के समान अमोघ फलदाता हैं। पूरे प्रसंग से भक्ति रस स्पष्टतः अभिव्यक्त है।

"कन्हावत" में रसों के अतिरिक्त भावोदय, भावसन्धि, भावशक्ति और भावशबलता के भी मनोरम उदाहरण मिलते हैं। "औत्सुक्य" भाव के उदय का एक अत्यन्त हृदयस्पर्शी उदाहरण है- कंस की रानियाँ कुब्जा से श्रीकृष्ण का दर्शन कराने का अनुरोध करती हैं। उनके श्रवण श्रीकृष्ण के गुण-श्रवण से तो तृप्त थे किन्तु नेत्र दर्शन के लिए परम व्याकुल। हृदय में परमात्मा के दर्शन की अव्यक्त पीड़ा भी व्यथित कर रही थी। श्रवण-नेत्र की पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा में कर्णों को विजय मिली। इससे नेत्र परास्त होकर आकुल हो उठे। नेत्र-तुष्टि से हृदय को भी शान्ति मिलती किन्तु वह भी साक्षात् दर्शन के अभाव से क्षुब्ध होता रहा। इसी औत्सुक्य का दर्शन जायसी ने निम्न दो पंक्तियों में जीवन्त कर दिया है - कड़वक 292 दे

इसी प्रकार श्रृंगार रस के अन्तर्गत् "गर्व" की शान्ति का मनोरम उदाहरण यह है- "श्रीकृष्ण मार्ग में राधा जी को अकेली पाकर उनसे प्रणय- याचना करते हैं -

> "भोग- भगति मन मैल न कीजै।
> रति मांगै किरति सौं दीजै[1]।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 219.6

राधा का सौभाग्य गर्व उन्हें फटकार देता है। ज्योतिषियों द्वारा कथित विष्णु रूप पति के अतिरिक्त किसी अन्य के पास वे क्षण भर रूकना भी पाप समझती हैं किन्तु जब उन्हें नेत्रों के समक्ष विष्णु का स्वरूप दिखाई पड़ गया तो उनका सारा गर्व तिरोहित हो गया, मन लजा गया, दृष्टि नीची हो गई, मुख पर घूंघट का आवरण पड़ गया। कृष्ण के स्पर्श से चन्द्रमुखी काँप उठी।

"करत जो बात गरब कै ढीठी। मन लजानि कै तिरछुत दीठी।।"[1]

भाव-सन्धि :-

अमर्ष और सौभाग्य-गर्व की सन्धि वहाँ प्राप्त होती है जहाँ कृष्ण द्वारा राधा से प्रणय-याचना करने पर राधा का अमर्ष फूट पड़ता है। वे श्रीकृष्ण को फटकारती हुई कहती हैं :-

"तो रिसानि राधी गोपिता। सुनै न पार मोर अस पिता।।
आइ क करब होलादे डारा । तूं अकेल कह कर बैसारा[2] ।।"

कारण पर- पुरुष द्वारा धृष्टतापूर्ण बात थी जिससे राधा के सतीत्व को आघात पहुँचा तो किसी भी पतिव्रता के शील के विरुद्ध होता है। इसके पीछे राधा का सौभाग्य गर्व प्रभविष्णु था। ज्योतिषियों ने विष्णु को उनके पति होने की भविष्यवाणी की थी। तब भला वे परपुरुष का आक्षेप क्यों सहन करती? उनके लिए ऐसे पुरुष के पास क्षण भर रूकना भी पाप था, बात करना तो दूर रहा। उनका सौभाग्य-गर्व देखिए -

" हौं ताकर धनि दूलह, अरग दसा जेहि नाऊँ[3]।।
तपत रहौं तहाँ अन , पाप होइ जेहि ठाऊँ ।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 225.4
2- वही, कड़वक 221. 1-2
3- वही, कड़वक 225. दो.

भावशबलता :-

अनेक भावों के युगपत् दर्शन श्रीकृष्ण द्वारा राधा को अपने स्वरूप दर्शन के अनन्तर होते हैं। श्रीकृष्ण के अपने पति होने का जब विबोध राधा को हो जाता है तो वे श्रीकृष्ण को अपना पति निश्चय कर लेती हैं। उनकी पूर्व की गर्वीली उक्तियाँ तिरोहित हो जाती हैं, मन लजा जाता है। फलस्वरूप मुख पर घूँघट का आवरण डाल लेती हैं। कृष्ण द्वारा पकड़ ली जाने पर उनका चन्द्र-मुख कम्पायमान हो उठता है। आश्चर्य और हर्ष का ब मिश्रित भाव उन्हें आकृष्ट कर लेता है। तत्काल बन्धुजनों की बिना अनुमति के किए जाने वाले प्रेमाचरण से अनर्थ की आशंका सताने लगती है वे चिंतित हो उठती हैं कि किस प्रकार अस्पृश्य घर पहुँच जाएँ किन्तु एकान्त स्थान पर पकड़ कर ले जाने पर वे अचेत हो जाती हैं, उनका मन किंकर्तव्यता से विमूढ़ हो जाता है। यहाँ विबोध, गर्व, व्रीड़ा, शंका, किंकर्तव्यविमूढ़ता और त्रास का भाव सौन्दर्य एकत्र सहज रूप से संयोजित हुआ है :-

" बात बिधौं धनि चतुर सयानी। अमर कोफ गीता गुन ग्यानी ।।
भूति सिखाउ तोहि धनि सदा। अहे पुरूख मौं कह बिधि बदा ।।
कहत जो पण्डित अरथ बिचारी। सो कन्हु मथुरो रूप- मुरारी।।
करत जो बात गरब कै बीठी । मन लजानि कै तिरछुत दीठी।।
घूँघट काढ़ि रही मुख झाँपी । गहि तिय लीन्ह जोन्ह मुख काँपी।।
हौं रे दई जा कहँ घुत गढ़ी । तेहि के सेज आइ हौं चढ़ी ।।
अब कस करौं कौन चतुराई । जेहिं अछूट घर पावउँ जाई ।।
जेहि घुत सौंर- सुपेती, लेइ गा कन्ह मुरारि ।
राह गहे बन राही , भइ अचेत बर नारि ।। "

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक -225.

अलंकार -

जायसी का "कन्हावत" लोक-रसायन है। लोकरंजन उनका महदुद्देश्य है, रस-भाषा साधन है।

पुराणों की शास्त्रीय कथा को सरस लौकिक रूप देने का श्रेय एकमात्र जायसी को ही है। यहाँ तक कि काव्य को मधुर, हृदयग्राही और सुबोध्य बनाने के लिए उन्होंने स्वानुभूत लौकिक पदार्थों, वस्तुओं और प्रकृति के दृश्यमान रूपों को ही उपमानों के रूप में प्रयोग किया। इनमें यथानुकूल गुणों का समावेश किया तथा रूढ़ और प्रसिद्ध अलंकारों ने उनकी कविता का सर्वाधिक श्रृंगार किया। यह भी बहुत कुछ अनायास ही हुआ। सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि छोटी सी छोटी बात को प्रभावशाली और सुग्राह्य बनाने के लिए वे प्रकारान्तर से समानान्तर उक्ति वैचित्र्य का न्यास करते हैं जिसमें लोकप्रियता, अनुरागिता, लोकजनवक्रता और स्वभावोक्ति, मुख्यता प्रमुखतया छायी हुई है।

शब्दालंकार और अर्थालंकार :- जायसी के "कन्हावत" में दोनों प्रकार के अलंकारों की वास्ता विद्यमान है। लोक में परस्पर सम्भाषण के अवसर पर भी कथन में बाँकपन मिश्रित रहता है, जिसकी परिणति अलंकार के रूप में होती है। "कन्हावत" में ऐसे ही लोकप्रसिद्ध अलंकारों की ही भरमार है। जहाँ अलंकार नहीं है वहाँ वचनवक्रता अवश्य ही आह्लादकारिणी हुई है।

शब्दालंकार :- शब्दालंकारों में अनुप्रास अलंकार आपाततः तथा अयासतः दोनों प्रकार से काव्य में प्रयुक्त होते हैं। प्रायः उनकी मात्रा सर्वाधिक होती है जिससे काव्य में माधुर्य गुण का समावेश हो जाता है। "कन्हावत" में भी इसके सर्वाधिक उदाहरण अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं।

" कतहुँ छाहँ कतहु हो धूपा । कतहुँ भ्रमत जन अति अंध कूपा ।।
कतहुँ कतहु छाँड अस, जहाँ न छाँह न धूप ।"[1]

" नवल नेह नव प्रीतम आजु । नव सुहाग तिय धनि लेह साजु ।।"[2]

अलंकारों के कुछ उत्कृष्ट उदाहरण नीचे क्रमशः दिये जा रहे हैं -

यमक :- जहाँ अर्थ रहते हुए भी भिन्न अर्थ वाले वे ही वर्ण फिर से वैसे ही सुनाई पड़े, वहाँ यमक अलंकार माना जाता है। "कन्हावत" में भी पंचमी पर गाती हुई शृंगारमण्डित गोपियों के गीत और रूप का एकत्र वर्णन यमक द्वारा अवलोकनीय है -

"देखत कौतुक जगत भुलाना । भई बसंत बसंत बजाना[3] ।।"

"गोपियों के कृत्य को देखकर लोक विमुग्ध हो गया। सोलहों शृंगार और बारहों आभूषणों से वे मूर्तिमान जीवंत वसन्त ऋतु हो गईं, [उनके भीतर स्वर से] संगीत का द्वितीय राग वसन्त भी बजा गया।"

यहाँ प्रथम बसन्त का अर्थ वसन्त ऋतु और द्वितीय का वसन्त-राग है।

चित्र-विचित्र परिधान धारिणी प्रस्तुत गोपियों में अप्रस्तुत वसन्त ऋतु के आरोप से रूपक अलंकार और उपमान वसन्त-राग से उपमेय गीत स्वर की श्रेष्ठता के स्थापन से व्यतिरेक वस्तु अलंकार भी परिलक्षित है।

श्लेष :- "कन्हावत" में ऐसे शब्द भी प्रयुक्त हैं जिनका एक से अधिक अर्थ निकलता है। इसमें जहाँ पर वक्ता के दूसरे अर्थ भी अनुप्रेत होते हैं वहाँ श्लेष को अर्थालंकार के भीतर माना जाता है किन्तु जहाँ पर वक्ता के द्वारा एक ही अर्थ अभिप्रेत होने पर दूसरे अर्थ श्रोता के मन पर प्रकट हो तो शब्दालंकार होता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

"धनि जो अंकुर कोर न वहै । अधिक नवे तो हिय लेह गहै[4] ।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, दोहा- 215.7
2- वही, दोहा - 223.2
3- वही, : कड़वक - 249.7
4- वही, : कड़वक - 264.3

कवि ने अनुभव-सिद्ध बात कहने में "धनि" और "धनुक" के मध्य जो तद्रूपता दिखाई है वह "नवे" और "गहे" में श्लिष्टार्थ के कारण अत्यधिक मनोरम और साकार हो उठी है। धनि अर्थात् नारी अधिक नम्र अथवा अधिक नवेली होने पर रसिकजन के हृदय में बस जाती हैं। इसी प्रकार धनुष भी अधिक झुकने पर ही वेग की अधिकता होने से हृदय पर अधिक गहरा घाव करता है। यहाँ नारी-पक्ष में "नवै" का अर्थ नम्र या नवीन और "हियगहे" का अर्थ हृदय में बस जाने से है। धनुष पक्ष में "नवे" का अर्थ "झुकना" और "गहे" का अर्थ चुभने से है।

फुलवारी-लीला के अवसर पर श्रीकृष्ण द्वारा माया-निर्मित कोट के भीतर अकस्मात् पड़ी हुई विस्मित और मोहित गोपियाँ व्याकुल हो रही थीं। राधा के अतिरिक्त कोई गोपी उक्त रहस्य को जानती न थी। इसी प्रसंग में अभंग- सभंग श्लेष का संयुक्त मनोरम उदाहरण उद्धृत है -[1]

"देखि गोपितहिं कहँ दुख लागैं । बिनवैं चली नारि होइ आगैं।।"

(1) (कृष्ण का) गोपि "गुप्त रहस्य" देखि "समझकर" तहिं "उन राधा को" भला दु:ख कहँ क्यों होने लगे? "वे बिन ब वैं" गोपियों को छोड़कर (पूर्व परिचित) "नारि" मित्र रूप में (कृष्ण के) समक्ष चल पड़ीं ।

(2) गोपियों (की घबड़ाहट) को देखकर राधा को क्लेश हुआ। वह नारी "आगे होइ" क्रोधित होकर "बिनवे" गोपियों के बिना ही चल पड़ीं।

यहाँ गोपितहिं और बिनवे में सभंग श्लेष और देखि, कहँ, नारि एवं आगैं शब्दों में अभंग श्लेषार्थ का अनुपम सौन्दर्य है जो अनायास काव्य की शोभा बढ़ा रहा है। ऐसा सहज सौन्दर्य अन्यत्र दुर्लभ है।

1- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 255-3.

"राह गहे बन राहो"[1] में श्लेष का अद्भुत चमत्कार आ गया है जहाँ अनेक अर्थों की एक साथ व्यंजना हो गई है। अर्थगाम्भीर्य का ऐसा अनूठा उदाहरण बहुत खोजने पर ही मिलता है। राह और राहो शब्द में श्लिष्ट अर्थ का चमत्कार "गहो" तथा "बन" शब्दों से ही द्विगुणित हो गया है। ये पूर्ण क्रिया तथा पूर्वकालिक क्रिया दोनों रूप में संयुक्त हो जाते हैं।

1- कृष्ण रूप राहु ने बन में राधा को ग्रहण कर लिया।

2- मार्गी ब ने वन में पथिक को पकड़ लिया ।

3- राधा वन के मार्ग में पकड़ ली गई ।

4- {राह गहो बन- राहो} {राहो बन, राह गही} राहो बनकर रास्ता रोक लिया।

इस श्लेष में क्रिया के गठन और अन्वय-भेद का चमत्कार प्रभावी है। जायसी ने अन्यत्र भी क्रिया के ऐसे स्वरूपों को उपस्थित किया है जिससे दुहरे अर्थ स्वत: व्यंजित हो जाते हैं। यदा- कदा विभक्ति के प्रयोग न करने के कारण भी ऐसी ही स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उनसे अन्वय-भेद करने में कोई कठिनाई नहीं होती। कभी- कभी अनर्थ की भी सम्भावना बन जाती है। व्युत्क्रम-दोष भी परिलक्षित हो जाता है। श्लेष के ऐसे बीसियों उदाहरण "पद्मावत" में प्राप्त होते हैं जिनका वास्तविक अर्थबोध केवल मर्मज्ञ पाठक ही कर सकते हैं।

अर्थालंकार -

उपमा :- उपमान और उपमेय रूप दो पदार्थों के बीच उनके गुण, धर्म या स्वरूप योग्यता की दृष्टि से समानता दिखलाना ही उपमा है। शास्त्र एवं व्यवहार दोनों दृष्टि से इसकी महत्ता असंदिग्ध है क्योंकि यह मन की एक

1- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक- 225- दो-

सूक्ष्म किन्तु सरल प्रक्रिया है। इसकी सरलता या वैश्रक सहजता के कारण ही सादृश्यमूलक सभी अलंकारों में इसकी लोकप्रियता सर्वाधिक है। अपनी सरलता, सहजता एवं वैशकता के कारण ही साहित्य में इसे व्यापक क्षेत्र प्राप्त है। अत: अप्पय दीक्षित का यह कथन सर्वथा युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि उपमा वह नटी है जो काव्यरूपी रंगभूमि में चित्रभूमिका भेद से विभिन्न रूपों में सहृदयों के हृदयों का रंजन करती है।

आलंकारिकों ने इसके स्वरूप निर्माण में साम्य, सादृश्य या साधर्म्य में से किसी एक का प्रयोग किया है किन्तु सादृश्य ही इन सबों में अनुगत है जो अवयव, गुण या क्रिया के योग में होता है। इसीलिए उपमेयोपमा, अनन्वय, प्रतीप, स्मरण, रूपक, परिणाम, सन्देह, भ्रान्तिमान, उल्लेख, अपह्नुति, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, समासोक्ति, श्लेष, अप्रस्तुत प्रशंसा आदि के विवर्त में उपमा का ही बीज है। उपमेय, उपमान, वाचक शब्द और साधारण धर्म इसके चार तत्व हैं जिनमें उपमान अंश लोकसिद्ध हुआ करता है।

जायसी की दृष्टि लोकग्राहिणी एवं सूक्ष्मदर्शिनी है। लोक, प्रकृति तथा रूढ़ तीनों उपमानों में उनके लोकगृहीत उपमान सहज, सरस और चित्रमय हैं क्योंकि उनकी दृष्टि लौकिक पदार्थों में अत्यधिक प्रवृत्त ज्ञात होती है। कारण यह कि लोक में सामान्य जन भी उपमा, उत्प्रेक्षा, सन्देह जैसे अलंकारों के प्रयोग में उपमा को सर्वाधिक वाग्व्यवहार का साधक बनाते हैं। पुन: अभिधा वृत्ति में उनकी उपमाओं का चमत्कार स्वर्ण में सुगन्धिसदृश है। जायसी के अलंकार- प्रयोग की सबसे बड़ी विशेषता है कि वे सहज एवं अनायास आकर काव्यशोभावर्धन करते हैं। भाव और कला परस्पर सहयोगी हैं, भारस्वरूप नहीं।

उपमा के चारों तत्वों को विद्यमानता में पूर्णोपमा तथा इनमें से किसी एक, दो या तीन तत्वों के अनिर्देश में लुप्तोपमा का अभिधान किया जाता है। पूर्णोपमा की व्याख्या निम्न पंक्ति में दर्शनीय है -

"चंप माल जिमि राही, काँपै परम तरास[1]।"

श्रीकृष्ण राधा को अपने सुसज्जित और रमणीय आवास में विलासानुकूल शय्या पर विलासार्थ आमंत्रित करते हैं। राधा प्रेम- त्रास से चंपा की माला की भाँति कम्प शरीर हो उठती हैं। यहाँ "राही" उपमेय, "चंप-माल" उपमान, "जिमि" सादृश्य वाचक शब्द और "काँपै" साधारण धर्म है। उपमान "चंप माल" लौकिक एवं सौन्दर्यपूर्ण वस्तु है। प्रस्तुत राधा-शरीर रूप मूर्त का मूर्त "माला" का सादृश्य प्रस्तुत किया गया है जिसमें मुग्धा के एकान्तप्रिय सान्निध्य में सात्विक मानसोल्लास रूप वेपथु के उपनिबन्धन में प्रेम- त्रास हेतु अभिव्यक्त है। स्नेह की पवित्रता, मुग्धात्व, सात्विकता यहाँ व्यंग्य है।

"पिंजर माहिं पंखि जस परीं[2]।"

" हरिनिहिं केर झुण्ड (अह) घेरा[3]।।"

श्रीकृष्ण द्वारा अकस्मात् सृजित कोट के भीतर राधा और गोपियों के घिर जाने का उदाहरण कवि ने अप्रस्तुत सिंह द्वारा हिरनियों के समूह को घेर लेने से प्रस्तुत किया है जिसमें सिंह रूप उपमान के लोप से उपमेय-लुप्तोपमा द्वारा गोपियों की विमूढ़ता और आकुलता का प्रत्याख्यान चमत्कारपूर्ण सिद्ध हुआ है।

1- "रूक्मावत" : शिवसहाय पाठक, दोहा- 227.
2- वही, कड़वक 259.2.
3- वही, कड़वक 254.3.

तिरछे नयनों से भावपूर्ण राधा के दृष्टिपात रूप अमूर्त उपमेय का जानसो क्षुभित सागर से उठती तरंगों के आवेग रूप अमूर्त उपमान से चित्रित किया है। राधा के दृष्टिपात में विलासजन्य अनेकों भाव पाठक के नेत्रों के समक्ष उस लहराते सागर के चित्र से साकार हो उठते हैं जिसमें ज्वार के कारण तरंगमालाएँ उत्पन्न तथा विलीन होती रहती हैं। नित्य नवीनता और यौवनमद का संगम दृष्टिपात तथा तरंगाभास में व्यंग्य हो उठा है। देखिए -

"भाव सहित जोहे चख मोरा । उलथि समुद्र गहि अवहिं किलोरा।"[1]

इसी प्रकार के के अन्य सैकड़ों उदाहरण "कन्हावत" में मिलते हैं ।

उत्प्रेक्षा :-

उपमा के पश्चात् जायसी के "कन्हावत" में उत्प्रेक्षा का सौन्दर्य अधिक आकर्षक बन पड़ा है। अलंकृति के सम्बन्ध में जायसी की उल्लेखनीय विशेषता रही है कि अलंकार साध्य तो कदापि नहीं बने, यहाँ तक कि काव्य- साधना में वे साधन ह भी न रहे, वे अनाहूत, अनायास और अकस्मात् अतिथि की भाँति यदा- कदा पधार कर काव्यप्रांगण की शोभा बढ़ाते रहे। प्रारब्ध सुकर्म के समान वे स्वयं सुखद सुन्दर फलदाता हो गए। समलंकृत सरस लोक- वाणी- वधू जो जायसी के मानस में विराजमान थीं जन रंजन के लिए स्वयं आ गई ।

अलंकार का प्राण उसका चमत्कार या चारुता है। इसीलिए कवि जब उपमेय में उपमान के साम्य की सम्भावना करता है तो चमत्कार या सौंदर्य की पूर्ति करता है और वह उत्प्रेक्षा अलंकार कहलाता है। उपमेय में वे समस्त गुण हों न हों, किन्तु कवि उनकी सम्भावना उपमान के रूप में करता ही है। सम्भावना सन्देह और निश्चय के बीच की स्थिति है। इस अलंकार में उपमेय और उपमान में साम्य और भेद दोनों होता है। उपमा में सादृश्य वाचक शब्द द्वारा लोक प्रसिद्ध साधर्म्य की प्रतीति होती है किन्तु

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 236.4.

उत्प्रेक्षा में लोक में अप्रसिद्ध एवं कवि कल्पित सादृश्य का बोध होता है क्योंकि उपमा में तो उपमेय की उपमान से तुलना की जाती है जबकि उत्प्रेक्षा में उपमान की उपमेय में सम्भावना। उत्प्रेक्षा अभेद प्रधान या अध्यवसायमूलक अलंकार है और उपमा भेदाभेद प्रधान साधर्म्यमूलक। इसी प्रकार रूपक में उपमेय और उपमान दोनों की एकरूपता होती है किन्तु उत्प्रेक्षा में उनके सादृश्य की सम्भावना की जाती है। उपमेय यहाँ गौण रूप धारण कर लेता है। ऐसी सम्भावना वस्तु, हेतु और फल रूप में प्रमुख रूप से की जाती है जिससे वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा तीन भेद हो जाते हैं -

वस्तूत्प्रेक्षा :-

"दूसर पौरि सँवारी सोनें । जनु कौंधा लौकहिं दुहुँ कोनें ।।
पहिल पौरि रूपे कै साजी। दुहुँ दिसि सिंघ उठहिं जनु गाजी।।
तीसर पौरि जो मोतिन रचीं। जानहु आइ उईं कचपचीं ।।
चौथहिं पौरि मनि मानिक जरे। दीठें जानहु दीपक धरे ।।
पाँचैं हीरा पौरि सँवारी । जानौं नखत करहिं उजियारी।।'

इन पंक्तियों में सोने, चाँदी, मोती, मणि माणिक्य और हीरे से जटित पौरियों में क्रमश: बिजली, गर्जते सिंह, कचपचिया तारे, दीपक और नक्षत्रों के रूप में सम्भावना की गई है। यह सम्भावना एक के बाद एक क्रमश: की गई है। जायसी को राग [लाल] से बड़ा अनुराग है।उन्होंने सर्वत्र परिधानों का वर्णन लाल रंग में ही किया है। राधा के साथ रक्त परिधान से अलंकृत सभी गोपियाँ झुण्ड की झुण्ड आगे बढ़ रही हैं। कवि ने वर्षाकाल में वीर बहूटियों को भी एक के पीछे एक रेंगती हुई देखा था।

1- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 19. 1-5

उसके मानस में इन्द्रवर्णा बीर बहूटियों के उपमान की सम्भावना उपमेय गोपियों के लिए जीवन्त हो उठी -

"कुण्डहि- कुण्ड फिरिन लस छूटी ।
रेंगि चलीं जनु बीर बहूटी[1] ।।"

क्रियोत्प्रेक्षा :-
------------ क्रिया के द्वारा भी उपमेय में उपमान की सम्भावना जायसी ने कहीं- कहीं व्यक्त की है। जैसे :-

"दारिउँ दसन हसत चमकाहीं । जानहु बीजु लौकि मुखजाहीं[2]।।"

दाड़िम के समान दन्त-पंक्ति वाले गोपियों के दाँतों की चमक हँसने पर उसी प्रकार लगती है मानो मुख पर बिजली चमक उठी हो। यहाँ दाँतों की चमक मुख पर बिजली चमक उठने की क्रिया द्वारा सदृश सम्भावित की गई है।

हेतूत्प्रेक्षा :-
---------- श्रीकृष्ण के रथचक्रों के आकाश में सूर्यमण्डल के चारों ओर घूमने को कवि ने चन्द्रमा की प्रीति के कारण सम्भावित किया है जिससे हेतूत्प्रेक्षा का सुन्दर चमत्कार प्रकट है। गगन में भ्रमणशील रथ चक्र के लिए चन्द्रमा की प्रीति रूप हेतु कल्पित है -

"फिरहि चक्र रवि मँडर, जानहि चन्द पिरीति[3]।"

फलोत्प्रेक्षा :-
------------ जहाँ अफल में फल की सम्भावना की जाय वहाँ फलोत्प्रेक्षा का चमत्कार होता है -

"सेंदुर माँग सोह रतनारा । जानु बसंत भयउ संसारा[4]।।"

यहाँ माँग के लाल- लाल सिन्दूर की शोभा का वर्णन है जो संसार में वसन्त रूप में व्याप्त है।

1- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 248.4
2- वही, कड़वक 248.7
3- वही, दोo - 167
4- वही, कड़वक 275.6

कहीं- कहीं उत्प्रेक्षा गम्य भी होती है जिसमें वाचक का लोप होता है। जैसे:- सुरंग कपोल पर तिल को विषय बनाकर पद्मावत के नखशिख-वर्णन में एक साथ अनेक उत्प्रेक्षाएँ की गई हैं। "कन्हावत" में भी एक स्थान पर तिल की ऐसी ही चित्रात्मक उत्प्रेक्षा की गई है -

"सुरंग कपोल सुहाए, तहँ तिल एक विधि दीन्ह।
भा संजोग मसि बिन्दु, अचल गँगन ध्रुव कीन्ह[1] ।।"

कपोल पर तिल का संयोग इस प्रकार लग रहा है कि वह काला बिन्दु गगन में अचल ध्रुव है अथवा उस काले बिन्दु की शोभा देखने में निमग्न ध्रुव आकाश में निश्चल हो गया। यहाँ दोनों भावों में कवि की सुरंग कपोल पर तिल में गगन- स्थित अचल ध्रुव की सम्भावना चित्रात्मक सौन्दर्य की सृष्टि करती है। वाचक शब्द के न होने से गम्योत्प्रेक्षा सहज ही उपलब्धित हो जाती है।

उत्प्रेक्षा के अन्य सैकड़ों उदाहरण रचना में देखे जा सकते हैं।

रूपक :-

"कन्हावत" में रूपक अलंकार की भी छटा दर्शनीय एवं श्लाघनीय है। अर्थ विस्तार की दृष्टि से इन्हें सर्वत्र महत्वपूर्ण श्रेय प्राप्त है क्योंकि अभेदता या तद्रूपता के द्वारा कवि उपमेय पर उपमान का आरोप करता हुआ दो विषयों का युगपत् प्रतिपादन एवं विवेचन प्रस्तुत करता है। वह उपमा के चारों तत्वों में कहीं सांगरूप में, कहीं एक तत्व की हीनता से निरंग रूप में या यदा- कदा प्रधान रूपक का अन्य रूपक पर आश्रित करके परम्परित रूप में भी इन रूपकों को प्रतिष्ठित करता है।

"विरह अँगीठी दाधे देहा। सुलुगि- सुलुगि तन भा जरि खेहा[2]।।"

यहाँ प्रस्तुत विरह पर अप्रस्तुत अँगीठी का अभेदत्व सिद्ध किया है। दोनों दशाओं में सुलग- सुलग कर भस्मसात् कर देना रूप साधारण धर्म अत्यंत अनुभव सिद्ध और मर्मस्पर्शी है।

1- कन्हावत : शिवसहाय पाठक, कड़वक 326 दो०
2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 318.3

इसी प्रकार नीचे की पंक्ति में हृदय रूपी नेत्र द्वारा प्रेम के परम रहस्यपूर्ण परिणाम के अनुभव करने में रूपक की सिद्धि हुई है -

" सो रति होहहि परम विसेखा । हिय के आँखिन्ह कर हसि देखा[1] ।।"

श्रीकृष्ण के मस्तक पर सुशोभित मुकुट की ज्योति, बिजली की चमक अथवा खड्ग की चमकार है। यहाँ पर स्वत्या प्रधान मुकुट के प्रकाश रूप उपमेय को विद्युत-प्रकाश तथा खड्ग-चमकार में आरोपित किया है। अथवा खड्ग के चमकार को बिजली की चमक मान लिया गया है -

" माथे मुकुट केर उजियारा । लौके बीजु खरग चमकारा[2] ।।"

कृष्ण को हाथ का माणिक्य रूप उपमान में आरोपित किया गया है। समुद्र अप्रकट संसार के लिए उपमान रूप में आरोपित है क्योंकि गोपियाँ राधा को समझाती हुई कहती हैं कि यदि श्रीकृष्ण को तुमने वरण न किया तो हाथ का माणिक्य संसार रूपी समुद्र में खो जायेगा और खोजने से भी न मिलेगा -

"हाथ क मानिक समुंदहिं जाई । लौटि न पाए हेर हिराई[3] ।।"

"कन्हावत" में उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक की भरमार है और अनायास ही उनका सुन्दर प्रयोग हुआ है।

उल्लेख :-

सादृश्यमूलक अलंकारों में उल्लेखालंकार की भी अपनी अलग विशेषता है। इसमें एक ही वस्तु का एक व्यक्ति द्वारा अनेक रूपों में दर्शन अथवा किसी एक वस्तु का अनेक व्यक्तियों द्वारा भिन्न- भिन्न रूपों में उल्लेख होता है। कंस- वध के लिए उपस्थित कृष्ण का रूप ही कुछ ऐसा ही

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 232.7

2- वही, कड़वक 169.4

3- वही, कड़वक 264.5

आश्चर्यजनक था कि जिसने जिस भावना से उन्हें देखा वे उसी रूप में दर्शन दिए :-

" कन्ह भेस तस आपुन कीन्हाँ । जो जेहिं बरन भनें तस चीन्हाँ ।।
राय कहहिं जस राव सरूपा । कुँवर कहहिं यह कुँवर अनूपा ।।
दहत कहहिं दहत अस देखा । कंस देखि जनु काल विसेखा ।।
छत्री बीर कहहिं यह बीरु । अहिर कहहिं यह आहि अहीरु ।।
कहहिं रिखीसुर यह तौ रिखी। बाम्हन कहहिं यह आहि जोतिखी।।
जोगिन्ह कहा कन्ह तौ जोगी। भोगिन्ह कहा आहि कैउ भोगी[1] ।।"

जिस प्रकार भिन्न- भिन्न रूपधारी मनुष्य को एक ही निर्मल दर्पण में दूसरों से पृथक् अपना ही रूप झलकता है वैसे ही एक ही निराकार भिन्न- भिन्न पात्रों में उनकी भावना-अनुकूल पृथक् - पृथक् रूप में प्रति- बिम्बित होता है। व्यक्त किंवा सगुण कृष्ण अव्यक्त रूप में सम्पूर्ण जगत के घट- घट के भीतर विराजमान होते हुए पात्रानुकूल पृथक्- पृथक् प्रति- भासित हो रहे हैं, यह निराकार की अनिर्वचनीय गति और महिमा ही तो है जिसे कवि ने उपर्युक्त शब्दों में व्यंजित किया है। यहाँ उल्लेख के द्वारा कविता- वनिता की शोभा भी निराली हो गई है।

एक ही व्यक्ति द्वारा एक ही वस्तु का विशेषताओं के आधार पर अनेक प्रकार से किया गया वर्णन उल्लेखालंकार का प्रथम भेद है। किन्तु निराकार परमात्मा के जगत में विभिन्न पदार्थों में भिन्न- भिन्न रूपों में व्याप्त होने के इस वर्णन में चमत्कारिक आनन्द नहीं है।

सन्देह :-

सन्देहालंकार में किसी वस्तु के प्रति अनिश्चयात्मक संशय निहित होता है जो भ्रान्तिमान अलंकार से इस बात में भिन्न होता है कि भ्रान्तिमान में वस्तु का निश्चय हो जाता है। रूप, धर्म और गुण के

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 291. 2-7.

साम्य पर आधारित होता है सन्देहालंकार में वस्तु का स्वरूप निरन्तर सन्देहात्मक ही बना रहता है।

नागिन को छोटे से बालक कृष्ण के द्वारा अपार आश्चर्य तथा स्वर्ग-पाताल को सिर पर धारण करने वाले नाग- नाथन में अलौकिकता प्रतीत होती है। वह सोचती है, हो न हो यह कोई दिव्य रूप है -

" कै तुं अछे क गिरी गनेसु । कै तुं ब्रह्मा- बिसुन- महेसु ।।
कै तुं चन्द्र- इन्द्र अति तेऊ। कै तुं सुर- नर- गन्ध्रब भेऊ ।।"[1]

यहाँ नागिन कृष्ण रूप में बल बलि, भी गनेश, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, चन्द्र, इन्द्र, उपदेव आदि का सन्देह व्यक्त करती है। उसे कृष्ण के रूप में उपर्युक्त अन्य किसी दिव्य महापुरुष होने का संशय है। वह अपने संशय के कारण का प्रत्याख्यान करती हुई कहती है -

" दह कै बोनेई अस होई । और न सकै अचल कै कोई ।।"[2]

अर्थात् नाग- नाथन का असम्भव कार्य ईश्वर के बौने रूप द्वारा ही सम्भव है, अन्य कोई ऐसा अलौकिक कार्य कर ही कैसे सकता है । कृष्ण द्वारा अपना परिचय देने पर नागिन का संशय दूर हो जाता है ।

" को तुम्ह तीनि देव महं कोऊ । नर नारायन की तुम्ह दोऊ ।।
जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार ।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार ।।"[3]

आचार्य तुलसी की मानस की पंक्तियाँ तुलनीय हैं ।

कंस का पूरा रनिवास, कंस तथा विक्रेतागण कुब्जा के अलौकिक रूप का दर्शन करके अनेक संशय उत्पन्न करते हैं। रानियों को सन्देह है कि वह कुब्जा का सम्भवत: विधि- अवतारिणी कोई स्त्री है -

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 79, 5-6
2- वही, कड़वक 79-7
3- रामचरितमानस : तुलसीदास, किष्किन्धा काण्ड-1, चौपाई 5- दो

" के मूरति तूँ विधि अवतारी । कहाँ चलसि लेइ अस उजियारी ।।
महारूप नारि है कोई । कहै अपछरा रोसि न कोई[1] ।।"

अतिशयोक्ति :-

जहाँ लोक-सीमा का अतिक्रमण करते हुए किसी विषय का अत्यंत बढ़ा- चढ़ा कर वर्णन प्रस्तुत किया जाता है। जायसी ने कुब्जा के सौंदर्य का वर्णन करते हुए लिखा है -

"सुरुज सहस उवहिं जो, सोरह चन्द छिपाहिं ।
करहिं अंजोर सबै मिलि, तोहु सो पूजहिं नाहिं[2] ।।"

कुब्जा की कान्ति सहस्र सूर्यों तथा षोडश चन्द्र-ज्योति से भी अधिक वर्णित है। उपमेय कुब्जा की कान्ति से सहस्र सूर्यों और सोलह चन्द्र की कान्ति न्यून वर्णित होने से व्यतिरेक अलंकार का भी संयोग है।

चपलातिशयोक्ति का एक उदाहरण भी दर्शनीय है जहाँ हेतु की चर्चा होते ही कार्य सम्पन्न हो जाए। कंस ने बालिका का पैर पकड़कर शिलापट पर पटकने के लिए उठाया ही था कि वह विद्युत की भाँति उसकी बाँहें छुड़ाकर आसमान में निकल गई -

" जौंहि उठाइ भएउ अस, भइ बिजुरी सो बारि ।
लेइ अपसईं सुरग कहँ, बाँहें [?] उपारि[3] ।।"

अन्योक्ति :-

किसी अप्रस्तुत के माध्यम से प्रस्तुत की व्यंजना में अन्योक्ति अलंकार माना जाता है। इसे श्रीकृष्ण को भ्रमर तथा अपने को फुलवारी कहकर राधा द्वारा उपालंभ करने के प्रसंग में व्यंजित देखिए:-

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, दोहा- 285.
2- वही, कड़वक 285 दो.
3- वही, दोहा- 54.

" आउ भौंर मोरों फुलवारों । ज्यों- ज्यों रस देहु मुरारो[1] ।।"

"हे भ्रमर। मेरो फुलवारो में आओ। हे मुरारो, ज्यों- ज्यों में रस देखो ।"

यहाँ "भ्रमर", "श्रीकृष्ण", "फुलवारी", "राधा जी", "ज्यों-ज्यों" यौवन विराजमान अंग- प्रत्यंग और "रस" आनन्द के लिए प्रयुक्त होने के कारण अन्योक्ति व्यंग्य है। इस प्रकार -

"छाड़हु महिउ जिउ लावहु घोऊ[2] ।"

"मट्ठा छोड़ दीजिए, हृदय में घी लगाइए।" राधा को कृष्ण के प्रति इस उक्ति में महिउ "व्यर्थ की बातें" छोड़कर घोउ "स्नेह" की बातें करने की अन्योक्ति विधान है ।

निम्न पंक्तियों में अन्योक्ति अलंकार देखा जा सकता है -

"गऊ सिंघ गोनहिं एक बाटा ।
पानी पियहिं दोउ एक घाटा।।" - कड़वक 4.5

"तहाँ कवि मलिक मुहम्मद, मरम न जाने कोइ ।
लहइ सो लाख करोरन , जो कोइ गाहक होइ।।" - दो0-11

"काहु पुँगहि अमियँ रस, हाथ चलावै चोर ।
कथाठे फिर चाहै , नारंग, तुरज, जंभीर।।" - दो0- 93

"डार उनाह बेलि रस ओन्हीं। गहि नारंग दारिउँ नख दोन्हीं।।" - 94.5

"हरि जो रहत सब दिन विगसाना । विगसहिं कँवल रात कुँभिलाना - 97.7

"उहैं चानरि कौं दरसन हरा । देखत जोत पतंग होइ परा।।"-99.7

"चाँदहिं कुन्ज परा जो चोन्हीं। देखि विमोही जनु हरि लीन्हीं।। - 121.7 इत्या

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 143.5
2- वही, कड़वक 257.7

व्यतिरेक :-

उपमेय को उपमान से अधिकता या न्यूनता व्यक्त करने में व्यतिरेक अलंकार का चमत्कार होता है।

"अंजन- रेख बनी अति ब कारो । अंजन चाहि अधिक अनियारो।।"[1]

प्रस्तुत अंजन-रेख को अप्रस्तुत अंजन से अधिक अनियारे कहने में व्यतिरेक का सौन्दर्य है । निम्न पंक्तियों में भी व्यतिरेक का प्रयोग हुआ है -

"औ दातार सराहौं काहा । हैतिम करन न सरबरि आहा ।।"- क04.6

"जनु अँधियारें दीपक बारा । सगरें मँदिर भएउ उजियारा ।।"- क049.6

"जग उजियार भई तहिं जोती। पुनिउँ जोति कहाँ जग ओती।।"- क0109.7

"सबे जोति ओहि जोति छिपायहि । और रूप तेहि रूप लजायहि।।"
- क0- 120.7

"देखे काह कन्ह कर बासू । देखि ठाउँ पिसरा कैलासू ।।"-क0- 226.1

"सब आछरीं लजाईं, राधा केरएँ रूप ।
तेहि बनाउ कहाँ का, बन सिंगार सरूप।।"- दो0- 238.

"अति सुरूप होइ कुबजा चली । चाँद चाहि चौगुन निरमली।।"- 284.1

"लेइ पूजा सुरूज कैताईं । चली चाँद सँग लयीं तराईं ।।" - 212.2

"अति सरूप सुन्दर सुठि लोना। गोर बदन सरि पूजि न सोना।।"-112.3

"सखी फूल देखु हौं फुलवारी । का सर करसि बदन लौं वारी।।"-153.6

"सुरूज करीं जोति कहँ होतीं । सखा करीं भइ निरमल जोतीं।।" -235.3

"पातर लंक सिंघिनी सोनी । बरें लंक चाहि अति खोनी ।।" -244.1

"जेहि बिच हार न संवरत, तेहिं बिच परा पहार ।
कै रे मरन दूसर जिउब , यह रे बिरह दुख भार ।।" -दो0-312.

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 236.5

दीपक :-

जहाँ प्रस्तुतों और अप्रस्तुतों का एक ही धर्म स्थापित किया जाता है, वहाँ दीपक अलंकार होता है। जैसे :-

"बन- बन बंसि बजावै, गावै बहु बैराग ।
भूले सबद पंखि, मानुस भूले राग[1] ।।" - दो0- 108.

यहाँ पक्षियों और मनुष्यों दोनों को मुग्ध होना बताया गया है। पक्षी शब्दों से मुग्ध है और मनुष्य राग (स्वर) से। अन्यत्र भी इसी प्रकार दीपक अलंकार आए हैं :-

"नवल नेह नव प्रीतम आजु । नव सुहाग लिय धनि लेइ साजु।।"-228.2
"कुसल कन्ह हम तुम्ह कह सदा। जो लहि दयौं जीवैं जग बदा।।"-328.1
"तप जीवन तप भोगन करै । तप लेंऊँ जियै माँझ तप मरै ।।"-351.5
इत्यादि

पर्यायोक्ति :-

किसी अभिलषित बात को प्रकारान्तर से कहना पर्यायोक्ति कहा जाता है। जैसे :-

"अवगुन बालि गढ़ी हम, ना परजा कर नाउँ ।
जहाँ न टेकैं पाव, छाड़ि देहिं यह गाऊँ[2] ।।"

यहाँ अभिलषित बात को प्रकारान्तर से कहा गया है। गोपियाँ "परजा" शब्द से अपने को अधम समझी जाने वाली बताया है। इसी बात को पूर्व में "अवगुन बालि गढ़ी हम" से व्यक्त किया जा चुका है। निम्न पंक्तियों में भी पर्यायोक्ति की झलक मिल जाती है :-
"भुगा कँवल बिगासा मन हँसा । सहसहिं करां भानु परगासा ।।"-106.2
" तु बिनि मौर तोर हौं पीउ। दोष सकेल सरीर पर एकै जीऊ।।"-125.6

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, दो0- 108.
2- वही, दो0- 165.

"तुम्ह हो ब्यातस बोई, बहु दिसि जायें काँट ।
लोन्ह अपूर बाँद सुख, दुख भा मोरें बाँट ।।"[1]

- दो0- 16। इत्यादि

विशेषोक्ति :-

कारणों के उपस्थित रहने पर भी कार्य की उत्पत्ति न होने पर विशेषोक्ति अलंकार होता है। जैसे :-

"बिगसत नारि गई कुँभिलाई । रस सोचें तोहुं न बिगसाई।।"

यहाँ प्रफुल्लित नारी के म्लान हो जाने पर कारण रूप रससेक के होने पर भी विकसित न होने का कार्य-निषेध वर्णित है।

विरहिणी प्रेमी के आगमन की अवधि निकट होने पर पहले की अपेक्षा अतीव उत्कण्ठित हो जाती है। उसकी व्याकुलता में एक क्षण भी दीर्घकाल बन जाता है। इसी आकुल मन की उत्कण्ठित दशा का वर्णन करने के लिए कवि कहता है कि ज्यों- ज्यों श्रीकृष्ण के आगमन की अवधि समीप आती जाती है, गोपियों का मन उतना ही मिलन के लिए व्याकुल हो उठता है। उन्हें अब अल्प समय भी बीते दीर्घ समय की तुलना में और अधिक दूर व्याकुल करने वाला हो जाता है :-

"कौन बानि हरि तूं अब, रे लखे दिन पूरि ।
जस जस- जस नियरावहिं अवधि जाय नित दूरि।।"[2]

यहाँ अवधि के गिन- गिन कर समीप करने रूप कारण के पूर्ण होने हो जाने पर ही समीप आने वाले का निषेध किया गया है। कारण के रहते हुए भी कार्य की दूरी बढ़ने में विशेषोक्ति में अवान्तर कारण विरहिणी मन की व्याकुलता ध्वनित है किन्तु प्रकट रूप में इसे विशेष उक्ति के द्वारा ध्वनित किया गया है जो कर्म- विरोध की पुष्टि में परोक्षतः सहायक है। विशेषोक्ति के अन्य अनेक उदाहरण भी मिलते हैं ।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 270•।
2- वही, दोहा- 311•

विभावना :-

बिना कारण के ही कार्य की उत्पत्ति में विभावना अलंकार होता है। उदाहरणार्थ -

"लोचन बान सान देइ राखो। बिनु सर मारे काम कटाखो।।"[1]

यहाँ लोचन- बाण सान पर रखकर तीव्र करने का वर्णन है तथापि प्रेमियों को घायल करने के लिए बाण की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। नायिका काम- कटाक्ष द्वारा ही रसिकों के हृदय को बेध देती है। निम्न पंक्तियों में भी विभावना अलंकार देखा जा सकता है :-

" नैन चार दो कन भइ चिन्ता । खरगहीन लागी सो तन्ता ।।"-55.7

" न वह काहुक जरमा होई । ना वै केहु जरमा कोई ।।"

" ना काहु अस जोति सरूपा। ना कोइ अइसन कैस अनूपा।।"

" सब कहि दिहसि जरम औ जाहइ। आपु अबरन अरूप सिहासइ।।"

30.3- 4.6

"भौंहहिं धनुक नैन सर साँधें । बिनु सर बना बोजु बस बाँधें।।-213.7

" इम रे एक तन अगहरि आँगी। बिनु पिउ नैन नीर सरि लागी।।"

- 317.4

"घायल घूमि बान भुईं परा । घाउ न रकत जीउ पै हरा।।- 207.6

इत्यादि

अपह्नुति :-

वास्तविक तथ्य को छिपाकर अवास्तविक तथ्य के उद्घाटन में जहाँ प्रतिभा द्वारा "गोपन" का भाव उत्कृष्टता तथा कुशलतापूर्वक प्रतिस्थापित हो, वहाँ अपह्नुति का सौन्दर्य मनोरंजक होता है। कवि अपने प्रातिभ कौशल से प्रस्तुत के गुण, रूप, धर्म के सादृश्य वाले अप्रस्तुत में संक्रमित करके दो सदृश वस्तुओं के सौन्दर्य का प्रकाशन भी करता है ।

1- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, पद्यक 236.7

श्रीकृष्ण के शरीर में राधा के सिन्दूर, काजल आदि को लगा देख कर चन्द्रावली की शंका के अपाकरण-प्रयास में श्रीकृष्ण की उक्ति अवलोकनीय है :-

" जेत सिंगार उहा वें कीन्हा । परगट बरन लाग सब चीन्हा ।।
आजि हुतौं देखि चित्रसारी । जहवाँ चित्र करहिं सब नारी ।।
मसि ईंगुर जनु चित्र उरेहा । देखत चित्र भरौं सब देहा[1] ।।"

"जितने श्रृंगार उस राधा ने किए थे वे सब प्रकट ही वर्ण आदि से पहिचाने जा रहे हैं। चन्द्रावली की इस उक्ति के तथ्य को छिपाते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैं आज चित्रशाला देखने गया था जहाँ बहुत सी स्त्रियों ने चित्र बनाए थे। कज्जल- सिन्दूर द्वारा रेखांकित उन चित्रों को देखते समय वे ही रंग शरीर ~~शरीर~~ में लग गए।"

यहाँ अप्रस्तुत चित्रशाला में घटित रंगों की सहायता के कारण प्रस्तुत राधा- शरीर के सिन्दूर, काजल आदि का गोपन सम्भव और ग्राह्य हुआ है। अपह्नुति के उदाहरण यद्यपि कम हैं तथापि श्रेष्ठ भी नहीं हैं, केवल उनकी झलक यत्र- तत्र प्राप्त हो जाती है :-

"बिनु पिउ करहिं रैनि-दिन झूरी। सेंदुर काह देखावहिं झूरी।।
"चंदन अगरु कुमकुमा, सब कोइ खोरै देह ।
कान्ह पाछि सब गोपीं, जनु सिर मेलहिं खेह ।।"
दो0- 320.6

परिकर :-

जिसमें साभिप्राय विशेषणों द्वारा प्रस्तुत अर्थ का प्रतिपादन किया जाये, वहाँ परिकर अलंकार होता है। जैसे :-

"भलहिं के राखी रात कहावै ।
चाँद सरौं कत सरवरि पावै ।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 144.3-5
2- वही, कड़वक 145.5

यहाँ "राह" शब्द से अनुरागिनी किं वा आनन्ददायिनी अर्थ लिया गया है। चाँद अर्थात् चन्द्रावली भी आह्लादकारिणी है, किन्तु "राह" अर्थात् राधी से अधिक। इसी प्रकार अन्यत्र भी देखा जा सकता है :-

"अब रघु भये बाट बटाऊ। मधुबन लौटि न ऐहहिं काऊ।।"

"अब रघु पन्थ-पथिक हो गए। वे कभी लौटकर न आएँगे।"

यहाँ पर श्रीकृष्ण के परमधाम- गमन को संसार की प्रकृति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। संसार रूपी सराय में उत्पन्न जीव पथिक के समान है जो कुछ समय के लिए विश्राम करने के पश्चात् अपनी अगली यात्रा के लिए अग्रसर हो जाता है। पुनः लौटकर नहीं आता। यह बाट- बटाऊ शब्द से संकेतित है। परिकर अलंकार अन्यत्र भी देखा जा सकता है :-

"तुं मोरें पण्डित सहदेऊ। मैं तोहि छाँड़ि न पूछत केऊ।।" -35.2

"सोरह करा रहतनित, जाइ सुँपरन आहु।
काहे भई अमावस, चाँद गहे मनु राहु।।" - दो0- 138.

"तरु- तर- तउ तरुबे सब काँपे। कर पल्लव सबहिन मुख झाँपे।।"
- 203.3

व्याजस्तुति :-

निन्दा- मुखेन स्तुति और स्तुति- मुखेन निन्दा प्रकट होने में व्याजस्तुति अलंकार का चमत्कार माना जाता है। इस उक्ति - वैचित्र्य की रमणीयता श्रीकृष्ण द्वारा राधा के संक्षिप्त नख- शिख- सौन्दर्य के प्रसंग में दर्शनीय है :-

---

कड़वक 364.4
1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, ~~पृ0 सं0- 171~~.

" एहि सब लागि राधिकहि ओरो । जेन हरि लोन्ह सबे जग चोरो।।
बदन लिहसि हरि पूनिउं चन्दू । चाल लिहसि हरि हंस गयंदू ।।
नेन हरसि मिरिग के कैकेयई नैना । कंठ हरसि कोकिल के बेना ।।
भौंह धनुक अरजुन के चुराएसि । नासिक कंठ सुवा कर धाएसि ।।
अधर चोराएसि विद्रुम जाती । दसन चोराएसि होरा पाँती ।।
गोवें कुहारि हँस जग हरो । लंक चुराएसि केहरि केसरो ।।
भुज पोनार चोराएसि सोभा । जाँघ चोराएसि केला गोभा ।।

जारि भूत जग देखत, तप चोरै धनि कोन्ह ।
नित सब आइ पुकारहिं, आपुन- आपुन जोहि।।"

राधा ने बदन, गमन, नयन, वचन, भौंह, नासिका, अधर, दशन, ग्रीवा, कटि, भुजा और जंघा सब का सौन्दर्य क्रमशः पूर्ण चन्द्र, हंस-गयंद, हिरन, कोकिल, अर्जुन- धनु, शुक, विद्रुम, होरा, मोरनो-हंस, केहरि, कमलनाल तथा कदली स्तम्भ रूप समस्त सांसारिक पदार्थों से अपहरण कर लिया अर्थात् इन वस्तुओं की शोभा राधा के अंगों में संक्रमित हो गई जिससे वे वस्तुएँ निरंग हो गईं। चोरो के इस कुत्सित कर्म का दोष सब राधा के सिर-माथे है।

इतना ही नहीं "जारि भूत" अर्थात् कामदेव जगत में { या जग कर } देखता है कि धन्या राधा ने "तप" को भी चुरा लिया है, जो कार्य काम नहीं कर सका,उसे राधा ने कर दिया।"[2] अपहृत सौन्दर्य- धन के स्वामी अपने- अपने मुख से स्वयं गुहार मचाते हैं ।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 256.
2- वही, पृ0 सं0- 171.

यहाँ अपहरण रूप निन्दा द्वारा तत् तत् वस्तुओं के सदृश राधा के तत् तद्रूप सौन्दर्ययुक्त लावण्य का प्रकाशन प्रशंसा रूप में व्यन्जित है।

दोहे में "जग" का अर्थ "जगकर या जगत में" हो, श्लिष्टार्थक है तथा राधा द्वारा कामदेव से न किए जा सकने वाले तप- हरण कार्य के कर लिए जाने का वर्णन काम की अपेक्षा राधा का उत्कर्ष और काम- पराभव व्यतिरेक अलंकार का भी सौन्दर्य उपस्थित करता है।

कवि ने प्रकृत राधा के अंग- प्रत्यंगों की कान्ति को असत्य सिद्ध करके उससे भिन्न पूर्ण चन्द्र, हंसादि की शोभा की सत्यता प्रतिपादित की है जिससे अपह्नुति अलंकार की सुन्दरता प्रत्यक्ष हुई है।

यहाँ राधा के अलौकिक सौन्दर्य रूप कार्यविशेष का प्रकारान्तर से वर्णन के कारण अतिशयोक्ति अलंकार का भी सौन्दर्य झलकता है।

काव्यशास्त्रियों ने अति वैधर्म्य के कारण पूरा- पूरा सम्बन्ध न बैठने को विषम अलंकार माना है। यहाँ श्रृंगार के प्रसंग में तप का वैधर्म्य विषम अलंकार का प्रतिपादक हो गया है।

निदर्शना :-

बिम्बानुबिम्ब भाव से किसी बात को समझाने की कला निदर्शना- अलंकार रूप में प्रकट होती है। इसे सापेक्ष वाक्यों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। दृष्टान्त के समान समानधर्मी पदार्थों का बिम्ब-प्रतिबिम्ब- भाव इसमें आवश्यक नहीं होता।

प्रेम के असम्भावित व्यापार के साथ सिर से खेलने का सम्बन्ध स्थापित करते हुए जायसी कहते हैं :-

" [परगट] प्रीति है कठिन दुहेला । सो खिलार जो सिर सेउँ खेला[1]।।"
" प्रेम खेल है कठिन दोहेला । सो खिलवारि जो सिर सौं खेला[2]।।"

1- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 116.6
2- वही, कड़वक 232.6

"प्रीति करना कठिन एवं दुःखदायी है। वही खिलाड़ी है जो सिर का मोह त्याग कर अर्थात् प्राणों को कुछ न समझकर खेले- प्रेम करे।" प्रेम का निदर्शन-असम्भावित कार्य सिर काटकर बढ़ाने से किया गया है।

निम्न पंक्तियों में भी निदर्शना अलंकार देखा जा सकता है :-

"कठिन गाढ़ औ साँकर परा । नाउ न बेरा अंधे डरा ।।
लेइ बहुरों तौ कंस जियँ मारे। चलों तौं धारहिं होइ निनारै ।।
पाछें सिंघ कुवाँ भय आगें । सरिवरि परे न उँबरत भागें ।।"
- 52. 1-3

"[उठि] रे अचेत चेत कर हियें । सबै न कोइ पेम मधु पियें।।"-208.2

" ता कहँ कहई भूल गियानी । लाभ न हँसे न रोवै हानी।।
यह बिधिक खेल हो नाहीं । अंतर पिंड जइस परछाहीं ।।"
-117.3-4

भा बियोग दिन-रैनि जुलाई। सूर गयउ छपि चाँद दिपाई।।"
- 209.1

"निसि बैरिन बिरहिनि कहँ सदा। सो बियोग दुख कौनहिं बदा।।"
- 209.6

"नेह सनेह कहे सो छाँडै नहिं चित लाइ ।
मकु जिउ जाउ छाँड़ि तन, पै जिउ प्रीति न जाइ।।"
- दोहा- 26। इत्यादि

स्वभावोक्ति :-

कभी- कभी कविजन किसी वस्तु अथवा बालक आदि की प्रकृति-सिद्ध क्रिया अथवा उनके रूप का यथार्थ चित्रण करते हैं। इनसे मानव-हृदय में निगूढ़ भाव, अनुभव अथवा स्मरण के कारण समन्वित होकर जागृत हो उठते हैं। इनसे हृदय का सीधा सम्पर्क स्थापित हो जाता है जो आनन्द की कोटि को प्राप्त कर लेता है।

श्रीकृष्ण ने प्रणय- याचना के पश्चात् राधा जो से अपना अव्यक्त प्रेम प्रकट किया तो सखो गोपियों ने भाँप लिया कि वे राधा में अनुरक्त हो गए हैं। अतः राधा का वश पाना कठिन है। सभी गोपियों ने त्रास, शंका, लज्जा आदि विविध भावों का उदय हुआ और वे तदनुकूल चेष्टा करने लगीं। उनमें से कोई घबड़ा गई, किसी को हँसी आ गई, किसी ने शंका से किनारा कस लिया, किसी ने मुस्कुरा कर मुख फेर लिया, किसी ने अंचल से मुख ढँक लिया, कोई दूर भाग खड़ी हुई, कोई हँसती हुई पास हो खड़ी रही, कोई ओट में चली गई, कोई कारण पूछने लगी, कोई-कोई समूह बनाकर अलग खड़ी हो गई। इस प्रकार राधा को अकेली छोड़कर वे उसी प्रकार विलग हो गईं जैसे सिंह के आगमन पर हिरनियों का झुण्ड इधर- उधर भाग खड़ा होता है ।

" [सुनि] गोपीं यह बात लुकानी । केउ बिहसे केउ मनहिं सकानी ।।
[काहूँ] सुनि दहिने होइ हेरा । काहूँ मुसुकियाइ मुख फेरा ।।
[काहूँ] मुख अंचल लेइ दीन्हा । काहूँ दौरि बेलि बन लीन्हा ।।
[काहूँ] हँसहि न छोड़े ठाढ़ीं । केउ भागें ओव्ह लहि बाढ़ीं ।।
केउ पूछहिं यह भइ कस बाता । केउ छेमस (?) मिलि करहिं संघाता ।।
राही राइ गहे हो दानी । सबै बिछम के मनहिं सकानी ।।
[अब] रे दहिउ महं काढ़त जीऊ। दवध जले भागे लेइ जीऊ ।।
जइस झुण्ड हरिन्हि कर, बिडरि चलीं बन बेलि ।
भागीं आपु- आपु कहँ, राही छाँड़ि अकेलि ।।"[1]

परपुरुष के दर्शन से तथा अचानक उसके द्वारा किए गए अप्रत्याशित आचरण से नारियों में अकस्मात् शंका, लज्जा, त्रास, हास आदि के कारण विभिन्न आचरण चक्र रूप में वर्णित है जो उनके स्वभाव से सिद्ध क्रिया- व्यापार है। अतः स्वभाव की उक्ति के कारण विशेष चमत्कार कीसृष्टि हो गई है।

1- "चन्दायन" शिवसहाय पाठक, 220

स्वभावोक्ति और उपमा की संसृष्टि भी अत्यन्त मनोहर है जो तिल- तण्डुलवत् निरपेक्ष रूप से अपनी- अपनी पृथक् सत्ता स्थापित किए हुए हैं। समस्त गोपियों के समूह को कवि ने हिरनियों का झुण्ड बताकर तथा इधर- उधर शंकाकुल होकर भागने के साधारण धर्म से उपमेय लुप्तोपमा का चमत्कार उत्पन्न किया है। यह शोभा अप्रस्तुत [सिंहत्रस्त] हिरनियों के झुण्ड के इधर- उधर भागने के दृश्य को हमारे नेत्रों के समक्ष प्रस्तुत करके विषय को जीवन्त बना देता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखे जा सकते हैं :-

" झाँकत नियरे जाइ न जाई । काँपहिं जाँघ देखि गहराई ।।
तइस अमोघ अथाह अपारा । जोर परे सो जाइ पतारा ।।"-20.6-7

" जो नौ लखा तैराउँ सुहावा। परे गगगगा गनत न [आवा]।।
(तिन्हि) रात होई तेहि मांहा। लागै जाड़ पैठत तेहि मांहा।।"-26.3.

" निसि भादौं अबहीं अँधियारी। नैन न सूझै हाथ पसारी ।। - 49.1
जोजन बारह ऊँच देखावै । चढ़ै जगत पायन पेरावै ।।" - 20.2इत्यादि

विरोधाभास :-

विरोधाभास "भणिति भंगी" का एक अनुपम रूप है। कवि दो क्रिया- व्यापारों में ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है जिनसे प्रकटतः विरोध का आभास होता है किन्तु श्लिष्टार्थक शब्द होने के कारण उनका परिहार भी उतना ही चमत्कारिक रूप में अनुकूल भी हो जाता है। इसका एक सुन्दर उदाहरण निम्नलिखित दोहे में प्रस्तुत है :-

"चौदसि गँगन संपूरन, जानै सब संसार ।
चलै तो होइ अमावस, रहै जगत अँधियार।।"

1- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, दोहा- 102.

यहाँ चतुर्दशी के चन्द्रमा के आकाश पर विराजमान होना अप्रस्तुत रूप में प्रस्तुत चन्द्रवदनी चन्द्रावली के दर्शन के लिए प्रयुक्त है। चन्द्रमा आकाश से जब "चले" अर्थात् तिरोहित हो जाता है तो रात्रि-अमावस्या अन्धकारपूर्ण हो जाती है किन्तु जब "गगन" में "रहे" रहता है तो अँधेरा छा जाता है। इन दोनों बातों में विरोध की प्रतीति होती है क्योंकि जब चल देने पर अँधेरा हो जाता है तो रहने पर उजाला होना चाहिए। विरोध का परिहार इस प्रकार से हो जाता है कि जब वह अदृश्य रहता है तो अमावस्या होती है किन्तु प्रकट दीखने पर विरही या विरहिणियों के लिए तापकारी, कामियों के लिए उद्दीपनकारी, तस्करों के लिए विघ्नकारी आदि रूप {अन्धेर} [अनर्थ] करने वाला हो जाता है । ठीक वैसी ही स्थिति चन्द्रावली के दर्शन और अदर्शन से उत्पन्न हो जाती है। धवलगृह के सप्त खण्ड से उसके अदृश्य हो जाने पर प्रेमी- जन के हृदय में अन्धकार छा जाता है। वह नाम से चन्द्रावली-चन्द्रकिरण समूह है, उसी के प्रकाश से रात्रि ज्योतित होती है, फिर क्यों न उसके न रहने पर अमावस हो जाय? पुनः उसके दर्शन से भी प्रेमियों के हृदय में विचित्र स्थिति हो जाती है। सम्पूर्ण जगत उसकी अतिशय लावण्य-कान्ति और रूप से निष्क्रिय हो जाता है।

अर्थान्तरन्यास :-

किसी सामान्य कथन द्वारा विशेष का अथवा विशेष कथन द्वारा सामान्य के समर्थन में अर्थान्तरन्यास अलंकार का चमत्कार होता है। चन्द्रावली की ईर्ष्या में राधा द्वारा कृष्ण से अपने रूप की प्रशंसा में सामान्य की विशेष कथन द्वारा पुष्टि करके कही गई उक्ति का चातुर्य मनोवैज्ञानिक एवं सहज है -

" वह रे रैनि हौं दिवस के भाँउ । दिवसहिं रात कि पूजे काँउ।।[1]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 143.4

" हे कृष्ण। वह रात्रि के समान है और मैं दिन की भाँति। तो रात्रि क्या कभी दिन की समानता कर सकती है, अर्थात् कदापि नहीं।"
प्रथम सामान्य वचन का द्वितीय चरण में विशेष कथन द्वारा समर्थन काव्यात्मक समर्थन प्रस्तुत करता है।

सामान्य का विशेष द्वारा समर्थन कवि ने मृत्यु को सत्य सिद्ध करने के लिए किया है :-

" गयउ जोउ मरन सत् [1] होई। जो रे उवा अँथवा पुनि सोई।।"[1]

"जीव चला गया, मृत्यु सत्य है। जो उदित हुआ वह अस्त भी होगा।"
यहाँ प्रथम अर्द्धाली एक सामान्य कथन का द्वितीय अर्द्धाली विशेष द्वारा समर्थन किया गया है।

दृष्टान्त :-

जहाँ दो वाक्यों में एक उपमेय वाक्य हो और दूसरा उपमान वाक्य एवं दोनों वाक्यों में उपमान, उपमेय, साधारण धर्म आदि का परस्पर बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव प्रतीत हो, वहाँ दृष्टान्त अलंकार समझना चाहिए।

श्रीकृष्ण द्वारा राधा को परस्पर अभेदत्व के निवेदन में दृष्टान्त अलंकार का सौन्दर्य झलकता है :-

"मोहि- तोहि राधे अन्तर नाहीं। जइस दीख पिण्ड परछाहीं।।"[2]

" हे राधे। मुझमें - तुझमें उसी प्रकार अन्तर नहीं है जैसे पिण्ड की छाया।

यहाँ द्वितीय अर्द्धाली उपमान वाक्य प्रथम अर्द्धाली उपमेय वाक्य का प्रतिबिम्ब रूप है, और इस [दृष्टान्त] में "दीख" और "अन्तर नाहीं" में धर्म एक न होकर साधर्म्य [धर्म-भेद में समान-धर्मता] स्थापित है।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 364.6
2- वही, कड़वक 260.1

इसी प्रकार निम्न पंक्तियों में भी द्रष्टव्य है :-

" तइस गयउ मिलि जिय सौं जोउ । मिल्वा जइस खाँड महँ घोऊ ।।"

दृष्टान्त अलंकार निम्न पंक्तियों में भी द्रष्टव्य है :-

" एक नैन कवि मुहमद दरसन लोग भोलाहिं ।
खरग सूर जस उगवै सबै नखत झँप जाहिं ।।" - दोहा- 15.

" राधो सब गोविन्द क सिंगारू । जस अभरन पर सोहै हारू ।।"-216.1

" अब मैं करब मोर जस मानो । दूध-क- दूध पानि कर पानी ।।"-217.6

" सुनि कै बात कंस परजरा । अगिन माँझ जानहु घिउ परा ।।"-288.1

इत्यादि

<u>प्रतिवस्तूपमा :-</u>

जहाँ निरपेक्ष उपमेय और उपमान वाक्यों में शब्द-भेद से एक ही धर्म का कथन हो, प्रतिवस्तूपमा अलंकार होता है। श्रीकृष्ण और राधा के तन-मन से मिलने की कई उपमानों द्वारा अभिव्यक्ति में परिलक्षित देखिए:-

" मन सौं मन तन सौं तन गहा । होइ गए एक न अंतर रहा।।"
"तइस गयउ मिलि जिय सौं जीऊ । मिल्वा जइस खाँड़ महँ घीऊ ।।
जनु स्वाति कन्ह चातक मिला । औ रितु लेइ बोलइ कोकिला।।"

यहाँ उपमेय वाक्य "मन सौं मन तन सौं तन गहा" के लिए निरपेक्ष उपमानों "खाँड में घी" "स्वाती में चातक" और "ऋतु में कोकिला" के मिलन रूप साधारण धर्म "मिल्वा" "मिला" और "लेइ" आदि भिन्न शब्दों द्वारा साधर्म्य स्थापित है।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 266.5
2- वही, कड़वक 266. 4-6

तुल्ययोगिता :-

किसी वस्तु या कार्य के गुण और क्रिया में जहाँ एक धर्मत्व की स्थापना की जाए, वहाँ तुल्ययोगिता अलंकार होता है।

जायसी ने इसका बहुत ही सुन्दर प्रयोग किया है। राधा की सखियाँ उन्हें धन्या और धनुष में समान गुण स्थापित करती हुई श्रीकृष्ण की आज्ञा को क्रियान्वित करने का परामर्श देती हैं :-

" धनि औ धनुक करेर न चहै । अधिक नवै तौ हिय लेइ गहै।।"[1]

"धन्या और धनुष कठोर नहीं अच्छे लगते हैं जब वे अधिक नम्र होते हैं तभी हृदय पर प्रभाव डालते हैं।" यहाँ धन्या और धनुष के मध्य अधिक नम्र होने पर हृदय पर प्रभाव डालने रूप समान धर्म का ज्ञापन किया गया है। यह जायसी की मौलिक, अनुपम और अनुभवगम्य धारणा है।

" न जनौं कस रे फूल कस भौंरा । छाछौ धौरि दूध पुनि धौरा[2] ।।"

"मैं नहीं जानती कि फूल कैसा होता है और भँवरा कैसे? मेरे लिए तो छाछ भी धवल है और दूध भी।"

यहाँ पर छाछ और दुग्ध में धवलता का गुण बताकर कवि ने नायिका की मुग्धता का परिचय दिया है।

तुल्ययोगिता के अन्य उदाहरण :-

" नैन बान हाथे दुइ साना । फुनि न ठहर धरि लीन्ह पराना।।"-113.5

" कहु सो बात अमियँ रस, बीउ सिराव जेहि भाँति ।
तन हुलसै, मन रहसै, हियँ परै मन साँति ।। " - दोहा-209.

" पेम सुरा मोहि जइस चखावा । चढ़ा मोति जिउ लहिरें लावा।।"
- 211.4

1- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 264.3
2- वही, कड़वक 231.4

समासोक्ति :-

जहाँ पर कार्य, लिंग या विशेषता की समानता के कारण प्रस्तुत के कथन में अप्रस्तुत व्यवहार का समारोप होता है, वहाँ समासोक्ति अलंकार होता है। जायसी प्रेम- परिणाम का अप्रकट दाह में समारोप करके कहते हैं :-

"गुपुत - दगध अस ताकर, धुवाँ न परगट होइ ।
सँवर- सँवर मन मन झूरै, भेद न जानै कोइ ।।"

"उसकी दाहकता ऐसी गुप्त होती है कि धुवां प्रकट नहीं होता। स्मरण कर करके ही मन झुकने लगता है, इसके भेद का किसी को पता नहीं चलता।"

यहाँ गुप्त दाह के प्रस्तुत कथन द्वारा प्रेम दशा की अनिर्वचनीयता का संकेत किया गया है ।

समासोक्ति के अन्य उदाहरण भी "पद्मावत" में द्रष्टव्य हैं :-

" जो न आइ यहि कीन्ह निबाहा । ता कहँ अपर हाट कित लाहा।"
- 9.7

" यहि सताप जस परिहस, परत उठौं जल माँह ।
केउ नाहीं मोर सेवक , जो धरि काढ़ै बाँह।।"- दोहा- 46.

" दई- दई कै भएउ बिहाना । उआ सूरज कँवल बिगसाना।- 231.1

" तुम जो भान बिरहिन राधिका । जहसै भानु जेहिं मन्द धिका।।
गरजि असाढ़ लाग जनु आई । दिपै नाहिं रहै जग छाई ।।
नवौं खण्ड कर अंकित पिया । पहुरा जोउ मरत तन जिया।।"
- 263.2-3,7 इत्यादि

1- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, दोहा- 96.

शब्द शक्ति :-

जायसी के कवित्व का प्रयोजन मात्र लोकरंजन है, यशप्राप्ति, धनागम, व्यवहार-ज्ञान और शिवेतर- त्राण से तो उन्होंने नेत्र मूंद लिया था। तुलसी का मानस "स्वान्त: सुखाय" था तो जायसी का "पद्मावत" लोकजन-हितार्थ। इसमें ऐसा ज्ञान- भक्ति- रसार्द्र कमल विकसित है जिसके लिए सहृदय किंवा भक्त-भ्रमर दूर से आकृष्ट होते हैं। हृदयहीन को तो निकट की सुगन्धि भी आप्यायित नहीं कर पाती। रसाल भोलाभालापन लिए, कान्तासम्मित उपदेशयुक्त, नारीवचन- विदग्धतापूर्ण, लोकानुरंगिणी, लोकरंजनी लोकभाषा ही कवित्व का माध्यम है। अत: ध्वनि आदि के पचड़े में जायसी कभी नहीं पड़े और सब प्रकार से रसपूर्ण भाषा के रहते उसकी आवश्यकता भी न थी। वास्तव में उनके पात्रों के मुख से निकले वचन सीधे हृदय का बिम्ब प्रस्तुत करते हैं, वे वचन मानो सीपी से मोती झर रहे हों, करसिज-आनन से मानो फूल बरस रहे हों। नारी पात्रों के क्रोधपूर्ण वचनों में भी मनोरमता प्रकट होती है, स्वाभाविक उक्तियों में वचनभंगिमा ही जायसी की कविता का कोमलकान्त शृंगार और अलंकार है। वे हृदय को हठात् रसविभोर कर देती है।

उनकी गद्यात्मक उक्तियाँ प्रभावशाली तथा हृदयस्पर्शी हैं। उसमें काव्य- सौन्दर्य का भरपूर आनन्द मिलता है। विरहिणी गोपियों की विरहाग्नि के चित्रण में बिहारी के "गागर में सागर भरने" जैसी सुगठित शब्दयोजना वाली स्वाभाविक तथा गद्यात्मक उक्ति का चमत्कार अत्यंत स्पृहणीय लगता है -

"जो चन्दन अस सीतल लावहिं । हिया जरै वह नीर बुझावहिं।।"
- 322.5

"गोपियाँ विरह- ताप की शान्ति हेतु चन्दन, खस आदि शीतल द्रव्यों का लेप करती हैं तो हृदय जलने लगता है, नेत्र- जल उसे बुझाने के

लिए उमड़ पड़ते हैं।" यहाँ उक्ति नितान्त सहज, सरल एवं नमनी है। वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ दोनों में सौन्दर्य की प्रतियोगिता सी लगी प्रतीत होती है।

1- गोपियाँ तन के बाह्य ताप की शान्ति के लिए चंदन आदि का लेप करती हैं किन्तु वह शान्त भी कैसे हो, क्योंकि आग तो भीतर हृदय में लगी है, उसी के ताप से पूरा शरीर तप्त है। अतः हृदय की ही ताप शान्ति भी होनी चाहिए, यह भेद आँखों के आँसू निकलकर समझाते हैं (बुझावहिं)। इसलिए बाह्योपचार त्याग कर आन्तरिक उपचार करना चाहिए, यह लक्षणा से ध्वनित है।

यहाँ वाच्यार्थ अत्यन्त तिरस्कृत है। "कन्हावत" में ऐसे बहुत से उदाहरण उपलब्ध होते हैं। वस्तुतः, वाच्य को ही अत्यन्त तिरस्कृत करके ही वाणी में वक्रता अथवा चमत्कृति आती है। एक प्रकार से यह तत्व काव्य का सहज धर्म है। अगोचर भावों को सुबोध, सुगम एवं हृदयग्राही बनाने तथा मूर्त रूप देने में लक्षणा की शक्ति को अत्यधिक श्रेय प्राप्त है। इसी कारण से ~~ब~~ यह विश्व कवि वन्दनीय रहा है।

2- हृदय- सदन के भीतर आग लगी है जिससे शरीर का ढाँचा तप्त हो गया है। शीतल द्रव्यों के लेप से बाहरी ताप शान्त किया जा रहा है और नेत्र जल डालकर तपन बुझाने में सहायक बन रहे हैं।

3- नेत्र जल हृदय में लगी अग्नि को प्रकट कर रहे हैं। हृदय भवन के बाहर लगी अग्नि शीतल द्रव्यों के लेप से शान्त होकर भीतर हृदय में प्रवेश कर गई है। इससे हृदय की दाहातिशयिता व्यंग्य है।

4- बाहरी ताप को शीतल द्रव्यों से शान्त करती हैं तो भीतर हृदय जलने लगता है। न बाह्य सुख है, न आन्तरिक चैन। मानसिक और शारीरिक अर्थात् आधि- व्याधि दोनों से व्याकुल और दुखी हैं।

वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ की प्रतीति अनेक स्थानों पर मनोरम है :-

"फरे अनूप सुरंगमराते ।
दारिउँ उने रहे निहराते[1]।।"

"सुन्दर रंग के लाल और अनुपम फल लगे हैं। अनार के वृक्ष शान्त भाव से झुके हुए हैं।" यहाँ प्रस्तुत के द्वारा विविध वर्णा, प्रेमी, यौवन भार से नम्र गोपियों की ओर संकेत है तथा दूसरी ओर कृष्ण द्वारा उनकी ग्राह्योपयता व्यंग्य है, साथ ही वाटिका की शान्त, एकान्त, रमणीय तथा अनुकूल स्थिति भी व्यंग्य है।

"सुरुज सहस उवहिं जो, सोरह चंद दिपाहिं ।
करहिं अजोर सबै मिलि, तौहु सो पुजहिं नाहिं[2]।।"

"यदि सहस्र कलाओं से युक्त अथवा सहस्र सूर्य और षोडश कलामण्डित या सोलह चन्द्रमा एक साथ उदय हों तथा सब मिलकर एक साथ प्रकाशित हों तो भी उस [कुब्जा] की कान्ति की समानता नहीं कर सकते थे।"

यह नितान्त अत्युक्तिपूर्ण उक्ति कुब्जा की दिव्य कान्ति की अभिव्यंजना करती है। इससे यह भी व्यंजित है कि श्रीकृष्ण द्वारा स्वयं निर्मित वह कान्ति दुर्लभ और परा प्रकृति थी। अपनी प्रतिक्रिया के अनुसार उन्होंने उसे स्वानुकूल और स्वोपभोग योग्य रचा था।

"रूप सौं विष्नु बैठि गोपाला । रुद्राछ मेली गिउँ माला[3]।।"

"विष्णु गोपाल रूप में बैठे हुए हैं। उन्होंने गले में रुद्राक्ष की माला धारण कर रखी है।" विष्णु का गोपाल रूप उनकी कोमलता, कमनीयता और सामान्य रूप व्यंजित करता है। रुद्राक्ष योगी रूप का व्यंजक है। तप-साधना में रुद्राक्ष का महत्व भी कवि ने व्यंजित किया है। यहाँ सर्वत्र वाच्यार्थ से ही सीधे व्यंग्यार्थ की प्रतीति हो रही है।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 107.1
2- वही, दोहा- 285.
3- वही, कड़वक 108.5

"चले चाँद सुरुज के बासा । ससि मुख देखि भानु परगासा।।" - ।24।

जायसी ने अनेक स्थलों पर चन्द्रावली तथा राधा को चन्द्रमा तथा कमल का प्रतीक मानकर तथा कृष्ण को सूर्य तथा मधुकर के रूप में वर्णन करके प्रतीक योजनाओं की ओर समानान्तर व्यक्त तथा अव्यक्त दो अर्थों की सृष्टि की है। चन्द्रमा सूर्य के निकट चल पड़ा, शशिमुखी को देख करके अथवा शशि की ओर देखकर सूरज चमक उठा। दूसरा अर्थ यह भी है कि चन्द्रावली जब कृष्ण के समीप पहुँची तो उसके मुख को देखकर श्रीकृष्ण अत्यंत हर्षित हो गए। यहाँ "परगासा" शब्द प्रकाशित हुआ वाच्यार्थ है जो मुख्यार्थ बाध के कारण लक्ष्यार्थ 'प्रसन्न हुआ' का वाचक है। इसी प्रकार से निम्न स्थल भी दर्शनीय है :-

" सुनि चाँदहिं मन भएउ हुलासू । सोरह करा कीन्ह परगासू ।।"-।22।

" भा भिनुसार सूर परगासा । कन्ह आइ राधी के बासा।।"-।41।

" जो मधुकर मालति सँग अहा । कूँद करी सँग कोइ न रहा।।"-।49।4

"हँसि- हँसि बूझै चाँदा, ओहि कस कलसि तुम्हार।
सहैं न सकै सुनि राधी, उठै बिरह तन झार ।।"-दो0-।48

उपर्युक्त पंक्ति राधा- चन्द्रावली-विवाद का बीज है तथा व्यंग्य का सुन्दरतम उदाहरण भी। चन्द्रावली राधा के अस्त- व्यस्त रूप को देख कर पहले तो सहानुभूतिपूर्वक अनेक आशंकाएँ उपस्थित करती है किन्तु उसका यह छलपूर्ण कुशल- क्षेम- प्रश्न तब व्यंग्य बनकर राधा के तन में विरहाग्नि उत्पन्न कर देता है जब वह हँसकर "ओहि कस कलसि तुम्हार" कह देती है। यहाँ "ओहि" शब्द में ही चमत्कार है जो श्रीकृष्ण को सामान्य व्यक्ति जैसा 'मनचला' सिद्ध करके राधा के सतीत्व पर भी बट्टा लगा देता है। हँस

कर कहने से उसका व्यंग्य तीक्ष्णतर हो जाता है और राधा का आवेश द्विगुणतर । कृष्ण का चन्द्रावली के प्रति अतिशय प्रेमवश राधा की उपेक्षा भी ध्वनित होती है। इससे एक और व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है, वह है चन्द्रावली का अपने स्वाकर्षण पर गर्व ।

=======

षष्ठ अध्याय

षष्ठ अध्याय

"कन्हावत" के पात्र

श्रीकृष्ण : स्वरूप और विकास -

"कन्हावत" के सर्वप्रमुख पात्र कृष्ण हैं। विद्वानों का मत है कि विष्णु ही श्रीकृष्ण के आदि रूप हैं। नाम और गुण की महिमा से विष्णु और कृष्ण के विकासक्रम के मध्य सूर्य, इन्द्र, उपेन्द्र, ब्रह्म, नारायण, हरि और वासुदेव आदि कई देवताओं का योग है। वेद के प्रसिद्ध भाष्यकार सायण ने विष्णु का "व्यापनशील" अर्थ किया है। यास्क का अर्थ है "अथ यद् विषितो भवति तद् विष्णुर्भवति। विष्णुर्विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा।" निरुक्तकार दुर्गाचार्य भी उपर्युक्त निर्वचन का समर्थन करते हुए कहते हैं "वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् स विष्णुः" अर्थात् जो दृश्यमान जगत में व्याप्त होकर रहता है वह विष्णु है।

विष्णु की इस व्यापकता का वर्णन ऋग्वेद के कई मंत्रों में उपलब्ध होता है। उनमें विष्णु के लिए प्रयुक्त "त्रिविक्रम", "उरुगाय" और "गोपा" शब्द विशेष उल्लेखनीय हैं। वहाँ कहा गया है कि "अदम्य विष्णु गोप ने तीन पदों में ब्रह्माण्ड बाँध लिया था।[1] विष्णु का यह तीसरा पद पक्षियों के लिए भी अगम्य है।[2] यह तीसरा पद मधु का उत्स है।[3]

1- त्रिणि पदानि विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्य । - ऋग्वेद 1/22/18.

2- द्वे इन्द्रस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ।।
- ऋग्वेद 1/155/5.

3- उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः ।
पदे परमे मध्वः उत्सः ।।
- ऋग्वेद 1/154/ 5.

"त्रिविक्रम" विशेषण विष्णु को आदित्यपरक अर्थ के रूप में प्रकट करता है क्योंकि आदित्य ही पृथ्वी, अन्तरिक्ष और दृष्टि से परे "परम पद" का प्रकाशक है, भूत, भविष्य और वर्तमान उसी के तीन पग हैं, प्रातः, मध्याह्न और सायं भी उसी के तीन उत्क्रमण हैं। विष्णु में भी उपर्युक्त गुणों का समावेश है। आकाश- स्थित "परमपद" में विष्णु की सत्ता हमारे समक्ष उन्हें सर्वव्यापक आदित्य के प्रतीक रूप में प्रकट करती है। उनका निवास मधु का उत्स और "परमपद" वैष्णव भक्तों के वैकुण्ठ, गोलोक और वृन्दावन के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। कृष्ण के वृन्दावन में सींगों वाली बहुत गायें हैं, विष्णु के "परमपद" में भी यही स्थिति है। विष्णु अदम्य गोपा हैं तो कृष्ण भी दुर्द्धर्ष "गोप" गो-पालक हैं। विष्णु का तीन पदक्रमण वामनावतार का द्योतक है। शतपथ ब्राह्मण में विष्णु को वामन रूप में स्वीकारा भी गया है।[1]

महाभारत, गीता, हरिवंशपुराण और भागवत श्रीकृष्ण की लीलाओं और रहस्यों के उद्घाटन करने वाले विशद ग्रन्थ हैं। महाभारत में इतिहास के माध्यम से वेदों के रहस्य को प्रकाशित किया गया है। अतः वेदों के अस्तित्व के पश्चात् ही रचनाओं में श्रीकृष्ण की अभिव्यक्ति हुई है। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों[2] के द्रष्टा ऋषि का नाम कृष्ण है जिनसे कार्ष्णायन गोत्र प्रवर्तित हुआ। पौराणिक आख्यानों से भी श्रीकृष्ण का विष्णु अवतार और वृष्णियों[3] में उत्पन्न होना ज्ञात है। "प्रविष्णवे शूषमेतुमन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे"[4]। मन्त्र में उन्हीं विष्णु को वृष्णे सम्बोधित किया गया है। अतः वैदिक विष्णु से पौराणिक कृष्ण की अभिन्नता की सहज प्रतीति हो जाती है।

1- "शतपथ ब्राह्मण", 1/2/5.

2- "ऋग्वेद मण्डल" 8 सूक्त सं0- 85, 86, 87 तथा मण्डल 10/42-43 44 एवं मण्डल 8 का 74 वाँ मन्त्र।

3- श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय-10, श्लोक- 37.

4- ऋग्वेद 1/154/3.

छान्दोग्य उपनिषद् में कृष्ण देवकी पुत्र और घोर आङ्गिरस ऋषि के शिष्य हैं -

तद्धैतद्घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायो -
क्त्वोवाचापिपास एव स बभूव सोऽन्तवेलाया-
मेतत्त्रयं प्रतिपद्येताक्षितमस्यच्युतमसि प्राण -
सं शितमसीति तत्रैते द्वे ऋचौ भवतः ॥[1]

पाणिनि जिनका काल सामान्यतया ई० पूर्व चौथी से छठीं शताब्दी तक माना जाता है।वेवासुदेवार्जुनाभ्यां वुञ् 4-3-38 सूत्र से महाभारत-कालीन कृष्ण और अर्जुन का संकेत करते हैं। महाभाष्यकार पतन्जलि (200ई० पू०) ने वासुदेव शब्द का बार बार और एक बार कृष्ण शब्द का प्रयोग किया है। उनके द्वारा "चिरहिते कंस" और "जघान कंसं किल वासुदेवः" प्रयुक्त पद कृष्ण के पूर्व आविर्भाव को स्पष्ट करते हैं।

यह भी ध्यातव्य है कि श्रीकृष्ण- लीला से सम्बन्धित राधा, गौ, व्रज, अहि, वृषभानु, रोहिणी, कृष्ण, अर्जुन, आदि शब्द वेदों में प्रयुक्त हैं। यद्यपि इनके वहाँ भिन्न अर्थ में प्रयोग हैं तथापि विष्णु की भावना का परवर्ती साहित्य में श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व में विकास को बल मिलता है। उरुगाय, त्रिविक्रम, गोपा, परमपद तो श्रीकृष्ण के स्वरूप के बहुत ही अधिक सन्निकट एवं संगत अर्थ में हैं। वेदों में जो राधा, विष्णु, कृष्ण शब्द आए हैं, वे ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम नहीं हैं। ऐतिहासिक व्यक्तियों एवं पदार्थों के नाम वेद के शब्दों को देखकर रखे गए हैं। वेद के शब्द पहले हैं, ऐतिहासिक व्यक्ति बाद में हुए हैं।[2]

1- छान्दोग्य उपनिषद्, अध्याय- 3, खण्ड 17, श्लोक 6.

2- "भारतीय साधना और सूर साहित्य" : डॉ० मुंशीराम शर्मा, पृष्ठ - 169, सं०- 2010 वि०।

ब्राह्मण काल में विष्णु के मत्स्य, कूर्म, वाराह और वामन अवतारों[1] की चर्चा हुई है। तैत्तरीय आरण्यक में विष्णु नृसिंह के रूप में प्रतिष्ठित[2] हुए। "नृसिंहतापिनी" में उन्हें पुरुषोत्तम, वासुदेव और देवकी पुत्र की संज्ञा प्राप्त हुई। "गोपाल तापिनी" में उनके दिव्य रूप का प्रदर्शन हुआ।

तैत्तरीय आरण्यक में विष्णु को नारायण से जोड़ दिया गया ।4/1/1/ मनुस्मृति में नर का अयन होने से नारायण शब्द व्युत्पन्न बताया गया है -

आपो नरा इति प्रोक्ता आपो वै नर सूनवः ।
ता यदस्यायनं पूर्वम् तेन नारायणः स्मृतः[3] ।।

बृहन्नारायणोपनिषद् में विष्णु को हरि कहा गया और वासुदेव तथा हरि से नारायण का सम्बन्ध जोड़ दिया गया। तैत्तरीय आरण्यक में विष्णु का नारायण से सम्बन्ध स्थिर किया गया।

"अवतार की कल्पना में ब्राह्मण और उपनिषद् में वर्णित नारायण को कृष्ण का अवतार बताकर कृष्ण का तादात्म्य स्थापित कर दिया गया।[4] "श्रीकृष्ण विकास क्रम में पहले विष्णु, उपेन्द्र, यज्ञरूप में इन्द्र से अधिक महत्त्वपूर्ण हो गए, विष्णु में इन्द्र समा गए। यही विष्णु कृष्ण रूप में अवतरित हुए। इन्द्र का विकसित रूप ही कृष्ण में प्रकट हुआ। यही कृष्ण,[5] नारायण, हरि, वासुदेव आदि रूपों में वैष्णव सम्प्रदायों में मान्य हुए।" कारण यह था कि बाह्य रूप में भिन्नता रहते हुए भी उनमें आन्तरिक एकता बनी रही ।

1- शतपथ , 1/3/1/2 - 10//14-35//14/1/2/11/1/25/1-7.
2- तैत्तरीय आरण्यक, 10/1/3.
3- मनुस्मृति, 1/4.
4- मध्यकालीन कृष्ण काव्य में रूप-सौन्दर्य : डॉ० पुरुषोत्तम दास अग्रवाल पृ०- 12.
5- वही, पृ०- 15.

महाभारत में सर्वप्रथम श्रीकृष्ण के पूर्व सभी नामों में समन्वय स्थापित करने की चेष्टा प्रारम्भ की गई। महाभारत में स्वयं श्रीकृष्ण अपने मुख से नारायण, वासुदेव, विष्णु, दामोदर, हरि, कृष्ण आदि नामों की गुणात्मक व्युत्पत्ति बताते हैं - "प्राणियों" के शरीर में मेरा अयन या निवास रहता है इससे मुझे नारायण कहा गया है। सारे विश्व में व्याप्त होने और विश्व का मुझमें स्थित होने के कारण मैं ही वासुदेव हूं। विश्व को व्याप लेने के कारण विष्णु कहते हैं। पृथ्वी, स्वर्ग, अंतरिक्ष मैं ही हूं इससे मैं दामोदर कहा जाता हूं। सूर्य, चन्द्र और अग्नि की किरणें मेरे केश हैं, इससे मैं केशव हूं। "गो" पृथ्वी को ऊपर ले जाने के कारण मैं गोविन्द हूं। यज्ञ का हविर्भाग ग्रहण करने के कारण हरि हूं। सत्वगुण की प्रधानता से [शाश्वत] सात्वत और लोहे के काले काल के रूप में पृथ्वी जोतने और रंग का काला होने से मैं कृष्ण हूं।[1]

पौराणिक ग्रन्थों में भागवत, हरिवंश, ब्रह्मवैवर्त और विष्णु पुराण के अन्तर्गत् श्रीकृष्ण की लीलाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन है। ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, वायुपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, गरुण पुराण, देवी भागवत में भी श्रीकृष्ण के दैवी और मानवीय दोनों रूपों का समन्वय कर दिया गया है। उन्हें विष्णु का अवतार परब्रह्म और विराट रूप में उपस्थित किया गया है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्ण के जन्म तथा अन्य लीलाओं का विस्तृत वर्णन करने वाला प्रमुख पुराण है। इसमें श्रीकृष्ण को परब्रह्म, ब्रह्मधाम, निर्गुण, निराकार, सगुण, साक्षी रूप का निर्लिप्त परमात्मा, प्रकृति और पुरुष का भी कारण कहा गया है। यहां तक कि श्रीकृष्ण जगत् के प्रादुर्भाव के कारण तो हैं ही परमात्मा के भी कारण हैं। राधा का सर्व-

---

1- महाभारत, अध्याय 341- 342.

प्रथम परिचय इसी पुराण से विस्तारपूर्वक प्राप्त होता है। गोलोक, राधा- मन्दिर, राधा- कृष्ण का सांख्य के अनुसार प्रकृति- पुरुष रूप में सम्बन्ध का वर्णन भी दर्शनीय है। सांख्य की यह दृष्टि अन्यत्र दृष्टिगत नहीं होती।

उच्च श्रृंगारिक वर्णन, साहित्यिक अभिव्यक्ति और राधा के आविर्भाव के साथ वर्णनों की विशदता की दृष्टि से इस पुराण का बहुत अधिक महत्व है। परवर्ती साहित्य में श्रीकृष्ण की रूप- सौन्दर्य- चेतना का यही मूल है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा कृष्ण की प्राणेश्वरी, शक्ति और प्रकृति रूप में चित्रित है। कृष्ण स्वयं राधा से कहते हैं - " हे राधे। तुममें और मुझमें कोई भेद नहीं है जैसे दुग्ध में धवलता, अग्नि में दाहिका शक्ति और पृथ्वी में गन्ध वर्तमान रहता है, उसी प्रकार मैं सर्वदा तुममें रहता हूँ। तुम जगत की आधार स्वरूपा हो और मैं कारण रूप हूँ। .... जब तुमसे विलग रहता हूँ तो लोग मुझे कृष्ण कहते हैं और जब साथ रहता हूँ तो श्रीकृष्ण कहते हैं।"[1]

भागवत पुराण श्रीकृष्ण के स्वरूप, गुण, लीलापरक दिव्य जन्म-कर्म का परिचय कराने वाला प्रमुख पुराण है। वेदों से लेकर साहित्य की विविध अभिव्यक्तियों में रूपायित श्रीकृष्ण सम्बन्धिनी समस्त सामग्रियों का यहाँ एकत्र समाहार है। भागवत में श्रीकृष्ण स्वयं भगवान हैं, अन्य अवतार तो उनके अंश हैं।

" एते चांश कला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयं"[2]

श्रीकृष्ण ने ही कृष्ण और शुक्ल रूप में, कृष्ण और बलराम के रूप में नारायण का अवतार लिया।[3] इनका सोलह कलाओं से युक्त पूर्णावतार है।

1- "संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराण" गीता अंक, श्रीकृष्ण जन्म खण्ड, अ0-15, पृ0- 380.

2- श्रीमद्भागवत 1/3/28.

3- वही, 2/7/26.

ब्रह्माण्ड की सृष्टि करके अन्तर्यामी रूप में सभी प्राणियों में प्रवेश करके उन्होंने "पुरुष" नाम प्राप्त किया। जिस प्रकार गीता में[1] भगवान श्रीकृष्ण ने अपने को सर्वरूप बताया है, उसी प्रकार श्रीमद्भागवत[2] में भी अपने को ही विविध रूपों में प्रकट किया है तभी तो वे वियोगिनी गोपियों को समझाते हुए कहते हैं -

> "भवतीनां वियोगो मे नहि सर्वात्मना क्वचित् ,
> यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही ।
> तथाहं च मनः प्राण भूतेन्द्रिय गुणाश्रयः[3] ।।"

श्रीकृष्ण का यह अवतार लीला के निमित्त हुआ था, इसीलिए उन्हें लीला पुरुषोत्तम और आराध्य की मान्यता प्राप्त हुई। वे भक्ति के आधार बने। जायसी भी यह स्वीकार करते हैं कि श्रीकृष्ण के मधुर रूप की सगुण भक्ति पर जगत मुग्ध है -

> " सबहि भाँति सो दरसन सोहा । उहै भाँति पै जगत बिमोहा[4]।।"

श्रीकृष्ण का रूप- सौन्दर्य -

भक्ति काल की समस्त रचनाओं में श्रीकृष्ण के सर्वाधिक वर्णन का कारण उनका मधुर रस अधिष्ठाता के रूप में स्थापित होना है। युगानुकूल श्रीकृष्ण की आराधना में भोग और धर्म दोनों वृत्तियों की तृप्ति का अपूर्व अवसर यहीं आकर मिला था।

1- श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय- 10, श्लोक 20-41.
2- श्रीमद्भागवत, स्कन्ध- 10, अध्याय- 14, श्लोक- 14.
3- वही, स्कन्ध- 10, अध्याय- 47, श्लोक- 29.
4- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक - 112.2

मधुर रस के अधिष्ठाता के रूप में श्रीकृष्ण के स्वरूप ने जायसी को भी प्रभावित किया होगा। सूफी दर्शन में प्रेम, भोग और धर्म का सामरस्य श्रीकृष्ण भक्ति रूप में भी पर्याप्त रूप से मिल जाता है। सूफी दर्शन में नारी को परमात्मा का रूप तथा नारी के सौन्दर्य में परमात्मा का सौन्दर्य अनुभव किया जाना विदित ही है। अतः पुरुष रूप की अपेक्षा सूफी दर्शन से प्रभावित कवियों ने नारी के रूप का चमत्कारपूर्ण एवं अत्युक्तिपूर्ण वर्णन किया है। "कन्हावत" में भी राधा और चन्द्रावली के रूप सौन्दर्य के वर्णन में जायसी ने अपनी मौलिक प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। उसमें श्रीकृष्ण के रूप- सौन्दर्य का वर्णन अपेक्षाकृत अल्प और सीमित है।

भक्तिकालीन रचनाओं में श्रीकृष्ण का छलिया रूप अधिक चर्चित एवं स्पृहणीय रहा है, क्योंकि श्रीकृष्ण ने आत्म मर्यादा हेतु नारी का ग्रहण किया था। उनकी दृष्टि में आत्म चेतना तथा मर्यादा में आत्मसंयम का महत्व है। वे मर्यादा तोड़कर चपलतापूर्ण जीवन आरम्भ करते हैं। उनका अवतार ब्रज की वीथियों में अपनी सम्पूर्ण मोहकता एवं सौन्दर्य बिखेरने के लिए तथा ब्रजललनाओं की दाम्पत्य-रति-विषयक भावनाओं की तृप्ति के लिए है। अतः उनके रूप- सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में कवियों की चेतना अधिक रमी। उन्होंने सौन्दर्य की आध्यात्मिक चेतना को भौतिक चिंतन में परिवर्तित कर दिया। ब्रह्म- सौन्दर्य के ने जिसे "ज्योति" निरूपित करके सम्पूर्ण विश्व के सौन्दर्य का मूल माना जाता था, उसने परवर्ती साहित्य में ऐन्द्रिय रूप धारण कर लिया।

"कन्हावत" में जायसी ने कान्ता-प्रेम की सर्वोपरि महत्ता स्थापित की है। श्रीकृष्ण पाँच वर्ष से दस वर्ष की पौगण्डावस्था से ही गोपबालाओं के साथ छेड़- छाड़ करते वर्णित गए हैं। छेड़छाड़ के लिए जायसी "बरियाई"

और श्रीकृष्ण के लिए "ढोटा" { पौगण्डावस्था का बालक } और "लंगर" { कामुक युवक } शब्द प्रयुक्त करते हैं -

"राजहिं बात न आवे, उरहन दे गोपार ।
अइस करे बरियाई , बरजहु आपुन बार[1]।।"

"जोलहि कन्ह बेगिभा ढोटा । टेके जोग ब्रज के गोटा[2]।।"

"देखहि लंगर कान्ह केथ्योजी । अस को कहे को सुन बईठी[3]।।"

"लंगर कान्ह बरियार न परे । बरियाई गोपिहि सेउं करे[4]।।"

कृष्ण- भक्त कवियों ने इसी "बरियाई" को "लंगराई" "अचगरी" शब्दों से व्यक्त किया है। सूरदास की गोपियां ऐसी "अचगरी" के विरुद्ध माता यशोदा को जब उपालम्भ देती हैं तो यशोदा कहती हैं -

"कहाँ मेरे कुंवर पाँच ही बरस के, रोइ अजहुं तु पै पानि माँगे।
तू कहां ढीठ जोबन प्रमत्त सुंदरी, फिरति इठलानि गोपाल आगे[5]

"मेरे हरि कहं दसहिं बरस को,
तुमहि जोबन मद उमदानी ।
लाज नहिं आवत इन लंगरनि,
कैसे धों कहि आवति बरनी[6] ।।"

"कन्हावत" की गोपियों को भी इसी प्रकार यशोदा मीठी फटकार लगाती हैं। उनकी दृष्टि में श्रीकृष्ण दुधमुंहे बच्चे हैं और गोपियां उन्मत्त युवतियां हैं -

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, दोहा- 94.
2- वही, कड़वक 90.1
3- वही, कड़वक 102.2
4- वही, कड़वक 123.3
5- सूरसागर : पद सं0- 925
6- वही, पद सं0- 2108.

" बालक मोर दूध कर पोवा । सो कत खिझावहिं जो अस रोवा ।।
जो रे सभ जोबन मैमंतो । तहवाँ जाहु होइ जिय साँती ।।
बारहिं बार केवादे आई । गोवहु नाहिं हो नैन झुठाई[1] ।।"

श्रीकृष्ण की चपलता उनका आकर्षक गुण बन गया था। चपलता के प्रति ऐसा आकर्षण नारी की एक स्वाभाविक विशेषता होती है। कृष्ण के रूप की यह विशेषता रही है कि वे माता यशोदा के समक्ष बाल भाव से और गोपियों के समक्ष तरूण रूप में आते हैं।

उनके रूप की दूसरी विशेषता है प्रतिक्षण की बदलती नवीनता जो ब्रजललनाओं के हृदय को आकर्षित आवर्जित तथा उद्वेलित करता रहता है। वह रूप सदा स्पृहणीय तो होता ही है, साथ ही ऐसे रूप में प्रतिफलित सौन्दर्य भी पकड़ में नहीं आता, ऐसे रूप से रति भी नहीं की जा सकती। इसीलिए राधा और चन्द्रावली दोनों श्रीकृष्ण के उस रूप पर विश्वास नहीं करतीं जो उनके समक्ष दृश्यमान रहता है। राधा श्रीकृष्ण को लोक में प्रसिद्ध बहुरूपिया कहती हैं और उनके अनूप, धूप- छाहीं अलौकिक रूप के दर्शन की अभिलाषा प्रकट करती हैं -

" तुम्ह जो कहे बहु रूपै, जइस छाँह औ धूप ।
सो मोहि बेगि देखावहु, भाँतिहि भाँति अनूपा ।"[2]

सौन्दर्य अंगों के विन्यास से उत्पन्न होता है और लावण्य अंगों का ऐसा बहुमूल्य तत्व है जो उसी प्रकार उसके महत्व को बढ़ा देता है, जैसे मोती में वर्तमान आब मोती के मूल्य की अभिवृद्धि कर देता है। रूप का भौतिक स्थूल गुण वस्तु की सापेक्षता, संगति, सन्तुलन, समता और सानुपातता में है। इस आधार पर वस्तु का सौन्दर्य, अंग- प्रत्यंग के

1- "पद्मावत" शिवसहाय पाठक, कड़वक 214, 5-7
2- वही, दोहा- 223.

सुश्लिष्ट यथोचित सन्निवेश अर्थात् अंगों के गठन, आकार, मृदुता, कोमलता आदि गुणों में सन्निविष्ट होता है। नख- शिख के सौन्दर्य- वर्णन में इसी धारणा का योग होता है।

रूप के बाह्य तत्वों के रूपांकन में जायसी ने कृष्ण के द्वारा बाल एवं युवावस्था में धारण किए जाने वाले आभूषणों का यत्र- तत्र वर्णन किया है। वह मात्र वस्तु- परिगणन- प्रणाली के माध्यम से सौन्दर्य के उपकारक गुणों का वर्णन करता है। पाँच वर्ष के गोपाल के कण्ठ में मणिमाला एवं मुक्तामाला विराजमान हैं, कानों में स्वर्ण निर्मित कर्णफूल तथा सिर पर पगड़ी शोभायमान है -

"पाँच वरिस महँ भयउ गोपाला । कंठ सोह मनि-मुकुता-माला।।
कान कनक अनते दुहुँ मेली । औ सिर बनी पाटके सेली।।"[1]

पौगण्डावस्था में -

"माला कंठ दिपहिं गजमोती । बिब-बिब रतन-नखत कै जोती ।।
हाथ जराऊ बाँसुरी, रहै पदारथ सोह ।
भूलहिं मिरिग सबद सुनि, देवता जाहिं विमोह।।"[2]

"माथे मुकुट चारिमिं आवा । कुण्डल स्रवन सोहुँ कंठमाला ।।
अव हीं मसि भीजै लेह रेखा । जगत विमोहि गयउ जेन देखा।।
औ मउर सिर बाँधि, चन्दन खेवरैं गात ।
जस बरात महँ दूलह, देखहि औ बिहसात।।"[3]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 70. 1-2
2- वही, कड़वक 89. 5- दोहा
3- वही, कड़वक 206. 4- दोहा

श्रीकृष्ण के अंगों से ऐसी छवि प्रस्तुत होती है, इतनी ज्योति प्रकाशित होती है कि जायसी उन्हें सहस्र किरणों से मण्डित सूर्य की उपमा देकर उन्हें सूर्य के नाम से अभिहित करते हैं। ऐसे रूप में सौन्दर्य, कमनीयता, कान्ति- लावण्य सब कुछ प्रस्फुटित होता है। कनक की कान्ति उनकी समानता करने में सर्वथा असमर्थ होती है -

"अति सरूप सुंदर सुठि लोना । गोर बरन सरि पूजि न सोना।।"[1]

"सहस करां सूरुज जनु उआ ।"[2]

"सुरज चाहि अधिक निरमला । मूरति काम चतुरभुज कला।।"[3]

इतना ही नहीं श्रीकृष्ण को ज्योति के समक्ष सभी ज्योतियां छिप जाती हैं तथा रूप के सम्मुख समस्त रूप लज्जित हो जाते हैं -

"सबै जोति ओहि जोति छिपावहि । और रूप तेहि रूप लजाहहि"[4]

रूपांकन की यह प्रवृत्ति मध्यकालीन कृष्ण भक्त कवियों में रूप सीमा, सोभा सीमा, सुन्दरता को हद आदि शब्दावली के द्वारा व्यक्त है -

"अरी यह सुन्दरता की हद ।
कुण्डल लोल कपोल विराजत, विलगित भुव जोति उनमद ।
विद्रुम अधर दसन दारयो दुति, दुलरी कंठ हार उर विसद।
गोविन्द प्रभु बन ते ब्रज आवत, मानहु मदन गजराज धरत मद।।"[5]

जायसी ने इसमें रूप- सौन्दर्य की प्रशंसात्मक अभिव्यक्ति तो प्रकट ही की है, साथ ही सौन्दर्य की अतिशयता व्यक्त करने में असमर्थ अपनी वाणी के मौन को भी स्पष्ट कर दिया है।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 112-3
2- वही, कड़वक 112-6
3- वही, कड़वक 120-5
4- वही, कड़वक 120-7
5- "अष्टछाप परिचय", पृ०- 255.

श्रीकृष्ण के रूप का लावण्य नि:सीम है। ब्रजबालाओं का मन उनके रूप भँवर में उलझ जाता है। उनका मन श्रीकृष्ण के मोहक रूप को देखकर बरबस आकृष्ट हो जाता है। देवता भी उनके रूप से मोहित हुए बिना नहीं रहते। राधा, चन्द्रावली, कुब्जा तथा अन्य गोपियां उनके त्रिमुग्धकारी रूप को देखकर प्रथम दृष्टि में ही मोहित हो जाती हैं। राधा श्रीकृष्ण के बहुरूपी रूप के दर्शन की अभिलाषा प्रकट करती हैं। श्रीकृष्ण भी उन्हें शिशु रूप, विशाल रूप, वृद्ध रूप तथा वयस्क रूप का दर्शन कराते हैं। नवयुवक रूप में वे अत्यन्त सुरूप, सुन्दर, कोन्तकान्त लगते हैं। उनके रूप की कान्ति बारह बान तक पुनीत: शुद्ध सोने की सी लगती है। मूंछों के स्थान पर सूक्ष्म काली रेखा सी प्रकट है -

"पुनि रूप भा सुन्दर लोना ।
बारह बानि कसे जनु सोना ।।
रेख उठत मसि भीजत, तेहि विधि भरउ संजोग[1] ।"

श्रीकृष्ण के ऐसे ही सुन्दर रूप पर गोप बालाएँ रीझी हुई थीं। अनुपम सौन्दर्यवान श्रीकृष्ण के रूप- दर्शन की उनकी अभिलाषा अतृप्त ही रहती थी। ऐसे रूप को देखकर राधा का मन बेचैन हो जाता है, वह वश में नहीं रहता है। अभिलषित रूप- दर्शन के पश्चात् लौटकर राधा सखियों से अपनी अन्तर्दशा प्रकट करती हैं -

"हुत परतिंग्या जइस सरूपा । भाँति भाँति देखा तेहि रूपा।।
x x x x x x x
गा एहि जोउ रहा नहिं, मानत रोतु बसंत ।
बीने फूल चलहु लई, औ पैयें सो कंत[2] ।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़क 224,7 दो०
2- वही, कड़क 229, 5 - दो०

राधा अपने औत्सुक्य तथा आनन्द को गोप्य नहीं रखती हैं। वे सखियों को स्वयं चलकर देखने तथा आनन्द लूटने के लिए आमंत्रित करती हैं। श्रीकृष्ण के रूपाकर्षण का परिणाम राधा के मन में काम के रूप में प्रकट होता है जिससे उसके शरीर में काम- ज्वर व्याप्त हो जाता है -

" काम-लुबुध मन भई राधिका ।
रहि न जाइ बिरहिन तन धिका।।"[1]

चन्द्रावली भी सखियों समेत जब श्रीकृष्ण के दर्शन की लालसा में बाहर निकल कर देखती हैं तो वह प्रथम दृष्टि में ही विमुग्ध हो जाती हैं। राधा की ही भाँति वह काम- बाणों से बिंध जाती हैं। उसके समक्ष श्रीकृष्ण का वही रूप आता है जो राधा के समक्ष प्रत्यक्ष हुआ था।[2]

चन्द्रावली कामलुब्ध होकर इतनी अचेत हो जाती है कि सखियों एवं धाय अगस्त को उसकी प्राण-रक्षा के लिए अनेक यत्न करने पड़ते हैं। ऐसी अवस्था में प्राप्त करके चन्द्रावली बराबर श्रीकृष्ण दर्शन के लिए लालायित रहती है। वह धाय अगस्त के पाँव पड़ती है, विनती करके उसे मनाती है कि उसे पुनः श्रीकृष्ण का दर्शन करा दे। श्रीकृष्ण के रूप के जादू ने उस पर ऐसा प्रभाव डाल दिया था -

"पुनि चन्द्रावलि पायन्ह परी ।
धाइ देखाउ मोहिं एक घरी ।।"[3]

"विनती कीन्ह अगस्त मनाई । भई सो रात जस सरद सुहाई।।"[4]

श्रीकृष्ण का रूप धूप- छाँही है अर्थात् वह नित्य नवीन, चमत्कारपूर्ण, दीप्त तथा रमणीय है। उस सौन्दर्य में धर्म, वर्ण और आकार की सीमा नहीं है। इसीलिए वह अपनी सुरूपता और अगाह्यता से चमत्कृत कर देता है। ऐसा रूप अनः सन्धि का होता है।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 230.2
2- वही, कड़वक 206.
3- वही, कड़वक 211.1
4- वही, कड़वक 212.1

श्रीकृष्ण और राधा के लिए मध्यकालीन हिन्दी- कृष्ण- काव्य के कवियों ने नवल- नवेली और किशोर- किशोरी का बहुश: प्रयोग किया है।

उपर्युक्त शब्दों के प्रयोग से श्रीकृष्ण और राधा के हृदय के उल्लास का भी बोध होता है। जिस प्रकार सूर आदि कवियों ने श्रीकृष्ण और राधा के लिए ही इन शब्दों का व्यवहार किया है, उसी प्रकार जायसी ने भी "कन्हावत" में उन्हीं के लिए "नवल" शब्द का कथन किया है -

"नवल नेह नव प्रीतम आजू । नव सुहाग तिय धनि लेइ साजू ।।[1]

"नवल नेह पैठेउ फुलवारी । फूल्य सुआ भा सो धनि बारी।।
नवल नेह, नई धनि, नय कंतु । औ पाई नइ रीतु (बसंतु)।।
सेज मिले बिधु माधौ नवला । देखि भौंर बिगसे जल (कँवला)।।"[2]

यह नवीनता राधा के श्रृंगार रस का प्रमुख आधार तो है ही साथ ही वह नवीन अवस्था सम्पूर्ण रस- साधना की प्रमुख अवस्था भी है जिसका कवि ने व्यष्टि रूप में कथन किया है। श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति के लिए आलम्बन और आश्रय दोनों की नवीन अवस्था समान रूप से आवश्यक होती है। इसे कवियों ने "बढ़त बैस का दाँव भी" कहा है। गोपियों को कृष्ण का यह रूप बहुत ही सुखद प्रतीत होता है।

श्रीकृष्ण के छलिया रूप पर राधा व्यंग्य करती हैं कि हे प्रिय ! नवों खण्डों में तुम्हारे सिवाय अन्य ऐसा कोई नहीं है जो इतना छली हो। तुम प्रकट भी दिखते हो और सबके हृदय में छिपे रहते हो। तुम्हारे दर्शन से सारा जगत प्रफुल्लित रहता है। तुम्हारे ऐसे ही छलिया चरित से सभी इतने आकृष्ट रहते हैं कि सब पर जादू सा चढ़ा रहता है -

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 226.2
2- वही, कड़वक 267.2, 6. 7

" पिय छाँडि नो कुण्ड काहु ना जानें ।
परगट दोउहि रहहि लुकानैं ।।
दरस तुम्हार जगत सब फूला ।
तुम्ह जग सेउँ जग तुम्ह सेउँ भूला ।।
चरित लुभानीं जोरहिं बाहु ।
चेटक लागि रहा सब काहु[1] ।।"

भागवत की निम्नलिखित पंक्तियाँ इसी ओर संकेत करती हैं -

" कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् योगेश जगदीश्वर ।
वासुदेवाखिलावास सात्वतां प्रवर प्रभो ।।
त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैधसाम् ।
गूढो गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः[2] ।।"

भागवत के अनुसार श्रीकृष्ण को देखकर मथुरा की स्त्रियाँ भी अत्यंत हर्षित हुईं। महलों की अटारियों पर चढ़कर उन्होंने श्रीकृष्ण पर पुष्पों की वर्षा की। वे बहुत दिनों से भगवान श्रीकृष्ण की अद्भुत लीलाओं को सुनती आ रही थीं। उनके चित्त चिरकाल से श्रीकृष्ण के लिए चंचल, व्याकुल हो रहे थे।[3] "कन्हावत" में भी इसी बात का थोड़े परिवर्तन के साथ उल्लेख किया गया है कि कंस की रानियों ने दासी कुब्जा को प्रेरित किया कि वह श्रीकृष्ण का उन्हें दर्शन कराये। उन्होंने श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन तो सुना था किन्तु नेत्रों से कभी दर्शन नहीं किया था फिर भी उनके हृदय में कृष्ण के प्रति प्रीति उत्पन्न हो गई थी।[4]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 257, 2.4.5
2- "श्रीमद्भागवत" 10, 27, 11-12.
3- वही, स्कन्ध-10, अ0- 41, श्लोक 28-29.
4- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक- 292 दो0

इसी के पश्चात् जायसी ने श्रीकृष्ण के प्रकाशमान शुद्ध स्वर्ण-सदृश गौर और कोमल वर्ण, मणिमुक्ता माला से सुशोभित कण्ठ, मणिमय मुकुट से दीप्त जगत विमुग्धकारी ललाट, यौवनारम्भ से युक्त कौमारवय, सिंह-शावक जैसी गम्भीरता, अति कलामण्डित चतुर्भुजरूप, आठों अस्त्र धारण किए हुए कर, श्रेष्ठ हस्ति-सम गमन, किशोर एवं मनोहर शरीर का वर्णन किया है। ऐसे सर्व- शोभा-मण्डित रूप को देखकर सभी रानियाँ मुग्ध हो गईं। वे ईश्वर से विनय करने लगीं कि यदि इस प्रकार का पुरुष प्राप्त हो जाए तो मन की समस्त आशाएँ पूर्ण हो जायें[1]। कृष्ण के रूप का इतना जादू था कि जिसने जहाँ भी देखा, आकृष्ट हुए बिना न रह सका।

जायसी ने "कन्हावत" में श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर जीवन-पर्यन्त चरित का वर्णन प्रस्तुत किया है। यह चरित "विष्णुपुराण", "महाभारत", "हरिवंशपुराण" आदि प्राचीन पुराणों में अनेकधा उल्लिखित है क्योंकि हरि "अनन्त" हैं और उनकी कथा भी अनन्त है। लोक में भी उनकी कथाएँ इतनी हैं कि जितनी गगन में तारिकाएँ। वेदव्यास ने उनके चरित को सहस्रधा व्यक्त किया है[2]। भागवतपुराण ने जायसी को सर्वाधिक आकृष्ट किया था, क्योंकि उसी में कवि ने अपना अभीष्ट लक्ष्य, प्रेम-पंथ प्राप्त किया था। उसे कृष्ण- कथा में ही योग, भोग, तप, शृंगार, धर्म और सत् के दर्शन हुए। 'नाना पुराण निगमागम सम्मत' एवं अन्यत: संगृहीत "मानस" की भाँति "कन्हावत" की कृष्ण- कथा में पुराणों के अतिरिक्त लोकाख्यानों के सूत्र भी समन्वित हुए हैं। समग्र चरित में प्रेमतत्व ही कवि को सर्वाधिक अभीष्ट था। उसने इसे तुर्की, अरबी, फारसी आदि सभी भाषाओं के साहित्य में उत्कण्ठा एवं तन्मयता से खोजा किन्तु कहीं भी

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक- 293.
2- "श्रीमद्भागवत्", स्कन्ध-1, अ0-18, श्लोक- 19.

ऐसी प्रेमकथा का दर्शन न हुआ जिसमें प्रेम के साथ योग, भोग, तप,श्रृंगार, धर्म और सत् का सामरस्य हो। कृष्ण- चरित्र में इन्हीं तत्वों का प्राधान्य है। वास्तव में कृष्ण- कथात्मक "कन्हावत" ऐसा सरोवर है जिसमें ज्ञान- भक्ति- रसपूर्ण- कमल खिले हैं और रसिक- भ्रमर-मन बरबस आकृष्ट होकर सामीप्य ग्रहण कर लेता है।

अवतार- प्रयोजन :-

ईश्वर ने कभी कलावतार, कभी अंशावतार और कभी पूर्णावतार धारण किया है, ऐसा पौराणिकों का मत है। भगवान ने अजन्मा होने पर भी पृथ्वी का भार उतारने के लिए यदुवंश में जन्म लिया था और ऐसे- ऐसे कर्म किए थे जो समस्त देवताओं द्वारा मिलकर भी करना दुष्कर है।

स्पष्टत: लोककल्याण ही अवतारों का मूल प्रयोजन है। "कन्हावत" में कहा गया है -

"जोतहि दोष परे जब होई । मारे कहं ओतारे सोई ।।
आपुहि बारा ओतारा, होइ- होइ काटे भार ।
अब नोहें ओतरिके, पुनि केउ करहि तुम्हार[1] ।।"

दुष्कर्मियों का विनाश अथवा भूमि- भार का उतारना ही यहाँ भी मुख्य हेतु ख्यापित है। कवि ने काव्य में अन्यत्र भी इस हेतु का स्मरण दिलाया है -

"[कंस] बिष्नु जो गरब कीन्ह मन बूँठा। उयनी रिस परमेसुर रूठा।
दई बेगि बिष्नु उपराजा । भा आयसु मथुरां भो राजा[2] ।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 37.7 दो०
2- वही, कड़वक 42. 1- 2

दशावतारी

"कन्हावत" में विष्णु के दस अवतारों का बार- बार यथावसर उल्लेख किया गया है ।

आपुहि बारा औतारा, होइ- होइ काटे भार ।
अबनौहें औतरिके , पुनि खेउ करहि तुम्हार[1] ।।"

"कन्हावत" में कृष्ण नाग्नि से बताते हैं कि वे निर्गुण परब्रह्म परमेश्वर के अंशावतार हैं -

"बूँद सुमुंद जस दोऊ, तस हौं ताकर अंस ।
कन्ह रूप औतारेउं, मारे आएउं कंस[2] ।।"

अन्यत्र उल्लेख है कि विष्णु ने ही दस अवतार ग्रहण किया था जिनमें कृष्ण भी एक थे। ये अवतार भी परमात्मा के आदेश से धारण किए गए थे।

" दई बेगि विष्नु उपराजा । भा आयसु मथुरा भो राजा[3] ।।"
" जोहि आदि हौं सिरजा अहा। दस अवतार अवतरे कहा[4] ।।"

अनेक स्थानों पर कृष्ण को महादेव और ब्रह्मा का भाई एवं विष्णु बताया गया है। विष्णु के दस अवतारों में वासुदेव, उद्धव, हर, विष्णु, राम, नारायण, केशव, कृष्ण, गोविन्द और गोपाल नाम उल्लिखित हैं-

" बड़ पूरुष यह उपना आई । महादेव ब्रंहमा कर भाई ।।
तहिया [?] बिसुन भा औतारा। अब उपना कन्हा (अवतारा)।
दई कीन्ह एक दस नाऊं । दस अवतार दीन्ह दस [नाऊं]।।
बासुदेव ऊधो हर बिसुन । राम नरायन केसव किसुन ।।
सो यह कीन्ह गोविन्द गोपालू। तुम्ह कहँ दाहिन भयउ दयालू[5]।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक- 37.
2- वही, दोहा- 80.
3- वही, कड़वक 42.2
4- वही, कड़वक 85.2
5- वही, कड़वक 58. 2-6

जायसी ने अनेक बार कृष्ण द्वारा अपने को विष्णु का अवतार होना कहलवाया है साथ ही विष्णु के चतुर्भुज और अष्टभुज रूप तथा अस्त्रों का उल्लेख किया है -

"एहि विष्नु सिरजा करतारा । जा कहँ दियहि दसौ औतारा।।'[1]

"हौं गोपाल सौ त्रिभुनहँ, जाकर दस अवतार[2] ।"

"जो तुम्ह किसन सूर बरियारा । आपुन कहौ दसौ औतारा।।

औ सौ चतुरभुज जस कलि माहाँ। मोहि देखावहु चारिउ बाहाँ[3]।।

उनकी व्यापकता को स्पष्ट करने के लिए "कन्हावत" में उन्हें सूर्य, विष्णु, कैलाशी, बनवारी, भ्रमर, पखी और बसेरा तथा श्वापद- आखेटक कहा गया है।[4]

समस्त गोपियों के शंका करने पर उन्होंने उस विराटस्वरूप का दर्शन कराया जो गीता में अर्जुन को तथा भागवत में माँ यशोदा को प्रत्यक्ष कराया था। इसमें सोलह कलाओं के साथ पूरे ब्रह्माण्ड में कृष्ण को ही गोसाईं अर्थात् ईश्वर सिद्ध किया गया है -

"अति - अपार बिसतार, तीनहु लोक देखाइ तहँ ।

सोरह करौं पसार, कन्ह गोसाईं होइ रहा[5] ।।"

अन्यत्र वे निष्कलंक, निर्मल, अवर्ण, अरूप, अजन्मा, अनुपम ज्योति स्वरूप, अनूप अंशधर ईश्वर को अपना भी कर्ता और जग का सृजनहार कहते हैं -

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 121.4

2- वही, दो0- 127.

3- वही, कड़वक 128.3-4

4- वही, कड़वक 222. 3- 7

5- वही, सो0- 342.

" जो जग सिरजै सिरजनहारू । सो कि लेइ मानुस औतारू ।।
निहकलंक निरमल सब माहाँ। जह लगि परै धूप औ छाहाँ।।
सब कहि दिहसि जरम औ जालइ। आपु अबरन अरूप खिहालइ ।।
अइस गोसाईं रासान कर राजा । भुवन मानुस ताकर उपराजा।।
बूँद समुंद जस दीवे, तस हौं ताकर अंस ।
कन्ह रूप औतारेउँ, मारे आएउँ कंस[1] ।।"

वास्तव में जायसी निराकार ब्रह्म को मानते थे, इसीलिए निर्गुण और सगुण ब्रह्म के भेद को उन्होंने गुप्त और प्रकट नाम दिया। निर्गुण ब्रह्म सबमें गुप्त रूप से समाविष्ट है और लीला हेतु उसने सगुण रूप में कृष्ण आदि का अवतार लिया था -

"परगट रहौं सबन के ठाऊँ । गुपुत जीउँ परमेसुर नाऊँ[2] ।।"
"परगट- गुपुत देवु अस करा। वह सब महँ सब ओहि महँ भरा[3]।।"

दिव्यजन्मा -

गीता में श्रीकृष्ण अपना स्वरूप निरूपित करते हुए अर्जुन को बताते हैं -

"जन्म कर्म च मे दिव्यम्[4]"

हे अर्जुन। मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं क्योंकि उनका जन्म धारण मात्र लीला है। वे अपनी प्रकृति के अधिष्ठाता होकर योग- शक्ति द्वारा मनुष्यादि के रूप में केवल लोगों पर दया करके ही प्रकट होते हैं।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 80.
2- वही, कड़वक 350.6
3- वही, कड़वक 344.5
4- गीता, अध्याय- 4, श्लोक - 9.

जायसी ने भी उनके जन्म धारण करने के समय का दिव्य चित्रण किया है। कंस कारागार में उनके आविर्भाव के समय मानों सहस्र रश्मि सूर्य उदित हो उठा हो, जिससे सम्पूर्ण आवास प्रकाशमान हो गया। नव निधियों समेत लक्ष्मी विराजमान हो गई। कोई ऐसा स्थान रिक्त न रहा जहाँ वे समा सकें। भाग्य अनुकूल बन गया। दरिद्रता को अन्यत्र शरण लेनी पड़ी[1]।

अप्सराओं ने मंगलाचार रचा। देवता, ऋषि, मुनी, गन्धर्व, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, तारिकायें सब प्रसन्न हो उठे और मंगलोत्सव मनाने लगे[2]।

श्रीमद्भागवत में भी श्रीकृष्ण के प्राकट्य पर आनन्द का साम्राज्य स्थापित हुआ दिखाया गया है।

भगवान् के अवतार के समय देवता, ऋषि, सूर्य, चन्द्र आदि का हर्ष प्रकट करना समष्टि की शुद्धि व्यक्त करता है। जिस प्रकार शुद्ध अन्तः-करण में ही भगवान का साक्षात्कार सम्भव होता है, उसी प्रकार बाह्य शुद्धि भी अपेक्षित है। भागवत् में नव द्रव्यों का जो उल्लेख काल, दिशा, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन और आत्मा के रूप में अभि-व्यक्त है वह साधक के लिए एक अत्यन्त उपयोगी साधन पद्धति की ओर संकेत है। भिन्न- भिन्न द्रव्य भिन्न- भिन्न कारणों से हर्षित हुए थे।

"निसि भादों अबहीं अँधियारी। नैन न सूझै हाथ पसारी।।
तोहि सो चन्द लीन्ह अवतारू।
बसुदेव मन्दिर चन्द अवतरा। सबहि करान् जोति निरमरा।।"[3]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़क 53,5 दो०
2- वही, कड़क- 49 दो०
3- वही, कड़क- 49, पंक्ति 1, 2, 7.

भाद्रमास भद्र अर्थात् कल्याणकारक है। रात्रि योगीजनों को प्रिय है। घोर अन्धकार में समस्त कलाओं से परिपूर्ण निर्मल चन्द्र का अवतरण अज्ञान-घन-तिमिर में दिव्य प्रकाश का द्योतक है। जायसी कहते हैं कि भगवान् का अवतरण घने अन्धकार में प्रज्वलित दीपक के समान आलोकित हुआ जिससे सम्पूर्ण मन्दिर में उजाला फैल गया। मन्दिर कहने का तात्पर्य पवित्र अंतःकरण से है -

" जनु अँधियारैं दीपक बारा । सगरैं मन्दिर भयउ उजियारा[1]।।"

"जन्म- जन्म के चक्र से छुड़ाने वाले जनार्दन के अवतार का समय था निशीथ। चारों ओर अन्धकार का साम्राज्य था। उसी समय सबके हृदय में विराजमान भगवान् विष्णु देवरूपिणी देवकी के गर्भ से प्रकट हुए, जैसे पूर्व दिशा में सोलहों कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा का उदय हो गया हो।" वे भगवान कृष्ण अपनी अंग-कान्ति से सूतिका- गृह को जगमग कर रहे थे। वे साक्षात् परम-पुरुष परमात्मा के रूप में अवतीर्ण हुए -

"अथैनमस्तौदवधार्य पूरुषं परं नताङ्गः कृतधीः कृताञ्जलिः ।
स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं विरोचयन्तं गतभीः प्रभाववित्[2]।।"

"कन्हावत" में

"हरखे सुने पुरुष अवतारी । मंगल गावहिं सकल गुवारीं[3] ।।"
"बड़ पुरुष यह उपनाँ आई। महादेव प्रभा कर भाई ।।
" तहिया [?] बिसुन भा संसारा। अब उपनाँ कन्हाँ [अवतारा][4]"

सर्वत्र अवतारी, विष्णु और पुरुष का व्यवहार किया गया है। यथा वेद-स्तवन में -

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 49.6
2- "श्रीमद्भागवत", दशम स्कन्ध, अ0-3, श्लोक- 12.
3- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 56.3
4- वही, कड़वक 58, 2-3

" कृष्ण एक आवा होइ कालू । मारसि हाक परा सिर सालू।।"[1]

नागनाथ में

"मनुसहिं देव कहसि पापिनो।।"[2]

चन्द्रावली के लिए

" मो कह कृष्ण एक विधि साजा । जो मधुपुर महँ होइहिं राजा।।"[3]

कुब्जा के लिए

"ता कहँ कृष्ण दीन हौं बदा"[4]

सुदामा के लिए

"धनि गुसाईं बड़ कृष्ण, जाकर आइस उरेहा।"[5]

चाणूर आदि के वध के समय

"हम हींसो कृष्ण कन्ह अब। जिन डर मानहु जीवें ।

आजु भिरौं माजन्ह सेउं , जस भारथ कै भीवें[6] ।।"

राधा के लिए

"भूलि खिआउ तोहि धनि सदा। अहँ कृष्ण मो कह विधि बदा।।"[7]

कंस-रनिवास के लिए

"को रे चतुरभुज कुब्ज करा । को कृष्ण गोकुल अवतरा।।"[8]

समस्त गोपियों में

"सोरह सहस इस्तरी, एक कृष्ण सब माँह ।

राखै सबहिं रात-दिन,देइ सिरहाने बाँह।।"[9]

इस प्रकार सर्वत्र उनका कृष्ण रूप ही चित्रित है। इसी रूप में उनका समस्त जगत से व्यवहार हुआ है। इसी रूप में उनकी दिव्यता भी प्रमाणित है।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 61.2
2- वही, कड़वक 80.1
3- वही, कड़वक 120.3
4- वही, कड़वक 178.6
5- वही, कड़वक 179 दो0
6- वही, कड़वक 189 दो0
7- वही, कड़वक 225.2
8- वही, कड़वक 292.3
9- वही, कड़वक 332 दो0

दिव्यकर्म -

वेद भगवान की ही वाणी है और उनकी महिमा का प्रकाशक भी है। यह महिमा उनके भिन्न- भिन्न अवतारों में की गई लीलाओं से सिद्ध है। भगवान् जब पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं तो उनका महदुद्देश्य होता है। उसकी पूर्ति के लिए वे जो लीलाएं करते हैं वे अलौकिक होती हैं तथा अन्तर्नेत्रों से ही बोधगम्य होती हैं -

"हिय के आँखिन्ह कर हसि देखा।"[1]

वह हृदय की आँखों से ही प्रत्यक्ष योग्य होती है एवं उसका मर्म भी अन्तर्नेत्रों से ही अनुभवगम्य होता है। भगवान राम ने नर- रूप में अवतीर्ण होकर मर्यादा की रक्षा की थी। अतः वे मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाए। श्री कृष्ण ने भी पुरुष रूप धारण किया और अनेक लीलाएं कीं। वे योगेश्वर, वृन्दावन विहारी, अलौकिक ऐश्वर्यवान, सर्वरक्षक, दुष्टसंहारक, सर्वव्यापक, ज्ञानी, यशस्वी, अनन्त बलवान, अनन्त श्रीमान, अनन्त ज्ञानी, अनन्त वैरागी आदि हैं। संसार में जो कुछ भी सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्कृष्ट, सर्वोच्च, सर्वसुन्दर है, वह भगवान में ही है। अतः जैसा उनका जन्म दिव्य है वैसा ही कर्म भी है।[2] उनका जन्म- कर्म कैसा विलक्षण है, यह सहज ही समझ पड़ता है। गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को इसी तथ्य को समझाया है-

"जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ।।"[3]

भगवान जो अपनी मंगलमयी इच्छा से विविध दिव्य मंगल विग्रहों द्वारा बिना किसी प्रयास के अनेक विविध विचित्रताओं से पूर्ण नित्य-नवीन रसमयी क्रीड़ा करते हैं, उस क्रीड़ा का नाम ही लीला है। उस

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 232.7
2- "श्रीमद्भागवत्", स्कन्ध-1, अध्याय-1, श्लोक- 20.
3- "श्रीमद्भगवद्गीता", अ०- 4, श्लोक- 9.

ब्रह्म के निर्गुण- सगुण दो स्वरूप हैं - "स्वरूपं द्विविधं चैव सगुणं निर्गुणात्मकम्"[1]। अचिन्त्य शक्ति ब्रह्म को निर्गुण तथा व्यक्त शक्ति ब्रह्म को सगुण कहते हैं। जायसी ने इसे ही गुप्त और प्रकट नाम दिया है। कृष्ण गोरखनाथ से कहते हैं -

"परगट रहौं सबन के ठाऊँ। गुपुत जोउँ परमेसुर नाऊँ ।।"[2]

वे चन्द्रावली को सम्बोधित करके निर्गुण- सगुण का स्वरूप निरूपित करते हैं-

"परगट भेस गोपाल- गोबिन्दू । कपट गियान न तुरूक न हिन्दू।।
अपने रंग सो रूप मुरारी । कतहूं राजा कतहुं भिखारी ।।
कतहूं सो पंडित कतहूं मूरूख । कतहूं इस्तरी कतहूं पूरूख ।।"[3]

इसी प्रसंग में श्रीकृष्ण राधा को अपना विशिष्ट अर्थात् दिव्य स्वरूप का निरूपण भी करते हैं जिसमें वे अपने को विष्णु, कैलाशवासी, बनवारी, फुलवारी में भ्रमर, जलचर- पक्षी, बसेरा, श्वापद, आखेटक सब कुछ बताते हैं। इस प्रकार उनका जन्म और स्वरूप सर्वत्र दिव्य है। पुरूष रूप सामान्य है किन्तु उनका कार्य अलौकिक, दिव्य किं वा अपौरूषेय है। आप विश्व के आत्मा हैं, विश्वरूप हैं। न आप जन्म लेते हैं और न कर्म ही करते हैं। फिर भी पशु- पक्षी, मनुष्य, ऋषि, जलचर आदि में आप जन्म लेते हैं और उन योनियों के अनुरूप दिव्य कर्म भी करते हैं -

"जन्म कर्म च विश्वात्मन्नजस्याकर्तुरात्मनः ।
तिर्यङ्नृषिषु यादःसु तदत्यन्तविडम्बनम् ।।"[4]

"कन्हावत" में अनेक स्थलों पर उनके दिव्य कर्मों का चित्रण है।

सर्वप्रथम श्रीकृष्ण के प्रभाव से यमुना जी का सूख जाना और उनके स्वागत के लिए देवों द्वारा अगवानी करना वर्णित है -

---

1- "श्रीमद्भागवत", स्कन्ध- 2, अ0-10, श्लोक 32-33.
2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 350.6
3- वही, कड़वक 117. 5-7
4- "श्रीमद्भागवत", स्कन्ध-1, अ0-8, श्लोक- 30.

"भइ कौंसरि नाधिन कलिंदो । आएउ अगहर देवै अनन्दो।।"[1]

उनके दिव्य कर्म का प्रमाण कंस-स्वप्न में मिलता है जहाँ वे काल रूप बनकर उसे इतना अधिक व्यग्र कर देते हैं कि सोते- जागते, उठते- बैठते सभी अवस्थाओं में वह कृष्ण को ही देखता है तथा देवकी के गर्भ से उत्पन्न बालक द्वारा मार डाले जाने की भविष्यवाणी को सत्य समझने लगता है।

"जन्म के पश्चात् शिशु रूप में वे पूतना के विष- लिप्त स्तन से इस प्रकार खींच कर दूध पीते हैं कि उसके हृदय का रक्त तक सोख लेते हैं और वह निष्प्राण हो जाती है।"[2]

काल- करट को उन्होंने सहस्र योजन की भुजाएँ फैलाकर रुण्ड-मुण्ड अलग करके क्रोध में इतने वेग से फेंका कि गोकुल से मथुरा में कंस के आगे जा गिरे। उस समय तक कृष्ण की अवस्था पाँच वर्ष से भी कम थी। पाँच वर्ष की अवस्था में वे पाताल गए। वहाँ से अत्यन्त विषधर नाग को नाथ कर सहस्र- दल कमल ले आए ।

कृष्ण का वंशी- वादन भी दिव्य है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण का वंशीवादन, गोचारण, रास आदि का विस्तृत वर्णन हुआ है। विद्वानों ने इन सभी लीलाओं की आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत की है। "कन्हावत" में वंशीवादन, गोचारण और गोवर्धन धारण का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। वंशीवादन में केवल इतना ही कहकर विराम लिया गया है कि वंशी-ध्वनि सुनकर मृग आदि पशु तो मुग्ध हो ही जाते हैं,देवता भी बेसुध हो जाते हैं। इससे जड़ और चेतन समस्त की मुग्धता की प्रतीति कराई गई है। वंशी को कृष्ण- गोपी-प्रेम का प्रतीक माना गया है। "कन्हावत" में वंशी-धारण और वैराग्य का विरोध प्रकट करके निम्न पंक्तियों में वंशी को प्रेम का ही प्रतीक स्पष्ट किया गया है -

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 54.3
2- वही, कड़वक 64.

" केहि कारन कर लीन्हा बासो । कत गिरहो बुत मोहु उदासो ।।
कस न रहहिं अर तोरे कांहों । कत बेराग फिरहु बन मांहों ।।[1]

कुब्जा कंस की दासी थी और भगवान की भक्त भी। उसकी कुब्जता का लोग उपहास करते थे क्योंकि वह कुबड़ी थी। उसकी भक्ति से प्रसन्न श्रीकृष्ण ने वह रूप दिया जो मानव में तो क्या देवताओं में दिखाई पड़ना दुर्लभ था -

" सुरुज सहस उवहिं जो, सोरह चंद छिपाहिं ।
करहिं अजोर सबै मिलि, तोबु सो पूजहिं नाहिं।।"[2]

यह कृष्ण की सर्वशक्तिसत्ता और ऐश्वर्य का प्रताप था कि उसे उनके द्वारा ऐसा अनुपम अलौकिक रूप और लावण्य मिला। कंस के अखाड़े में चाणूर, मुष्टिक, जरासन्ध और कुवलयापीड का कृष्ण द्वारा संहार दिव्य कर्म ही था अन्यथा चाणूर के एक बिन्दु रक्त के पृथ्वी पर गिरने पर तद्वत् दूसरा चाणूर तैयार हो जाता था। कुवलयापीड के पास दस सहस्र हाथियों का बल था, यदि कृष्ण चतुर्भुज रूप दिव्य शक्ति और दिव्य अस्त्र न प्रयोग करते तो भला इनका वध किस प्रकार सम्भव था।

सोलह सहस्र गोपियों के साथ एक ही समय एक ही रूप में रमण करना कृष्ण का सर्वाधिक विस्मयकारी दिव्य कर्म था -

" सोरह सहस इस्तरीं, एक पुरुष सब मांह ।
रावै सबहिं रात-दिन, देह सिरहानै बांह।।"[3]

आध्यात्मिक और अन्तर्दृष्टि रखने वाले विद्वानों एवं श्रद्धालुओं के लिए यह घटना भले ही योग की साधना-शक्ति मात्र हो किन्तु बाह्य दृष्टि के लोगों के लिए यह असम्भव और कुतर्क्य प्रतीत होती है। अलौकिकता, ऐश्वर्य, माधुर्य और शक्तिमत्ता का यह सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 116-3-4
2- वही, कड़वक 285 दो0
3- वही, कड़वक 332 दो0

दिव्य पुरुष -

श्रीमद्भागवत में भगवान के अवतारों में प्रथम आदि नारायण "पुरुष" का अवतार स्थापित है। वहाँ श्रीकृष्ण स्वयं परिपूर्णतम ब्रह्म व अवतारी हैं। जगत के कण - कण में उन्हीं की एक मात्र सत्ता है। वे ही विष्णु "सर्वव्यापक" परमात्मा हैं। यह दृश्यमान जगत और उसका समस्त कार्यकलाप उन्हीं की प्रेरणा एवं इच्छा का परिणाम है। संसार ष की सृष्टि करके वे अपने अंश से इसमें प्रविष्ट हुए हैं। इसीलिए "पुरि शरीरे शेते यः सः पुरुषः" अर्थात् जो शरीर में जीव रूप से स्थित होता है वही पुरुष है, ऐसी मान्यता है। इससे श्रीकृष्ण की सर्वव्यापकता सिद्ध होती है। यह सारा संसार उनकी ही प्रीति के लिए उन्हीं के द्वारा स्वतः निर्मित खेल ही तो है।

ब्रज में ऐसी धारणा प्रचलित रही है कि कृष्ण ही एकमात्र पुरुष हैं, शेष सब नारी। मीराबाई और जीवगोस्वामी के मिलन-प्रसंग में, जिसका प्रियादास और नागरीदास ने उल्लेख किया है, ऐसा संकेत मिलता है कि मीरा ने जब जीवगोस्वामी के दर्शन की अभिलाषा की तो गोस्वामी ने कह कहला भेजा कि वे स्त्रियों से नहीं मिलते। इस पर मीरा ने उत्तर भिजवाया कि ब्रज में पुरुष तो केवल कृष्ण ही हैं, अन्य सब गोपी रूप स्त्रियाँ हैं। इस पर विवश और लज्जित होकर गोस्वामी नंगे पैर मीरा के स्वागत के लिए दौड़ पड़े ।

कृष्ण- भक्ति की यह मान्यता ही है कि संसार में श्रीकृष्ण ही पुरुष हैं, शेष समस्त जीव स्त्री हैं। सर्वान्तर्यामी रूप से स्थित रहने के कारण तथा सर्वमहेश्वर होने के नाते वे ब्रज की गोपाङ्गनाओं के भी पति या स्वामी थे, उपपति नहीं क्योंकि वे गोपाङ्गनाओं के पतियों के भी स्वामी थे। कृष्ण के "पुरुष" होने और समस्त जीवों के स्त्री रूप

होने की बात जायसी ने "पद्मावत" में अनेक स्थलों पर मुखरित किया है-

"एकै पुरुष और सब नारी । जे सेवहिं ते ...[1]"

"धनि सो कन्ह तुम्ह पुरुष अकेले । जेन भर करीं खेल सब खेलैं।।[2]"

श्रीकृष्ण के पुरुष रूप में सर्वव्यापकता के सम्बन्ध में राधा परिहास पूर्वक कहती हैं :-

"तुम्ह हरि कछु न जानहु चोरी ।
जेन जग ढँका सुरग- सकोरी ।।

पिय छाँड़ि नौ खंड काहु न जानैं । परगट दीखहिं रहहिं लुकानैं।।
हियहिं बैठि सब करैं डुलावहु । आपु करहु हम दोखन लावहु ।।
दरस तुम्हार जगत सब भूला । तुम्ह जग सेउँ जग तुम्ह सेउँ भूला ।।
चरित कुभानी जोरहिं वाहू । चेटक लागि रहा सब काहू ।।
नैनहिं छुवै पुनि नहिं डोलहि। जिय तें नियर दहत भय बोलहि ।।
छाड़हु मकिउ जिउ लावहु बोऊ। परगट लगे रहहि हरि जाऊ ।।

"कहीं सरग, कहँ धरती, हौं राही तुम्ह राह ।
तुम्हहिं करत सब छाजे, और न छाजे काह[3] ।।"

श्री राधा द्वारा कही गई उपरोक्त बातें श्रीमद्भागवत् में श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में कुन्ती द्वारा की गई स्तुति से मिलती- जुलती हैं। कुन्ती कहती है- "इन्द्रियों से जो कुछ जाना जाता है, उसकी तह में आप विद्यमान रहते हैं और अपनी ही माया के पर्दे से अपने को ढके रहते हैं। मैं अबोध नारी आप अविनाशी पुरुषोत्तम को भला कैसे जान सकती हूँ ? जैसे मूढ़ लोग दूसरा भेष धारण किए हुए नट को प्रत्यक्ष देखकर भी नहीं पहचान सकते, वैसे ही आप दीखते हुए नहीं दीखते[4]।"

1- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 332.4
2- वही, कड़वक 273.2
3- वही, कड़वक 257.
4- "श्रीमद्भागवत्", स्कन्ध- 1, अ0- 8, श्लोक -19

भगवान की ही सत्ता से सृष्टि का विकास है। वे ही जग में व्याप्त हैं और समस्त जगत उन्हीं में समाविष्ट है। इन्द्रजाल की भाँति वशीभूत हुई गोपियाँ भगवान के ऐसे चरित्र से लुब्ध होकर नित्य सम्बन्ध जोड़ना चाहती हैं। प्रत्यक्ष दर्शन हो जाने पर तो वे एक पल भी अलग नहीं होते हैं। ब वे प्राणों के इतने समीप और प्रिय हैं कि नेत्रों से दूर होने पर भी अन्तःकरण में विराजमान रहते हैं। राधा कृष्ण से कहती हैं कि आप चोर की तरह सबके अन्तर में छिपे रहते हैं फिर भी कहते हैं कि मैं चोरी का नाम नहीं जानता। इन व्यर्थ की बातों को छोड़कर हमारे हृदय में कृत अर्थात् प्रेम का संचार कीजिए। आप तो प्रकट रहकर भी प्राण हर लेते हैं। आप में ऐसी अलौकिकता है मैं तो मानुषी हूँ और आप दिव्य। आप पथ हैं तथा मैं पथगामिनी। आपको सब प्रकार के कार्य शोभा देते हैं अन्य किसी को नहीं। इस अलौकिकता, सर्वव्यापकता, सर्वेश्वर्यत्व आदि को पहिचान के लिए मनुष्य के पास वह दृष्टि कहाँ ? - कड़वक 251

भगवान श्रीकृष्ण जगत् की समस्त वस्तुओं एवं कार्यों में कर्ता-भोक्ता आदि सभी रूपों में अपना स्वरूप और सम्बन्ध बताते हैं -

" महहिं सो पुनि अवतहिं बनवारी । भवेंह सो भौंर मवइँ फुलवारी।।
भवेंह सो तरूवर पंखि बसेरो । भवेंह सो सावज मवइँ अहेरी ।।"

ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान की भाँति वृक्ष, पक्षी और बसेरा, आश्रयी तथा आश्रय सदृश भ्रमर तथा फुलवारी एवं श्वापद- आखेटक रूप हत और हन्ता, सब प्रकार से भगवान ही विराजमान हैं। श्रीकृष्ण जगत् के साथ अपना प्रेम- सम्बन्ध निरूपण के लिए अपने को सूर्य बताकर स्पष्ट करते हैं

1- "चन्दायन" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 222, 5-6

कि जिस प्रकार आकाश में सूर्य उदित होकर सबको समान प्रकाश आवंटित करता है, उसी प्रकार मैं सबसे प्रेम करूँगा। पात्र-भेद से ही इसमें विभिन्नता आएगी। मेरी ओर से समानता की ही दृष्टि रहेगी।

उस पुरुष रूप कृष्ण की जो घट-घट में व्याप्त है तथा सारा जगत जिसकी छाया मात्र है, खोज और प्राप्ति हृदय-नेत्र से ही सम्भव है।[1] भौतिक नेत्रों से वह गोचर नहीं हो सकता जैसेहृ सूर्य के समक्ष आँखें चका-चौंध हो जाती हैं, सामने की वस्तु का स्पष्ट ज्ञान नहीं हो पाता, उसी प्रकार सहस्र किरणों वाली ज्योति से पूर्ण सूर्य के समान उन कृष्ण की ओर बाह्य नेत्र निश्चेष्ट हो जाते हैं।

"नैन दिष्टि सौं जाइ न छुआ। सहस करां सुरुज जनु उआ।[2]।"

जायसी के अनुसार मनुष्य का सर्वस्व उसके हृदय की दिव्य ज्योति है। उसी हृदय के दर्पण में उस परम प्रिय का दर्शन होता है। वह भी बिना अहम् के त्याग के असम्भव है। मनुष्य अपने को खोकर ही उसे पहचानता है। समुद्र में बूंद की भाँति विलीन होकर बूंद रूपी जीव समुद्र रूप ब्रह्म को पहचान लेता है -

" हेरत-हेरत आपु हिराना । बूंद मनहु सब समुंद समाना ।।
बुध पहिचानसि आपुहि खोई। परगट गुपुत रहा होइ सोई।।[3]"

गोपियों ने कृष्ण के मुख में " जो कछु पिंडे सोइ ब्रह्मण्डे" को प्रत्यक्ष किया। वह फूल में गन्ध, दूध में घी, काष्ठ में अग्नि, काया में जीव, दर्पण में परछाईं के समान सबमें अनुस्यूत है, सबमें उसी की ज्योति है -

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 232.7
2- वही, कड़वक 112.6
3- वही, कड़वक 334. 6- 7

"फल माँझ जइस रह बासा ।
दूध माँझि घिउ जइस अवासा ।।

गाभे माँझि आगि जस अहै । क्या माँझि जइसैं जिउ रहै ।।
दरपन माँझि जस रहैं छाहीं। कनहिं माँझि पुनि बिहसे माँहीं।।[1]"

श्रीकृष्ण सर्वगुण सम्पन्न पूर्ण पुरुष थे। दान और सत्य का वे नित्य पालन करते थे, पाप कभी उनके निकट न आता था। याचकों की कामना-अनुसार दान देते- देते वे अपने पास कुछ भी शेष न रखते थे। सोलह सहस्त्र गोपियों में से जब ऋषि ने सेवार्थ एक स्त्री माँगी तो उसने श्रीकृष्ण को बड़ा धर्मी और दाता कहा -

"कन्ह आहि धरमी बड़ दा [ता] ।[2]"

गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी वे उसमें लिप्त नहीं हुए, सर्वथा उसी प्रकार उदासीन और अनासक्त रहे जिस प्रकार राजा जनक।कर्तव्य-कर्म करके भी वे फल- भोग से असंपृक्त रहे। ऐसे व्यक्ति को ही वे तपस्वी तथा बैकुण्ठी मानते थे। प्रकट रूप से वे सर्वत्र विराजमान थे किन्तु गुप्त रूप से परमेश्वर का नाम स्मरण करते थे -

" सोइ तपा औ सो कैलासी । गिरहीं महँ जो रहै उदासी ।।
परगट रहों सबन के ठाऊँ । गुपुत जीउँ परमेसुर नाऊँ[3] ।।"

"ध्यान सबहि गोपिन्ह समाऊँ ।
ध्यान गुसाँई सों मन लाऊँ[4] ।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 345. 2-4
2- वही, कड़वक 356.4
3- वही, कड़वक 350. 5-6
4- वही, कड़वक 358.7

श्रीमद्भागवत में कृष्ण को परब्रह्म स्वीकार किया गया है। यहाँ प्रश्न उठता है कि फिर वे ध्यान किसका करते थे? वास्तव में श्रीकृष्ण निर्गुण, निराकार, इन्द्रियातीत, अनन्त ब्रह्म ही थे, उनका यह आन्तरिक स्वरूप था, बाह्य रूप में उन्होंने लीलार्थ स्वेच्छा से सगुण रूप धारण किया था। अतः वे अपने आत्मस्वरूप का ही ध्यान करते थे। उनका सगुण साकार प्रकट रूप गोपाल, गोविन्द रूप है। वास्तवतः वे इससे अतीत हैं। स्वरूप से निर्गुण होते हुए भी भेदभाव रहित अनेक रूप धारण करते हैं, वह भी केवल लीला के लिए। "कन्हावत" की निम्नलिखित पंक्तियाँ उनके निर्गुण और सगुण का भेदभाव प्रकट करती हुई सगुण रूप धारण करने के उद्देश्य का भी विवेचन करती हैं-

" परगट भेस गोपाल-गोबिन्दू । कपट गियान न तुरुक न हिन्दू ।।
अपने रँग सो रूप मुरारी । कतहुँ राजा कतहुँ भिखारी ।।
कतहुँ सो पंडित कतहूँ मूरुख । कतहुँ इस्तरी कतहूँ पुरुख ।।
सो अपने रस कारन, खेल अंत सब खेल ।
होइ नानां परकारन, सब रस लेइ अकेल।।
अपने कौतुक लागि, कीन्हेसि सब जग निरमरा ।
देखि लेहु सो जागि, तहि साईं के खेल सब[1] ।।"

"कन्ह गुपुत तप साधे, परगट मानै भोग[2]।।"

श्रीकृष्ण द्वारा आत्मस्वरूप के ध्यान किए जाने का उल्लेख भागवत में अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है।[3] एक स्थल पर श्रीकृष्ण को पुराण पुरुष का भी ध्यान करते बताया गया है।[4]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 117.5 सो0
2- वही, दो0 333
3- श्रीमद्भागवत, स्कन्ध- 10, अ0- 70, श्लोक- 5.
4- व वही, स्कन्ध- 10, अ0- 69, श्लोक-30.

उन्होंने धर्मशाला बनाई थी जिसमें ईश्वर के नाम पर दान- कर्म प्रारम्भ किया था। उनके दान का डंका बजता था। कहीं कोई भूखा-नंगा न रहा। व्रती, यती, सन्यासी, योगी, जंगम, तपस्वी, उदासी-सबका आगत- स्वागत करते थे तथा कामनानुसार दान देते थे। इस प्रकार रात्रि-दिन भक्ति करते थे। उनकी तप- साधना गुप्त रहती थी और भोग प्रकट।[1]

वे लोकनायक थे। कंस के द्वारा बार- बार दु:ख पहुँचाए जाने पर जब गोकुल के लोगों ने हताश होकर गाँव त्याग देने का विचार प्रकट किया तो उन्होंने बहुत धैर्यपूर्वक उन्हें आश्वस्त किया कि हम जहाँ कहीं भी जाएँगे उसी कंस का राज्य है जिसके भय से हम रात- दिन दु:खी हैं। भागने से उद्धार न होगा। हम सब ईश्वर पर भरोसा करें। वह जो चाहता है वही होता है। चार पहर की रात्रि व्यतीत करके कल की प्रतीक्षा करें। इतना समय तो बहुत अधिक होता है, ईश्वर तो क्षण में ही अन्य का अन्य कर देता है।[2]

वे विधि के विधान को मानने वाले थे। यदुवंशियों के विनाश पर उन्होंने ध्यान लगाकर देखा कि मेरी भी दशा पूर्ण हो चुकी है। काल के भी महाकाल उन श्रीकृष्ण ने विधि का विधान समझकर अपना काल निकट समझा तथा माता- पिता, भाई- बन्धु, गोप- गोपी, सबकी ममता त्याग दी। उस समय उन्होंने समस्त भोगों को अनित्य कहकर सब लोगों को यह समझाया कि ईश्वर ने जो कुछ भी हमें दिया था सब ले लिया। इस संसार में कोई किसी का नहीं है सब कुछ माया और मोह से पूर्ण है। अतः हृदय को कठोर करो, गुनन करो तथा उस अन्तर्यामी ईश्वर को हृदय में धारण करो तथा उनका रहस्य समझो -

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 350.7

2- वही, कड़वक 165-166.

" जिन गुसाईं एहिं मोकहँ दीन्हाँ । आपुन नैन भोर सब लीन्हाँ ।।
को काकर को काकर, माया मोहु सब आहि ।
लोह करहु जियँ समुझहु, और समुझहु जियँ ताहिं।।"[1]

वंशी- वादन में वे अद्वितीय थे। उनकी मधुर ध्वनि पशु, पक्षी, मनुष्य तो क्या देवताओं को भी मोहित कर लेती थी -

" हाथ जराऊ बाँसुली, रहे पदारथ सोह ।
भूलहिं मिरिग सबद सुनि, देवता जाहिं बिमोह।।"[2]

" बँसि बजाउ वराउ बछेरू । भूले साउज मिरिग [पखेरू]।।"[3]

" छन- छन बँसि बजावे, गावे बहु बैराग ।
भूले सबद पखेरू, मानुस भूले राग ।।"[4]

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की वंशी की मधुर ध्वनि का अति विस्मयकारक वर्णन है। इसे सुनते ही जड़- चेतन- समस्त भूतों का मन हरण हो गया। गोपियाँ जो दूध दुह रही थीं, चूल्हे पर औटा रही थीं, दूध को उफनता देख रही थीं, भोजन परस रही थीं अथवा बच्चों को पिला रही थीं या पति- शुश्रूषा कर रही थीं, सबको छोड़कर चल दीं। उन्होंने अपने उलटे- पलटे वस्त्र पर ध्यान नहीं दिया, कुटुम्बियों ने रोका भी किन्तु विश्वमोहन श्रीकृष्ण ने उनके प्राण, मन और आत्मा सब कुछ का अपहरण जो कर लिया था। इससे वे दौड़ पड़ीं।[5]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 363-7 दो०
2- वही, कड़वक 90-
3- वही, कड़वक 91-2
4- वही, कड़वक दो० 108-
5- "श्रीमद्भागवत", दशम स्कन्ध, अ०- 29, श्लोक 5-8-

जायसी ने इसी अवस्था का वर्णन करते हुए दर्शाया है -

" तहँ चढ़ि कान्हे बँसि बजावा । रह न जाइ सुनि सबद सुहावा ।।
रहीं बिमोहि सबै गुआलिनीं । बँसि सबद भूलीं मृगनयनीं ।।
चन्द्रावलि जो हत बैरागी । सुनतहि बान मदन सर लागी ।।
इलीं रात गएँ बंसी पूरी । हरि जीउ लीन्ह दीन्ह बिख मूरी।।
कहा अगस्त एक होइ खोटा । जौं देखै तौं बालक छोटा ।।
तहि अस गुन कछु कही न जाई। बँसि सबद जग रहा लुभाई[1] ।।"

वीतराग चन्द्रावली में भी बंशी ने काम- सर-संधान कर दिया। वह विष की मूल बन गई जिससे चन्द्रावली का प्राण हरण सा हो गया। अमृततुल्य आनन्दातिशय प्रदान करने वाली वेणु- ध्वनि का यह विपरीत प्रभाव दृष्टिगत हुआ। समस्त संसार भी इसके प्रभाव से अछूता न रहा अर्थात् सबके सब विमुग्ध हो उठे।

कृष्ण अहीर जाति में उत्पन्न हुए थे, गोपालन इस जाति का प्रमुख व्यवसाय रहा है। बालकपन से ही कृष्ण मल्ल की भाँति वेश धारण करके वृन्दावन में बछड़े चराने जाया करते थे तथा बंशी बजाते हुए फूल फुलवारी में भ्रमर की भाँति भ्रमण किया करते थे। इस प्रकार गृहस्थ-धर्म में नित्य संलग्न रहते थे। यमुना के तट पर अपने संग के लम्बे- छोटे जोड़ी वाले झुण्ड के झुण्ड बालकों के साथ खेल भी खेलते थे। उनका बालकों से भी परम स्नेह था। उन्होंने बाएँ हाथ पर बारह योजन ऊँचे तथा सात योजन विस्तृत पर्वत को उठाकर गायों तथा गोकुल के लोगों की रक्षा की थी।

उन्होंने कभी राज्य का लोभ नहीं किया, वे अपने जन्म- गृह के प्रति भी किंचित् मोह नहीं रखते थे। उनका जीवन तन्मय था। यावत् जीवन भी दुष्ट- उद्धार कार्य में व्यस्त रहे। वे अक्रूर से राजा अथवा राजकुमार बनने के सम्बन्ध में अपनी अनिच्छा तथा निर्लोलुपता को स्पष्ट कर देते हैं -

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 111, 2-7

" हों रे तपा का करिहों राजू । राज सुतै मोहिं नाहों काजू ।।
छाड़उ तहँ जहँ बर हौं जामा । औ सुख राज करउ सो माना।।"[1]

कंस को मारने के पश्चात् कृष्ण ने उसके द्वारा बन्दी बनाए गए उसके पिता को तथा वसुदेव- देवकी, नन्द- यशोदा सहित अन्य बंदियों को मुक्त कर दिया। इतना ही नहीं जिस प्रकार राम ने रावण - वध के तत्काल बाद ही उसके भाई विभीषण को लंका का राज्य प्रदान कर दिया था, उसी प्रकार श्रीकृष्ण ने भी कंस के पिता को मथुरा का राजा बना दिया था। श्रीकृष्ण के मन में लोभहीनता अथवा निःस्वार्थता तो थी ही साथ ही प्रजा के कल्याण के लिए भी उनके मन में आदर्श राज्य की कल्पना भी थी। वे कंस के पिता को चेतावनी देते हैं कि राज्यभोग करते हुए कभी गर्व न करना अन्यथा कंस की भाँति तुम्हारी भी दुर्दशा होगी। नन्द महर को सदा साथ रखना, उनके आदेशों का सर्वथा पालन करना। श्रीकृष्ण की धर्म- नीति तथा प्रजा- कल्याण की भावना सर्वथा प्रशंसनीय और ग्राह्य है।[2]

वे शत्रु कंस को गर्व त्यागने तथा दुष्टता से विरत होने का बार-बार अवसर प्रदान करते हैं। राजा होने के नाते कंस की समस्त आज्ञाओं का पालन करवाते हैं। अक्रूर के समझाने पर इसीलिए वे कंस पर आक्रमण करने का विचार त्याग देते हैं। कुब्जा द्वारा उन्होंने कंस को संदेश भिजवाया कि वह बन्दियों को मुक्त कर दे, मल्लों के भरोसे गर्व न करे अन्यथा झूठा गर्व करने से पश्चात्ताप ही हाथ लगेगा। दुष्टों से वैर और भक्तों पर कृपा उनका नित्य कर्म बना रहा। विरह में व्याकुल गोपियों के संताप को सुनते ही उनका मन अत्यन्त खिन्न हो उठता है वे तुरन्त

1- "कंसवध" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 175, 6-7
2- वही, कड़वक 303.

स्नेह प्रदान करके उन सूखी बेलों को पुनः हरित कर देते हैं। इसी प्रकार सुदामा तथा कुब्जा पर भी अपनी असीम कृपा- वृष्टि करते हैं। प्रेम में हास- परिहास और विनोद का आनन्द प्रदान करने में बड़ा योगदान है। राधा के साथ उनका कुशल विलक्षण प्रियतम रूप प्रकट है। राधा-कृष्ण की मोहिनी ठग-विद्या के वशीभूत हो जाती हैं। श्रीकृष्ण राधा के प्रत्येक अंग के सौन्दर्य को जगत के अनेक पदार्थों और जीवों से चुराया जाना बताते हैं। राधा भी अन्तर्यामी रूप से जगत के कार्यकलाप को करते हुए कृष्ण द्वारा अन्य पर दोष मढ़ने का विनोद करती हैं किन्तु अन्ततः पराजित हो जाती हैं। चन्द्रावली को भी कृष्ण अपने विविध रूप में समय-समय पर प्रकट होने का ज्ञान देकर मोह लेते हैं।

भोगी -

भारत में उन्मुक्त भोग का प्रचलन आदिकाल से ही ज्ञात है। अजन्ता, एलोरा आदि की गुफाओं के नग्न चित्रों, उन्मुक्त वासनामय चित्रों और प्रेम के सहज प्रदर्शनों से इसकी पुष्टि होती है। छान्दोग्य उपनिषद् [2-13-1] में "काचन परिहरेत्" मंत्रांश का अर्थ करते हुए आचार्य शंकरने स्पष्ट किया है कि जो वामदेव साम्न् को जानता है उसे मैथुन की विधि का कोई बन्धन नहीं है। उसका मंत्र है - "किसी स्त्री को मत छोड़ो" । निश्चय ही तत्कालीन समाज में उन्मुक्त भोगवाद पराकाष्ठा पर था। परस्त्रीगमन का निःसंकोच समर्थन वैदिक काल की कृतियों में भी प्राप्त होता है। ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी में सीरिया से भारत आई हुई आभीर जातियों में इसका स्वतन्त्र प्रचलन था। आर्य जाति के बाल देवता कन्ह और आभीरों की प्रेम देवी राधा का वासनामय प्रेम तत्कालीन लोक-जीवन का आनन्द स्रोत बनकर प्रवाहित हुआ था। गोपालन इस जाति का मुख्य व्यवसाय था, भ्रमणशील जीवन अपरिहार्य स्वभाव था तथा

गीत इसे सरसता प्रदान करने का मुख्य साधन था। इसलिए लोकगीतों में इनका चित्रण सहज रूप से होता था। उसमें भी प्रेम जो मानव ही नहीं जीव मात्र की सर्वव्यापिनी एवं सर्वाधिक आनन्ददायिनी प्रवृत्ति है, प्रस्फुटित हुआ। इन लोकगीतों की परम्परा को अतिशय प्राचीन माना जाता है। भागवत की रचना के पूर्व से ही कृष्ण- कथा गीतों में प्रचलित रही थी। रचनाकार ने "गीत" शब्द के प्रयोग से उसी की ओर संकेत किया है। सम्भवत: यह स्त्री-गीतों में अधिक सुरक्षित थी क्योंकि इसमें यह भी दर्शाया गया है कि कृष्ण सम्बन्धी गीत इतने मधुर-मनोहर होते थे कि उन्हें सुनने मात्र से स्त्रियों का मन बलात् उनकी ओर खिंच जाता था। भागवतकार कहते हैं -

" श्रुतमात्रोऽपि य: स्त्रीणां प्रसह्याकर्षते मन: ।
उरुगायोरुगीतो वा पश्यन्तीनां कुत: पुन:।।"

"भगवान् श्रीकृष्ण की लीलायें अनेकों प्रकार से अनेकों गीतों द्वारा गान की गई हैं। वे इतनी मधुर, इतनी मनोहर हैं कि उनके सुनने मात्र से स्त्रियों का मन बलात् उनकी ओर खिंच जाता है। फिर जो स्त्रियाँ उन्हें अपने नेत्रों से देखती थीं, उनके सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है।"

श्रीमद्भागवत के ही दशम स्कन्ध अध्याय- 31 में वर्णित "गोपी-गीतम्" इसका ज्वलन्त प्रमाण है।लोकगीतों का भण्डार इतना अक्षय है कि इनका संकलन दुष्कर है। इनमें लोक जीवन की कथाओं के भी सहज एवं सरस चित्र उरेहे गए हैं। प्राकृत की 'गाथा सप्तशती 'इसका ज्वलन्त प्रमाण है। वेद में यम- यमी का सम्वाद भ्रातृ- भगिनी का वासनामयी तृष्णा की अभिव्यक्ति के रूप में विख्यात है।

1- "श्रीमद्भागवत", स्कन्ध- 10, अ0- 9, श्लोक- 26.

श्रीकृष्ण की अधिकांश लीलाएँ यमुना- तट पर हुई थीं अथवा वृन्दावन में। गोपालन, गोचारण तथा स्वच्छन्द विहार उनका नित्य-कार्य था। यह भी वनस्थलों या नदी- कूलों पर स्वच्छन्दतः सुरम्य वातावरण में सम्पन्न होता था। रास के अतिरिक्त अन्य लीलाओं में सखावृन्द भी सहभागी होता था। रास में केवल श्रीकृष्ण तथा उनकी प्रेयसी गोपवल्लभाएँ भाग लेती थीं। यह गोप-वर्जित कामोत्सव होता था जो शरद ऋतु की स्वच्छ चाँदनी में सम्पन्न होता था। ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण, हरिवंशपुराण, भागवत महापुराण और ब्रह्मवैवर्तपुराण में रास का विस्तृत एवं विशद वर्णन है। विद्वानों ने रास को आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान करने का महान प्रशंसनीय यत्न किया है। पुराणों में कृष्ण एवं गोपियों का आध्यात्मिक स्वरूप रास के माध्यम से रूपायित है। किसी गोपी का नामोल्लेख न होने से उपर्युक्त आध्यात्मिक विवेचन का औचित्य प्रमाणित हो जाता है। भागवत के दशम स्कन्ध के पाँच अध्यायों [29 से 33 तक] में इसी प्रकार के रास का सुविस्तृत वर्णन है। यह रास पंचाध्यायी के नाम से सुविख्यात है।

"कन्हावत" में समस्त संसार को इस्लामी विचारधारा के अनुसार मोहम्मद साहब की प्रीति के लिए उत्पन्न किया गया है और इसे वर्ण-वर्ण का बनाया गया है। भागवत में भी कृष्ण की प्रीति के लिए सृष्टि की उत्पत्ति बताई गई है। इससे मुहम्मद साहब और श्रीकृष्ण में समानता प्रतीत होती है। दोनों के सृष्टिकर्ता निष्कलंक, अनादि, अनन्त, अरूप, निर्गुण परब्रह्म हैं। इस तरह सृष्टि के बीज में जायसी ने काम को स्थान दिया है जो प्रेम रूप में जगत-सम्बन्ध का माध्यम बनता है। यही व्यवहारिक सम्बन्ध भोग कहलाता है।

परमेश्वर ने कंस के गर्व से रुठ कर उसके विनाश के लिए विष्णु को कृष्ण रूप में मथुरा में अवतरित होने का आदेश दिया था। इस प्रकार संसार में कृष्ण का अवतार लोकमंगलकारी भावना से प्रेरित था किन्तु वे

सोलह सहस्र गोपियों के साथ भोग की लिप्सा के कारण पृथ्वी पर अवतरित होने को राजी हुए।

" देखि रूप सस्तरीं, पुनि माया लिपटान ।
पाछिल दुख सो बिसरिगा, जग औतरा आन।।"[1]

इसीलिए कृष्ण सर्वत्र भोगी रूप में चित्रित हैं। वे लड़कपन से ही कामुक, धृष्ट एवं चपल रूप में दिखाई देते हैं। मध्यकालीन वैष्णव भक्त कवियों ने ऐसे अनेक वर्णन किए हैं किन्तु वे बाल-सुलभ चपलता के अधिक सहज और मनोवैज्ञानिक चित्रण हैं। जायसी ने ऐसे विशद चित्रणों को सीमित कड़वकों में ही उपसंहार कर दिया है क्योंकि उनका लक्ष्य निखिल ब्रह्माण्ड में ईश्वर की सत्ता दिखाना, समस्त सृष्टि को ईश्वर की क्रीड़ा बताकर उसी एक मात्र ईश्वर को भोग, भोक्ता और भोग्य सिद्ध करना था। अकेले सर्वान्तर्यामी पुरुष रूप में सोलह सहस्र गोपियों के साथ रमण यही सिद्ध करता है।

श्रीकृष्ण गोकुल से दूध- दही बेचने मथुरा जाती हुई गोपियों को बलपूर्वक मार्ग में रोक लेते हैं, उनकी दूध- दही की मटकी फोड़ देते हैं, उन्हें छेड़ते हैं तथा बलात् उनके साथ काम- केलि करते हैं। उनकी चेष्टाएं कुटिल, कामुक युवक की अमर्यादित अनरीति है। गोपियाँ जब उनकी दुष्टता की शिकायत नन्द महरि से करती हैं तो उलटे उन्हीं को कामोन्मत्त, उन्मादी युवती कहकर प्रताड़ित किया जाता है। चन्द्रावली की सखियाँ कृष्ण को "लंगर" कहती हैं।[2] राजस्थानी भाषा में "लंगर" कामुक युवक को कहते हैं।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 43 दो०

2- वही, कड़वक 123.3

कृष्ण का गोपियों के साथ प्रेम- सम्बन्ध का स्वरूप "कन्हावत" में अनेक स्थलों पर पुष्प- भ्रमरवत् चित्रित है किन्तु प्रेमसम्बन्ध की साधना चातक- स्वाती अथवा हंस- जोड़ी की सी है। अत: वह स्वार्थ से परे है। यही प्रेम सम्बन्ध गृहस्थ आश्रम में भोग का रूप धारण करता है जिसके कारण गोरखनाथ ने भी श्रीकृष्ण को भोगी कहा है और भोग त्याग कर योग वरण करने का उपदेश दिया है -

" सुनि देखे एहि आएउं भोगी । तजि कर हेत होहु अब जोगी।।"

गोपियों को दूध- दही बेचने जाते समय छेड़ने में, राधा और उनकी सखियों से रति- दान मांगने में, फुलवारी लीला में, चन्द्रावली की बारी में चन्द्रावली और उसकी सखियों के साथ काम- केलि करने में, कुब्जा के साथ वर्षान्त भोग करने में तथा गोपियों के साथ नौका- विहार में, सर्वत्र कृष्ण का रसभोग ही ओत-प्रोत है। जायसी सर्वत्र सजग हैं और यह प्रदर्शित करना नहीं भूलते कि कृष्ण भगवान के अवतार हैं और समस्त संसार उन्हीं की क्रीड़ा है। गृहस्थ धर्म को सुखमय, शान्ति- पूर्ण और आनन्दमय बनाने के लिए उन्होंने वैराग्य को गौण और महत्व- हीन बताया। मध्यकाल में अनेक मुसलमान साधु, सन्त, फकीरों द्वारा गृहस्थ-धर्म और अर्थ के समान काम को भी मोक्ष का साधन माना जाता रहा है। धर्मपूर्वक काम का अर्थ गृहस्थ रहकर सन्तानोत्पत्ति के द्वारा देव, ऋषि, पितृ- ऋण से मुक्ति पाना वानप्रस्थ और सन्यास के पूर्व की आवश्यकता है। श्रीमद्भागवत में बिना तीनों ऋणों से छुटकारा पाए संसार का त्याग करना पतन कहा गया है। यह रहस्य ऋषियों के द्वारा वसुदेव जी के समक्ष प्रकट किया गया है -

" ऋणैस्त्रिभिर्द्विजो जातो देवर्षिपितृणां प्रभो ।
यज्ञाध्ययनपुत्रैस्तान्यनिस्तीर्य त्यजन् पतेत् ।।

1-"कन्हावत": शिवसहाय पाठक, कड़वक 349.3

समर्थ वसुदेव जी। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य - ये तीनों देवता, ऋषि और पितरों का ऋण लेकर ही पैदा होते हैं। इनके ऋणों से छुटकारा मिलता है यज्ञ, अध्ययन और सन्तानोत्पत्ति से। इनसे उऋण हुए बिना ही जो संसार का त्याग करता है, उसका पतन हो जाता है।"[1] जनक आदि राजाओं ने गृहस्थ रहकर अनासक्त कर्म किया। इस निष्काम कर्म से उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई। जायसी अपना मन्तव्य भी यही प्रकट करते हैं कि तपस्वी और स्वर्ग-प्राप्ति का अधिकारी वही हो सकता है जो उदासीन भाव से गृहस्थ धर्म का सेवन करे -

" सोइ तपा औ सो कैलासी । गिरहीं महं जो रहै उदासी।।"[2]

कर्म-फल का भोग शरीर करता है। उसे ही जन्म- मरण का बन्धन प्राप्त होता है। जीव अथवा आत्मा उससे असंपृक्त रहता है। श्रीकृष्ण इसीलिए गोरखनाथ से भोग का समर्थन करते हुए कहते हैं -

" जगत आइ जो भोग न परा । सो प्रिथिमीं काहिक अवतरा ।।
भोगहिं कहँ जिउ पहिरा काया।काम-क्रोध-तिस्ना-मन माया ।।
कस तिन्हकर लेउँ अपराधा । कस न भोग कै पुरवउँ साधा ।।
जीवन बहुत भोग महँ फीका । थोरा जीउँ भोग महँ नीका ।।"[3]

जीव पृथ्वी पर जन्म लेकर शरीर धारण करता है इसीलिए कि पृथ्वी के विविध भोगों का भोग भोगे।शरीर-धारण करने का यही उद्देश्य है। काम, क्रोध, तृष्णा, माया के कारण मन में उत्पन्न होते हैं। भोग न भोगना भोगों के प्रति अपराध है। इसलिए भोग करके अभिलाषा क्यों न पूरी की जाय। भोग- शून्य लम्बा जीवन नीरस है किन्तु भोगपूर्ण अल्पजीवन सुन्दर होता है।

1- "श्रीमद्भागवत", स्कन्ध- 1, अ0- 84, श्लोक- 39.
2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 350.5
3- वही, कड़वक 352.2.5

जायसी का अभिप्राय है कि पूर्वजन्म के संचित पुण्य- पाप के कारण जीव शरीर धारण करता है। फल का भोग शरीर ही भोगता है जीव नहीं। जन्म- मरण का बन्धन पाप- पुण्य के कारण ही मानव शरीर में होता है। अल्प जीवन में भी गृहस्थ में रहता हुआ मनुष्य यदि कर्म करता रहे तो उसका जीवन सार्थक हो जाता है। जनक जी गृहस्थ थे किन्तु महान आत्मज्ञानी, वीतराग और परमहंस थे। उसका रहस्य यही था कि वे कर्म करते हुए भी भोग से सर्वथा अनासक्त रहे। यही गीता का निष्काम कर्मयोग है और इसी के कारण भगवान कृष्ण योगेश्वर कहे जाते हैं।

जायसी सच्चे अर्थों में मनुष्य थे। उन्होंने प्रेम का प्याला चखा था। वे "गेही" होकर भी तटस्थ थे, जीवन्मुक्त थे। गृह में रहकर भी उदासी भाव रखते थे। उनके लिए जीवन भोग के लिए था किन्तु लिप्त होने के लिए नहीं। वे गृहस्थ जीवन को आनन्द का धाम मानते हैं। मध्यकाल में अनेक सम्प्रदाय के सन्तों ने जीवन को, संसार को और गृहस्थी को माया- मोहकारी और असत्य बताकर जीवन के प्रति जो वैराग्य भावना उत्पन्न की थी उसे जायसी ने भोगने-योग्य तथा आनंद-मय सिद्ध करके व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया था। इसे प्राप्त करने के लिए उन्होंने मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनकर अनुभव करने का उप-देश दिया है। वे कहते हैं कि -

"जोगि, औदासी, दास, पेम पियाला चाखि के ।
गिरहीं मांझ औदास, सांचा मानुस बनि रहा ।।"[1]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, सोरठा- 15.

जायसी ने यथार्थ दृष्टि से अनुभव किया था कि मनुष्यों के लिए प्रेम का बन्धन अति दुर्लंघनीय है। संसार में रहकर उसमें रहने वालों से बिना प्रेम किए उसका जीवन दूभर हो जायेगा। भागवत में इस यथार्थ को वसुदेव जी ने नन्द जी से बिछुड़ते समय इसी प्रकार व्यक्त किया था-

"आतरीशकृत: पाशो नृणां य: स्नेहसंज्ञित: ।
तं दुस्त्यजमहं मन्ये शूराणामपि योगिनाम् ।।"[1]

वास्तव में आत्मनिष्ठ पुरुष प्रेम-बन्धन में रहकर भी शरीर आदि से मोह नहीं रखते ।

कृष्ण ऐसे ही भोगी थे, तभी तो संसार त्यागते समय वे गोप-गोपियों को समझाते हैं कि अब मुझे यहां नहीं रहना है;जहां से आया था वहीं चला जाऊँगा। जिस ईश्वर ने मुझे यह जन्म दिया था, वही अब वापस ले रहा है। कैसी है यह कृष्ण की भोग के प्रति अनासक्ति ।

"रहन मोर अब इहवां कहां । जहं हुत आएउं जैहों तहां ।।
जिन गुसाईं पहिं मोकहं दीन्हा। आपुन नैन भोर सब लीन्हा।।"[2]

बहुरंगी -

हरि अनन्त हैं, उनके रूप अनन्त हैं। भिन्न- भिन्न प्रयोजनों से उन्होंने पृथ्वी पर भिन्न- भिन्न अवतार लिया है। वे योगेश्वर हैं, योगमाया से जब जैसा रूप चाहे वैसा रूप बनाने में समर्थ भी हैं। जो उन्हें जिस रूप में भजता है, उसको उसी रूप में प्राप्त होते हैं, उनके अनेक रंग हैं -

---

1- "श्रीमद्भागवत" स्कन्ध- 10, अ0-84, श्लोक- 62
2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 363, 6-7.

" जो जस होइहि तिहिं तस जोगू ।
सब सौं निसि-दिन मानहु भोगू।।"

हौं केलनहिं अपुने रंग, घर- घर करौं अजोर।।"[1]

शक्ति की न्यूनाधिकता के प्रयोजन से तो उन्होंने अंशावतार, कलावतार तो धारण ही किया था साथ ही उस योनि में भी प्रकट हुए जिससे उनके लोकमंगलकारी भावना का प्रयोजन सिद्ध होता था। राजा बलि को उन्होंने वामन बनकर ठगा था तथा अन्यत्र भी कभी- न कभी छल- बल से भी शत्रुओं का संहार किया था। लोक में विशेष करके ब्रजमण्डल में वे छलिया के रूप में विख्यात हैं। राधा इसी कारण उनके ज्ञानपूर्ण बातों पर भी विश्वास न करके व्यंग्य करती है -

" छाड़हु हरि मों सौं चतुराई । अबहीं लाल कहां पतराई ।।
बाउर होइ सोइ बौराई । हौं अस कहाँ जो औंहिं के पाई।।
सुनहिं बलि हरा जो रिसि बुलवादी ।
हौं तुम्हार सब जानौं आदी ।।"[2]

वे स्पष्ट कह देती हैं कि हे कृष्ण आप सोलह सहस्र गोपियों के संगी बन कर बहुरंगी हो गए हैं। आपका एक रूप कहाँ जिस पर विश्वास किया जा सके। सचमुच आप भ्रमर हैं -

" अब तुम्ह कान्ह भए बहुरंगी । सोरह सहस गोपितन्हि संगी ।।
सौं रस करन्ह बहुरि हम जाउब। सो मैं कहाँ भौंर पति पाउब।।"[3]

वे सोलह सहस्र गोपियों से एक साथ प्रत्येक से एक रूप में मिले। सोलह कलाओं से युक्त सहस्र किरणों वाले सूर्य से उनका मिलन सम्पन्न हुआ -

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 262.7 दो0
2- वही, कड़वक 261.1-3
3- वही, कड़वक 261.5-6

"धनि सो कन्ह तुम्ह पुरुख अकेले ।
जेन भर करौं खेल सब खेले ।।
सुरुज घटि तुम्ह किरन पसारो।
सब गोपिन्ह कहँ मिलहि मुरारो।।[1]"

रास में भी एक- एक गोपी के साथ एक- एक कृष्ण ने केलि की -

"राही- कान्ह दुवौ संग काछैं ।
औ गोपीं सब आगें पाछैं[2] ।।"

नौका- विहार के पश्चात् अपने रनिवास में गोपेन्द्र कृष्ण एक साथ सोलह सहस्र गोपियों के संग विलास करते हैं।[3] एक स्त्री को याचना करने गए हुए ऋषि ने भी एक ही पुरुष श्रीकृष्ण द्वारा सोलह सहस्र गोपियों के संग भोग करते हुए पाया था। कृष्ण का ऐसा रूप लोकप्रिय तथा मधुर था। विविध रूप धारण करके प्रेम प्रकट करना मध्यकाल में वैष्णव भक्तों के मध्य मधुरा भक्ति या माधुर्योपासना के नाम से विस्तृत हुआ था। राधा ऐसे ही मधुर रूप को देखने को अभिलाषा करती है और दर्शन कर लेने पर सुध- बुध खो देती हैं -

"कहत जो पंडित अरथ बिचारी। सो कन्हु मधुरौं रूप-मुरारी[4]।।"
बिना ऐसे मधुर, धूप- छाहीं, अनूप विविध रूप देखे राधा को न चैन है न विश्वास -

" जो लहि न देखौं आपुन नैना । तौं न पतीजौं तुम्हरे बैना।।
तुम्ह जो कहे बहु रूपे, जस्स छाँह औ धूप ।
सो मोंहि बेगि देखावहु, भाँतिहि भाँति अनूप[5]।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 273. 2-3
2- वही, कड़वक 276.5
3- वही, कड़वक 332.4 दो
4- वही, कड़वक 225.3
5- वही, कड़वक 223.7 दो

ब्रजमण्डल में गोपियों के मध्य कृष्ण की लीलाएँ बहुत विचित्र और आनन्ददायिनी हैं। ऐसी अनेक कथाएँ लोक में तथा काव्य में प्रचलित हैं कि श्रीकृष्ण कभी राधा बन जाते थे, कभी मनिहारिन, कभी पनिहारिन तो कभी राधा- सखी। राधा को खिझाना, रिझाना और विस्मित करना इन लीलाओं का प्रयोजन होता था|इसीलिए उन्हें छलिया कहते थे।

वीरगाथाकाल के अनेक काव्यों में भी अनेक दृष्टान्त हैं जिनमें प्रेमी नायकों ने नायिका की प्राप्ति के लिए योगी रूप धारण किया था।सम्भव है कि ये स्वांग कृष्ण - कथा से ही प्रेरित हुए हों। कृष्ण चन्द्रावली से मिलने के लिए वैरागी का रूप धारण करते हैं। यद्यपि जायसी ने "पद्मावत" की योगसाधना का कृष्ण- चन्द्रावली- मिलन में किंचित् प्रदर्शन किया है किन्तु उसका वह स्वरूप स्पष्ट नहीं है। उसमें स्वांग रचने का अधिक रूप ही दृष्टिगत होता है।

चाणूर आदि वध के समय श्रीकृष्ण ने स्वेच्छा से चतुर्भुज, अष्टभुज विष्णु का रूप धारण किया था। सबसे विचित्र और रहस्यमय रूप कंस की मल्लशाला में दिखाई देता है। जैसे एक ही दर्पण में भिन्न- भिन्न रूप अलग- अलग दिखाई पड़ते हैं उसी प्रकार मल्लशाला में कृष्ण का भिन्न- भिन्न लोगों ने भिन्न- भिन्न रूप में दर्शन किया था। इस प्रकार श्रीकृष्ण का जितना बहुरंगी रूप सामने आता है उतना किसी भी अवतार में राम आदि का बिलकुल नहीं है। इसीलिए श्रीकृष्ण लीला पुरुषोत्तम अर्थात् बहुरंगी हैं।

भागवत की दृष्टि में दृश्यमान सम्पूर्ण जगत कृष्णमय है, बाहर- भीतर और सर्वत्र श्रीकृष्ण ही व्याप्त हैं। साकार- निराकार एवं प्रकट- गुप्त सब उन्हीं का रूप है। उनकी लीला अद्भुत है। वे ही नाम- रूपात्मक

1- "श्रीमद्भागवत", स्कन्ध-10, अ0- 47 श्लोक 29-30 तथा अ0-82, श्लोक 46-47.

जगत हैं और वही इसके नियन्ता भी। श्रीराधा उनके इस चरित्र का उद्घाटन करती हुई उन्हें इसीलिए बहुरंगी कहती हैं।[1]

भागवत में मुनिगण भगवान् श्रीकृष्ण के इस विचित्र चरित्र से विस्मित होकर कहते हैं -

" यन्मायया तत्त्वविदुत्तमा वयं
विमोहिता विश्वसृजामधीश्वराः।
यदीशितुं व्यायति गूढ ईहया
अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितम् ।।

अनीह एतद् बहुधैक आत्मना
सृजत्यवत्यत्ति न बध्यते यथा ।
भौमैर्हि भूमिर्बहुनामरूपिणी
अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम्[2] ।।"

समदर्शी -

सूर्य समस्त जगत का प्रकाशक है, ज्ञानदाता भी। सूर्यरहित संसार की कल्पना नहीं की जा सकती। वह सबको समान रूप से बिना भेदभाव के आलोकित करता है। उसके प्रकाश की उज्ज्वलता पात्र की पात्रता पर निर्भर करती है। जैसी वस्तु होगी उसमें वैसा ही आलोक दीप्त होगा। अतः सूर्य में कदाचित् भी वैषम्यभाव नहीं है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण ने भी अवतार लेकर समस्त जीवों, भक्तों अथवा गोपियों में समत्वभाव का ही प्रकाशन किया। "कन्हावत" में राधा को प्रबोधन देने के सन्दर्भ में ऐसी ही उक्तियों का आश्रय लिया गया है।[3]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 257. 1-4
2- "श्रीमद्भागवत", स्कन्ध- 10, अ0-84, श्लोक 16-17.

विषमता केवल उनके रूपों में है किन्तु इस रूप में भी उनका एक मात्र उद्देश्य होता है "घर घर करों अजोर" सर्वत्र आलोक, आनन्द प्रकाशित करना। वे इस प्रयोजन के लिए कभी राजा बनते हैं कहीं भिक्षु, कहीं पण्डित, कहीं मूर्ख और कहीं स्त्री, कहीं पुरुष। उनमें तुर्क और हिन्दू का भी भेद नहीं। नाना प्रकार के रूप धारण करते हुए भी वे एक हैं। बाह्य अनेकरूपता केवल यह दिखाने के लिए है कि सब कुछ भोक्ता, भोग्य वही हैं।[1]

चन्द्रमा कला-कला करके सोलह कलाओं में पूर्ण होता है, पुनः घटते-घटते क्षीण हो जाता है। इस प्रकार वह अनेक रूप धारण करता है। वह मास को कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष में विभाजित कर देता है। फिर भी दोनों मिलकर एक मास का निर्माण करते हैं। यह चक्र-प्रवर्तन प्रकृति का नियम ही है। उनमें तत्वतः कोई भेद नहीं है। श्रीकृष्ण, इसी भावना से अपने अनेक रूप धारण करने की तुलना चन्द्रमा से करते हैं, जैसे चन्द्रमा का एकमात्र प्रयोजन घर-घर प्रकाश देना है, आनन्द प्रदान करना है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण के अनेक रूप धारण करने में भी लोक कल्याण की एक मात्र भावना निहित है। बाह्य भेद से भेद कहना अज्ञान है। श्रीकृष्ण कहते हैं -

"सरग चंद जस पुन, रूप देखु तस मोर ।
हों केतहिं अपने रंग, घर-घर करों अजोर।।"[2]

इस प्रकार जायसी ने अपनी सभी रचनाओं में सुख-दुःख, दिन-रात, धूप-छाँह आदि अनेक द्वन्द्वों का चित्रण करके उन सबों को ईश्वर का रूप बताया है और उनमें अभेद सिद्ध किया है। "कन्हावत" में राधा और चन्द्रावली परस्पर विवाद के माध्यम से तद्गत गुण-दोषों को एक

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 7-57सो0
2- वही, कड़वक 262 दो0

दूसरे पर आरोपित करती है। चन्द्रावली राधा को कृष्णपक्ष की रात्रि और अपने को शुक्लपक्ष की चाँदनी रात्रि कहती है -

"अनु हौं चाँद जगत उजियारी । तूँ का बोलसि निसि अँधियारी[1]।

श्रीकृष्ण भी चन्द्रावली और राधा को क्रमशः चन्द्र और राहु एवं धूप तथा छाया मानते हैं। दोनों के साथ अपना समान प्रेम बताकर समझाते भी हैं[2]। "पद्मावत" की निम्न पंक्तियों से भलीभाँति स्पष्ट है कि संसार में प्रत्येक वस्तु का विलोम रूप विद्यमान है किन्तु उनमें केवल बाह्य नाम-रूपात्मक भेद है, तत्वतः वे एक हैं क्योंकि ईश्वर ने उन्हें ऐसा बनाया ही है। रत्नसेन नागमती और पद्मावती को यही बोध देता है -

"ऊैस ग्यान मन जान न कोई ।
कबहूँ राति कबहुँ दिन होई ।।
धूप छाँह दुइ पिय के रंगा । दूनौं मिली रहहु एक संगा ।।
जूझब छाँड़हु बूझहु दोऊ । सेव करहु सेवाँ फलु होऊ ।।
तुम्ह गंगा जमुना दुइ नारी लिखा मुहम्मद जोग।
सेव करहु मिलि दूनहुँ औ मानहु सुख भोग[3] ।।"

"कन्हावत" में श्रीकृष्ण राधा को भी यही ज्ञान देते हुए दुःखी होते हैं कि उन्होंने उनके समत्व को खण्डित कर दिया। वे राधा से कहते हैं कि तुमने ऐसा प्रेम- बीज बोया कि उसमें काँटे उग आए। एक तो तुमने चन्द्रावली का सुख छीन लिया दूसरे उससे झगड़ा करके मुझे दुःख पहुँचाया -

"तुम्ह हौं क्या तस बोई, चहु दिसि जामें काँट ।
लीन्ह अबूर चाँद सुख , दुख भा मोरें बाँट[4] ।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 150.4
2- वही, कड़वक 161.
3- "जायसी ग्रन्थावली" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 445. 5-7
4- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 161 दो०

कृष्ण को इस बात का दुःख हुआ कि राधा ने कृष्ण से प्रेम के प्रति अपना एकाधिकार समझा। यह कृष्ण के समत्वभाव के विपरीत था।

कृष्ण सोलह सहस्र गोपियों से, जो तद्‌गतभावना हैं और केवल उन्हीं के क्रीडार्थ अवतरित हुई हैं, राधा और चन्द्रावली के साथ समान रूप से मिलते हैं। राधा श्रीहरि- रूप चन्द्र के दर्शन करके विनम्रतापूर्वक दोनों हाथ जोड़े हुई सिर झुकाती हैं और इस बात का धन्यवाद ज्ञापन करती हैं कि श्रीकृष्ण एक रूप से अर्थात् समभाव से सभी गोपियों से मिले। उन्होंने अपनी पूर्व प्रतिज्ञा को यथार्थ कर दिखाया। श्रीकृष्ण ने सूर्य- सदृश सहस्र कलाएँ प्रकाशित किया और अकेले सबसे मिले।

इस चरित को देखकर उनके आनन्द की सीमा न रही। उनके मुख से साधुवाद फूट पड़ा।

चन्द्रावली और उसकी सखियों के साथ भी श्रीकृष्ण ने उसी समान भाव का परिचय दिया।

भगवान की ओर से भक्तों के प्रति सदा समान प्रेम होता है। "एक शरीर के प्रति अभिमान न होने के कारण न तो कोई उनका प्रिय है और न तो अप्रिय। वे सबमें और सबके प्रति समान हैं, इसलिए उनकी दृष्टि में न तो कोई उत्तम है न अधम। यहाँ तक कि विषमता का भाव रखने वाला भी उनके लिए विषम नहीं है।[1]" कृष्ण, जिस योग्य जो होता है उससे उसी प्रकार मिलते हैं -

" जो जस होइहिं तिहिं तस जोगू।
सब सों निसि- दिन मानहुँ भोगू॥[2]"

1- "श्रीमद्भागवत्", स्कन्ध- 10, अ0-46, श्लोक- 37.
2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 262-7

गोपियों के साथ नौका-विहार के समय गोपियों की भक्ति की परीक्षा हो जाती है। सभी कृष्ण की नौका पर एक संग नहीं हो पातीं। श्रीकृष्ण से उत्तम भक्ति रखने वाली गोपियाँ पवन की भाँति तथा विद्युत सदृश श्रीकृष्ण रूपी नौका में आरूढ़ हो जाती हैं। ऐसी ही कुछ गोपियों को श्रीकृष्ण स्वयं बाँह पकड़कर चढ़ा लेते हैं किन्तु जो सत से बिछुड़ गईं अथवा जिनमें भक्ति का अभाव था वे उस पर नहीं चढ़ पाईं -

" एके चढ़त पौन जनु भईं । एके चमकि बीजु घटि गईं ।।
एक चढ़ाएँ हरि गहि बाँहाँ। एके चढ़त परीं जल माँहाँ।।
जहँ कुल जीव भरोसा, तहिक अकर अनाउ ।
महरउ सयँ सत बिछुरीं, जहिं नाथे पौसाउ ।।"[1]

ऐसी थी श्रीकृष्ण की समदर्शिता ।

श्रीराधा -

श्रीराधा "कन्हावत" काव्य की नायिका हैं। इस काव्य की कथा का आधार जायसी ने श्रीमद्भागवत, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण, शिव - पुराण और अग्निपुराण बताया है। लोकजीवन में राधा- कृष्ण के विषय में प्रचलित आख्यानों, गीतों आदि से भी उन्होंने सन्दर्भ ग्रहण करने की स्पष्टोक्ति की है। मध्यकालीन हिन्दी साहित्य राधा- कृष्ण के वर्णनों से ओतप्रोत है। सिद्ध- साधकों की प्रत्यक्षानुभूति के आधार पर इस विषय में अलग ही दृष्टि है।

"राधा" की अवधारणा कतिपय विद्वान वेद में अनेक बार प्रयुक्त "राधम्" शब्द से वैदिक मानते हैं। "मंत्र भागवत" के रचयिता नीलकण्ठ ने ऋग्वेद के अनेक मंत्रों का कृष्ण-लीला-परक अर्थ व्यक्त करके उपर्युक्त मत

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 331, 67दो०

की पुष्टि की है। साक्ष्य में उन्होंने ऋग्वेद का एक मंत्र उद्धृत किया है जिसमें प्रयुक्त "सुराधा" का अर्थ उन्होंने गोपाङ्गनाओं में सर्वोपरि महत्व वाली "राधा" किया है -

"अतारिषुर्भरता गव्यव: समभक्त
विप्र: सुमति नदीनाम् ।
प्रपिन्वध्वमिषयन्ती सुराधा
आवक्षणा: पृणध्वयात शीभम् ।।"
- ऋग्वेद 3/33/2.

इसके अतिरिक्त ऋक् परिशिष्ट के नाम से निम्नलिखित श्रुति निम्बार्क सम्प्रदाय के उदुम्बरसंहिता, वेदान्त रत्न मन्जूषा, "सिद्धान्त-रत्न" आदि ग्रन्थों में तथा श्री जीवगोस्वामी के प्रसिद्ध ग्रन्थ "श्रीकृष्ण सन्दर्भ" अनुच्छेद 189 में उद्धृत की हुई मिलती हैं - "राधया माधवो देवी माधवेन च राधिका । विभ्राजते जनेषु । योऽनयोर्भेदं पश्यति स मुक्त: स्यान्न संसृते: ।" अर्थात् "माधव राधा के साथ और राधा माधव के साथ सुशोभित रहती हैं। मनुष्यों में जो कोई इनमें अन्तर देखता है, वह संसार से मुक्त नहीं होता ।"

श्री हरिव्यास ने यजुर्वेद का निम्नलिखित मंत्र उद्धृत करके विष्णु की पत्नियों - राधा तथा रुक्मिणी को लक्ष्मी का अवतार सिद्ध किया है -

" श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे ।
पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।।"
- शुक्लयजुर्वेद 31- 32.

भागवत में भी यद्यपि राधा का प्रकट नाम नहीं आया है किन्तु रुक्मिणी को लक्ष्मी का अवतार और श्रीकृष्ण के के साथ प्रकट होना बताया गया है[1] ।

1- "श्रीमद्भागवत", स्क0- 10, अ0- 60, श्लोक - 9.

"बृहत् ब्रह्मसंहिता" तथा सामवेद के रहस्य लक्ष्मी-नारायण-संवाद के अतिरिक्त कई उपनिषदों में राधा के नाम और प्रसंग हैं।

हाल की "गाहा सत्तसई" [गाथा सप्तशती] की रचना ईसा की प्रथम शताब्दी में मानी जाती है। इस "गाहा सत्तसई" में राधिका [राहिका] कृष्ण [कण्ह] और यशोदा [जसोआ] तथा व्रजवधू गोपाङ्गनाओं [वअबहुहिं] का स्पष्ट उल्लेख है।[1]

ईसा पूर्व चतुर्थ शती से ईसा की तृतीय शती तक के मध्य उत्पन्न भास के "बालचरित" नाटक में गोपियों का प्रसंग तथा उनके रूप-सौन्दर्य का बड़ा सुन्दर वर्णन आता है। कालिदास के "मेघदूत" में गोपोवेशधारी विष्णु और "रघुवंश" में वृन्दावन का वर्णन प्रमाणित करता है कि कवि के काल तक इनकी प्रसिद्धि हो चुकी थी।

बारहवीं शताब्दी में श्रीराधा- कृष्ण- उपासना के प्रवर्तक श्री निम्बार्काचार्य ने अपनी रचनाओं में "राधा" का बहुशः प्रयोग किया है। इसी काल का जयदेवरचित राधा पर आधारित श्रृंगारपरक "गीत गोविन्द" तो बहुत प्रसिद्ध है। इसी प्रकार 1200 वर्ष पूर्व के भट्ट नारायण रचित "वेणीसंहार", 1000 वर्ष पहिले के "कवीन्द्र वचन समुच्चय", क्षेमेन्द्रकृत "दशावतारचरित" एवं आनन्दवर्धन विरचित "ध्वन्यालोक" में भी श्रीराधा- कृष्ण की लीलाओं का वर्णन उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त "नलचम्पू", "शिशुपालवध", "सदुक्ति कर्णामृत", "नाट्यदर्पण", "कृष्ण कर्णामृत", "राधा- विप्रलम्भ", "रामाराधा", "भावप्रकाशन", "अलंकार- कौस्तुभ", "कंदर्प- मंजरी", "नाटक लक्षण रत्नकोश", आदि साहित्यिक रचनाओं में भी राधा का उल्लेख है।

1- "श्रीराधामाधव चिन्तन", : हनुमानप्रसाद पोद्दार, पृ0- 992.

महाप्रभु चैतन्यदेव अपने दक्षिण-भ्रमण के समय दो ग्रन्थों को "महा-रत्न" तुल्य समझकर लिखा लाए थे। वे दोनों ग्रंथ हैं - "ब्रह्मसंहिता" और "कृष्ण कर्णामृत"। "कृष्ण कर्णामृत" ग्रन्थ में कितने ही स्थलों पर राधा का उल्लेख मिलता है।

पाश्चात्य विद्वान मानते हैं कि आभीर जाति सीरिया से भारत में आई। इसी की पूज्या देवी राधा और देवता कान्ह आर्यों से परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण आर्यों में राधा और कृष्ण हो गए।[1]

"विष्णुपुराण" और "वायुपुराण" में आभीर राजाओं की वंशावली वर्णित है। महाभारत में यदुवंश के साथ आभीर वंश का घनिष्ठ सम्बन्ध बताया गया है।

भारतीय समाज में यदुवंशी कृष्ण के साथ राधा की रासलीला तथा उसकी भावना का प्रचार सर्वप्रथम ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में दृष्टिगत होता है। इसी के बाद ही कृष्ण के चरित्र एवं लीला सम्बन्धी शिलालेख एवं प्रस्तर प्रतिमायें मिलनी आरम्भ होती हैं।[2] 7वीं शताब्दी तक पहुँचते-पहुँचते राधा और कृष्ण का स्वरूप निखर आया और फिर तो निरन्तर श्रृंगार की पृष्ठभूमि में राधा- कृष्ण का वर्णन होता रहा।

कृष्णोपनिषद्, श्रीराधिकोपनिषद् और राधातापिनी उपनिषद् में राधा की बड़ी महिमा गायी गई है। ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, शिवपुराण, मत्स्यपुराण में यत्र- तत्र राधा के उल्लेख हैं। प्राचीनता की दृष्टि से उपर्युक्त प्रमाण चौथी शताब्दी के पूर्व रचित माने जाते हैं।

1- "ब्रजभाषा के काव्य में राधा" उषापुरी, पृ- 2.

वराहपुराण, नारदीयपुराण, आदिपुराण, शिवपुराण, ब्रह्मवैवर्त-पुराण, गर्गसंहिता, देवीभागवत, वाराहपुराण, स्कन्दपुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, भविष्यपुराण, सम्मोहन तंत्र, रुद्रयामलतंत्र, गौतमीय तंत्र, माहेश्वर तंत्र, कृष्णयामल तंत्र, मुर्द्धाम्नायतंत्र, हरितंत्र, हरिलीलामृत तंत्र, मंत्र महोदधि तंत्र, राधातंत्र, नारद पाञ्चरात्र आदि पुराणों, तांत्रिक ग्रन्थों एवं साम्प्रदायिक रचनाओं में राधा का न्यूनाधिक वर्णन उपलब्ध है।

महाभारत, श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण और हरिवंशपुराण, कृष्ण विषयक लीलाओं और स्तवनों से भरे पड़े हैं किन्तु प्राचीनतम होते हुए भी राधा के उल्लेख से शून्य हैं। अतः विद्वानों ने राधा की प्राचीनता पर सन्देह प्रकट किया है। दूसरी ओर श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध, प्रथम अध्याय, श्लोक एक, द्वितीय स्कन्ध, चतुर्थ अध्याय, श्लोक चौदह, दशम स्कन्ध, तीसवाँ अध्याय, श्लोक अट्ठाइस, दशम स्कन्ध, पाँचवा अध्याय, श्लोक अट्ठारह और दशम स्कन्ध इक्तीसवाँ अध्याय श्लोक पाँचवें में गुप्त रूप से राधा का उल्लेख किया जाना भी बताया जाता है। इनमें "राधसा", और "अनयाऽऽराधितः" शब्दों पर अधिक महत्व दिया गया है।

प्राचीन पुराणों में अन्यतम विष्णुपुराण में विषयवस्तु और वर्णन की दृष्टि से भागवतपुराण के अनुरूप रास वर्णन है और यहाँ भी उसी प्रियतमा "कृतपुण्यामदालसा" गोपी का उल्लेख मिलता है। यहाँ अनयाराधितः आदि श्लोक की जगह निम्नलिखित उल्लेख मिलता है -

अत्रोपविश्य सा तेन कापि पुष्पैरलंकृता ।
अन्यजन्मनि सर्वात्मा विष्णुरभ्यर्चितो यया[1]।

1- "राधा का क्रमिक विकास", शशिभूषणदास गुप्त, पृ0- 104.

कापि तेन समायाता कृतपुण्या मदालसा ।
पदानि तस्याश्चैतानि धनान्यल्पतनूनि च ।।[1]

श्रीकृष्ण की श्रृंगारपूर्ण वृन्दावन-लीलाओं का वर्णन सर्वप्रथम हरिवंश पुराण में हुआ है किन्तु इसमें राधा- कृष्ण के युगलभाव का वर्णन नहीं है। इन पुराणों में यशोदा के अतिरिक्त किसी गोपी का उल्लेख नहीं है। अतः राधा का उल्लेख क्यों कर होता? पुनश्च इनका प्रतिपाद्य अधिकतर शुद्ध आध्यात्मिक है।

उपर्युक्त आकलनों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि "राधा" नाम अत्यंत प्राचीन है और "गाथा सप्तशती" से प्रतीत होता है कि इसके रचनाकाल तक श्रीकृष्ण की प्रेयसी कल्पना- जगत् की सृष्टि न होकर मांसल रूप में अपना साहित्यिक आविर्भाव प्राप्त कर चुकी थी। गाथा सप्तशती में राधा- कृष्ण के उसी रूप के दर्शन होते हैं जिसका आगे चल कर रीतिकालीन कवियों ने वर्णन किया है। जयनाथ नलिन का तो कहना है कि "सप्तशती के इस अवतार से प्रकट है कि राधा कृष्ण की प्रेमकथा लोक जीवन में, ईसा पूर्व दूसरी शती में, उर कर चुकी थी। लोकभाषा जन-जीवन की यथार्थ दर्पण है। लोक-भाषा "प्राकृत" में आने से पूर्व ही राधा लोकगीतों में श्रृंगार की आलम्बन बन चुकी होगी। "गाथा सप्तशती" में आभीरों के उन्मुक्त प्रेम, उच्छलित यौवन और निर्मल प्राकृत सौन्दर्य के जगमगाते चित्र हैं। सप्तशती में राधा एक यौवन मदमाती परकीया नायिका के रूप में आती है।[2]

1- विष्णुपुराण, पंचम अंश, अध्याय- 13.

2- विद्यापति एक तुलनात्मक समीक्षा, जयनाथ नलिन, पृ0- 71.

इससे यह भी प्रतीत होता है कि गाथासप्तशती के रचयिता ने राधा- कृष्ण-विषयक श्रृंगारिक काव्य रचा है। सम्भव है कि उसे इसकी प्रेरणा उन पूर्ववर्ती रचनाओं से मिली हो जो अब अप्राप्त है।"वस्तुत: बालकृष्ण की कथाएँ ईसा से पूर्व खूब प्रचलित हो गई थीं। यही नहीं, गोपियों की लीला और राधा के साथ श्रीकृष्ण का सम्बन्ध भी इस युग में प्रचलित होना असम्भव नहीं।[1]"

"गीत गोविन्द" के रचयिता जयदेव {12वीं शती} ने संस्कृत साहित्य धर्मभावना और दार्शनिक चिन्तन में राधा के यत्र- तत्र बिखरे स्वरूप को एक प्राणवान व्यक्तित्व प्रदान किया। उसमें राधा सर्वप्रथम अपने जिस परमोज्ज्वल यौवन, अनुपम माधुर्य एवं उच्छल विलास आकांक्षा के साथ आती हैं, इससे पूर्व इतने पूर्णरूप में कहीं नहीं दृष्टिगत होती। विद्यापति और चण्डीदास ने भी बाद में इसी प्रकार की श्रृंगारिक रचना का विधान किया। अष्टछाप कवियों में सूर का "सूरसागर" बालक तथा युवक श्रीकृष्ण और राधा की श्रृंगारमयी लीलाओं के वर्णन के लिए विशाल काय ग्रन्थ है। पुराणों में ब्रह्मवैवर्तपुराण भी इसी प्रकार मात्र राधा के माहात्म्य वर्णन के लिए रचा गया सा बृहद् पुराण है।

सर्वप्रथम 14वीं शती में जीवगोस्वामी ने राधावाद की प्रतिष्ठा की थी। इसी के पश्चात् निम्बार्क सम्प्रदाय, चैतन्य सम्प्रदाय, हरिदासी सम्प्रदाय, राधा वल्लभ सम्प्रदाय, वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय राधा- माधव की विविध लीलाओं की वर्णना अपने- अपने मतों के अनुसार करते रहे। इनमें राधा विषयक स्वरूप भी भिन्न- भिन्न बताए गए। राधा शब्द की व्युत्पत्ति भी विभिन्न रूप ग्रहण करती रही।

1- "सूर साहित्य" : हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ- 27.

"ब्रह्मवैवर्तपुराण" में एक रोचक प्रसंग आता है। राधा अपने नाम की व्याख्या यशोदा से बतल बताती है - "जिनके रोम कूपों में अनेकों विश्व वर्तमान हैं, वे महाविष्णु ही "रा" शब्द हैं और "धा" विश्व के प्राणियों तथा लोकों में मातृभावक धाय है, अत: मैं इनकी दूध पिलाने वाली माता, मूल प्रकृति और ईश्वरी हूं। इसी कारण पूर्वकाल में श्रीहरि तथा विद्वानों ने मेरा नाम राधा रखा है।"[1]

इन व्याख्याओं में तथा अन्यत्र भी राधा शब्द के कृष्णभक्तिप्रदा, मोक्षदा और मूल प्रकृति अर्थ सिद्ध किए गए हैं। राधा, राधस् और सिद्धि शब्दों को "राध् साध् संसिद्धौ" की एकार्थक धातु से समानार्थी साधना अर्थ भी कतिपय विद्वानों को अभिप्रेत है।

जायसी से पूर्व संस्कृत साहित्य में वृन्दावन के गौड़ीय षट् स्वामियों ने राधा- कृष्ण- विषयक अनेक ग्रन्थ लिखे। "उज्ज्वल नीलमणि:", "ललित माधवम्", "विदग्ध माधवम्", "भक्ति रसामृत", सिंधु, "दान केलि कौमुदी" सुविख्यात रचनाएँ हैं किन्तु "कन्हावत" में ऐसे भी स्थल हैं जो किसी पुराण अथवा साहित्यिक रचना से समर्थित प्रतीत नहीं होते। उनमें कवि की मौलिकता और जनश्रुतियों का भी मिश्रण दृष्टिगत होता है।

राधा का परिचय देते हुए जायसी कहते हैं कि "राही" सब गोपियों की शृंगार हैं। वे उनके मध्य उसी प्रकार शिरोमणि हैं जिस प्रकार आभरणों के मध्य हार। वे देवचन्द महर की कन्या हैं -

" राही सब गोपिन्ह क सिंगारु । जस अभरन पर सोहै [हारु] ।।
देवचंद महरइ कइ बारी । चंद्र बदनि मृगलोचनि [नारी] ।।"[2]

1- "ब्रह्मवैवर्तपुराण", श्रीकृष्णजन्म खण्ड, अ0-111, श्लोक 57-58.
2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 216.1-2

राधा को सर्वत्र राजा वृषभानु गोप की कन्या बताया गया है, कहीं भी देवचन्द्र महर की पुत्री होने का उल्लेख नहीं प्राप्त होता। "श्रीगर्गसंहिता" में कथा आती है कि "राजा नृग के पुत्र सुचन्द्र ने अपनी पत्नी कलावती के साथ गोमती के तट पर "नैमिष" नामक वन में ब्रह्मा की प्रसन्नता हेतु बारह दिव्य वर्षों तक तप किया। उनके वरदान से सुचन्द्र सुरभानु [श्री वृषभानुख्यात] और कलावती वृषभानुवर- पत्नी कीर्ति हुई। ब इन्हीं के संयोग से श्रीराधा जी का भूतल पर अवतार हुआ।" शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की कला की भाँति प्रतिदिन बढ़ने वाली राधा को रास की रंगस्थली को प्रकाशित करने वाली चन्द्रिका, वृषभानु मन्दिर की दीपावली और गोलोक- चूड़ामणि श्रीकृष्ण के कण्ठ की हारावली कहा गया है[1]। सुचन्द्र ही जन्मान्तर में वृषभानु रूप में हुए। अतः सम्भव है, लोक में वृषभानु देवचन्द्र के नाम से भी विख्यात रहे हों।

"शिवपुराण" के एक वृतान्त के अनुसार दक्ष की 60 कन्याओं में स्वधा की तीन पुत्रियाँ हुई - मैना, धन्या और कलावती। सनत्कुमार योगीश्वर के शाप से मानवी रूप धारिणी मैना से पार्वती, धन्या से सीता और कलावती से राधा उत्पन्न हुई[2]।

"ब्रह्मवैवर्तपुराण" के अनुसार राधा का वृषभानु वैश्य की कन्या होने, राधा- छाया के साथ रायाण वैश्य का विवाह होना तथा वृन्दावन में श्रीकृष्ण के साथ विधाता द्वारा उनका विधिपूर्वक विवाह कराए जाने का उल्लेख है[3]। इन उद्धरणों में राधा को वृषभान वैश्य की कन्या होना बताया गया है जबकि अन्यत्र उन्हें गोपकुलप्रसूता वृषभानु

1- "गर्गसंहिता" कल्याण अंक, गोलोकखण्ड, अध्याय- 8.

2- "शिवपुराण", रुद्रसंहिता- 2, पार्वती खण्ड- 3, अध्याय-2 श्लोक33, 40.

3- "ब्रह्मवैवर्तपुराण", प्रकृति खण्ड, अध्याय- 49, श्लोक 38- 43.

गोप की पुत्री कहा गया है। गाथा सप्तशती, हरिवंशपुराण, श्रीमद्-भागवत, विष्णुपुराण, भास का "बालचरित" और कालिदास का "मेघदूत" सभी राधा को गोपाङ्गना ही बताते हैं। 'गर्गसंहिता' में अनेक ऋषियों, सती स्त्रियों, भक्त नारियों, वरदान प्राप्त नारियों, देवियों यज्ञ- सीताओं आदि द्वारा ब्रज में गोपी रूप धारण करने का उल्लेख मिलता है।

योगेशचन्द्र ने वृषभानु आदि की ज्योतिष- व्याख्या करके बताया है कि कृष्ण सूर्य का प्रतिबिम्ब है और गोपी तारका का। कृष्ण की जितनी भी ब्रज में जन्म से लेकर अलौकिक लीलाएँ हुई हैं समस्त तारों पर आधारित हैं। वेदों में विष्णु शब्द का प्रयोग सूर्य के अर्थ में हुआ है। राधा विशाखा नक्षत्र का नामान्तर था। अथर्ववेद में "राधोविशाखे", यह स्पष्ट कथन है। श्री रूपगोस्वामीकृत "विदग्धमाधव" में भगवान कृष्ण को पूर्ण चन्द्रमा और राधा को विशाखा नक्षत्र का रूपक देकर दोनों के मिलन का प्रयास सूचित है [श्लोक- 10] । वृषभानु वृष राशिस्थ भानु रश्मि है। इसीलिए राधा को वृषभानु की कन्या बताया गया है। राधा की जननी का नाम "पद्मपुराण" में "कीर्तिदा" है। वृष राशि में कृत्तिका नक्षत्र के आने से राधा की जननी कृत्तिका कही गई है। उत्तरायण में जन्म होने के कारण राधा के पति का नाम आयन घोष अथवा आयान घोष हो गया ।

"कन्हावत" में कृष्ण की दो पाणिगृहीत पत्नियों का समानान्तर प्रेम चित्रित है। ये राधा और चन्द्रावली हैं। तीसरी कुब्जा नामक कंस की दासी सामान्य प्रकृति की अनुगृहीत प्रेयसी है। राधा की उत्पत्ति श्रीकृष्ण के निमित्त और सोलह सहस्र अन्य गोपियों के साथ हुई है। समस्त गोपियाँ पद्मिनी थीं, रूप में एक से बढ़कर अधिक सुन्दरी एवं लावण्यमयी थीं। वे रवि- रश्मियों से निःसृत एवं षोडश चन्द्रकलाओं से निर्मित-सी थीं। सूर्य की सहस्र किरणों एवं षोडश चन्द्रकलाओं के संयोग से

गुणान्वित सोलह सहस्र गोपियों की परिगणना में उनको दिव्यता, कान्तिमत्ता, पवित्रता, उज्ज्वलता, कमनीयता, आनन्दस्वरूपता आदि अनेक दिव्य एवं सात्विक गुणों को ध्वनित किया गया है। ऐसी दिव्यगुणावदात गोपियों में राधा सर्वसुन्दरी और जगत प्रशंसित रूपवती थीं। वे अपनी सहस्र किरणों किंवा कलाओं से इस प्रकार दीप्त होती थीं कि समस्त ज्योतियाँ उनके समक्ष लुप्त हो जाती थीं। वह नक्षत्रों के मध्य चन्द्रमा-सदृश देदीप्यमान होती थीं और स्वर्ग से अदृश्य होकर जगत में अवतार लेकर जगमगा रही थीं। जिस प्रकार से रामावतार में श्रीराम की सेवा हेतु सीता जी का अवतार हुआ था उसी प्रकार से कृष्ण के निमित्त वे राधा के रूप में प्रकट हुई थीं। समस्त लोक उनकी स्तुति करता है।

> सब अवधान भईं गुवालिनीं । घर-घर सबहिं भईं पदमिनीं।।
> मेंटि न जाइ बात जो होनी। एक वाहि एक सुठि लोनी ।।
> जानहु सुरुज किरन हुत हुईं । सोरह करों चंद घटि उईं ।।
> तहि महँ एक गोपिता राही। अधिक रूप संसार सराही ।।
> सहस करों होइ तहस दिपाईं। सबे ज्योति ओहि जोति छिपाईं।
> नखतहिं माहँ चन्द्र वह गोपी। भई प्रगट हुत सरग अलोपी ।।
> राम रूप हुत सीता, कन्ह रूप तहे राहि ।
> अस रूपवंती अवतरी, जगत सराहे ताहि ।।[1]

अवतारिणी :-

राधा का पृथ्वी पर प्राकट्य परमेश्वर की अनुकम्पा से हुआ था विष्णु ने सहस्र वर्ष पर्यन्त तप करके परमात्मा से दस अवतार माँगा था[2]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, क० 59- 59.
2- वही, कड़क - 59.
3- वही, कड़क - 37.4

जब देव ने उन्हें पृथ्वी पर मथुरा का राजा बनाकर भेजने का आदेश दिया तो उन्होंने दीनता प्रकट करने के लिए अपने पूर्वजन्म रामावतार में स्त्री सम्बन्धी कष्ट-सहन की व्यथा प्रकट की।[1] देव ने कृष्णावतार में उनकी सेवा और भोग के लिए सोलह सहस्र गोपियों की व्यवस्था का आश्वासन दिया।[2] उन्हीं गोपियों के अन्तर्गत् राधा प्रकट हुईं। ये समस्त गोपियाँ कैलाशनिवासिनी थीं। देव की आज्ञा से कैलाश-दर्शन के लिए पधारे हुए विष्णु ने राधा को नक्षत्रों के मध्य चन्द्रमा की भाँति श्रेष्ठतम रूप में देखा था। उनकी ज्योति से दीप्त विष्णु ने उन्हें पट्ट प्रधानिका एवं प्रिय रानी के रूप में हृदयंगम कर लिया और उन्हें जगत में उतार लाए।[3] अन्यत्र भी कृष्ण ने राधा से यह दृढ़तापूर्वक कहा है कि मैं तुझ रसीली नारी को अपने भोग के लिए यहाँ लाया हूँ, तुम्हारे ही कारण वनखण्ड का आश्रय लिये हूँ और सभी गुप्त गुणों को प्रकट कर दिया है फिर भी तुम पराए की ओट में होकर क्यों बोल रही हो? अन्तर्पट को दूर करो, इसे खोल दो[4]।

जायसी द्वारा राधा के अवतार की उक्त कल्पना मौलिक है। समस्त उपनिषद् और पुराण इससे भिन्न मत प्रकट करते हैं। सामवेद के साम रहस्य लक्ष्मीनारायण सम्वाद के अनुसार अनादि पुरुष ने रमणेच्छा से स्वयं को द्विधा रूप में विभक्त किया था जिनमें एक कृष्ण और दूसरी राधा हुईं। "ब्रह्मवैवर्तपुराण" के अनुसार राधा जी की उत्पत्ति दैवी है। वे रमणेच्छुक श्रीकृष्ण के वामार्द्ध से प्रकट हुई थीं।[5] पद्मपुराण में आया है

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 42.
2- वही, कड़वक 43. 5-6 .
3- वही, कड़वक 260.2-7.
4- वही, कड़वक 258.1-4.
5- कल्याण अंक, ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृति खण्ड, अध्याय-54, पृ0-223.

कि श्री वृषभानु गोप यज्ञ के लिए भूमि जोत रहे थे, उस समय राधा जी धरती से प्रकट हुई थीं[1]।

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण और उनकी प्रियतमा की सेवा के लिए देवाङ्गनाओं का पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करना वर्णित है। यद्यपि इनमें राधा का स्पष्ट नाम नहीं है फिर भी इन्हीं देवाङ्गनाओं में उनका भी अवतार ध्वनित है।[2] इसी प्रकार के अन्य अनेक सन्दर्भ भी मिलते हैं।

संस्कृत और हिन्दी साहित्य में राधा-कृष्ण के वर्णन का विपुल भण्डार है। इनमें कृष्ण के गोपियों के साथ रास, नर्तन विविध केलि-क्रीड़ाएँ और ग्वालमण्डली द्वारा वंश वाद्य - वादन का चित्रण सर्वोपरि रहा है। राधा को प्रायः आभीर [आधुनिक अहीर], गोप, गोपालक-वंश की कन्या के रूप में अधिकतर परिचित कराया गया है। विक्रम से लगभग 300 वर्ष पूर्व विष्णुपुराण के समय तक राधा अपरिचित थीं। केवल इतना ही स्पष्ट होता है कि श्रीकृष्ण की कोई विशेष प्रेम पात्री सुन्दरी गोपी थी जिसके स्नेह के वश में होकर उन्होंने समस्त गोपियों का ममत्व त्याग दिया था। परवर्ती वैष्णव भक्तों ने उसी कृष्ण- आराधिका अनामा गोपी को भाग्यशालिनी प्रच्छन्न राधा के रूप में परिचित कराया। विक्रम की प्रथम शती से लेकर चौदहवीं शती तक में राधा रासेश्वरी तथा कृष्णप्रिया के रूप में संस्कृत साहित्याकाश में देदीप्यमान हो गईं। "गाथा सप्तशती" से लेकर "गीतगोविन्द" तक राधा का साहित्यिक उन्मीलन का काल रहा। इस समय तक राधा का चरित्र पुष्कल किन्तु विशृंखल बना रहा। वे केवल कृष्ण की प्रियतमा के रूप में चित्रित होती रहीं जिनमें वे कृष्ण के प्रेम की आधार स्वरूपा रहीं। सोलहवीं शताब्दी में श्रीचैतन्यदेव और उनके पार्षद श्रीरूप और जीव-

---

1- "पद्मपुराण", तृतीय ब्रह्मखण्ड, सप्तम अध्याय, श्लोक- 39.
2- "श्रीमद्भागवत", दशम स्कन्ध , अध्याय- 1, श्लोक - 23.

गोस्वामी ने राधातत्व का विशेष पल्लवन किया। श्रीरूप ने अपने पूर्ववर्ती राधा- चरित्र को काव्य और नाटकीय रूप देने का महान यत्न किया। गो महाप्रभु चैतन्य ने अपनी अलौकिक चमत्कारपूर्ण लीलाओं से युक्त राधा की प्रेम- माधुरी का व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया। किन्तु गौणीय वैष्णव गोस्वामियों ने भक्तिपूर्ण दार्शनिक चिन्तन से राधा के स्वरूप को समुज्ज्वल बनाया। उन्होंने राधा को कृष्ण की महाभावस्वरूपा अह्लादिनी शक्ति सिद्ध करके यह स्पष्ट किया कि राधा कृष्ण को आह्लादित करती हैं तथा श्रीकृष्ण उसी के द्वारा अपने प्रिय भक्तों और सहृदय रसिकों को आनन्दित करते हैं। कृष्ण की वृन्दावन, मथुरा और द्वारका की लीलाओं का इतना अधिक विस्तार हुआ कि लोकगीतों में भी उनका वर्णन होता रहा। "गाथा सप्तशती" में इसका वर्णन ज्वलन्त उदाहरण है क्योंकि वह अनेक लौकिक कथाओं का संग्रह है। अतः लोक में तथैव लोकगीतों में भी राधा- कृष्ण की लीलाओं का अपनी भावना- कल्पना के अनुसार चित्रण किंवा गुणानुवाद विख्यात होना सम्भव जान पड़ता है। लोकरंजनार्थ उन मधुकणों में से जायसी ने भी कुछ संग्रह कर लिया होगा, ऐसा जान पड़ता है, क्योंकि कबीर, दादू, मुल्लादाऊद एवं सूफी कवियों में अपने उपदेशों, नीतिपूर्ण वचनों, सदु- क्तियों को सरस, सुबोध और सुग्राह्य बनाने के लिए लोकभाषा तथा लोक- प्रसिद्ध विषयों का ही वरण किया था जिसमें उन्हें महात्मा बुद्ध की तरह पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। कहने का आशय यह कि राधा- तत्व जायसी के समय तक अनेक आध्यात्मिक, दार्शनिक, ज्योतिषीय, धार्मिक, साहि- त्यिक तथा लौकिक मतों का विषय बन चुका था। जायसी इन विविध पहलुओं से प्रभावित हुए जान पड़ते हैं।

<u>सुन्दरतास्वरूपा -</u>

राधा काव्यशास्त्र में वर्णित सर्वाङ्ग सुन्दरी पद्मिनी हैं। उनकी सखियाँ भी जो उन्हीं के साथ गोकुल में उत्पन्न हुई थीं, सबकी सब

पद्मिनी थीं, वे सूर्यरश्मियों से निःसृत-सी, सोलह कलापूर्ण चन्द्रमा बन कर प्रकट हुई थीं। राधा उनमें सर्वाधिक लावण्यमयी और जगत-प्रशंसित रूपवती थी।

कवि ने उनके सिर पर माँग से लेकर चरणों की अँगुलियों तक का सविस्तार अलौकिक सौन्दर्य चित्रित किया है। उनका बाह्य रूप अप्सराओं जैसा है जिससे देवता भी उनकी स्पृहा करते हैं। उनके शिखनख श्रृंगार के चित्रण में जायसी ने षोडश श्रृंगारों और द्वादश आभरणों का कवि-परम्परागत वर्णन किया है। [कड़वक 234- 43]

श्री रूपगोस्वामी ने रति-विश्लेषण के अनुसार राधा ने उस मादनाख्य महाभाव को स्थिर किया है जो ह्लादिनी का सार है और रति से लेकर महाभाव तक के समस्त प्रेम वैचित्र्य के उल्लास का अनुभव कराने वाला है। इसी कारण वे कान्ताशिरोमणि भी कहलाती हैं। इन वृषभानुनन्दिनी में सुष्ठुकान्तास्वरूपा, धृत षोडश श्रृंगारा और द्वादशाभरणाश्रिता के गुण हैं। "कन्हावत" की राधा में न्यूनाधिक उपर्युक्त गुणों का समावेश हुआ है। सूर ने भी 'सूरसागर' में श्रीराधा के नखशिख का विस्तृत वर्णन किया है।

"कन्हावत" में श्रीराधा के शिखनख वर्णन की अनेक विशेषताएँ हैं। उनकी श्रृंगार-रचना का वर्णन भारतीय श्रृंगार-विधि के अनुकूल है। नाक के अनेक आभूषणों का तो उन्होंने सर्वप्रथम वर्णन किया है। लोक में प्रचलित समस्त आभरण उनकी लेखनी से पृथक् नहीं हो पाए। काव्यालंकारों के स्वाभाविक प्रयोग से राधा के आभरण अत्यधिक रमणीय बन गए हैं।

राधिका को कवि ने फुलवारी [क० 153.6], [सूर्य] प्रभा [143.4], रुक्मिणी [151.1], ग्वालिनी [152.4] कमल [153दो०] सीता [153.2] के गुण- दोषों से मण्डित करके उनके प्रमुख गुण-दोषों

का राधा में आरोप किया है। राधा बल्लभ सम्प्रदाय के कवियों में श्रीहित जी के पश्चात् सर्वप्रमुख तथा इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का स्पष्ट एवं गम्भीर विवेचन करने वाले ध्रुवदास जी ने भी कहीं राधा के तन को रूप-फुलवारी बताया है तो कहीं राधा को "वन" ठहराया है।[1]

राधा की दो सखा सखियाँ नक्षत्र या तारिकाएँ हैं और राधा चन्द्रमा। यही रूपक चन्द्रावली सहित उसके दो सखा सखियों के लिए बार-बार प्रयुक्त हैं। कहीं-कहीं राधा को धूप और चन्द्रावली को छाया के रूप में चित्रित किया गया है। पूरे काव्य में इन्हीं उपमानों के माध्यम से राधा का उनकी प्रतिद्वन्द्विनी चन्द्रावली से विरोध दिखाया गया है।

श्रीराधा के अवतरण के विषय में 'गर्गसंहिता' में वर्णन है कि "पूर्व के अनेक युगों में जो श्रुतियाँ, मुनियों की पत्नियाँ, अयोध्या की महिलाएँ, यज्ञ में स्थापित की हुई सीता, जनकपुर एवं कोशल देश की निवासिनी सुन्दरियाँ, पूर्वकृत विविध पुण्यों के प्रभाव से कोई दिव्य, कोई अदिव्य और कोई सत्व, रज, तम- तीन गुणों से युक्त देवियाँ व्रजमण्डल में गोपियाँ होंगी।"[2]

इन गोपियों की दिव्यता तो प्रमाणित है ही, साथ ही राधा का सर्वश्रेष्ठ होना भी विदित है। ज्योतिष व्याख्या के अनुसार विष्णु सूर्य हैं और कृष्ण सूर्य का प्रतिबिम्ब एवं गोपी तारिका का। कृष्ण की समस्त अलौकिक लीलाएँ तारों पर ही आधारित हैं। यथा-

---

1- "व्रजभाषा काव्य में राधा", उषापुरी, पृ- 76.

2- "गर्गसंहिता", कल्याण अंक, वर्ष 44, गोलोक खण्ड, अध्याय 4 तथा 5

राधा और विशाखा परस्पर पर्याय हैं। विशाखा की ओर कार्तिकी पूर्णिमा को ओर सूर्य विशाखा में रहता है। राधा का सूर्य से अदृश्य मिलन होता है। युगपत् तारा और सूर्य दृष्टिगोचर नहीं हो सकते हैं। प्राचीन समय में लोग यह मानते थे कि तारा का तारात्व सूर्य की रोशनी से ही है। गोप कृष्ण हैं, गो रश्मि है और गोपी तारा हैं। जिस प्रकार रवि के चहुँ ओर मण्डलाकार में तारे हैं उसी प्रकार कृष्ण रास के मध्य में हैं और गोपिका मण्डलाकार में हैं।[1] तारका नाम की एक ब्रज की देवी है। विशाखा [राधा] को मुख्य माना गया है। "राशि-लीला का चन्द्रमा से विशेष सम्बन्ध है। चन्द्रमा राशि-चक्र से राशि-लीला करता है। प्राचीन काल में कृत्तिका नक्षत्र से गणना करने के कारण मध्य में स्थित विशाखा [राधा] रासेश्वरी है।[2]

इन्हीं राधा का ब्रह्मवैवर्तपुराण में अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है जिसमें उन्हें रुक्मिणी भी कहा गया है - " द्वारवत्यां महा-लक्ष्मीर्भवती रुक्मिणी सती।"[3]

आदर्श स्वकीया नायिका -

दानी वेश में प्रथम बार मिले श्रीकृष्ण से राधा परस्पर एकान्त वार्तालाप के पश्चात् जब सखियों के पास लौट आती हैं तो काम उन्हें घेर लेता है। उनका तन कृष्ण- वियोग से जलने लगता है। शरीर की ऐसी विचित्र दशा का कभी उन्हें अनुभव न था। कवि ने उनकी कामा-वस्था का चित्रण करते हुए लिखा है कि -

---

1- "हिन्दी साहित्य में राधा" : द्वारका प्रसाद मीतल, पृ0- 86.
2- वही, पृ0- 87.
3- "ब्रह्मवैवर्तपुराण", श्रीकृष्ण जन्म खण्ड, अध्याय- 124, श्लोक-99.

"काम- लुबुध मन भई राधिका । रहि न जाइ बिरहिन तन धिका ।।
दरसन जोउ लीन्ह हरि काढ़ो । बिनु जिय काया, रैनि अति बाढ़ो।।
अंग-अंग लीन्हें धनि सबई । जागत खन अरिता सी भई ।।
रंग-रातो जियें कछु न सुहाई । पल जस पहर, पहर जुग जाई ।।
दोऊ रहे आस करि एते । चारि पहर चारि जुग बीते ।।
हियें एकै जियें पोरें जरई । तेहिं बियोग दुहुं नींद न परई ।।
दिया भोर होइ कोऊ, [कोऊ] लौटि बिहँसाइ ।
न टर रात तस बाढ़ी, बेगि न चढ़े सुहाइ [1]।।"

श्रीकृष्ण का श्रीराधा से रतिदान की याचना सहेतुक है। वे गोपियों की, विशेषकर राधा जी की कमनीयता, लावण्य, यौवन एवं दिव्यता से परममुग्ध हो गए है -

"[तुं] मैं देखो नारि सलोनी । देवि सरूप महर सुठि लोनी।।"[2]

कवि ने राधा जी के यौवन में झलकते अलौकिक लावण्य का इतना संक्षिप्त किन्तु विस्तीर्ण, गम्भीर और रसार्द्र वर्णन कर दिया है कि समस्त शिख-नख वर्णन बौना सा लगता है। उनके उस यौवन में भी बचपन है; जब वे मारकर भाग जाने की बात श्रीकृष्ण से कहती हैं। यद्यपि कवि ने उन्हें चतुर, सयानी "अमर कोक गीता गुनग्यानी" कहा है तथापि उनके उत्तर- प्रत्युत्तर में ग्रामीणता, लौकिक सहजता तथा अल्हड़पन भी झलकता है जो उनके मुग्धात्व का परिचायक है। देखिए -

---

1- "चन्दायत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 230.
2- वही, कड़वक 219.5

" तुम्ह अकेल दोइ सहस गुवारीं । मार जाहिं का चले तुम्हारीं ।।
जो गोरस कछु चाहहु, माँग रसहिं रस लेहु ।
चलत पंथ जिन लागहु, जाइ गुवारिन्ह देहु।।[1]"

उन्हें अभी तक ज्ञात नहीं है कि प्रियतम कैसा होता है? पुष्प-भ्रमर का क्या सम्बन्ध है? उनका हृदय काम से बिलकुल अस्पृष्ट और पवित्र है। तभी तो वे छाछ और धवल दुग्ध दोनों की धवलता में अन्तर नहीं कर पातीं। अतः दुग्ध का विकार छाछ और यौवन का विकार काम उनके लिए समान हैं। वे सखियों को बुलाकर अपनी बाह्य तथा आन्तरिक दशा का वर्णन करती हैं। उनकी इस व्यथा- कथा में जिज्ञासा और कौतूहल प्रकट है। राधा सखियों से बताती हैं -

" राही कहा बुलाइ सहेली । अइस राति हौं रहौं दुहेली ।।
अब लहि मोर हुतो तस जीऊ। जानत नहिं उनहिं कस पीऊ ।।
न जनौं कस रे फूल कस भौंरा। छाछो धौरि दूध पुनि धौरा।।
काल्हि जो कहौं कन्हु सो बाता। रह न जाइ दरसन मन राता ।।
बहरि जिउ लीन्ह,कन्हिं बिनु सूनां।सुख- बिसराम भयउ दुख दूना ।।
नींद न परै सेज मोहिं चाटै । सेजवां अगिन फूल जनु काटै ।।
घरी सौ बरस भइ, जागत परा लोरहि लोर ।
एहि विधि रैनि गँवायउँ, बहु दुख पायउँ भोर।।[2]"

" हौं अबहीं तस कछु न जानौं । दूधउ- दहिउ धुरि कर मानौं।।[3]"

राधा और उनकी सखियां, सबकी सब उन्मत्तयौवना और प्रेमासक्ता हैं। वाटिका में पुष्प चुनती हुई वे अनुकूल वातावरण में उसी प्रकार प्रफुल्लित हो उठती हैं जैसे कलियां विकसित हुई हों -

---

1- "चन्दायन" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 218 दो०
2- वही, कड़वक 231।
3- वही, कड़वक 259.6

" उनमद जोबन लाड़ गहिली । जो रहिं कली खिलो [अनखोली][1]।।"

भारतीय संस्कृति में अभिजात कन्याओं का चरित्र अत्यंत पवित्र, अवदात और स्वाभाविक लज्जा के आवरण में अत्यन्त स्पृहणीय रहा है। जायसी उसी लजीलेपन का मनोहारी झाँकी प्रस्तुत करते हैं। राधा जी को जब अपने अवतारी प्रियतम श्रीकृष्ण की विश्वस्त हो गई तो वे लज्जा से विनत हो गईं, उनका पूर्व का गर्व विलीन हो गया, उन्होंने तुरन्त दृष्टि नीचे कर लिया, मुख पर लज्जा का घूँघट डाल लिया, कृष्ण के स्पर्श से उनका चन्द्रमुख ईषत् कम्पायमान हो उठा। पति की पहिचान और उससे एकान्त-मिलन में आनन्द और संकोच के द्विधाभाव में उनका मन हिंडोले पर आरूढ़ की भाँति चलायमान हो उठा। वे वह उपाय खोजने लगीं जिससे अस्पृश्य घर पहुँच जाय। जब श्रीकृष्ण उन्हें शयन-शय्या पर ले गए तो राधा की व्याकुलता अचेतना में परिणत हो गई। कवि ने मुग्धा नायिका का अनजाने में अचानक प्रियतम- मिलन के अवसर पर उत्पन्न शारीरिक, मानसिक चेष्टाओं और दशाओं की अत्यन्त स्वाभाविक तथा मनोहारी झाँकी प्रस्तुत की है।

श्रीकृष्ण का जैसा अपूर्व, अलौकिक, स्वर्ग के अप्रतिम सौन्दर्य को विस्मृत करा देने वाला, देवताओं द्वारा अभिलषित, विविध पुष्पों, सुगन्धियों एवं रत्नों से सज्जित शयनागार किसी भी रमणी के लिए हठात् वशीकरण का इन्द्रजाल जैसा आकर्षक था किन्तु वहाँ भी राधा कृष्ण द्वारा विलासार्थ आमंत्रित की जाने पर एक अव्यक्त उत्कण्ठा-मिश्रित त्रास से सिहर उठती हैं। उनकी दशा चलायमान चंचल चम्पा की माला की जैसी प्रतीत होने लगती है जो उनकी सात्विकता, मुग्धात्व और कमनीयता का परिचायक है।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 251:4

राधा स्वकीया नायिका हैं। जायसी ने कृष्ण- दर्शन के पश्चात् उनके प्रति राधा के अनुराग तथा उनके अदर्शन से राधा के हृदय में विकलता का अत्यन्त सहज एवं मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है। दाम्पत्य जीवन में उनके परस्पर प्रेम का कहीं चित्रण नहीं है। केवल विवाह के अवसर पर आत्मा-परमात्मा के मिलन जैसा राधा- कृष्ण का संयोग-चित्र प्रस्तुत है। ब्रह्मा ने वन में ही सखियों के समक्ष उनका विवाह सम्पन्न कराया था जो गान्धर्व- विवाह ही कहा जायेगा क्योंकि न वहाँ पिता की अनुमति है, न माता का अभिनन्दन और न ही बन्धु- बान्धवों का समर्थन । देखिए -

" महादेव तहँ माडव छावा । पारबती सयँ मंगल [गावा] ।।
इन्द्र सबद सब बाजन बाजे। बंदनवार मंदिर महँ [साजे] ।।
अछरिन्ह जोरि गाँठि देइ भाँवरि । चौक पूरि कीन्हीं [निछावरि]।।
ससि, दिनअर, रिखि, देवता, नेवँत फिरा सब काहु ।
तीनहुँ लोक भयउ सुख , सुनि राधी का ब्याहु ।।"[1]

गर्गसंहिता गोलोक खण्ड अध्याय पन्द्रह में गर्ग जी ने वृषभानु से राधा के विवाह के सम्बन्ध में निर्देश किया था -

"अहं न कारयिष्यामि विवाहमनयोर्नृप ।
तयोर्विवाहो भविता भांडीरे यमुनातटे।।
वृन्दावनसमीपे च निर्जने सुन्दरस्थले ।[2]
परमेष्ठी समागत्य विवाहं कारयिष्यति।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 265.5 दोहा
2- "गर्गसंहिता": गोलोक खण्ड, अध्याय- 15, श्लोक 60-61.

यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। इस सम्बन्ध में ब्रह्मवैवर्तपुराण में एक रोचक कथा है। "किसी दिन नन्द श्रीकृष्ण के साथ भांडीर वन में गायें चरा रहे थे। इतने में कृष्ण की माया से निर्मित झन्झावात वृष्टि अकस्मात् प्रारम्भ हो गई। नन्द जी बालक श्रीकृष्ण को घर पहुंचाने का उपाय खोज ही रहे थे कि वहाँ राधा जी उपस्थित हो गईं। नन्द जी के आदेश से जब राधा कृष्ण को लेकर घर पहुँचाने चली तो उसी वन के एक अत्यंत सुन्दर मण्डप के नीचे ब्रह्मा जी ने उनका वेदोक्त विधि से पाणिग्रहण करा दिया[1]।"

विवाह-पूर्व श्रीराधा का श्रीकृष्ण से प्रथम मिलन दानलीला के प्रसंग में आता है उस समय श्रीकृष्ण लावण्यमयी, देवीस्वरूपा, सुठि और कमनीय राधा के सौन्दर्य के वशीभूत हो जाते हैं। दो सहस्र गोपियों से दूध- दही का कर आदान के के ब्याज से वे रतिदान की याचना करने लगते हैं। राधा ही उन समस्त गोपियों में अतिशय सुन्दरी थीं। उन्हें सतीत्व का गर्व था। वे श्रीकृष्ण को यह कहकर फटकारने लगीं कि मेरा पति तो समुद्र मंथन करके लक्ष्मी को प्रकट करने वाले विष्णु ही हो सकते हैं, ऐसी भविष्यवाणी है। श्रीकृष्ण ने राधा जी की प्रतीति के लिए अपने को विष्णु बताया। तथापि राधा उन्हें पहचानने में असमर्थ रहीं। इस पर श्रीकृष्ण के मुख पर खीझ भरी हँसी छा गई। वे कहने लगे-

"बिहसि कन्ह मन भएउ विसेखा। मैं राधिका तोर सब देखा[2]।।"

बिना प्रत्यक्ष दर्शन के वे किसी प्रकार विश्वास नहीं करतीं। वे कृष्ण से विनय करती हैं कि आप यदि गोलोक से अवतरित विष्णु अवतारी कृष्ण हैं तो अपने उस मुखचन्द्र का दर्शन कराइए जो नित्य बालगोविन्द का है जिसे गोपियाँ दर्शन के लिए सदा पंथ निहारती रहती हैं -

---

1- कल्याण अं.,वर्ष 37, "ब्रह्मवैवर्तपुराण", श्रीकृष्ण जन्म खण्ड, अध्याय- 15, श्लोक [illegible] पृ- 382.

2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 222.।

" गोलोक रहै [सो] अइस अलोपो । नित उठि पंथ निहारहिं गोपो।।
देहु दरस आपुन मुख चन्दू । मुख जोवै नित बाल गोविन्दू[1] ।।"

किशोर रूप में श्रीकृष्ण राधा को पकड़ कर विलास हेतु लतामण्डप में ले जाने लगते हैं तो उत्कण्ठित राधिका की दशा उसी प्रकार हो जाती है जैसी विवाह-पूर्व कुल कन्याओं का अपने भावी पति से एकान्त मिलन के समय स्पृहणीय किन्तु विचित्र लगती हैं -

" करत जो बात गरब कै चोठी । मन लजानि कै तरहुत दीठी ।।
घूँघट काढ़ि रही मुख झाँपी । गहि तिय लीन्ह जोन्ह मुख काँपी।।
हौं रे दई जा कहँ हुत गढ़ी । तेहि के सेज आइ हौं चढ़ी ।।
अब कस करौं कौन चतुराई । जेहिं अछूट घर पाएउं जाई ।।

जहिं हुत सौंर- सुपेती, लेइ गा कन्ह मुरारि ।
राह गहे बन राही , भइ अचेत बर नारि[2] ।।"

यद्यपि, राधा- कृष्ण का संयोग लक्ष्मी विष्णु के रूप में नित्य है तथापि जायसी ने भारतीय संस्कृति और सभ्यता के अनुरूप आभिजात्य कन्याओं के सात्त्विक गुणों को पहचाना था और राधा में उन्हीं लज्जा-शीलता, विनम्रता, स्नेहगोपन आदि गुणों को उरेहा है। कुलाङ्गनाओं का परपुरुष से सांमुख्य तो स्वप्न में भी असम्भव है, सम्भाषण तो कल्पना से भी परे है, पुनः स्पर्श और चरित्र भंजन कहाँ सम्भव है? राधा का यही आदर्श वहाँ मुखर हो उठा है जहाँ वे बिना प्रत्यक्ष दर्शन के श्रीकृष्ण पर अविश्वास प्रकट करती हैं :-

" हौं ताकर धनि कूलइ, धरम दसा जेहि नाहें ।
तपत रहौं तहाँ छन , पाप होइ जेहि ठाउँ[3] ।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 223. 4-5
2- वही, कड़वक 225.4 - दो०
3- वही, कड़वक 221 दो०

श्रीकृष्ण जी की नित्य संगिनी के रूप में पहिचान हो जाने पर भी राधा अपने को उनके अनुरूप नहीं समझतीं। पुराणों के अनुसार राधा कृष्ण की उपास्या और उपासिका दोनों हैं, सूर्य और उसकी प्रभा के समान वे परस्पर असंपृक्त हैं, ह्लादिनी शक्ति होने के कारण कृष्ण उनके बिना सदा एक क्षण के लिए भी चैन नहीं पाते, फिर भी कृष्ण के प्रति उनकी विनयशीलता, स्नेह और सम्मान प्रशंसनीय है। कृष्ण के अमृतमय प्रेम के लिए विह्वल, उत्कण्ठित और मुग्धा हुई वे कहती हैं कि -

" दरस तुम्हार जगत सब फूला । तुम्ह जग सेउँ जग तुम्ह सेउँ भूला ।।
परित कुभानों जोरहिं वाहू । चेटक लागि रहा सब काहू ।।
नैनहिं दुलैं पुनि नहिं डोलहिं । जिय तैं नियर दहत भय बोलहिं ।।
छाड़हु मचिउ जिउ लावहु छोऊ। परगट लौ रहहि बरि जीऊ ।।

कहाँ सरग, कहँ धरती, हौं राडी तुम्ह राह ।
तुम्हहिं करत सब छापे, और न छाजे काह ।।"[1]

उनका प्रत्युत्पन्नमतित्व भी कम सराहनीय नहीं है। श्रीकृष्ण की विष्णु रूप में पहिचान हो जाने पर राधा जी को जब वे हठात् एकान्त में ले जाने की चेष्टा करते हैं तो राधा अपनी तथा श्रीकृष्ण की भी मर्यादा की रक्षा करती हैं। उनके निषेध में इतनी मिठास है कि कृष्ण उनके तर्कपूर्ण युक्ति से पराभूत हो जाते हैं। राधा कहती हैं कि नवल नेह, नव प्रीतम, नवीन सुहाग तथा नई नारी से संयुक्त यह शुभ बेला विवाह की सी स्थिति को प्राप्त हो गयी है किन्तु मेरे पूर्ण श्रृंगार किए बिना और संगिनी साक्षिणी रूप सखियों से रहित होकर अधूरी है। अतः इतनी कृपा अवश्य करें कि वे आकर आरती उतार सकें, पुनः आप गाँठ जोड़कर

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 257.4- दो०

मेरे साथ भाँवर फिरें। राधा ने कृष्ण के विश्वास हेतु शपथ लिया और पुनरावर्तन की प्रतिज्ञा करके सखियों के पास लौट आयीं।[1]

राधा के ही प्रसंग में कवि ने उनका जन्म- संकेत करके यह धारणा प्रकट कर दी है कि वे ही काव्य की नायिका हैं। कृष्ण- जन्म के साथ ही उनका भी जन्म हुआ है। उन्हीं का प्रसंग काव्य के अन्त तक चलता है। नख-शिख- वर्णन केवल राधा का ही हुआ है। उनकी प्रतिनायिका चन्द्रावली यद्यपि परिणीता है तथापि राधा के गुणों का सादृश्य नहीं कर सकती।

यूथेश्वरी -

राधा, चन्द्रावली, विशाखा, ललिता, श्यामा, पद्मा, शैव्या, भद्रा, तारा, चित्रा, गोपाली, धनिष्ठा और पालिका आदि नित्य प्रिया गोपियों में प्रधान हैं। प्रत्येक का एक यूथ और उसमें असंख्य गोपियाँ होने के कारण राधा आदि आठ प्रधान गोपियों को यूथेश्वरी कहा जाता है। इनमें राधा और चन्द्रावली-प्रधान में भी राधा ही सबमें श्रेष्ठ हैं। "कन्हावत" में राधा जी के साथ रहने वाली दो सहस्र गोपियों का उल्लेख है।

राधा की संगिनी दो सहस्र सखियाँ उनकी अन्तरंग मित्र हैं, परामर्शदायिनी और आज्ञाकारिणी भी। चन्द्रावली के साथ भी इतनी ही तथा ऐसी ही गुणशालिनी सखियाँ हैं। इस प्रकार राधा और चन्द्रा-वली अपने- अपने यूथों की पृथक्- पृथक् स्वामिनी हैं। कवियों ने इन्हें प्रतिद्वन्द्विनी रूप में चित्रित किया है। "कन्हावत" में राधा दिवसश्री अथवा सूर्यप्रभा का प्रतिनिधित्व करती हैं और चन्द्रावली ज्योत्स्ना का। राधा- कृष्ण- मिलन दिन में होता है जबकि चन्द्रावली श्रीकृष्ण

1- "कन्हावत" : डॉ शिवसहाय पाठक, कड़वक - 228.

का समागम रात्रि की चाँदनी में सम्पन्न होता है। राधावल्लभ सम्प्रदाय में गोपियों के अनेक यूथ और यूथेश्वरियाँ कल्पित हैं। मेरी धारणा है कि ब्रह्माण्ड में जिस प्रकार अणु को परमाणु रूप में विभाजित किया गया है उसी प्रकार जगत में शक्ति रूपा नारी के कोमल गुणों का सूक्ष्म विभाग करके गुणानुकूल गोपियों के नाम, यूथ और यूथेश्वरियाँ कल्पित की हैं। साहित्य जगत में जिनका प्रजापति [सृष्टिकर्ता] कवि होता है, उपर्युक्त विभाग मनोरंजनार्थ हैं। भगवत्-भक्ति में भक्तों के मध्य राग- द्वेष का स्थान नहीं होता। भागवत की समस्त गोपियों में कृष्णसुखसुखित्व ही सर्वोपरि है, ईर्ष्याद्वेष का कहीं नाम नहीं है।

नित्यप्रिया -

चीरहरण लीला की मीमांसा करते हुए हनुमान प्रसाद जी पोद्दार कहते हैं कि "प्रेम- प्रेमी और प्रियतम के बीच में एक पुष्प का भी पर्दा नहीं रखना चाहता। प्रेम की प्रकृति है सर्वथा व्यवधान रहित, अबाध और अनन्त मिलन। श्रीकृष्ण चीर को माया का आवरण कहकर, गोपियों को उसे हटाकर, संस्कारशून्य होकर अपने पास आने का प्रबोध देते हैं।"[1] "कन्हावत" में भी इसी प्रकार सखियों की ओट से बोलती हुई राधा को श्रीकृष्ण "दूरि करहु अंतरपट खोलहु" से निरावरण होकर "तूं मोहि देखि, हौं देखउं तोही।" नित्य साम्मुख्य का आमंत्रण करते हैं। श्री राधा-कृष्ण अभेद रूप से एक ही स्वरूप, एक ही आत्मा हैं केवल लीला-रस के आस्वादन के लिए दो रूप धारण करते हैं। इस मर्म को समझाते हुए श्रीकृष्ण राधा से कहते हैं कि मैं विविध छद्म जानता हूँ। मैं भोगार्थ तुम्हें पृथ्वी पर लाया हूँ और वन खण्ड का

1- श्रीमद्भागवत, गीताप्रेस गोरखपुर, स्कन्ध-10, पृ०- 269-270. पाद टिप्पणी ।

आश्रय लिये हूं। मैंने सभी गुप्त गुणों को तुम्हारे समक्ष प्रकट कर दिया है। अतः अन्तरपट को दूर करो तथा साम्मुख्य धारण करो -

" सुन राही जो सब छंद जानेउं । तुम्ह रस नारि भोग कहं आनेउं ।।
जो तुम्ह कारण बनखंड लोन्हेउं। सबै गुपुत गुन परगट कोन्हेउं ।।
अब कह सखिन्ह ओट भए बोलहु। दूरि करहु अंतर पट खोलहु ।।
मैं तुम्ह आनों अपुनें ताईं । तुम्ह कत बोलहु ओट पराईं ।।
करहुं इहां दरसन हंसि होही । तूं मोहि देखि, हौं देखउं तोही ।।"[1]

आगे श्रीकृष्ण यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि कृष्ण और राधा में कोई अन्तर नहीं है। वे पिण्ड तथा छाया की भांति परस्पर अभिन्न हैं -

" मोहि- तोहि राही अन्तर नाहीं । जइस दोख पिंड परछाहीं ।।"[2]

श्रीकृष्ण ने राधा को अपने दशावतार के सम्बन्ध में भी प्रबोध दिया था और तदनुकूल अपनी और राधा की अभिन्नता बताकर संयोग-सुखोपभोग का आह्वान किया था।[3] राधा जी ने भी राम के लिए सीता-रूप की भांति अपने को कृष्ण के लिए अवतरित समझ लिया था। वे कहती हैं -

" जो तुम्ह राम त हौं हुत सीता।"[4]

राधा श्रीकृष्ण की आत्मा हैं और अपनी आत्मा से ही रमण करने के कारण मनीषी उन्हें आत्माराम कहते हैं। आत्मा और परमात्मा के मिलन में बाह्य और अन्तः दोनों पदार्थों का सर्वथा तिरोभाव हो जाता है -

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 258, 1-5
2- वही, कड़वक 260, 1
3- वही, कड़वक 222
4- वही, कड़वक 261, 4

" मन सौं मन तन सौं तन गहा। होइ गए एक न अंतर रहा।।
तइस गएउ मिलि जिय सौं जोउ। मिल्वा जइस खाँड़ महँ धोऊ।।"[1]

इस प्रकार का संयोग भी चातक- स्वाती का है जो साहित्य में प्रेम की अमरता, कष्टसाध्यता और व्याकुलता के लिए प्रसिद्ध है। सोलह सहस्र गोपियों सहित राधा फुलवारी बन जाती हैं और श्रीकृष्ण मधुप। मिलन की इसी अभिन्नता को जायसी ने आध्यात्मिकता का रंग देते हुए लिखा है -

"न्यौरे भोग- पियास न जाई। पाँच भूत आतमा (लगाई)[2]।।"

जायसी एक स्थान पर कृष्ण को पुरुष (तोता) और राधा को फुलवाटिका के रूप में भी चित्रित करते हैं -

" नवल नेह, पैठेउ फुलवारी। पुरुष सुआ भा सो बनि वारी[3]।।"

श्रीकृष्ण और राधा दोनों के शरीर और आत्मा की अभिन्नता का जब ज्ञान हो जाता है तभी प्रकृति- प्रेम उत्पन्न होता है। ऐसी अवस्था महाभाव में होती है। श्रीराधा महाभावस्वरूपा हैं। इसलिए श्रीराधा-कृष्ण-विलास में पुरुष-स्त्री भेद का ज्ञान नहीं रह जाता। दोनों एक रूप हो जाते हैं।

श्रीकृष्ण परम स्वतन्त्र पुरुष हैं किन्तु प्रेम के वशीभूत हैं। जो भक्त उनमें जितना प्रेम स्थापित कर लेता है वे उसके उतने ही वश में हो जाते हैं। श्रीराधा को ही यह सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अतएव श्रीकृष्ण उनके सर्वाधिक वशीभूत थे। इसीलिए वैष्णव आचार्यों ने राधा- कृष्ण की युगल उपासना को ही परम साध्य वस्तु और श्रीराधा- कृष्ण तत्व को ही समस्त तत्वों का सार माना है।

1- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 266.4-5
2- वही, कड़वक 266.5
3- वही, कड़वक 267.2

"उज्ज्वल नीलमणि" में भी राधा को श्रीकृष्ण के प्रति प्रेमातिशयता के कारण नित्यप्रिया कहा गया है। श्रीकृष्ण और राधा की नित्यता सिद्ध करने के लिए विद्वानों ने अनेक प्रकार की व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। वृहद् ब्रह्मसंहिता के द्वितीय पाद पंचम अध्याय में भगवान ने श्रीलीला और राधिका को परादेवता तथा गोपन के कारण गोपी बताया है। वह सर्वलक्ष्मीस्वरूपा हैं और श्रीकृष्ण को आनन्द देने वाली होने के कारण ह्लादिनी शक्ति हैं तथा नाना क्रीड़ा करने में निपुण हैं।

वैष्णव धर्म में राधा को मूल प्रकृति और श्रीकृष्ण को पुरुष माना गया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में श्रीकृष्ण राधा से स्वयं कहते हैं "सुमुखि राधे! तुम मेरे लिए प्राणों से भी बढ़कर प्रियतमा हो। जैसी तुम हो, वैसा मैं हूं, निश्चय ही हम दोनों में भेद नहीं है। जैसे दूध में धवलता, अग्नि में दाहिका शक्ति और पृथ्वी में गन्ध होती है, उसी प्रकार तुममें मैं व्याप्त हूं। तुम्हीं श्री हो, तुम्हीं सम्पत्ति हो और तुम्हीं आधार-स्वरूपिणी हो। तुम शक्तिस्वरूपा हो और मैं अविनाशी सर्वरूप हूं। जब मैं तेजः स्वरूप होता हूं, तब तुम तेजोरूपिणी होती हो। जब मैं शरीर रहित होता हूं, तब तुम भी अशरीरिणी हो जाती हो। सुन्दरि! मैं तुम्हारे संयोग से ही सदा सर्वबीजस्वरूप होता हूं। तुम शक्तिस्वरूपा तथा सम्पूर्ण स्त्रियों का स्वरूप धारण करने वाली हो। मेरा अंग और अंश ही तुम्हारा स्वरूप है। तुम मूलप्रकृति ईश्वरी हो।"[1]

समर्पिता -

राधा- कृष्ण की परमदासी और आज्ञाकारिणी भी हैं। कवि ने राधाकृष्ण को अलंकृत सिद्ध किया है। राधा जी श्रीकृष्ण के आज्ञा-पालन से उसे प्रमाणित कर दिखाती हैं। यमुना पार दुर्वासा को अन्न

1- कल्याण अंक, ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण जन्म खण्ड, पृ0- 380.

खिलाने जाते समय वे प्रियतम को आज्ञा पालने हेतु प्राणोत्सर्ग में भी अपना सौभाग्य गर्व अनुभव करती हैं। आज्ञा को टालना तो उनकी कल्पना में भी न था।[1] इसीलिए तो श्रीकृष्ण ने उन्हें प्रधान महिषी के पद पर प्रतिष्ठित किया था।

वे कृष्ण के प्रेम में पिंजड़े के भीतर पड़े पक्षी की भाँति पड़ी थीं। उनके गले में पड़ी प्रेमश्रृंखला को कृष्ण ही काटने में समर्थ थे। अतः वे सब प्रकार अपने को असमर्थ समझकर एवं सुमति- कुमति भुलाकर श्रीकृष्ण की शरण में गई थीं।[2] इस प्रकार गीता में उपदिष्ट "मय्यर्पित मनोबुद्धिः", "मामेकं शरणं व्रज" के अनुसार राधा समग्र रूप से कृष्ण को समर्पित हैं।

सेवापरायणा -

राधा चन्द्रावली की अपेक्षा श्रीकृष्ण की सेवा-भक्ति में अनुरक्त थीं। राधा- चन्द्रावली- विवाद के प्रसंग में कवि ने परस्पर दोषारोपण के द्वारा दोनों के चारित्रिक गुणों को प्रकाशित किया है। दोनों का कृष्ण के प्रति प्रेमभावना में अन्तर विवाद का मूल है। चन्द्रावली श्री महेन्द्र से मनौती करती है -

"कै पूजा चन्द्रावलि, बिनवै पिरे हुलास ।
कन्ह रहहिं निलक मोपहिं, जाहिं न राधी बास।।"[3]

राधा की मनौती है -

"सिरी महिंद अस ताकहिं काहू । सावल बाघ दहै जो काहू ।।
एक कस्तूरी सेवा करै । अवर टूट तहँ आर परे ।।
जहिं दिन भइ परतिग्या नांऊ । बीतैं [?] बार तुम्ह पूजि मनाऊँ ।।
असनान चढाउँ मन दस मेऊ । परनहिं दुबौं कपिलाऊँ जेऊँ ।।
जौ सुहाग मोहि पिरे, करौं जगत अधियारु ।
सेवा करौं रात- दिन, होब के चेरि तुम्हार।।"[4]

1- "चन्दायन" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 336.5 दो0
2- वही, कड़वक 257. 2-3
3- वही, कड़वक 148.4- दो0

जायसी ने यहाँ राधा और चन्द्रावली का कृष्ण के प्रति प्रेम-सम्बन्ध का पार्थक्य कर दिया है। राधा के मुख से दाम्पत्य प्रेम में उपस्थित विघ्न रूप सपत्नी की यथार्थ चिन्ता प्रकट हुई है। कवि ने अपने लोकव्यवहार को मुखर करते हुए कहा है कि एक स्त्री तो सेवा-परायणा होती है किन्तु अन्य सपत्नी व्यक्ति पर भारस्वरूपा हो जाती है। इसीलिए राधा अपने सुहाग के लौटने की मनौती करती हैं और प्रार्थना करती हैं कि ईश्वर किसी को सौत न दे जबकि चन्द्रावली पूर्णरूपेण राधा को ईर्ष्या से जलती रहती है। यही दोनों की पृथक्- पृथक् प्रेमभावना का अन्तर है।

राधा ही कृष्ण की परम दासी थीं। उन्हें ही कृष्ण के रहस्य का ज्ञान था। उन्हें ही कृष्ण के साथ पूर्णतः मिलन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। राधा की विनम्रता कई स्थानों पर वर्णनीय है।

सती-

कवि ने राधा को गोपराजा देवचन्द की कन्या बताया है। उनमें राजकन्या के आभिजात्य गुण हैं। यूथेश्वरी होने के सम्बन्ध से वे अपनी दो सहस्र सखियों का प्रतिनिधित्व एवं रक्षा करती हैं। श्रीकृष्ण जब सभी गोपियों को रोककर दान माँगने लगते हैं तो वे आगे निकलकर निर्भीकता से उनका प्रतिरोध करती हैं। यहाँ तक कि अवसर पाकर जब समस्त गोपियाँ भाग निकलीं तो भी वे अकेली कृष्ण से विवाद करती रहीं। उन्होंने अपने पिता का भी उन्हें भय दिखाया और कहा कि तुम्हें कारागार में बन्द करा दूँगी -

" तो रिसानि राही गोपिता । सुने न पार मोर अस पिता ।।
आइ क करब बोलादे डारा । हौं अकेल कह कर बैसारा ।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 221.1-2

ज्योतिषियों ने विष्णु को उनका पति होने की भविष्यवाणी की थी। श्रीकृष्ण जब अपने वरदान से विरत न हुए तो राधा का सतीत्व उभर कर सामने आ गया। उन्होंने अपने भावी पति को छोड़ कर क्षण भर खड़ी होना भी पाप निरूपित किया। सतीत्व की दृढ़ता और आगे प्रकट हुई कि प्राण भले ही चले जाँय, मैं दूसरे को स्मरण तक नहीं कर सकती -

" एक- एक मन सँवरौ सोई । मकु जिउ जाउ न दूसर कोई ।।
हौं ताकर धनि दूलह, धरम दसा जेहि नाउँ ।
तपत रहौं तहाँ छन , पाप होइ जेहि ठाउँ ।।"[1]

वे तब तक अडिग रहीं जब तक कि श्रीकृष्ण ने अपना विष्णु रूप प्रत्यक्ष नहीं दिखाया ।

सती नारी के लिए चरित्र-लांछन उसी प्रकार पीड़ाकारक होता है जैसा कि वैधव्य। चन्द्रावली ने राधा के सतीत्व पर शंका प्रकट करके व्यंग्य- वाण छोड़ा तो राधा मर्माहत होकर उद्दीप्त हो गईं। राधा का हृदय छलनी हो गया, शरीर में विरह की ज्वाला धधक उठी और वे चन्द्रावली पर बरस पड़ीं। चन्द्रावली के व्यंग्य द्रष्टव्य हैं -

" कै कौंहु रस कर परा सवादू । सो बिछुरा मन भा न समादू ।।
हँसि- हँसि बूझै चाँदा, ओहिं कस चलसि तुम्हार ।
सहँ न सकै सुनि राधी, उठै बिरह तन झार[2] ।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़क 221.7 दो०

2- वही, कड़क 143.7- दो०

वियोगिनी -

राधा का विरह "कन्हावत" में यत्र- तत्र अस्फुट रूप से उपलब्ध होता है। वृन्दावन में जहाँ सदा कृष्ण से मिलन होता था, एक बार राधा उनके द्वारा ठगी गईं। उससे कृष्ण- विरह दु:खदायी प्रतीत हुआ। वे रात्रि में कृवाक से बिछुड़ने पर चकई की भाँति दु:खी हुईं। वही वृन्दावन जो संयोग अवस्था में आनन्ददायक था, दु:खदायी प्रतीत होने लगा। कवि ने इस विरह का संक्षिप्त वर्णन करते हुए लिखा है :-

" देखे काह तहाँ बन सूना । उपना बिरह भयउ दु:ख दूना ।।
कुरलहिं मेव पतिंग झकारहिं। मुएउँ-मुएउँ कहि मोर पुकारहिं।।
फिर-फिर ढूढ़े चहुँ दिसि बना। कान्हु न तहँ बिन्द्राबनां ।।
मकु तहँ देहिं ओर कल नाहीं । तो पै एहिं बिन्द्राबन नाहीं ।।
चारि पहर पथ जोवत, सब मिलि रही अकेलि ।
कंत- झुखत भोर भा , चकई जइस दुहेलि[1] ।।"

कृष्ण के मथुरा चले जाने पर जायसी ने समस्त गोपियों का समन्वित विरह-वर्णन किया है। उसमें चन्द्रावली और राधा का विरह-वर्णन शब्दत: अतिरंजित किया है -

" चन्द्रावली कहै जस राहीं । राही जरै अधिक दुख माहीं[2] ।।"
" देखेउ विरह जरत राधिका । तेहि के आँच गंगन-रबि धिका[3]।।"

राधिका के विरह से आकाश और सूर्य का जलना उसी प्रकार अस्वाभाविक और अतिरंजित वर्णन है जैसाकि पद्मावत में नागमती का ।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 140.3- दो०
2- वही, कड़वक 326.6
3- वही, कड़वक 328.5

वेद में राधा दिव्य कल्पना-मूर्ति है, उपनिषदों और पुराणों में श्रीकृष्ण की ह्लादिनी शक्ति, आत्मा तथा अलौकिक नित्य प्रिया। साहित्य में वे ही श्रृंगार तथा प्रेम की विग्रहमयी मानुषी बन गईं। इस प्रकार भावनामयी दृष्टि उनके स्वरूप को भी परिवर्तित करती रही। इसलिए वे कभी दिव्यात्मा हैं, कभी ईश्वर की शक्ति और कभी ऐतिहासिक गोपी। वे कभी कल्पनाप्रसूत थीं तो कभी प्रेममूर्ति। उनका यह अस्तित्व साहित्य में अचानक ही नहीं आ गया। दृष्टि संकोच, दृष्टि विस्तार और दृष्टिभेद ने उन्हें संकुचित व्यापक और जटिल रूप प्रदान किया। यही उनके अस्तित्व, दिव्यत्व और मानुषी रूप की प्रसिद्धि का रहस्य है।

"कन्हावत" में वे देवचन्द्र महर की कन्या हैं। श्रीकृष्ण की सेवा, भक्ति के लिए गोकुल में सोलह सहस्र गोपियों के साथ उनका अवतार हुआ जिनमें वे सर्वश्रेष्ठ, गोपी- शिरोमणि, सर्वाङ्ग सुन्दरी, सहस्र रश्मिवत, दीप्तिमयी, नक्षत्रों में चन्द्रमा सदृश थीं। विष्णु-पत्नी, लक्ष्मी, सीता, रुक्मिणी, राधा सब उन्हीं के नाम हैं। विष्णु के प्रत्येक अवतारों के साथ उनकी शक्ति और पत्नी के रूप में उनका भी आविर्भाव होता रहा। कृष्ण के लिए वे राधा बनकर स्वर्ग से अवतीर्ण होकर पृथ्वी पर प्रकट हुई हैं।

वे कृष्ण की विवाहिता पत्नी अर्थात् स्वकीया नायिका हैं। कृष्ण से राधा का नित्य सम्बन्ध है। पिण्ड और परछाईं के समान वे परस्पर असंपृक्त हैं। उनका परस्पर प्रेम-सम्बन्ध स्वाती-चातक का है। अन्य गोपियों के साथ राधा फुलवारी तथा कृष्ण भ्रमर स्वरूप हैं। कृष्ण सूर्य बनकर अपने सहस्र किरणों की ज्योति के सम्बन्ध से षोडश कलावती गोपियों के साथ अपने प्रेम- सम्बन्ध का विस्तार करते हैं। वे

राधा प्रधान महिषी हैं। चन्द्रावली उनकी सपत्नी है। कवि ने चन्द्रावली का भी कृष्ण के साथ परिणय कराया है। दोनों के साथ कृष्ण का सम्बन्ध है। जायसी ने राधा को सूर्यप्रभा अथवा दिवसश्री और मानुषी किन्तु दिव्य सुन्दरी चित्रित किया है। इन्हीं के समानान्तर चन्द्रावली को अन्तरिक्षवासिनी और रूपगर्विता बताकर सपत्नीत्व प्रदान किया है। राधिका सेवाभक्ति और अनन्य प्रेम के कारण समस्त गोपियों की अपेक्षा प्रधान महिषी के पद पर अभिषिक्त हैं। राधा- कृष्ण के प्रेम- सम्बन्ध से ही अन्य गोपियों के साथ प्रेम प्रकाशित और व्यापक हुआ है जो बहुत कुछ आठवीं शताब्दी में प्रचलित वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय के मत से समन्वित जान पड़ता है। यह मत सूफी सम्प्रदाय की प्रेम-भावना के अत्यन्त निकट हैं।

चन्द्रावली -

जायसी ने "कन्हावत" में चन्द्रावली नाम की एक गोपी को राधा की प्रतिद्वन्दिनी के रूप में चित्रित किया है। किन्तु उसका कोई पारिवारिक परिचय नहीं प्रस्तुत किया है। यह चन्द्रावली राधावल्लभ सम्प्रदाय में अष्टछाप कवियों द्वारा भी राधा के साथ विशिष्ट गोपिकाओं में उल्लिखित है। किन्तु उनमें कहीं भी पारस्परिक ईर्ष्या- द्वेष का उल्लेख नहीं है। सबका प्रयोजन मात्र कृष्ण को निष्काम सुख प्रदान करना है। चौदहवीं शताब्दी में जीव गोस्वामी ने राधावाद की प्रतिष्ठा की थी। उनके दूसरे सहयोगी रूपगोस्वामी ने "उज्ज्वल नीलमणि" ग्रन्थ के "कृष्ण-वल्लभा" अध्याय में निरूपित किया है कि जो वल्लभा साधारण गुणसमूह-युक्त है और जिसका विस्तीर्ण प्रेम तथा सुमाधुर्य सम्पद् के अग्रभाग में आश्रय है वे कृष्णवल्लभा हैं जिनके दो भाग हैं- स्वकीया और परकीया। उन्होंने सत्यभामा, रुक्मिणी तथा अन्य विवाहिताओं को स्वकीया के अन्तर्गत् रखा

है। शेष परकीया हैं। आगे उन्होंने लिखा है कि राधा, चन्द्रावली, विशाखा, ललिता, श्यामा आदि नित्यप्रिया गोपियों में प्रधान हैं। इनमें प्रत्येक का यूथ है जिसमें असंख्य गोपियाँ हैं। इन यूथों में भी राधा और चन्द्रावली के यूथ प्रधान हैं। दोनों में राधा ही श्रेष्ठ हैं। कृष्णावतार में ये सभी देवियाँ गोपकन्या के रूप में स्थानीय सखी होती हैं। ये प्रेमाभक्ति से भगवान के स्वरूपभूत धाम में पहुँचे हुए साधक ही हैं जो कृष्णवल्लभा रूप में गोपी-देह प्राप्त किए हुए थे। इससे स्पष्ट है कि चन्द्रावली भी गोपी देहधारिणी कृष्णवल्लभा रही है और "उज्जवल नीलमणि" में राधा और चन्द्रावली दोनों को नित्यप्रिया रूप में स्थापित किया गया है। "गर्गसंहिता" में अनेक ऋषियों, सती स्त्रियों, भक्त नारियों, वरदान प्राप्त नारियों, देवियों, यज्ञ- सीताओं आदि द्वारा ब्रज में गोपी रूप धारण करने का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार कृष्णावतार में असंख्य साधक सिद्धों के गोपी रूप में अवतरण से गोपियों की संख्या अगणित हो जाती है। इनमें साधक प्रेम, भक्ति, अवस्था आदि भेद से उनकी श्रेणी बन गई थी। राधावल्लभ ~~सम्प्रदाय~~ सम्प्रदाय तथा काव्यशास्त्र में वर्णित स्वकीया-परकीया, कन्या, प्रौढ़ा आदि भेदों से जायसी परिचित जान पड़ते हैं। राधा की सखियों को वे निम्न रूप में विभक्त करते हुए कहते हैं -

" बाला, अबला, परबढ़ा, सब मिलि चलीं संघात ।
दोड़ निसरीं बिन्द्राबन, जानु कुसुम बन रात[1] ।।"

समस्त गोपियाँ कृष्ण की प्राप्ति के लिए ही गोपी रूप धारण किए हुई थीं। अतः सभी कृष्ण की प्रिया थीं। इसका संकेत हमें अधोलिखित पंक्ति से प्राप्त होता है -

" अबहीं तोहि सौं मिलहि मुरारी । जो तुम्हरीं सब नारि पियारी[2] ।।"

1- "कन्हावत" : सं० शिवसहाय पाठक, दो० 216.
2- वही, कड़वक 259.5

कृष्ण की रासलीला की ज्योतिष व्याख्या प्रस्तुत करते हुए योगेशचन्द्र जी चन्द्रावली का अभिप्राय बताते हैं कि "विशाखा की ओर कार्तिकी पूर्णिमा का सूर्य विशाखा [राधा] में रहता है। राधा का सूर्य से अदृश्य मिलन होता है। युगपद् रूप में तारा और सूर्य दृष्टिगोचर नहीं हो सकते हैं। प्राचीन समय में लोग यह मानते थे कि तारा का तारापन सूर्य की रोशनी से ही है। रवि के चारों ओर मण्डलाकार तारे हैं उसी प्रकार कृष्ण रास के मध्य में हैं और गोपिकाएँ मण्डलाकार तारावलियाँ हैं। चन्द्रमा पुल्लिंग नहीं है इसलिए उसे राधा की प्रति नायिका माना गया है। अमावस की रात्रि को चन्द्र, सूर्य मिलते हैं जिसका अभिप्राय है कि गुप्त रूप से कृष्ण चन्द्रावली की कुंज में जाते हैं। "कन्हावत" की निम्न पंक्तियाँ इसी ओर संकेतित जान पड़ती हैं जहाँ चन्द्रावली के साथ अमावस्या का संयोग प्रस्तुत किया गया है -

"चौदसि गंगन संपुरन, जाने सब संसार ।
चले तो होइ अमावस, रहै जगत अँधियार।।"[1]

"सोरह करा रहत नित, जाइ संपुरन आइ ।
काहे भई अमावस, चाँद गहे मनु राहु[2] ।।"

"कतहिं कहत जासि तूं, बूड़ि मरसि तहिं लाज ।
सब जग कहै अमावस , देखि तोर अस काज[3] ।।"

"विदग्धमाधवम्" के अनुसार चन्द्रावली कंस के गोमण्डल के अध्यक्ष गोवर्द्धन की पत्नी थी। राजकुल से प्राप्त गौरव से गर्वित हुआ गोवर्द्धन चन्द्रावली कृष्ण के स्पष्ट संगम की उपेक्षा करता था। राधा सूर्य की उपासिका थीं और चन्द्रावली चन्द्रिका की। देवोपासना के लिए बहाना

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, दो0 102.
2- वही, दो0 138.
3- वही, दो0 155 तथा परमेश्वरीलाल गुप्त, दो0- 253

बनाकर ही वे वन में जाया करती थीं। वास्तव में व्रजललनाओं का कृष्ण के प्रति स्वाभाविक अनुराग था जो सदा जागृत रहता था।

चन्द्रावली "कन्हावत" में प्रतिनायिका के रूप में कृष्ण की नित्य-प्रिया चित्रित है। भावनात्मक और स्वरूप वर्णनात्मक दृष्टि से वह "सोम्भा" अर्थात् चन्द्रकान्ति है। कृष्ण रूप सूर्य की रश्मियों से ही उसका विकास होता है, अतः प्रत्यक्षतः उनका नित्य संयोग सिद्ध होता है। राधावल्लभ सम्प्रदाय में गोस्वामियों द्वारा यूथेश्वरियों की कल्पना और उनका स्वरूप-विभाजन एवं मूर्त कल्पना इसी प्रकार के गुणात्मक विभाग ही ज्ञात होते हैं। "उज्ज्वल नीलमणि" में राधा और चन्द्रावली का वर्णन नित्यप्रिया के रूप में है।राधा का प्रेम सब कुछ कृष्ण सुखैक तात्पर्य है :-

"राधा चन्द्रावली मुख्याः प्रोक्ता नित्यप्रिया व्रजे।
कृष्णवन्नित्य सौन्दर्य-वैदग्ध्यादि गुणाश्रयाः ।।"

– उज्ज्वल नीलमणि,कृष्णवल्लभा 36

चन्द्रावली का दूसरा नाम सोम्भा मिलता है जिसका सम्बन्ध चन्द्र से है। चन्द्रावली के सम्बन्ध में रूपगोस्वामी के निम्नलिखित उद्धरण द्रष्टव्य हैं :-

पद्मा । हला सव्वं भणसि। तथाहि –
विज्जोदन्ती राहा फेइज्जई ताव तार आलीहिं।
गअणे तमालसामे जाव चन्द्रावली फुरइ ।।
ललिता । [विहस्य संस्कृतेन]
सखवरि वृषभानुजायाः प्रादुर्भावे परत्त्वबोपगते।
चन्द्रावली शतान्यपि भवन्ति निष्कान्तीनि[2] ।।"

1- "हिन्दी साहित्य में राधा", द्वारका प्रसाद मीतल, पृ०- 80.
2- वही, पृ०- 86- 87.

"पद्मावत" में भी नायक रत्नसेन को सूर्य और नायिका "पद्मावती" को चन्द्रमा निरूपित करके उनका नित्य सम्बन्ध स्थापित किया गया है। रत्नसेन पद्मावती से कहता है :-

" अनु धनि तूं ससिअर निसि माहाँ । हौं दिनअर तेहि की तूं छाहाँ।।
चाँदहि कहाँ जोति औ करा । सुरज कि जोति चाँद निरमरा।।

* * * *

रँग तुम्हारे रातेउँ चढ़ेउँ गँगन होइ सूर ।
जहँ ससि सीतल कहँ तपनि मन इंछा धनि पूर।।[1]"

"चन्दायन" में चन्द्रावली कार्तिक की शरदपूर्णिमा की रात्रि में सखियों सहित "तमा को बारी" में वैरागी कृष्ण से मिलने जाती है:-

"हँसि चन्द्रावली सखिन कँवारी ।
आवहिं जाहिं तमा के बारी[2] ।।"

उस वाटिका में सखियों सहित चन्द्रावली की उपस्थिति से सर्वत्र आलोक फैल गया। ऐसी ज्योति पूर्णिमा को चन्द्रमा में भी नहीं देखी जाती। धरती और आकाश के मध्य प्रकाश की प्रतिद्वन्दिता में आकाशीय ज्योति किकीर्ण करता हुआ शोभायमान था। इधर धरती पर चन्द्र रूप चन्द्रावली तराइयों रूप सखियों के साथ जगमगा रही थी। गगन और धरती की इस शोभा के सादृश्य के साथ जायसी ने धरती की उजियाली को पूर्णिमा की आकाशीय ज्योति से अधिक श्रेष्ठ सिद्ध किया। वे कहते हैं -

" जग उजियार भई तब जोती । पुन्निउँ जोति कहाँ जग जोती ।।
जाइ तुलानीं बारीं, बहुँ दिसि कोन जो हाइ ।
ससहर तार तराइन, रहा गँगन सब छाइ[3] ।।"

1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 307.
2- "चन्दायन" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 109.1-2
3- वही,

जायसी स्पष्टत: चन्द्रावली को आकाश- स्थित चन्द्रमा और उसकी सखियों को तारे, नक्षत्र व तराइयाँ कहते हैं -

" वह सो चन्द्रावलि है गोपी । सरग चाँद दिन रहै अलोपी ।।
औ धौराहर ऊपर बसे । सोरह करों जोति परगसे ।।
मुख जोवहिं गन- गन्ध्रब देवा । नौ सई नखत करहिं सब सेवा ।।"[1]
"खेल करै चन्द्रावलि, नखत तराइन्ह संग ।"[2]

"कन्हावत" में मथुरा नगर के प्राकृतिक एवं आवासीय वर्णनों और "लंगर", "पल्लीपार", "धोटा" आदि अनेक शब्दों के प्रयोगों से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने स्वयं आँखों देखा वर्णन प्रस्तुत किया है। विधर्मियों के द्वारा मथुरा, गोकुल, वृन्दावन आदि के मन्दिरों के विध्वंस किए जाने और लूटे जाने के समय अर्थात् आज से लगभग 500वर्ष पूर्व जायसी के काल में ऐसे मन्दिर वहाँ रहे होंगे जिनमें कृष्ण के साथ राधिका और चन्द्रावली भी विराजमान रहीं होंगी जिस प्रकार गोकुल के खंडहर रूप गोकुलनाथ जी के मन्दिर में अब भी श्रीकृष्ण के साथ एक ओर राधा तथा दूसरी ओर चन्द्रावली सुशोभित है।

चन्द्रावली की धारणा जायसी को तत्कालीन कृष्णभक्ति सम्प्रदायों तथा उनसे सम्बद्ध मन्दिरों से ही प्राप्त हुई होगी। ब्रजमण्डल के लोक-गीतों से भी उन्हें प्रेरणा मिली होगी। मन्दिरों में होने वाले भजन-कीर्तन, कथाओं, लोककथाओं और सन्त- महात्माओं के प्रवचनों ने भी चन्द्रावली के सम्बन्ध में परिचय प्राप्त कराया होगा क्योंकि "ब्रह्मवैवर्त-पुराण", "गर्गसंहिता" आदि अन्तिम पौराणिक आख्यानों में चन्द्रावली का प्रसंग भिन्न- भिन्न रूप में प्रस्तुत हुआ ही है।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 100. 2-4
2- वही, दो0 - 110.

पद्मावती की निर्मलता, पवित्रता तथा दिव्य सौन्दर्य की भाँति चन्द्रावली में भी अधोलिखित चारित्रिक विशेषताएँ हैं :-

दिव्य सुन्दरी -

चन्द्रावली दिव्य सुन्दरी है। इसका सौन्दर्य जायसी की मूर्तिमती कल्पना है। सातवें आकाश में उसकी स्थिति सूफियों के परमात्मा के दिव्य सौन्दर्य की पराकाष्ठा व्यक्त करती है जो बाह्य नेत्रों द्वारा दर्शन से परे एवं साधकों द्वारा अन्तरमन में साक्षात्कार-योग्य हैं, अस्पृष्ट होने के कारण परम पवित्र है, षोडशकलामण्डित चन्द्रमा-स्वरूप वह समग्र रूप राशि का धाम है, अतः आह्लादकत्व के कारण देव, गन्धर्वादि द्वारा सेवित है, उन्नतत्व के अतिरिक्त न्यूनत्व की परम कोटि द्वितीया तिथि में भी वह सर्वजन-प्रतीक्षित है तथा दर्शन प्राप्त होने पर श्रद्धान्जलि [जोहार] "जय" की अधिकारिणी है।उसका निवास पवित्र हृदय [धवलगृह] है जो "कैलास-स्वर्गलोक" है।[1] वह विधाता की ऐसी निर्मल सृष्टि है, "नूर" ज्योति है जिससे चारों भवनों में आलोक फैला है।[2] पूर्णिमा की ज्योति में इतना आलोक कहाँ? वह तो षोडशकला पूर्ण ज्योति अर्थात् पराज्योति है।[3] उसके अन्तर्धान होने पर अमावस्या [अँधेरी-रात्रि] आ जाती है और दृश्यमान स्थिति में जगत आनन्दलोक में निमग्न हो जाता है, बाह्यलोक असार, शून्य, व्यर्थ, निरानन्द प्रतीत होने लगता है अर्थात् उसकी ज्योति के आनन्द के समक्ष जगत् के सारे आनन्द निरानन्द प्रतीत होते हैं।[4]

1- "चन्दावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 150.6

2- वही, कड़वक 102.7

3- वही, कड़वक 109.7

4- वही, दो0- 102.

जायसी उसके दिव्य सौन्दर्यलोक की प्रशंसा करते नहीं अघाते। वे कहते हैं कि लोग जिस कृष्ण की पुष्प, ताम्बूल आदि चढ़ाकर उपासना करते हैं, चन्द्रावली ने प्रथम दृष्टिपात में ही उनका चित्त इस प्रकार हर लिया कि वे अव्यक्त हृदय- दाह से छटपटाने लगे, संसार की अन्य सुन्दर वस्तुओं के प्रति उनका मन उदासीन हो गया। आशा-निराशा के विवर्त में डूबते- उतराते हुए जागते ही निशा व्यतीत करने लगे। पुष्प- चन्दनादि सुगन्धित- शीतल द्रव्य उनके अंगों में तपन उत्पन्न करने लगे। मुख म्लान हो गया, तन सूख गया, सहस्र रश्मि- ज्योति क्षीण हो गई।[1] चन्द्रावली की सौन्दर्यज्योति में वे पतिंगे की भाँति बरबस नैसर्गिक आकर्षण से चेतनाशून्य हो गए।[2] कृष्ण का मन चन्द्रावली के प्रेम में बावला हो गया। प्रीति- प्याला के साथते ही विरहाग्नि उद्दीप्त हो गई जिससे काया तपने लगी।[3] वे चन्द्रावली के दर्शन रूप कृपा का प्राणदान माँगने लगे।[4]

उस प्रियतमा की प्राप्ति असम्भव नहीं तो कठिन जरूर है। धाय अगस्त कृष्ण को शिक्षा देती है कि वे तपस्वी बनें, हृदय-दर्पण को निर्मल बना लें और उदासीन बनकर तमा की बारी में बंशी बजाकर प्रतीक्षा करें।[5] विष्णु रूप गोपाल गले में रुद्राक्ष की माला धारण किए हुए तपस्वी रूप में बैठकर ऐसी समाधि लगाते हैं और चन्द्रावली का नाम- जप करते हैं जिससे विधाता चन्द्रावली से मिलन करा दें। वे इस बीच कभी बंशी बजाने लगते हैं और कभी बैराग गाते हैं जिसे सुनकर पक्षी भी आनन्द-विभोर हो जाते हैं तथा राग से मनुष्य मोहित हो उठते हैं।[6]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 96.4
2- वही, कड़वक 99.7 दो०
3- वही, कड़वक 101.1-2
4- वही, कड़वक 101.5
5- वही, कड़वक 104.6 सोरठा
6- वही, कड़वक 108.6 दो०

चन्द्रावली को विधि ने चन्द्रमा रूप दिया और उसकी सखियों को तारिकाएं बनाया। वे चन्द्रावली के चारों ओर कृत्तिका से समृद्ध नक्षत्र-माला की भाँति संग लगी रहती थीं:-

"जाइ तुलानी बारीं, चहुं दिसि कीन जो हाइ ।
ससहर तार तराइन, रहा गँगन सब छाइ ।।"[1]

"सखी चाँद बिधि तरई रचीं । औ संग जुरीं जनहु कचपचीं।।"[2]

"जहं लगि सखीं चाँद संग आईं । खीन करीं छिप सबै तराईं।।"[3]

"लेइ पूजा सूरूज के ताईं । चली चाँद संग लयीं तराईं[4]।।

चन्द्रावली के चन्द्रवदन के आलोक में दीप-आलोक एवं मशाल ज्योति छिप जाती थी। रूपवतियों का सुन्दर वर्ण विवर्ण हो जाता था। कृष्णरूप सूर्य की किरणें चन्द्रावली रूप चन्द्रमा के प्रकट होते ही अस्त सी हो जाती थीं। उसके भ्रू रूप धनुष पर लगे हुए नैन बाणों के बिना चलाए ही कृष्ण पर मानों बिजली सी टूट पड़ी थी :-

" चन्द्र बदन अति भा उजियारा । छिपे दीप औ जोति मस्यारा।।
औ सुरूप सबै छपि गईं । सुरंग देखि निरंग जनु भईं ।।
बयन चाँद तरइन्ह भा संगू । देखि जोति हरि भयउ पतंगू ।।
परत दिस्टि सामुहिं धनि हंसी। सोरह करीं चाँद परगसी ।।
हुत जो कीन्ह सूरूज के करीं । जनु भा अस्त चाँद जब हरा ।।
भौंहहिं धनुक नैन सर साँधें । बिनु सर हना बीजु बस बाँधें[5] ।।"

कवि ने चन्द्रावली की टेढ़ी भौंहों और बाँकी तिरछी दृष्टि को इतना गौरवान्वित किया है कि वह कृष्ण को उनके द्वारा बुरी तरह आहत तो बताता ही है साथ ही यह भी भेद खोलता है कि

1- "चन्दायन" : शिवसहाय पाठक, दो0- 109.
2- वही, कड़वक 212.7
3- वही, कड़वक 134.3
4- वही, कड़वक 212.2.
5- वही, कड़वक 213.2-7

कृष्ण ने तिर्यक् दृष्टि और बंकिम भौंहों से ही अपने पूर्व अवतारों की प्रियतमा चन्द्रावली को पहचाना भी :-

"धनुक मोर चन्दावलि लीन्हा ।
सो मैं अब दोउ भौहनि चीन्हा[1]।।"

कृष्ण कहते हैं कि यही दोनों भौहें परशुराम, श्रीराम आदि पूर्वावतारों में मेरे धनुष थे। जिस धनुष से सहस्रबाहु, अर्जुन, रावण आदि का वध किया था वही चन्द्रावली के हाथ लगकर मेरे ही प्राण- हारक बन रहे हैं।[2] राधा से भी चन्द्रावली की बांकी चितवन का प्रभाव छिपा न था। वे चन्द्रावली को फटकार बताती हैं - तुमने ऐसे धनुष बाण से घायल किया कि जो कृष्ण मालती {राधा} को त्याग कर कभी कुंदकली {चन्द्रावली} पर दृष्टि न उठाते थे, वही तुम्हारी बेलि से जा लिपटे। एक तो तुमने धृष्टता की दूसरे मुझे सपत्नी-कष्ट भी दिया। अन्त में तुझे पछताना पड़ेगा -

" जो मधुकर मालति संग अहा । कूँद करीं संग कौबु न रहा ।।
बीच परत कुल मो सेउ काला । सो अब बेलि तुम्हारें हला ।।
आन चोट अस बूँझि न बैनां । तूँ अस धनुहिं बान तहि हनां।।
भईं ढिठाइहि मोर पिउ लीन्हा।अपर पीर मोहि सावति दीन्हा।।
परगट होसि सरग चढ़ि, हउँ निल परिहा कीन्ह ।
के पछिताईं तोपे , वहै अवारें छीन्ह[3] ।।"

<u>मुग्धा</u> -

वह मुग्धा नायिका है उसे यह नहीं पता कि प्रिय क्या होता है। पट्ठे और ही में क्या अन्तर है :-

---

1- "चन्दायन" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 115.2
2- वही,
3- वही, कड़वक 149.4- दो0

"तुं अजान का जानसि पीऊ । जो कस महेउ होइ कस जीऊ।।"[1]

तथापि उसे प्रिय रूप प्याले और प्रीति रूप अग्नि का प्रभाव ज्ञात हो जाता है। रात्रि बैरिन बन जाती है। चन्दनादि अग्निवत् जलते से प्रतीत होते हैं। विरह ताप शान्ति के लिए वह प्रेमपूर्ण कथाओं, गीत, वाद्य की आकांक्षा करती है। इस प्रकार अप्रकट रूप से उस पर प्रेम का जादू सवार हो जाता है। उसके हृदय में कृष्ण के प्रति प्रेम का अंकुर उनके द्वारा चाणूर का वध करने के यश से उत्पन्न होता है, उनके दिव्य काम-रूप का दर्शन करके समृद्ध होता है और परस्पर अभेद निरूपण एवं दर्शन से सफल हो जाता है।

प्रथम मिलन में सखियों द्वारा मनाए जाने पर भी वह अधिक भाव-रस, प्रेम में निमग्न होती हुई भी नहीं- नहीं कहकर संकोच प्रकट करती है :-

" जेत कहहिं सब बाँदहि, गोनहु कुँवरि खेम ।
नाहिं- नाहिं कै सकुचे, अधिक भाव रस पेमा।"[2]

नित्यप्रिया -

चन्द्रावली सोलह सहस्र गोपियों के साथ विधि द्वारा कृष्ण के लिए धरती पर अवतरित की गई थीं :-

" जावंत सोरह सहस गोवारीं । सो सब मोकहं बिधि औतारीं।।"[3]

वह दो सहस्र गोपियों की यूथेश्वरी थीं और उनमें श्रेष्ठ भी। कृष्ण उसे प्यारी गोपिका के रूप में मानते हैं। उसका जन्म कृष्ण-संग के लिए है :-

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 208.3
2- वही, दो0 124
3- वही, कड़वक 118.5

"मान न कर चन्द्रावलि, पुनि न अहौं तहँ जाव ।
जहि संग भा जर मासु, वा सों कौन कहाव[1] ।।"

उससे पृथक रहने पर व्याकुल रहते हैं। स्वाती के एक बिन्दु के लिए चातक की भाँति वे चन्द्रावली के रस के लिए प्यासे रहते हैं :-

" तुम्हरें रस क पियासा, मा चातक दिन- राति ।
जो रस देहु मया कै , तोहि परै सुख - साँति[2]।।"

चन्द्रावली कृष्ण का प्रेम पुष्प- मधुकर जैसा रसासिक्त और अभिन्न है :-

"चन्द्रावलि गोपिला पियारी । सो मोहि कुल कस रहै निरारी।
कहस दोइ अउ तपा नर ए । कहस भोग माने होइ एकै ।।
फूल औ मधुकर, दोउ होइहि एक पास ।
हिलमिल रहहिं आपु महँ, बेधि जाहिं नहिं बास।।
भौंर कन्त हौं तोर, तुँ दीपक बारी अहै ।
होइ फुलवारि अँजोर, केतकि बन बेधहु हिया[3]।।"

धाय अगस्त चन्द्रावली को बताती है कि वह कृष्ण विधि द्वारा उसके पति रूप में निर्मित हुआ है :-

" अहै सो जो तुँ देखहि चहा । अहै पुरुष तो कहँ विधि गढ़ा[4] ।।"

"सोइ पुरुष यह जग महँ, दयीं दीन्ह तुम्ह जोग ।
अब रे कपट का बरनौं, परगट मानहु भोग[5] ।।"

राधा की भाँति वह भी कृष्ण के लिए दो शरीरों में एक प्राण जैसी नित्य है :-

" हम तुम्ह एकै दूसर नाहीं ।
जैसें पिण्ड एक दोइ माहीं[6]।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक दो0-123.
2- वही, दो0- 119.
3- वही, 118.6 से सोरठा तक
4- वही, 119.6
5- वही, दो0- 121.
6- वही, कड़वक 118.4

उनके नित्य संयोग को कई स्थानों पर विधि द्वारा रचित बताया गया है :-

"दयी दीन्ह मोहि कन्त संजोगा ।
भोगहि भोग मिला रस भोगा[1] ।।"

"कस राही मोहि लावे जोरी । दई दीन्ह मैं पाई जोरी[2] ।।"

उनका संयोग ही संसार में सूर्य-चन्द्र-योग प्रसिद्ध हुआ जिससे सारा जग आलोकित हो उठा -

" भा अंजोर जग सबके भानू । चांद सुरुज दोइ भए बखानू[3] ।।"

पत्नी -

चन्द्रावली का कृष्ण के साथ ग्रन्थिबन्धनपूर्वक भांवर देकर पाणि-ग्रहण हुआ था। इसमें केवल दो सहस्र सखियां ही साक्षी थीं :-

" सखी सहस दोइ गोहन भईं । केलि करत मड़- मण्डप गईं[4] ।।"

चन्द्रावली को जैसा सुहाग और भोगानन्द मिला वैसे ही उसकी समस्त सखियों को भी प्राप्त हुआ :-

" जस चन्द्रावलि सों भा भोगू । मिला सबहिं सों भोगहिं भोगू ।।
चौंसठ आसन रावन रईं । औ सब गोपीं सोरति भईं ।।
सबहीं भोग भगति रहि मानी। छेंवा पूजी आस तुलानी[5] ।।"

सभी गोपियों के सहित वह फल- वाटिका की भांति सुशोभित हुई जिसमें कृष्ण सुआ- सदृश फल चाखनहार बने :-

"बैठि सुआ होइ बारीं, सब अंब्रित फर खाहु ।
जो रंग मोहु-तोहु आगर, सो रंग और न काहु[6] ।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 150.7
2- वही, कड़वक 162.2
3- वही, कड़वक 134.7
4- वही, कड़वक 146.6
5- वही, कड़वक 134.4~~और 136.1~~
6- वही, दो0- 145.

कृष्ण के लिए राधा और उसकी सखियाँ पुष्पवाटिका-के सदृश थीं और कृष्ण स्वयं उनके सुधा- मकरंद के आस्वादक मधुकर बनें ।

सती -

चन्द्रावली को पुराणों एवं शास्त्रों का ज्ञान था। पण्डितों ने भी उसे बताया था कि दशावतारी कृष्ण उसके पति होंगे जो मथुरा में राजा बनेंगे। वे सूर्य से भी अधिक निर्मल, कामभूर्ति तथा चतुर्भुज कलाधारी होंगे। वे अद्वितीय होंगे, सभी गोपियाँ मिलकर उनकी पूजा करेंगी। उनकी ज्योति में समस्त आलोक छिप जाएंगे और उनके रूप के समक्ष समस्त रूप लजा जाएंगे। धाय अगस्त जब उपर्युक्त धारणा के विपरीत तपस्वी रूप कृष्ण को उसका पति बतलाती हैं तो वह उसे फटकार देती है। धाय अगस्त पुन: श्रीकृष्ण को प्रतीति कराती है तथा श्रीकृष्ण भी अपना परिपूर्ण परिचय देते हैं किन्तु वह श्रीकृष्ण के अष्टायुधयुक्त चतुर्भुज रूप प्रत्यक्ष किए बिना विश्वास नहीं करतीं :-

" जौं लहि नैन न देखौं, हिये न होइ पतियार ।
बेगिदिखावहु कान्हौं, धौं कस रूप तुम्हार [1] ।।"

श्रीकृष्ण द्वारा बलात् अंचल पकड़ लेने पर वह क्रोधित हो उठती है। वह दारुण कंस के यहाँ शिकायत करने की भी धमकी दे डालती हैं[2]। उसे यह भय रहता है कि कहीं परपुरुष का संग न मिल जाय अन्यथा वास्तविक पति से भेंट होने पर क्या उत्तर देंगी?

" अस पिउ छाड़ि जो आपुन, अनते कौन करेउँ[3] ।
दरसन होइ ताहि सौं,काह उतर हौं देउँ ।।"

कृष्ण के वियोग में वह राहुगृहीत चन्द्रमा की भांति संतप्त होती हैं :-

---

1- "चन्द्रावत" : शिवसहाय पाठक, दो0- 128.
2- वही, दो0- 126.
3- वही, दो0- 120.

" चन्द्रावलि तपत जो अहै । सो तोहि बाजि गहन अस गहै[1] ।।"

यहाँ कवि ने राधा की अपेक्षा उसका संताप न्यून बताया है क्योंकि राधा के वियोग-ताप से आकाश सूर्य भी छिपते प्रतीत होते हैं।[2] परीक्षा के अवसर पर वह खरी सती नारी प्रमाणित होती है। दुर्वासा को अन्न खिलाने के लिए कृष्ण की आज्ञा पालन हेतु यमुना-जल में डूब जाने से भी नहीं हिचकिचाती -

" कामिनि औ चन्द्रावलि कहा । मकु ऐसहि कहुँ होईं अहा ।।
जेकरें काज न पारै जीऊ । का बिसाइ जो मारै पीऊ।।
चलहु बेगि जउना के पारा । होई सो जो लिखा करतारा।।
जो पिय आयसु मेटत, बनि अपरूब कह भाग ।
मुएँ पार लौ जानहु, सबै मुएँ मोहि लाग[3] ।।"

उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त जायसी ने चन्द्रावली में नारीगत स्वाभाविक दुर्बलताओं का भी वर्णन किया है।

ईर्ष्या नारी की सबसे बड़ी दुर्बलता है। सपत्नी- कलह तो लोक और साहित्य दोनों में प्रसिद्ध है। राधा- चन्द्रावली के मध्य विवाद और हाथापाई का वर्णन करके कवि ने नारी की इन्हीं स्वाभाविक दुर्बलताओं को ही प्रकाशित किया है। "पद्मावत" में भी पद्मावती- नागमती- विवाद इसी प्रकार परस्पर दोषारोपण के द्वारा उनके स्वाभाविक दुर्गुणों को अभिव्यक्त ही करता है।

चन्द्रावली बड़ी धृष्ट प्रतीत होती है। उसका आचरण प्राकृत नारियों जैसा है। वह कृष्ण से भोग-सुख प्राप्त करके राधा को चिढ़ाने के लिए सपत्नी-कष्ट देकर भी बरबस उन पर तीखे व्यंग्य करती है।[4]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 328.6
2- वही,
3- वही, कड़वक 336.5- दो0
4- वही, कड़वक 148.7- दो0

जबकि राधा, कृष्ण की प्रधान महिषी है और आठों यूथेश्वरियों में भी मूर्धन्य है। चन्द्रावली तो चेरी-सदृश है :-

" सखिन्ह कहा चन्द्रावलि रानी । हँसि गोवार पै चेरि सयानी।।"[1]

" तूं रे चेरि बर जोगत नाहीं । काह कहौं जोगहि हरि नाहीं।।"[2]

" एक मोहि कान होइ हरि केरो। न तु अस नाह मुहौ हौं चेरी।।"[3]

परपुरुष को देखकर हँसी- ठट्ठा करना उसका स्वभाव है। राधा उससे कहती है कि तुम कृष्ण के योग्य कहाँ? वे कृष्ण पर खीझती हैं - क्या करूँ, उन्होंने तेरा स्पर्श कर लिया अन्यथा तेरी क्या मजाल कि मुझसे बराबरी करती :-

"कहहिं कहा उन्ह जेन तूं परसी । न तूं कत मो सेउं सरि करसी।।
हँसि देखहि पर पुरुखहिं, चलति कुभावसि सान
निलज दार जस आपुन, तस औरहु पुनि जान[4]।।"

तू तो पर पुरुष के संग की ही लज्जा में प्रतिदिन घटती जाती है। और एक दिन उसी लज्जा में डूब मरती हो। इसी को लोग अमावस कहने लगते हैं :-

" तूं बहु दहे पखहु दिन पूरी । पुनि नित घटसि दई बिस जूरी।।
दिन-दिन घटे होसि कर हीनी। पान चबाइ औ बदन मलीनी ।।
घटहि घटत जासि तूं, बूडि मरसि तहिं लाज ।
सब जग कहै अमावस , देखि तोर अस काज[5] ।।"

1- "चन्दायन" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 123.1
2- वही, कड़वक 151.6
3- वही, कड़वक 157.7
4- वही, कड़वक 151.7 दो०
5- वही, कड़वक 155.6-7 दो०

चन्द्रावली बड़ी हठी भी है। राधा के साथ विवाद के पश्चात् कृष्ण द्वारा समझाने पर भी वह हठ और बल-प्रयोग पर गर्वित रहती है :-

" के हठ ओकर के हठ मोरी । एहि रे गरब मैं अब लौं जोरी ।।
एहि सयँसार अहल को गोरी। मोहू चाहि अधिक बड़जोरी ।।
काह कोइ पारे मोर सौंरी । बरियाई मैं लीन्ह अजोरी ।।
अहसैं रहतेउँ मन लग मोरी । आपु मैं प्रीति दोनि के जोरी।।
करौं आज सबै जस, हतौं जौन {?} खोट ।
काह करौं तोहर हौं, भएउँ बरस दोइ छोट।।"[1]

उसमैं ईर्ष्या का भी अवगुण है। महेन्द्र की पूजा के पश्चात् वह उनसे यही वरदान माँगती है कि :-

"के पूजा चन्द्रावलि, बिनवे पिरे बुलास ।
कन्ह रवहिं नित मोपहिं,जाहिं न राधी बास।।"[2]

चन्द्रावली का कृष्ण के प्रति आकर्षण, प्रेमांकुर बल के अपार समुद्र चाणूर के बध करने के यश से उत्पन्न होता है। इस प्रकार वह शक्तिमान का वरण करती है। नारी शक्ति है और कृष्ण शक्तिमान। दोनों के परस्पर मिलन मैं दौत्यकर्म धाइ अगस्त का है। कृष्ण चन्द्रावली की प्राप्ति को स्वर्ग की प्राप्ति निरूपित करते हैं और वहाँ तक पहुँचाने मैं धाय अगस्त को गुरु मानते हैं। इस प्रकार बाह्य दृष्टि से जायसी का यह ताना- बाना साधनापरक ज्ञात होता है किन्तु वास्तविकता इससे दूर है। यह तो एक भोगी और लम्पट की दूती के प्रति चाटुकारिता जैसी है जो प्राकृतजनों मैं प्राय: देखा जाता है। चन्द्रावली न तो पद्मावती जैसी साध्य है और न कृष्ण रत्नसेन जैसा साधक। साध्य पर-मात्मा तक पहुँचने मैं साधना के विभिन्न सोपानों का यहाँ स्वरूप

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 162, 4-7 दो०
2- वही, दो०- 146.

अस्पष्ट है। जगत के साध्य परमात्मा कृष्ण को साधक बनाने में भी यह विपरीत धारणा सिद्ध होती। हाँ, चन्द्रावली की प्रेमाभक्ति अवश्य कही जायगी। यहाँ यह भी अवधेय है कि प्रेमी साधकों में परस्पर राग- द्वेष नहीं होता। चन्द्रावली का राधा के प्रति द्वेष उसे उच्छृंखल सिद्ध करता है। भागवत्- प्रेम इसे नहीं अपना सकता।

सौन्दर्याभिमानिनी -

जायसी ने "पद्मावत" में पद्मावती के सौन्दर्य में ईश्वर का सौन्दर्य देखा है और परमात्मा की प्राप्ति सम्बन्धी सूफी साधना का चित्रण करते हुए रत्नसेन को उस परमात्मा रूप पद्मावती से मिलन के लिए कठिन साधना करते दिखाया है। "कन्हावत" में यह साधना कृष्ण द्वारा चन्द्रावली के दर्शन और उससे मिलन के लिए चित्रित की गई है किन्तु यहाँ कई असमानताएँ दृष्टिगत होती हैं। "पद्मावत" में साधक जीव रत्नसेन और साध्य पद्मावती रूप परमात्मा है जबकि "कन्हावत" में स्वयं कृष्ण परमात्मा हैं और चन्द्रावली जीव है। पुनः यहाँ साधना के उन सोपानों का सर्वथा अभाव है जो पद्मावत में प्रदर्शित हैं। यद्यपि पद्मावत का गुरु सुआ और "कन्हावत" की गुरु धाय अगस्त साधकों की प्राप्ति का साधन निर्दिष्ट करते हैं किन्तु "कन्हावत" की चन्द्रावली श्रीकृष्ण रूप परमात्मा की नित्यप्रिया है। यह वह स्वयं जानती है और ज्योतिषियों से भी उसे ज्ञात हो जाता है। इसीलिए वह कृष्ण की परीक्षा और सही पहिचान होते ही आत्मसमर्पण कर देती है। "पद्मावत" में ऐसा कुछ भी नहीं है।

धाय अगस्त चन्द्रावली को श्रीकृष्ण का परिचय देती हुई कहती है कि "तुम्ह मित चाँद सुरुज तप साधा।"[1] " हे चन्द्रे! यह तुम्हारे लिए तप साधने वाला सूर्य है।" वह यह भी बताती है कि तुम भी

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक ।।9।3

इन्हीं के निमित्त वैरागिनी बनी तप करती रहती रहती हो। लेकिन यह संयोग "विधि-गढ़ा" है, अतः साधना का महत्व नहीं वरन् पूर्व प्रेमी की पहिचान मात्र है।

चन्द्रावली में ईर्ष्या, क्रोध आदि दुर्गुणों के साथ अपने रूप का अभिमान भी बहुत है। इसके विपरीत राधा को अपने शील पर गर्व था। चन्द्रावली श्रीकृष्ण के बैरागी रूप को देखकर कहती हैं कि इसे मारना बड़े दुःख की बात है। न दुःख कह सकती हूँ और न यह प्रकट ही होता है। जो भी नेत्रों से देखता है वही मर जाता है। नेत्र भर कर काजल इसलिए नहीं लगाती कि संसार के लोग मुझ पर मरने लगेंगे, इस हत्या का अपराध कौन ले? कहाँ तो बैरागी के दर्शन के लिए आई थी और कहाँ खड़ी होने पर मुझे हत्या लगेगी। हे सखियों! इसे सम्हालो क्यों मारा जाए। यह तपस्वी प्रेम का मारा है, मर जाएगा। देखो! दोष न लगने पावे। शीघ्र चलो, इस मरते हुए को जीवित करें -

" देखत चाँद सुरूज तस सोहा । भूले बँसिकार सुर मोहा ।।
देखि भेस चन्द्रावलि कहा । भा दुख सोच जो मारउँ अहा ।।
कहि दुख सकौं न परगट होई। नैन जो देखि जाइ मरि सोई ।।
चख चख सकौं न काजर देई । जगत मरे हत्या को लेई ।।
कत आयउँ देखे बैरागी । ठाढ़ तभौं जो हत्या लागी ।।
सखी समारहि का कर मारा। मरै तपाउ पेम कर मारा ।।
देखि दो खन चढ़े न आई । चलहि बेगि सो मरत जियाई ।।"[1]

राधा से विवाद के समय भी चन्द्रावली कहती है कि जिसमें गुण होता है वही उच्च स्थान प्राप्त करता है। धरती, स्वर्ग, आकाश,

---

1- "चन्दायन" : शिवसहाय पाठक, कड़वक ।।4०।-7

सर्वत्र उसे सम्मान प्राप्त होता है। मैं उच्च कुल की हूँ अथवा गुणों में उच्च हूँ इसलिए मुझे उच्च सम्मान मिला है। विधाता ने मुझे निर्मल चन्द्रमा के रूप में निर्मित किया है। मैं सदा स्वर्ग में विहार करती हूँ। पग में धूल तक नहीं लगती। जब द्वितीया के रूप में उदित होती हूँ तो सज्जनों के लिए दर्शनीय बन जाती हूँ। सम्पूर्ण जगत हाथ जोड़कर जय जयकार करता है। चतुर्दशी तिथि पर जब सम्पूर्ण होती हूँ तो सर्वत्र उजाला ही उजाला फैल जाता है।[1]

इतना ही नहीं श्रीकृष्ण द्वारा ठुकराए जाने पर भी उसका क्रोध, गर्व और हठ शान्त नहीं होता। अपने सौन्दर्य को वह हठात् प्राप्त करने वाली बताती है। वह यह भी कहती है कि श्रीकृष्ण के साथ संयोग उसे विधाता द्वारा प्राप्त हुआ है। गोप्य प्रेम को प्रकट करने की वह प्रतिज्ञा करती है। वह यह भी कहती है कि या तो राधा का हठ रहेगा या मेरा। यह गर्व भी मैंने अब जोड़ लिया है। इस संसार में कौन ऐसी गोरी है जो मुझसे अधिक सुन्दर है।

कवियों ने कामिनियों के नेत्र- शर से आहत करने के गुणों का बहुत वर्णन किया है। यहाँ तक कि देवताओं, ऋषियों, मुनियों पर भी इसके प्रभाव का उल्लेख मिलता है। जायसी भी चन्द्रावली के नेत्र-बाण का प्रभाव उसी के मुख से कहलवाते हैं। कज्जलरहित उसके नेत्रों ने श्रीकृष्ण को आहत ही कर दिया था। फिर कज्जल-सहित नेत्र का क्या कहना। उसे इस बात का कष्ट होता है कि वह नेत्रों में भरपूर काजल नहीं लगा पाती। कारण यह कि उसे भय रहता है कि उसके भरपूर कजरारे नेत्र जगत का प्राण हर लैं।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 156,3- दो०

फारसी साहित्य में नेत्रों का इस प्रकार का चित्रण मिलता है। श्रीमद्भागवत में भी गोपियों ने श्रीकृष्ण के नेत्रों को प्राण हरने वाला अस्त्र कहा है -

" शरदुदाशये साधुजातसत् -
सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका,
वरद निघ्नतो नेह किं वधः ।।"[1]

कंस -

"कन्हावत" में कंस प्रतिनायक के रूप में चित्रित है। काव्य-नाट्य आदि में प्रतिपक्षी नायक के चरित्र- चित्रण के माध्यम से ही नायक के उत्तम और समुज्ज्वल चरित्र का विकास दर्शाया जाता है। नायक की प्रतिस्पर्धा में जितना अधिक प्रतिनायक के अनवस्थितचित्त, रौद्र प्रकृति, मदोन्मत्त, दम्भबहुल किंवा आत्मश्लाघी आदि धीरोद्धत स्वभाव का चित्रण होगा उतना ही नायक का चरित्र अवदात होगा। रावण के विपुल प्रताप, दिव्य ऐश्वर्य के साथ काम, क्रोध, लोभादि निकृष्ट अवगुणों का चित्रण के कारण ही श्रीराम के दिव्य गुणों का निखार हो सका है। इसी प्रकार युधिष्ठिर में शठ दुर्योधन की प्रतिस्पर्धा के चित्रण से न्यायप्रियता प्रकाशित हो सकी है।

आचार्य विश्वनाथ 'साहित्यदर्पण' में प्रतिनायक के स्वभाव में धीरोद्धत, पापकारी और व्यसनी होने का ही उल्लेख करके उपर्युक्त अनेक दुर्गुणों का इन्हीं में अन्तर्भाव कर देते हैं। वे राम- रावण का नायक- प्रतिनायक के रूप में उदाहरण प्रस्तुत करते हैं -

---

1- श्रीमद्भागवत, स्कन्ध- 10, अ0-31, श्लोक- 2.

श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण, हरिवंशपुराण, महाभारत आदि में कंस को घोर पापी, अत्याचारी, दम्भी रूप में चित्रित किया गया है। उसी के घोर अत्याचारों से त्रस्त-पीड़ित पृथ्वी की गुहार के परिणाम-स्वरूप विष्णु को उसका भार उतारने, अनीति का विनाश करने और सम्पूर्ण लोक का मंगल करने के लिए पृथ्वी पर कृष्ण रूप में अवतार लेना पड़ा था।

ऐश्वर्यवान तथा प्रतापी -

कंस अपने पिता उग्रसेन को बन्दी बनाकर स्वयं मथुरा का राजा बन गया था। उसका प्रताप और ऐश्वर्य इन्द्र आदि देवताओं से भी अधिक बढ़ा- चढ़ा था। वासुकि, इन्द्र, सुर- नर- मुनि, गन्धर्व सभी उसके अधीन होकर आज्ञापालक बन गए थे। नित्य उसे प्रणाम करते थे। सातों द्वीपों तथा नवों खण्डों समेत सम्पूर्ण संसार में उसी का आदेश चलता था। रावण की लंका की भाँति उसका भी एकछत्र राज्य स्थापित हो गया था। समस्त दानव- राक्षस और देवता उसकी सेवा में तत्पर रहते थे। सर्पराज वासुकि और इन्द्र सदा शंकाकुल रहते थे। ऐसा था कंस का मथुरा राज्य, महान प्रताप और विपुल ऐश्वर्य[1]।

उसके प्रताप और ऐश्वर्य के समक्ष लंका का राजा रावण भी तुच्छ था। अग्नि, पवन, क्रमशः भोजन बनाते, धोती पखारते और पंखा झलते तथा झाड़ू- बहारू करते थे। यहाँ तक कि ब्रह्मा, विष्णु[2], महेश, इन्द्र, बलि, वासुकि उसके क्रोधित होने पर मनाने आते थे।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, पृष्ठ 16.

2- वही, पृष्ठ 17.

जायसी ने उसके अत्यन्त तुंग दुर्ग, सरोवर, वाटिका और राज-द्वार आदि का जो वर्णन प्रस्तुत किया है वह उत्कृष्ट कोटि का और दिव्य- सा है। इन विपुल सम्पदाओं, दिव्य ऐश्वर्य और दुर्धर्ष प्रताप के कारण वह अत्यन्त अहंकारी और दम्भी किं वा आत्मश्लाघी हो गया था। उसका गर्व इतना पराकाष्ठा पर था कि वह तीनों लोकों, चौदह भुवनों, सप्तद्वीपों तथा नवधरा-खण्डों में किसी को अपने समान बली, ऐश्वर्यवान और प्रतापी नहीं समझता था। उसने मृत्यु को भी जीतने की कुचेष्टा की। उसने यमराज को तीनों लोकों में खोज कराई कि उसे मार डालें किन्तु उसे पा न सका।

वह स्वयं तो दुरभिमानी और पापी था ही, उसके परामर्श-दाता भी दुराचारी, अविवेकी और असत् परामर्शदाता थे। दैत्य गुरु शुक्राचार्य और ब्रह्मा-पुत्र नारद जिन्हें यमदूत कहा गया है, उसके मंत्री थे। शुक्र मंत्री और अगुवा थे। नारद सदा उसका कान भरा करते थे।[1] शनि भी जो पापी देवता समझे जाते हैं कंस के अनुकर्ता थे।[2] शुक्र की दुष्टता के विषय में कृष्ण के वचन हैं :-

" शुक्र कैर मैं फोरी आँखी । अबै जो दोष सो पक कै राखी ।।
सो मंत्री बड़ भा ओहि आगैं। खोटै कहे रात- दिन लागै ।।
सँवरउ आदि सोइ प्रिय करई। जहिं माना वहहिं ना परई[3] ।।"

अभिमानी :- कंस के चरित्र में जो विशेषता सर्वोपरि स्थापित हुई है वह है उसका गर्व। कवि ने काव्य के प्रारम्भ में इसीलिए गर्व न करने सम्बन्धी नीति को तीन पंक्तियों में व्यक्त कर दिया है :-

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 16.4
2- वही, कड़वक 31.2
3- वही, कड़वक 175.3-5

"झूठा गरब कीन्ह जिन. तिहि खव, सुन संसार[1] ।
ही हउं कह पछताए , जबरे परे मुह छार ।।"

"हे संसार के प्राणियों! सुनो । जिस किसी ने मिथ्या गर्व किया, वह नष्ट हो गया। जब मुख में राख पड़ी, मरने लगा तो अपने अहं पर पश्चात्ताप ही किया"/कंस के सम्पूर्ण चरित में गर्व करना और पुनः पछताना ही पूर्णतः चरितार्थ हुआ है। विपक्ष में कृष्ण का सर्वव्यापक प्रेम उजागर हुआ है। कंस को अपने बल, सैन्य, प्रताप, ऐश्वर्य, राज्य पर इतना गर्व था कि वह मृत्यु को खाट की पाटी में बाँधने वाले लंका के राजा रावण के ऐश्वर्य का उपहास[2] करता था। गर्व किसी अन्य को नहीं, केवल उसी को शोभा देता था।

मिथ्या संसार को कंस ने सत्य मान लिया था और अटल मृत्यु को असत्य। काल को, जिसने पूर्ण समय पर दशावतारी कृष्ण को भी अपने गाल में समा लिया, कंस अभिमान और अज्ञान के कारण बाँध लेना चाहता था। उसने समस्त संसार को अपने चरणों में झुका दिया, दानवों, राक्षसों, मनुष्यों, मुनियों, गन्धर्वों, देवताओं तक को पराभूत करके वशवर्ती बना लिया किन्तु सर्वत्र खोजने पर भी यम रूप शत्रु को नहीं देखा, अपराजेय हो गया :-

" भा आयसु मैं सब जग नावा । पै जम खोजि न कतहूं पावा[3]।।"

"सुर नर मुनि गुनि गंधरब, सबै कीन्ह वह साथ ।
कीन्हें रहै रजायसु, नित उठि नावहिं माथ[4] ।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, दो0- 1.
2- वही, कड़क 33, 6- 7
3- वही, कड़क 33.2
4- वही, दो0- 16.

शुक्र मृत्यु की अनिवार्यता बताते हुए प्रबोध देते हैं कि मृत्यु तो देखो, तेरे कंधे पर चढ़ी- बैठी है, सर्वोपरि है। उसके बाँधने से क्या लाभ। रावण ने तप करके मृत्यु को बाँध लिया था। फिर भी जब काल पूरा हो गया तो वह भी उससे न बच सका -

" देखु मीचु [चढ़ी] है काँधें । पै कछु होइ न तेकरे बाँधे ।
रावन मीचु बाँधि तप भूजा। सो न रहा काल जब पूजा।।[1]"

शत्रु के ऊपर क्रोध और दर्प की कंसोक्ति भी द्रष्टव्य है :-

" तिरलोक अस आहि न कोई । जा कहि चढ़ौं जाइ बरे सोई।।
ओर बरे अस कोई, मों सों करै बिरोध ।
कहु सो बेगि मोहि नारद, टारौं जेहिक नरमोध।।[2]"

कंस के दर्प और अज्ञान की पराकाष्ठा का इससे स्पष्ट पता चलता है कि उसने विधि के विधान को भी नहीं माना। नारद ने जब उसे बताया कि विष्णु उसकी बहिन देवकी के गर्भ से कृष्ण रूप में अवतार लेकर उसका वध करेंगे तो कंस अवतार पर ही शंका करने लगा और पुनः भवितव्यता को मिटाने के लिए देवकी से उत्पन्न सभी सन्तानों को वज्रशिला पर पटक कर मार डालने लगा। इस झूठे गर्व और अभिमानपूर्ण आचरणों से रूष्ट होकर परमेश्वर ने विष्णु को उत्पन्न करके कंस- वध का आदेश दिया :-

" [कंस] जो गरब कीन्ह मन झूठा । उपनी रिस परमेसुर रूठा।।
दई बेगि बिष्नु उपराजा । भा आयसु मथुरा भो राजा।।[3]"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 34.2-3
2- वही, कड़वक 35.7- दो0
3- वही, कड़वक 42.1-2

कृष्ण के दशावतार, उनका जन्म-प्रयोजन, कार्य और ईश्वरत्व बताए जाने पर भी कंस का अभिमान कम नहीं होता। वह कृष्ण को परम शत्रु मानकर उनकी हत्या का विविध असफल प्रयास भी करता है किन्तु दुष्प्रयास से विरत नहीं होता। उन्हें मारना उसका गर्व है और मारने वाला परम प्रिय मित्र :-

" आव सत्रु सत चांपे, धरि- धरि करे न कोइ ।
जो एहि गर्व उतारे, मीत पियारा सोइ[1] ।।"

कंस का (कृष्ण) विष्णु से युद्ध सुनकर देवताओं, ऋषियों, मुनियों, यक्ष- नागादि सब में खलबली मच गई। सबके सब इस अनरीति से आश्चर्य- चकित होकर देखने चले आए।[2] किन्तु कंस को तो अपने चाणूर,कुवलयापीड हाथी, रक्ष- बक दैत्यों, मुष्टिक, जरासन्ध आदि मल्लों पर गर्व था। चाणूर बल का अपार समुद्र था, पृथ्वी पर उसके एक बिन्दु रक्त गिरने पर उसी के समान दूसरा चाणूर उत्पन्न हो जाता था।[3] कंस को उस पर इतना गर्व था कि वह उसी के द्वारा कृष्ण के वध की महती आशा बांधे था -

"हमरें है चानूरउ अपारा । तेहिं रे कन्ह कर करब संघारा[4]।।"

कुवलयापीड भी अत्यन्त बलवान सिंहली हाथी था जो सोलह सहस्र हस्ति- बल धारण करता था -

" अति बरिवंड हस्ति सिंघली । सोरह सहस हस्ति हुत बली[5] ।।"

चाणूर की गर्वोक्ति से तो सारे संसार में बवण्डर उठ खड़ा हुआ :-

"मैं चानूर गरब देई बोला । आव्रत उठा जगत सब डोला[6]।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, दो- 28।
2- वही, कड़वक 186.
3- वही, कड़वक 196.4-दो0
4- वही, कड़वक 282.5
5- वही, कड़वक 297.2
6- वही, कड़वक 200.1

कृष्ण का पूरा पराक्रम कंस के गर्व का नाश ही करना है -

"आजु चानूरउ कर खो करउँ ।
आजु दैत दानव संघरउँ ।।"[1]

चाणूर- वध होते ही कंस भयभीत अवश्य होता है किन्तु उसके गर्व में कमी नहीं आती -

"डरपा कंस देखि हरि कोहू । मारि चानूरहि मारहि मोहू।।"[2]

कृष्ण कुब्जा से कंस के पास संदेश भेजते है कि बन्दियों को मुक्त कर दो, अन्यथा मैं तुम्हारा नाश करने आ गया हूं। मल्लों पर गर्व न करो, नहीं तो पीछे पछताओगे। किसी को गर्व शोभा नहीं देता। ऐसा झूठा गर्व करने से परमेश्वर के रुष्ट होने पर वह अर्द्ध में नष्ट हो जाता है -

" जो रे जासि जहँ कंस नरेसू । कहसि मोर पुनि एक संदेसू ।।
औ जस खत रावन कर कीन्हों। लेइ सब राज बिभीखन दीन्हों ।।
तस खत करब तोर मैं आपु । तोरे पिलहिं देब मैं राजू ।।
गरब करसि जनि मालहिं काछौं। समुझि हियैं पछितासि न पाछैं ।।
काहू गरब न छाजा, हियैं गरब अस झूठ ।
हौं- हौं कह से हिराना, परमेसुर जो रूठ ।।"[3]

इस दोहे की पंक्तियाँ काव्य में प्रयुक्त सर्वप्रथम दोहे की पंक्तियों से पूर्ण साम्य रखती है। इससे स्पष्ट है कि कंस के चरित्र में गर्व का प्रमुखतः चित्रण करना और संसार की असारता तथा प्रेम की सारता सिद्ध करना कवि का प्रमुख ध्येय रहा है। कृष्ण में यदि प्रेम की उत्कृष्टता व्यापन करना अभीष्ट था तो प्रतिनायक कंस में गर्व की महानता दिखाना भी कवि को अभिप्रेत था। गर्व से विनाशकारिता दिखाकर प्रेम से मानवता की सर्वोच्चता सिद्ध की गई है। विष्णु के अन्य अवतारों में जहाँ पाप पर पुण्य की विजय प्रदर्शित है वहीं

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 197.4
2- वही, कड़वक 203.5
3- वही, कड़वक 131.

"कन्हावत" में गर्व रूप संसार की असारता पर प्रेम रूप अमर तत्व की विजय स्थापित है।

जिन सोलह सहस्र गोपियों को कृष्ण ने प्रेम से वशीभूत कर लिया था, कंस उन्हें बलपूर्वक अधिकृत करना चाहता था। उसका यह अविवेक भी गर्व-प्रसूत था क्योंकि जरा- मरण-हीन समझने वाले और अपने को ही कर्ता- धर्ता मान बैठे रावण, हिरण्यकशिपु आदि प्रचण्ड पापियों ने भी पशुता, शारीरिक बल पर सर्वाधिक विश्वास किया था, दया, माया, ममता, प्रेम- स्नेह आदि सात्विक गुणों को तिलान्जलि दे दी थी, तामस गुणों का वरण किया था। कंस को ऐसे ही पापाचरण सुहाते भी थे जो उसके अभिमान को अधिक ऊँचा कर सके। अपने ही राज्य में गोपियों से कृष्ण का प्रेम- सम्बन्ध सुनकर वह हतप्रभ हो उठा। शुक्र और नारद समाधान प्रस्तुत करने हेतु बुलवाए गए। उन्होंने परामर्श दिया कि शीघ्र दो दिनों के भीतर लग्न निश्चित करके सोलह हजार गोपियों से विवाह रचा लो, अन्यथा नाश हो जायगा, गर्व मत करो।

"जो रे बियाहि पावसि, सदाकुसल औ राप ।
न तु हो होइ चहत है, राजा गरब न गाज।।"[1]

स्पष्ट ही उसके मंत्री भी उसके गर्व से परिचित थे। पूतना, काल-करट, चाणूर आदि की मृत्यु को होनी बताकर वे अनहोनी के लिए उसे प्रेरित करते हैं। कंस भविष्यवाणियों, भवितव्यताओं को गर्व के मद के कारण असत् समझता था । कृष्ण कंस के पिता को राज्य देकर गर्व न करने का ही उपदेश देते हैं :-

" अब मैं राज दीन्हि तोहि आजु । गरब करसि जिन भुंजत राजु[2] ।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, दो0- 163

2- "कन्हावत" : कड़वक 303.3

कपटी :-

कंस कपटी भी है। वह शुक्र और नारद के कहने पर दीवाली के अवसर पर खेलने पहुँचे नन्द के साथ कृष्ण को बड़े- बड़े मल्लों के साथ एकोझा युद्ध में मरवा डालने का षड्यंत्र रचता है।[1] मित्र अक्रूर उसे ऐसा न करने की विनती करते है पर वह एक नहीं मानता। अक्रूर इस भेद को कृष्ण से बता देते हैं और सतर्क कर देते हैं -

" बिनती कीन्ह बहुत हम लागें । चले न कछु एकउ ओहि आगें ।।
तुम्ह कहँ कौल-कपट कन होई । जो के सकहु करहु अब सोई[2] ।।"

बालक कृष्ण के साथ बल के अपार समुद्र चाणूर आदि को लड़ाना भी कपट- व्यवहार प्रदर्शित करता है। नन्द इस अनरीति का प्रभावहीन प्रतिरोध भी करते हैं :-

" नन्द क मुख तो गयउ सुराई । बालक कन्ह गँवाएउँ [आई] ।।
का जानै बालक तम आदो । ता सेउँ कहे दोष जो [बादी][3] ।।"

पाताल से सहस्त्रदल (कमल) मँगाने में भी कंस का कपट काम आता है। इसी प्रकार उसके कपट के अन्य अनेक उदाहरण भी "कन्हावत" में है ।

भीरु :-

वह शत्रु के भय से व्याकुल होने के कारण अविवेकवश अपनी बहिन देवकी के आठ पुत्रों के मारने के बाद नवजात पुत्री को भी नहीं छोड़ता। देवकी द्वारा विनती किए जाने पर भी वह पुत्री के दोनों पैरों को पकड़कर वज्रशिला पर पटक देता है -

" देउ हैं आन तोहि सिर नावा । पाटों कंस आन दोष पावा[4] ।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 282
2- वही, कड़वक 288.4-5
3- वही, कड़वक 187.4-5
4- वही, कड़वक 54.7

दया, करुणा, ममता उसके हृदय में छू तक नहीं गई थी। जिनके बल पर उसे गर्व था तथा उसका राज्य एवं ऐश्वर्य समृद्ध था उन चाणूर, कुवलयापीड, मुष्टिक, जरासन्ध आदि अपरिमित बलशाली योद्धाओं के वध पर उसे पश्चात्ताप तक नहीं होता।

केवल एक बार उसे महापाप से डर देवकी के वध का विचार त्यागने का वर्णन मैं है। देवकी का जीवित रहना ही, कृष्ण के जन्म, कंस के अत्याचार, कृष्ण का गोपी- प्रेम और अन्त में कंस- वध की घटनाओं का सम्पूर्ण वृत्त निर्भर है। रामावतार में भी रावण- वध कैकेयी द्वारा माँगे गए वरदानों के कारण सम्भव हुआ था।

कंस को कृष्ण का भय इतना अधिक आतंकित किए था कि उसे रात- दिन चैन नहीं पड़ता था। सोते- जागते कृष्ण का भय उसे सदा सताता रहता था। फलतः उसने एक रात्रि स्वप्न में कृष्ण का काल रूप देखा। उसके मुख से वचन न निकल सका, नींद खो गई, तन निष्प्राण सा हो गया। अत्याधिक प्रयास करने पर भी उसके चित्त की व्याकुलता दूर न हो सकी। "चाणूर- वध के पश्चात् भी कृष्ण का क्रोध रूप देख कर उसे अपनी प्राण विपत्ति की आशंका हो गई। तुरन्त उसने नन्द को युद्ध बन्द करने का आग्रह किया और कृष्ण को कनक- रथ तथा परिधान पारितोषिक में देकर गढ़ पर भाग खड़ा हुआ।"[1] जरासन्ध के मारे जाने पर वह इतना डर गया था कि मानो प्राण छूट गए हों, आकाश से उस पर बिजली टूट पड़ी हो। युद्ध में उसकी वीरता, शौर्य पराक्रम आदि का कहीं वर्णन नहीं आया है। कृष्ण- जन्म के बाद से आगे की घटनाओं में उसकी भीरुता के ही दर्शन होते हैं। इस प्रकार

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 203.

वह एक आततायी, अत्याचारी, पापी, कपटी और भीरु प्रवृति का प्रतिनायक सिद्ध होता है। उसका समस्त ऐश्वर्य और प्रताप मात्र सैन्य-दल पर आधारित दिखाई पड़ता है ।

========

सप्तम अध्याय

सप्तम अध्याय

भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से "कन्हावत" और "पद्मावत" की तुलना

यह निर्विवाद सत्य है कि किसी भी कवि की दो रचनाओं में कालक्रम के भेद से उसके विचारों में परिस्थितियों, उद्देश्यों आदि के वैभिन्य से परिवर्तन आ जाता है। जायसी की भी "पद्मावत" और "कन्हावत" दो कृतियों में कैसा और कितना अन्तर आया है, यह उनके इन काव्यों में वर्णित प्रसंगों के द्वारा ही परखा जा सकता है। इन प्रसंगों में वर्ण्य- विषय का प्रस्तुतीकरण, शिखनख- वर्णन, युद्ध- वर्णन, षड्ऋतु- वर्णन, बारहमासा- वर्णन, प्रेम- निरूपण, काव्य रचना का उद्देश्य आदि प्रमुख हैं। इन्हीं के माध्यम से काव्यात्मक अभिव्यक्ति की सफलता - असफलता का हम यहाँ आकलन करेंगे।

वस्तु वर्णन -

"कन्हावत" के प्रथम कड़क में ईश्वर की वन्दना "पद्मावत", "आखिरी कलाम", "चित्ररेखा" के चार- पाँच कड़कों में मिलती है। गुप्त जी ने कहा है -

> "ताकर अस्तुति कीन्ह न जाई।
> कौन जीह अस करौं बड़ाई ।।"[1]

से संकेत मिलता है कि इसके पूर्व स्तुतिपरक 4-5 कड़क होने चाहिए। "कन्हावत" में मुहम्मद साहब की प्रशंसा सरल शब्दों और अलंकारहीन पदों में व्यक्त है जबकि "पद्मावत" के पद विविध अलंकारों से अलंकृत

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़क 1.1

गूढ़ शब्दों में वर्णित है। इनमें भाव-साम्य तो झलकता है किन्तु "पद्मावत" के शब्द छन्दों के भीतर नगों की भाँति इस प्रकार जटित हैं कि उन्हें पृथक् करने पर सौन्दर्यहीनता तो होगी ही साथ ही उनके स्थान पर शब्दान्तर करना भी कठिन होगा। "पद्मावत" की -

" कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा । नाउँ मुहम्मद पूनिउँ करा[1] ।।"

" दीपक लेसि जगत कहँ दीन्हा । भा निरमल जग मारग चीन्हा[2] ।।"

पंक्तियों का "कन्हावत" की पंक्तियों -

" कहाँ मुहम्मद दोसरे ठाऊँ । जोह निठान लेत मुख नाऊँ ।।

पहिलें दीन सौं सिरजा नूरू। तौ सिष्टी कर भौ अंकूरू[3] ।।"

से तुलना करें तो "कन्हावत" के वर्णन किसी अभ्यासी कवि के बबकाने उल्लेख से लगते हैं। कविता का जो आनन्द भावगम्य होता है वह "पद्मावत" की प्रत्येक पंक्ति में मिलता है ।

" कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा । नाउँ मुहम्मद पूनिउँ करा ।।"

"पद्मावत" के मुहम्मद साहब पूर्णिमा की समस्त कलाओं से सुशोभित हैं। "पूनिउ करा" शब्द में जायसी ने एक साथ प्रेम, ज्योति, शान्ति, आह्लाद आदि अनेक भावों को ध्वनित कर दिया है। "कन्हावत" के किसी भी शब्द में इस शब्द- शक्ति और ध्वनि की सामर्थ्य कहाँ?

यहाँ यह भी उल्लेख्य है कि प्राय: प्रत्येक विषय के वर्णन में यदि पूरी पंक्तियाँ नहीं तो, अर्धालियाँ अवश्य शब्दान्तर के साथ "कन्हावत" और "पद्मावत" दोनों में समान रूप से मिल जाती हैं जैसे :-

---

1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 1.1
2- वही, कड़वक 1.3
3- "कन्हावत" : डॉ० शिवसहाय पाठक, कड़वक 2.1-2

" प्रथम जोति विधि तेहि के साजो । औ तेहि प्रीति सिष्टि उपराजी[1]।।"

" ओहि के प्रीति सभै जग साजा । बरन-बरन सब कछु उपराजा[2] ।।"

" जौ न होत अस पुरुष उज्यारा । सूझि न परत पंथ अँधियारा[3] ।।"

" तौ उपजत न ... यह संसारा । होत न चाँद सूरुज उजियारा[4]।।"

इससे यह भी आभास होता है कि मानो "कन्हावत" का काव्य-रूप "पद्मावत" की संरचना का आधार हो। उसी को आधार-भित्ति पर "पद्मावत" का काव्य रूप भवन निर्मित किया गया हो। "शाह मोल" के वर्णन में "पद्मावत" और "कन्हावत" में कोई अन्तर दृष्टिगत नहीं होता। "पद्मावत" में पाँच कड़वकों के अन्तर्गत शाहेवक्त का वर्णन है जबकि "कन्हावत" में इसे एक ही कड़वक में समाप्त किया गया है। कुछ पंक्तियाँ समान रूप से मिलती हैं। उदाहरणार्थ -

"कन्हावत"-

" के तुरकान सकल दुनियाईं । अदल कीन्ह उमर कैं नाईं[5]।।"

पद्मावत -

" अदल कीन्ह उमर की नाईं । भई अहान सिगरी दुनियाईं[6]।।"

"कन्हावत" -

"गऊ सिंघ गोनहिं एक बाँटा । पानी पियहिं दोउ एक बाटा[7]।।"

1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 11.2
2- "कन्हावत" : सं0 शिवसहाय पाठक, कड़वक 2.6
3- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 11.4
4- "कन्हावत" : सं0 शिवसहाय पाठक, कड़वक 2.4
5- वही, कड़वक 4.4
6- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 15.3
7- "कन्हावत" : सं0 शिवसहाय पाठक, कड़वक 4.5

" गवव सिंव रेंगहिं एक बाटा । दूअउ पानि पिअहिं एक घाटा[1]।।"

" औ दातार सराहौं काहा । हेतिम करन न सरबरि आहा[2]।।"

" बलि औ बिक्रम दानि बड़ अहे। हेतिम करन तिआगी कहे[3] ।।"

" सभै पिरथिमी असीसें, देखि-देखि इमि साज[4]।"

" सब पिरथिमी असीसइ, जोरि जोरि कै हाथ[5]।"

विस्तृत वर्णन के कारण "पद्मावत" में शेरशाह की सिकन्दर, सुलेमान, नौशेरवाँ, उमर, बलि, विक्रम, हातिमताई और कर्ण से विविध विषयों में तुलना की गई है जबकि "कन्हावत" में न्याय में हुमायूँ की तुलना उमर से की गई है तथा दानदाताओं में उसकी हातिमताई और कर्ण से समानता वर्णित है। "पद्मावत" की -

" सौंह दिस्टि कइ हेरि न जाई ।
जेइँ देखा सो रहा सिर नाई[6]।।"

पंक्ति ही शेरशाह के समस्त गुणों को एक साथ अभिव्यक्त कर देती है। "कन्हावत" में ऐसी पंक्तियों का अभाव है। इसी प्रकार-

"समुँद सुमेर घटहिं नित दोऊ[7]।"

पंक्ति भी द्रष्टव्य है जिसमें यह ध्वनित है कि दान के समय संकल्प के लिए समुद्र का जल घट गया और दान देते- देते सुमेरु गिरि का कंचन भी पूरा नहीं पड़ा। यद्यपि इस्लाम धर्म में संकल्प करके दान देने का विधान नहीं है तथापि जायसी ने दानातिशयता के उल्लेख के लिए इसका प्रयोग किया। भाषा और अलंकार की दृष्टि से भी "पद्मावत" का शाहेवक्त वर्णन "कन्हावत" की अपेक्षा प्रशंसनीय है। कड़वक सात के वर्णन

1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 15.5
2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 4.6
3- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 17.2
4- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 4.दो0
5- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 15-दो0
6- वही, कड़वक 18.6
7- "पद्मावत" : कड़वक 17.3

के विषय में पाठक जी और गुप्त जी के मध्य जायस या वृन्दावन को लेकर विवाद है। पाठक जी के अनुसार "जायस" नगर का तथा गुप्त जी के अनुसार "वृन्दावन" का वर्णन वहाँ आया है। गुप्त जी ने उसका निम्नलिखित पाठ स्वीकार किया है -

" कहौं नगर बिंद [रा] बन ठाऊँ ।
सदा सोहावन जानस नाऊँ ।।
सतजुग हतो धरम अस्थानूं ।
तहिया कहत नगर ऊ नानूं[1] ।।"

जबकि पाठक जी का स्वीकृत पाठ है -

" कहौं नगर बड़ आपुन ठाँऊँ ।
सदा सोहावा जायस नाऊँ ।।
सतजुग हुतो धरम असथानूं ।
तहिया कहत नगर उदियानूं[2] ।।"

दूसरा पाठ "आखिरी कलाम" की पंक्ति -

" जायस नगर मोर अस्थानू ।
नगर क नाँव आदि उदियानू[3] ।।"

का स्मरण कराता है। किन्तु गुप्त जी का तर्क है कि पूर्वकाल में जायस के धार्मिक स्थल होने की कोई सूचना किसी सूत्र से प्राप्त नहीं होती। यह क्षेत्र समतल है, पहाड़ी नहीं। कड़वक नौ में उसके देवली के निकट बसे होने का संकेत है जो उनके अनुसार वृन्दावन के प्रसंग में ही सार्थक हो सकता है -

"देखौ नगर सुहावन, देवली कुल जल पास[4] ।"

1- "कन्हावत" : परमेश्वरी लाल गुप्त, कड़वक 8.1-2
2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 7.1-2
3- "आखिरी कलाम": माताप्रसाद गुप्त .
4- " कन्हावत" : परमेश्वरी लाल गुप्त, कड़वक- 9.

यहाँ पाठक जी " देखें नगर वृन्दावन, ढले पुहुप जस बास"[1] पाठ स्वीकार करके जायस का पुराना नाम "उद्यान नगर" बताकर उसे प्राचीन धर्मस्थान सिद्ध करते हैं। 16वीं शती में जायस मुसलमान सन्तों का एक बड़ा केन्द्र था। गुप्त जी के इस कथन में भी बल है कि "कन्हावत" काव्य- कथानक में अनेक अनुश्रुतियाँ और प्रवाद ऐसे हैं जिनकी जानकारी ब्रज से बाहर नहीं प्राप्त होती। इस विवादित जायस या वृन्दावन का वर्णन "पद्मावत" में केवल एक पंक्ति में मिलता है। उदाहरणतया-

"जायस नगर धरम अस्थानू ।
तहाँ अवनि कवि कीन्ह बखानू।।"[2]

"पद्मावत" में इस कड़वक की शेष पंक्तियों में आत्म-विनय प्रदर्शित है।

"कन्हावत" में जायसी आगे अपनी रचना-शैली के अनुसार आत्म-विनय भी प्रदर्शित करते हैं। वे मित्रों और पण्डितों से आग्रह करते हैं कि काव्य में यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो मौन न रहें, उसे निर्दोष करके सँवार दें क्योंकि संसार में आत्मश्लाघी महान नहीं होता वरन् महान् वह होता है जिसकी पाँच लोग मिलकर सराहना करें। इस प्रकार उन्होंने कारयित्री प्रतिभा की परख अथवा दोष-निरूपण पाठकों या श्रोताओं पर छोड़ दिया। यह आत्मविनय उन्होंने प्राचीन परम्परा से ही ग्रहण किया था। इसमें अहम् भाव की तनिक भी गन्ध नहीं लगती। वे कहते हैं -

" बोलब दोष परा जहँ होई । टूँट देखि नहिं चुप रहु सोई ।।
सो मैंती बड़ पंडित अपारू । जो निर्गुन कह करै सँवारू ।।
आपुहि आपु सराहैं, जग बड़ो भयउ न कोइ ।
जेहि रे पाँच [मिलि] सराहैं, पोरुख सराहा होइ।।"[3]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक - 8.
2- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 23.1.
3- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक -13.

"पद्मावत" में भी इसी परम्परा का पालन किया गया है। यहाँ कवि टूटे को सँवारने की प्रार्थना के साथ अपने को कवियों का पिछलग्गू भी बताता है। वह एक बड़े रूपक में विषय, शैली और गुण को प्रकट करके प्रच्छन्न रूप से कुरूपता पर ध्यान न देकर काव्य के मर्म को पहचानने की प्रार्थना करता है -

" बिनती करि पँडितन्ह सों भजा । टूट सँवारेहु मेरवहु सजा ।।
हौं सब कविन्ह केर पछिलगा । किछु कहि चला तबल दइ डगा ।।
हिअ भँडार नग आहि जो पूँजी । खोली जीभ तारा कै कूँजी ।।
रतन पदारथ बोलहु बोला । सुरस पेम मधु भरी अमोला ।।
जेहि के बोल बिरह कै घाया । कहु तेहि भूख कहाँ तेहि छाया ।।
फेरे भेस रहइ भा तपा । धूरि लपेटा मानिक छपा ।।

मुहमद कबि जो प्रेम का ना तन रकत न माँसु ।
जेइँ मुख देखा तेइँ हँसा सुना तो आए आँसु ।।"[1]

"पद्मावत" में "कन्हावत" की अपेक्षा यह आत्मविनय बहुत मार्मिक और गूढ़ भावों द्वारा गम्भीरता से व्यक्त किया गया है। रूपक शैली के कारण अनेक भावों का एकत्र समायोजन कवि की विदग्धता, और प्रतिभा का परिचायक है।

प्रतिपाद्य विषय की प्रशंसा में कवि "कन्हावत" के अन्तर्गत् योग, भोग, तप, शृंगार, धर्म, कर्म, सत्य- व्यवहार का निरूपण करते हुए इसे ज्ञान- भक्ति के रस से परिपूर्ण विकसित कमल बताता है जिसकी सुगन्धि के लिए लालायित भौंरे दूर- दूर से चले आते हैं :-

---

1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक - 23.

" जोग, भोग तप और सिंगारू । धरम, करम, सत के बेवहारू ।।
ज्ञान-भगति- रस कँवल बिगासा। भौंर दूर सों आवहिं बासा।।"[1]

"पद्मावत" में जायसी अरसिक जनों को दर्दुर कहकर तिरस्कृत कर देते हैं।

" कवि बिआस रस कँवला पूरो । दुरिहि निअर निअर भा दूरो ।।
निअरहिं दूरि फूल सँग काँटा । दूरि जो निअरें जस गुर चाँटा ।।
भँवर आइ बनखण्ड हुति लेहिं कवँल के बास ।
दादुर बास न पावहिं भलेहिं जे आछहिं पास।।"[2]

यहाँ रूपक द्वारा रसिक-अरसिक में भेद स्पष्ट करके बड़े सूक्ष्म ढंग से ग्रंथ की महत्ता भी ध्वनित की गई है।

"कन्हावत" में जायसी ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि विधाता ने जिसे कलंक दिया है उसे गुणों से विभूषित करके महत्व भी प्रदान किया है -

"जिनहि कलंक कछु बिधि दीन्हा ।
गरब जोरि सोई बड़ कीन्हा ।।"[3]

"पद्मावत" में भी वे अपना "एक नैनत्व" नहीं छिपाते। "कन्हावत" की भाँति कलंकी चन्द्रमा, खारे समुद्र, विनष्ट सुमेरु पर्वत तथा एक नैन शुक्र को गुणान्वित बताकर एक नेत्र होने के कारण वे अपना भी अभिमान प्रकट करते हैं। "कन्हावत" और "पद्मावत" दोनों में प्रयुक्त उपमान समान है किन्तु "कन्हावत" में एक उपमान की सिद्धि के लिए दो पंक्तियों का प्रयोग है :-

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 14.5-6
2- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक - 24.दो०
3- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक - 15.1

" चाँद कलंकिहिं जोति पैसारो । धरती सरग होइ उजियारी ।।
निसहों दिवस समै वह दोसा । जग जोहार के देइ असोसा[1] ।।"

जबकि "पद्मावत" की एक पंक्ति में ही इस सम्पूर्ण भाव को समाविष्ट कर लिया गया है :-

"चाँद जइस जग बिधि औतारा ।
दीन्ह कलंक कीन्ह उजियारा[2] ।।"

इससे "पद्मावत" की भाषा की कसावट सुस्पष्ट है। इस प्रसंग में जायसी ने "पद्मावत" में जिन उपमानों का प्रयोग किया है उनसे उनकी प्रौढ़ता, सूक्ष्म अनुभव और प्रतिभा प्रदर्शित होती है जो "कन्हावत" में नहीं दिखाई पड़ती ।

"कन्हावत" के मथुरा- नगर का वर्णन "पद्मावत" के सिंघलद्वीप के समान तो है किन्तु संक्षिप्त और सामान्य है। मथुरा नरेश कंस लंका के रावण की भाँति एक छत्र राज्य करता है। उसका देवों पर आधिपत्य है तो सिंघलद्वीप का गन्धर्वसेन का सभी नरपतियों पर प्रभुत्व स्थापित है।

"पद्मावत" के कड़वक 26 में गन्धर्वसेन के प्रताप का यशोगान है। इसी प्रकार "कन्हावत" कड़वक 16 और 17 में कंस के प्रताप की महिमा है। आगे "पद्मावत" में सिंघलद्वीप वर्णन के प्रसंग में अमराई तथा विविध वृक्ष और उन पर खग-कलरव, कूप, बावली, चौपाल, पाँवरी, मढ़ी-मंडप, मानसरोवर, पनिहारिन, ताल- तलैया, बारी, फुलवारी, सिंघल-नगर, हाट, गढ़, राजद्वार, राजसभा, राजमन्दिर और रनिवास का

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 15.2-3
2- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 21.2

वर्णन चौबीस कड़वकों {26 से 49 तक} में प्राप्त होता है जबकि "कन्हावत" में इसे अति संक्षिप्त करके केवल दस कड़वकों {18 से 27} में समाप्त किया गया है। इसमें जिन सादृश्यमूलक अलंकारों का सहज प्रयोग है उनमें उपमा और उत्प्रेक्षा ही प्रमुख हैं -

"भा जराउ सब कोट गरेरो ।
जन्हु कचपचीं उईं चहुँ फेरो।।"[1]

कोट को चक्करदार सीढ़ियों पर नग जड़ित हैं। वे इस प्रकार शोभायमान हैं मानो आकाश में चारों ओर नक्षत्रमालाएँ प्रकाशित हों। सामान्यतः सभी उपमान इसी प्रकार लोकप्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार कहीं-कहीं उत्प्रेक्षा की माला ही गूँथ दी गई है। जैसाकि कड़वक 19 की प्रथम पाँच पंक्तियों में दृष्टिगोचर होता है :-

" दूसर पौरि सँवारी सोनें । जनु कौंधा लोकहिं दुहुँ कोनें ।।
पहिल पौरि रूपै कै साजी । दुहुँ दिसि सिंघ उठहिं जनु गाजी ।।
तीसर पौरि जो मोतिन्ह रचीं। जानहु आइ उईं कचपचीं ।।
चौथिहिं पौरि मनि मानिक जरे।दीखैं जानहु दीपक बरे ।।
पाँचैं हीरा पौरि सँवारी ।जानौं नखत करहिं उजियारी।।

इसके विपरीत "पद्मावत" में स्थान- स्थान पर जो उपमाएँ दी गई हैं वे लोक प्रसिद्ध तो हैं ही साथ ही प्रौढ़ भी हैं यथा :-

" फरे आँव अति सघन सोहाए ।
औ जस फरे अधिक सिर नाए।।"[2]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 18.4
2- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 28.1

में कवि अत्यन्त सघन फले हुए आम्र वृक्षों को अधिक नम्र दर्शाता है, "भवन्ति नम्राः तरवः फलोद्गमैः" । इसमें ध्वनित है कि अत्यन्त समृद्धि पाकर सज्जन नम्र ही हो जाते हैं। "कन्हावत" में अत्यधिक मिठास भरा महुआ चूता है तो पृथ्वी ढंक जाती है -

"महुव मिठास बरनि नहिं जाई ।
चुवत भुइँ लागे जाई ।।"[1]

"पद्मावत" का अत्यधिक मिठास भरा महुवा मधु जैसा मीठा और पुष्प जैसा सुवासित है :-

"पुनि महु चुवै सो अधिक मिठासू ।
मधु जस मीठ पुहुप जस बासू[2] ।।"

"मधु जस मीठ पुहुप जस बासू" में जो ध्वनि आनन्द, भाषा का मिठास और अभिव्यक्ति की शैली है वह "चुवत भुइं लागे जाईं" में नहीं ।

"कन्हावत" में पनिहारिनी केवल सिर पर कनक-कलश रखे हुए बाँह डुलाती चल रही हैं -

" पानि भरन पनिहारीं आवहिं ।
कनक कलस सिर बाँह डोलावहिं[3] ।।"

इस एक मात्र पंक्ति में कवि ने सरोवर में जल भरने के लिए जाते समय पनिहारिनों की विविध चेष्टाओं, गति और उल्लास की व्यंजना की है। इसके विपरीत "पद्मावत" के पूरे एक कड़वक में पुष्प-गन्ध से

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 27.7
2- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 28.5
3- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 25.6

सुवासित अंग वाली, अतः भ्रमर समूह से अनुगत पद्मिनी जाति की सुंदरी पनिहारिनों का वर्णन किया गया है।

" लंक सिंहिनी सारंग नैनी ।
हंसगामिनी कोकिल बैनी ।।"[1]

पैर तक लटकने वाले मेघाडम्बर सदृश केशों के भीतर दन्तविद्युत की कान्ति का चित्र है- " केस मेघावरि सिर ता पाईं।" आदि छन्द में इतने सारे भावों को समन्वित करके व्यंजित किया गया है कि अर्थ- गाम्भीर्य में पनिहारिनों का पद्मिनी स्वरूप स्वयं जगमगा उठा है। "कन्हावत" में नायिकाओं के स्वरूप- वर्णन में कहीं भी ऐसे ललित पदावली- युक्त शब्दों की योजना दृष्टिगत नहीं होती। इस प्रकार की अप्सरा स्वरूप उन पनि-हारिनों के माध्यम से उनकी रूप की स्वामिनी पद्मावती के सौन्दर्य की कल्पना के लिए सहृदय को प्रेरणा मिलती है। पनिहारिनों के ऐसे अलौकिक रूप के वर्णन में "पद्मावत" के मानसरोवर के भव्य और उदात्त वर्णन का भी विशेष स्थान है। केशरूपी मेघाडम्बर में दन्तरूपी विद्युत का प्रकाश तथा कनक-कलश के भीतर मुख-चन्द्र की दीप्ति का वर्णन यद्यपि परम्परागत है किन्तु इससे उन सुन्दरियों के अलौकिक सौन्दर्य की पूर्ण सृष्टि हो जाती है। "पद्मावत" और "कन्हावत" में कुछ पंक्तियां समान हैं । उदाहरणतया -

"कन्हावत" -

"कुंवहि खाड़ बारहुं दिसि मेली । तेहिं सींचे अम्रित रस बेली ।।"[2]

1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 32.3
2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 26.2

"पद्मावत" -

"पानी देहिं खँडवानो कुअहिं खाँड बहु मेलि ।
लागी घरी रहँट को सींचहिं अम्रित बेलि[1] ।।"

"पद्मावत" में सर्वत्र अलौकिकता का साम्राज्य है। अतः पुष्पवाटिका में प्रफुल्लित पुष्प भी इतने अनुपम हैं कि श्रेष्ठ सौभाग्य वालों के मस्तक पर ही चढ़ते हैं :-

"तेन्ह सिर फूल चढ़हिं वै जेन्ह माथें मनि भागु ।
आछहिं सदा सुगन्ध भे जनु वसंत ओ फागु[2] ।।"

"कन्हावत" में फलों- फूलों, वृक्षों के नामोल्लेख के अतिरिक्त उनसे कोई भी आध्यात्मिक संकेत नहीं प्राप्त होता। कवि ने नामोल्लेख के पश्चात् पक्षियों के सम्बन्ध में यह मत प्रकट किया है कि वे अपनी-अपनी भाषा में ईश्वर का नाम लेते हैं -

"बासहिं पंखि बैठि तह, अपने- अपने ठाउं ।
आपनि आपनि भाखा, लेहिं दई कर नाउं[3] ।।"

"कन्हावत" में [कड़वक-105] नाम ले-लेकर सेवा करने वाले पक्षियों की सूची प्रस्तुत की गई है किन्तु यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि वे खग क्या बोल रहे हैं ?

इसी प्रकार "पद्मावत" में भी पक्षियों का अपनी- अपनी भाषा में नाम लेने का वर्णन है :-

" आवत पंखि कहे सब बैठे भरि अँबराउं ।
आपनि आपनि भाखा लेहिं दक्ष कर नाउं[4] ।।"

1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक - 34
2- वही, कड़वक - 35
3- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक - 27
4- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक - 29

किन्तु "पद्मावत" में पक्षियों को बोलियों में "बोलहिं पांडुक एकहि तुहो", "पिउ पिउ लागे करै पपोहा", "तुहो तुही कह गुडुरु खोहा", "दही दही कै महरि पुकारो" अध्यात्म तथा विरह की भावना व्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

"पद्मावत" में यद्यपि पक्षियों एवं फलों की सूची विस्तृत है तथापि उनसे सम्बद्ध विशेषताओं के कारण वर्णनात्मक आवश्यकता और काव्य-कला की सिद्धि हो गई है। यहाँ श्लेष, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के प्रयोग से काव्य-रस की सृष्टि तो हुई ही है साथ ही परमसत्ता की ओर संकेत के अतिरिक्त कवि के मन में कविलास के कल्पनात्मक स्वरूप का भी भव्य चित्र उपस्थित हुआ है। इनमें सिंहलद्वीप के दिव्य वातावरण की सृष्टि में कवि की भाषा-शक्ति का योगदान भी कम सराहनीय नहीं है। चन्द्रावली के प्रथम दर्शन से ही कन्ह का चित्त हर उठता है, उसका तन और मन दोनों विरह की पीड़ा से दग्ध हो उठते हैं :-

"[जेत] जग फूल तंबोल चढ़ावा । चाँद हरा चित कछु न भावा ।।
[बिख] जनु फूल पान जनु काँटे । चंदन अँग जनु रेगहिं चाँटे ।।
[कछु] न भाइ सो कीन्ह ओदासी। केहेंहु जागे आस निरासी ।।
[अँग] छटपटै हिरदैं दाहू । केत पीर कहि जाइ न काहू ।।"

कवि को यहाँ प्रेम विषयक रहस्यों का उद्घाटन करने का अवसर प्राप्त हुआ है। वह कहता है :-

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 96- 1- 4

" {परगट} भएं नेह न होई । परगट होइ तो मारै सोई ।।
{परगट} प्रीति है कठिन दुहेला। सो खिलार जो सिर सेउं खेला ।।
{ पेम } पंथ सांकर अति गढ़ा । एके चलै दोसरै कहँ बढ़ा ।।

गुपुत-दगध अस ताकर, धुवाँ न परगट होइ ।
सँवर- सँवर मन झूरै, भेद न जानै कोइ[1] ।।"

"पद्मावत" में विचित्र बात यह है कि रत्नसेन सुवा से पद्मावती के सौन्दर्य-वर्णन को सुनकर के ही मूर्च्छित हो जाता है :-

" सुनतहिं राजा गा मुरछाई । जानहु लहर कुन्ज के आई[2] ।।"

वह मृत्यु से भी अधिक कष्टकारक अवस्था को प्राप्त हो जाता है। उसके कुटुम्बी उपचारार्थ गारुड़ी, ओझा, वैद्य और चतुर लोगों को बुलाते हैं[3]। "कन्हावत" में कन्ह के लिए भी यशोदा वैद्य और सयाने लोगों को बुलाती है[4]। कन्ह को दृष्टि लग जाने की सम्भावना की जाती है। धाय अगस्त संयोग से आकर उनकी पीड़ा के विषय में पूछती है। नन्हें से कन्ह के मुख से रोग-बात के स्थान पर भोग-बात सुनकर वह दांतो तले उंगली दबाती है, पश्चात् कन्ह द्वारा चन्द्रावली के दर्शन कराने की प्रार्थना पर अनुकूल आश्वासन देकर चली जाती है। रत्नसेन की पीड़ा दूर करने हेतु श्लिष्टपरक शब्दों द्वारा बारी {वाटिका} रूप पद्मावती का औषधि-रूप में संकेत किया गया है। यहाँ लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम की प्रेरणा पर हनुमान जी द्वारा संजीवनी बूटी लाने की कथा का संकेत कर उपचार की दुर्लभता व्यंजित की गई है -

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 96, 5-दो०
2- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 119, 1
3- वही, कड़वक 120, 1-2
4- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 97,

" परजहिं चेष्टा परिखहिं नारी । निअर नाहिं औषद तेहि बारी ।।
है राजहि लक्खन के करा । सकति बान मोहा है परा ।।
नहिं सो राम हनिवंत बड़ि दूरी। को ह ले आव सजीवनि मूरी ।।"[1]

रत्नसेन की ओर से जायसी ने यहाँ प्रेममार्गियों और योगियों के मरण का अन्तर स्पष्ट किया है और अलौकिक [दिव्य] सौन्दर्य [कमल] की स्थिति हृदय में बताई है जो शरीरासक्ति से परे है। शरीर के भीतर रहते हुए भी उस सौन्दर्य को प्राप्त करना दुष्कर निरूपित किया गया है। कुटुम्बी लोग रत्नसेन को जिस प्रेम का उपदेश देते हैं वह जायसी की अत्यन्त उच्च काव्यात्मक शैली में व्यक्त है :-

" औ नहिं नेहु काहु सौं कीजे । नाउं मीठ खाएँ जिउ दीजे ।।
पहिलेहिं सुक्ख नेहु जब जोरा। पुनि होइ कठिन निबाहत ओरा ।।
अहुठ हाथ तन जैस सुमेरू । पहुँचि न जाइ परा तस फेरू ।।
गँगन दिस्टि सौं जाइ पहूँचा। पेम अदिस्ट गँगन सौं ऊँचा ।।
धुव तें ऊँच पेम धुव उवा । सिर दे पाउ देइ सो छुवा ।।

तुम्ह राजा औ सुखिया करहु राज सुख भोग ।
एहि रे पंथ सो पहुँचै सहै जो दुक्ख वियोग ।।"[2]

जायसी ने प्रेम के उपर्युक्त सिद्धान्तों का "पद्मावत" में सफल चित्रण किया है। इसके पश्चात् प्रेम गुरू सुआ भी रत्नसेन को प्रेम का अर्थ, उसकी साधना तथा उसके महत्व के विषय में रत्नसेन को उपदेश देता है और यह भी निरूपित करता है कि प्रेम मार्ग पर सिर देकर अग्रसर होने वाला ही अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है। इसके लिए योगी, यती, तपस्वी, सन्यासी एवं उदासी होना परमावश्यक है।[3]

1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 120, 3-5
2- वही, क0-122कड़वक 122कड़क124
3- वही, कड़वक 123- 124.

"कन्हावत" में भी कन्ह के लिए कवि प्रेम की रहस्यमय साधनाओं का संकेत करता है।[1] धाय अगस्त कन्ह की प्रेमपात्र चन्द्रावली को सातवें आसमान पर रहने वाली चतुर्दशी के चांद- समान निर्मल प्रकाश देने वाली और विधाता-रचित बताकर उसकी प्राप्ति की दुष्करता, दिव्यता और निर्मलता की ओर संकेत करती है :-

" वह तो सरग अमर ग्रह उई । नैन न दीख कर काहु न छुई ।।
जाकर बदन दुइज सब दीसा । जग जुहार कै दई असीसा ।।
अस निरमल वह दई सँवारी । चारहु भुवन होइ उजियारी ।।

चौदसि गँगन सँपूरन, जानै सब सँसार ।
चले तौ होइ अजाचल, रहे जगत अँधियार।।[2]

जिस प्रकार रत्नसेन ने प्रेमपथ पर अग्रसर होने के लिए गुरु को ही एक मात्र महत्त्व दिया है और सुवा को गुरु चुना है उसी प्रकार कन्ह ने धाय अगस्त को :-

" जो गुरु चेलहि चहै चढ़ावा । सरग काह सिव-लोक सो पावा ।।
तूं जो चहसु करसि सब होई । जो चाहसि पहुँचावसि सोई ।।
अब तू गुरु तोर हौं चेला । कहु सो खेल पाऊं जहिं खेला ।।
जेन पथ लावसि तिनहिं लागूं। जहिं दरसन सोभग्या माँगूं ।।

"कन्हावत" में राधी और चन्द्रावली दोनों क्रमशः फुलवारी और बारी के समान कन्ह की प्रेमिकाएँ हैं जो उनसे प्रेम के पश्चात् वैवाहिक सूत्र में बंध जाती हैं। दोनों के प्रेमाचरण में जायसी ने कुछ समानताएँ दी हैं। "पद्मावत" में नागमती विवाहिता पत्नी है और पद्मावती प्रेम - साधनाओं के पश्चात् परिणीता बनती है। "पद्मावत" की इन दोनों

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक - 96
2- वही, कड़वक - 102
3- वही, कड़वक - 103

नायिकाओं और "कन्हावत" की नायिकाओं के प्रेम- व्यवहार में भी किंचित् समानतायें दृष्टिगत होती हैं। यथा चन्द्रावती द्वारा वाटिका जाने की इच्छा व्यक्त करने पर जिस प्रकार उसकी सखियाँ धाय अगस्त के निर्देश पर प्रस्थान करती हैं[1] उसी प्रकार सुवा द्वारा पद्मावती के लिए वैराग्य साधे हुए रत्नसेन के विषय में बताए जाने पर पद्मावती सखियों को बुलाकर श्री पंचमी के अवसर पर महादेव की पूजा करने के बहाने सखियों सहित बन ठन कर उसी वाटिका में जाती है।[2]

सपत्नी- ईर्ष्या :-

"कन्हावत" और "पद्मावत" के अनेक वर्ण्य विषयों की समानता में राधी- चन्द्रावली तथा नागमती- पद्मावती के मध्य सौतिया डाह की लोक-विदित लड़ाई भी एक है। दोनों स्थानों पर नारी-सुलभ ईर्ष्याभाव का सहज चित्रण सरस, मनोवैज्ञानिक एवं जीवन्त है। नारी के आठ अवगुणों में ईर्ष्या प्रबलतम है। उसमें एक अद्भुत तथ्य यह भी प्रकाशित होता है कि एक नारी दूसरे के सौन्दर्य से किंचित् भी मोहित नहीं होती। तुलसीदास ने काकभुशुंडि द्वारा गरूण जी को यह अनुभव बतलाया है कि -

"मोह न नारि नारि के रूपा । पन्नगारि यह रीति अनूपा।।"[3]

जायसी ने इस कटु सत्य, अनुकूल विषय के चित्रण में यथेष्ट सफलता प्राप्त की है।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक - 109
2- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक - 183
3- "श्रीरामचरितमानस": कवि तुलसीदास, उत्तरकाण्ड- 116:2

दोनों काव्यों में ईर्ष्या की अवधारणा दोनों नायिकाओं के पति- मिलन के एकत्र संयोग पर प्रकट होती है। उनमें से एक पक्ष राही-पद्मावती का दिन में और दूसरे पक्ष अर्थात् चन्द्रावली- नागमती का रात्रि में संयोग चित्रित है क्योंकि प्रथम पक्ष दिन की शोभा है और द्वितीय निशा की उजियारी। "कन्हावत" में राही दिवस- श्री, फुलवारी, धरती-निवासिनी और पति को भ्रमर एवं सूर्य रूप मानने वाली है। चन्द्रावली रात्रि- उजियारी, फुलवारी, गगन-निवासिनी और प्रियतम को सुआ एवं सूर्य स्वरूप समझती है। दोनों नायिकाएं प्रियतम के संग में एक दूसरे के रस से अपने आनन्द को अधिक श्रेष्ठ बताती हैं। दोनों अपने रूप को ही श्रेष्ठ सिद्ध करती हैं। दोनों अवरेखन ही कन्ह में अपनी सौत के रंग को शंका की दृष्टि से देखती हैं :-

भा भिनुसार सूर परगासा । कन्ह आइ राही कै बासा[1] ।।
दिन राही सेउँ कन्ह बिरासा। पुनि निसि गा चन्द्रावलि बासा[2]।।

राही :- परतिह देखौं सो धनि काछें । भव जनु ठाद बालि तुम्ह पाछें[3]।।

चन्द्रा:- जाकर अंग लाग तुम्ह नाहाँ । सो राही देखौं तुम्ह नाहाँ[4] ।।

राही :- "कहि तुम्ह अस भूलियहु कन्ती। मोहू चाहि को अस रूपवन्ती।
वह रे रैनि हौं दिवस कै भाऊ दिवसहिं रात कि पूजै काऊ[5]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 141.1
2- वही, कड़वक 144.1
3- वही, कड़वक 142.7
4- वही, कड़वक 145.6
5- वही, कड़वक 143.3-4

चन्द्रा :- का पिय भूलहु दिन के धूपा। मोहू चाहि को अधिक सरूपा[1]।।

राहो :- "आउ भौंर मोरी फुलवारी । करीं-करीं रस देख मुरारी ।।
जो रस मोहि न वह है सँगरी। और न काहू जो रस भरी[2]।।"

चन्द्रा :- बैठि सुवा होइ बारी, सब अम्मृत फर खाहु ।
जो रंग मोहु-तोहु आगर, सो रंग और नकाहु[3] ।।

राही :- भलहिं को चाँद सरग चढ़ि धावै ।
रूप कि मो सौं सरबरि पावै[4] ।।

चन्द्रा :- भलहिं के राही राह कहावै । चाँद सतैं कत सरबरि पावै[5]।।

चन्द्रावली और राहो श्री महेन्द्र की पूजा करने सुखासन पर बैठ कर सखियों समेत पहुँचती है। राहो विरह-दग्ध है और चन्द्रावली सोलह-बारह श्रृंगारों से प्रसन्न है। चन्द्रावली श्री महेन्द्र से प्रार्थना करती है कि कन्ह राहो के पास न जाय और राही अपना सुहाग लौटने की प्रार्थना करती हुई किसी को सौत का दुःख न होने की कामना करती है।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 145.4
2- वही, कड़वक 143.5-6
3- वही, कड़वक 145.दो.
4- वही, कड़वक 143.7
5- वही, कड़वक 145.5

इधर "पद्मावत" में भी जायसी ने राही और चन्द्रावली को क्रमशः नागमती और पद्मावती के लिए उपमान रूप में उद्धृत करके "कन्हावत" काव्य के "पद्मावत" से पूर्व रचे जाने का संकेत सा कर दिया है और साथ ही "कन्हावत" की उपर्युक्त नायिकाओं को "पद्मावत" की दोनों नायिकाओं से गुण, रूप, वर्ण, क्रियाओं में समानता भी स्थापित कर दी है :-

नागमती तूँ पहिलि बियाही।
कान्ह पिरीति डही जसि राही[1] ।।

जहाँ राधिका अहरिन्ह माहाँ ।
चन्द्रावलि सरि पूजि न छाहाँ[2] ।।

नागमती रत्नसेन के विरह से दग्ध थी। उसकी शरीर - रूपी बेलि सूख गई थी। कवि कहता है कि "तपनि मिरगिसिरा जे सहहिं, आद्रा ते पलुहंत" "जो मृगशिरा नक्षत्र के तपन को सह लेता है वही आर्द्रा नक्षत्र में पल्लवित होता है[3]। इसीलिए

कंठ लाइ के नारि मनाई । जरी जो बेलि सींचि पलुहाई[4]।।

नारी को गले लगाकर मनाया। विरह रूप मृगशिरा के ताप से जली हुई बेलि रूप कोमल नारी को प्रफुल्लित कर दिया है। यहाँ रूपक के द्वारा दुःख- सुख की प्राप्ति के भाव का मनोवैज्ञानिक और मधुर चित्रण अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है। राही के कन्ह केवल हँसते हुए गले लगाकर मनुहारी कर लेते हैं :-

---

1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 428.1
2- वही, कड़वक 429.4
3- वही, कड़वक 343 दो०
4- वही, कड़वक 428.7

पुनि रे बिहसि हसि मिले मुरारी ।
औ कंठ लाइ कीन्ह मनुहारी ।।[1]

वे राधी- चन्द्रावली दोनों से मिलने को छिपाते हैं और कलई खुल जाने पर बहाना बनाते हैं। किन्तु रत्नसेन पद्मावती के प्रति अपने पूर्व स्थापित प्रेम को अमर सिद्ध करके शान्त करता है।

दोनों काव्यों में परकीया नायिकाएँ चन्द्रावली तथा पद्मावती ही झगड़े का बीज बोती हैं। चन्द्रावली सौत के दुःख से मुक्ति के लिए ही बिना श्रृंगार किए श्री महेन्द्र की पूजा के निमित्त गई थी। चन्द्रावली ने अत्यन्त स्वाभाविक रूप में श्रृंगार न करने के कारणों की संभावनाएँ व्यक्त कीं। किन्तु जब वह रहस्यमय ढंग से "ओहि कस चलसि तुम्हार" में "ओहि" का संकेत कन्ह से अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त करती है तो राधी जल-भुन उठी। भोले- भाले किन्तु चतुराईपूर्ण प्रश्नों के अनन्तर "ओहि" शब्द से व्यक्त व्यंग्य ग्राम्य वातावरण में अत्यन्त मर्मभेदी तथा सहृदय- हृदय संवेद्य बन गया है। इसी प्रकार की व्यंजना तुलसीदास जी ने "कवितावली" में ध्वनित की है -

"तिरछे करि नैन दे सैन तिन्हें मुसुकाइ कछू समुझाइ चली"

यहाँ "कछू" शब्द से अनबोल बोल को बोल दिया गया है जो भाषा की महती सामर्थ्य और कवि की महती प्रतिभा का भी द्योतक है।

राधी अपने सतीत्व के बल पर चन्द्रावली को पर-प्रिय से प्रेम करने का लांछन लगाकर प्रथम चरण में ही परास्त कर देती है। प्रेम-बीज

1- "चन्दायन" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 143.।

तो राही ने बोया लेकिन वह बड़ा होकर चन्द्रावली की बेलि से जा लिपटा।[1] इससे राही को सपत्नी-पीड़ा हुई और चन्द्रावली की ढिठाई पर गुस्सा भी। यहाँ कन्ह को मधुकर व राही को मालती कहकर चन्द्रावली रूप कुन्दकली से उसकी घृणा बताई गई है।[2] जायसी ने चन्द्र रूप चन्द्रावली में ग्रहण के कारण प्रेम-क्रम से दुःखी होने, नित्य घटते रहने और परप्रिय से स्नेह करने का वर्णन किया है और राही में ग्वालिनी रूप में घर- घर घूमने वाली, सती सीता रूप में लंका दहन कराने, रावण के घर रहने राहु-केतु आदि का कुसंग करने के दोषों की कल्पना द्वारा संवर्ष का आश्रय लिया है। यहाँ चन्द्रावली के गुणों के विषय में उद्भावना की गई है कि उसकी शय्या तराइयाँ तैयार करती हैं। नक्षत्र- पुष्प सुगन्धि देते हैं। उसका निवास कैलास है। उसे प्रिय-संयोग ईश्वर की कृपा से प्राप्त है। व वह जग- उजियारी और धौराहर- निवासिनी है। वह अनुपम फलों से युक्त बारी है। उसके पैर में कभी धूलि नहीं लगती, सदा ऊँचे पर रहती है और द्वितीया की रात्रि में जगत उसे प्रणाम करता है। राही को सभी देवता प्रणाम करते हैं और राहु- केतु रात्रि में पहरा देते हैं, बासुकि, रवि, इन्दु सेवा करते हैं। बालगोविन्द सदा मुख जोहते हैं। उनके श्रीराम जैसे पति हैं। वह सती सीता है। वह सुपुष्पित फुलवारी है। यहाँ "सो राही तूं राह" से कवि ने पराए घर रहकर पुनः पति के घर आने वाली सीता के सतीत्व का मखौल उड़ाया है कि राही ऐसी राह (कुपथी) है।

1- "चन्दावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 149.5
2- वही, कड़वक 149.4

" लंक दाह कर दाहे, तहाँ कहेसि तहँ दाह ।
पुनि भतार घर आइसि, सो राही हुँ राह।।"[1]

कृष्ण पक्ष में घटते- घटते अमावस्या को रात्रि में चन्द्रमा के डूब जाने की भावना का कवि ने बहुरूपिया होने की लज्जा का कारण हेतूत्प्रेक्षा से बड़े सुन्दर ढंग से किया है। इसीलिए संसार के लोग उसके इस काले कारनामें को अमावस कहते हैं।[2]

"खुँद्र खँटि बनते पुनि टूटीं । जनु फुलझरीं रैनि महँ छूटीं ।।"[3]

में धरती पर बिखरी छोटी- छोटी घण्टियों की उपमा रात्रि में छूटी हुई फुलझड़ियों से देकर घण्टियों की लघुता, आधिक्य और चमकीलेपन का मनोहर काव्यमय मौलिक चित्रण प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार-

" राहु चाँद सब गहनें लोन्हीं ।
पूनिउँ हुत सो अमावस कीन्हीं।।"[4]

में चन्द्रमा पर में ग्रहण लगने से अमावस [अँधेरा] होने और पुन: राही [राहु] द्वारा चन्द्रावली [चाँद] के [पूनिउँ] सम्पूर्ण गहनों को तोड़-फोड़ देने से पूर्ण रूप को शोभाहीन बना देने का श्लिष्ट रूपक अत्यन्त दर्शनीय है। कवि का भाषा पर अधिकार और महती कल्पना यहाँ साकार हो उठी है। उन दोनों के टूटे और धरती पर छिटके आभूषण पृथ्वी पर उदित और जगमगाती तारावलियों से प्रतीत होने लगे। इन आभूषणों में जटित "हीरा रतन पदारथ मोती" के स्वयं प्रकाश बहुमूल्य रत्नों की भास्वरता भावगम्य हो गई है।[5]

1- "चन्दायन" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 154.
2- वही, कड़वक 155.
3- वही, कड़वक 158.7
4- वही, कड़वक 159.2
5- वही, कड़वक 159

कन्ह का राही और चन्द्रावली से समान प्रेम था। इस भावनात्मक प्रेम के कारण उनको आन्तरिक सूचना द्वारा चन्द्र और राहु या धूप तथा छाया का एकत्र संयोग ज्ञात हो गया।

" कन्ह के मन तो भयेउ अगाहू । भे एक खेत चाँद औ राहू ।।
कहा कहहुँ बिय भादो माँहा। तो पै भई धूप औ छाहाँ[1] ।।"

राही ने कन्ह के प्रेम-सिद्धान्त के विपरीत आचरण किया। अत: प्रेम को प्रकट कर देने के कारण उन्होंने राही पर क्रोध व्यक्त किया। जायसी के अनुसार भावनात्मक प्रेम में ईर्ष्या- द्वेषादि का स्थान नहीं होता क्योंकि प्रेम प्रकट करने की वस्तु नहीं। वह प्रकट होने पर नष्ट हो जाती है।

{परगट} भयें नेह न होई । परगट होइ तो मारै सोई[2] ।।

अत: भावनात्मक प्रेम श्रेष्ठ है। इसके परिणामस्वरूप चन्द्रावली को सुख मिला और दु:ख कन्ह के हिस्से में पड़ गया। उन्हें प्रेम के प्रकट हो जाने से ही दु:ख हुआ :-

तुम्ह हो बया तस बोई, बहु दिसि जायें काँट ।
लीन्ह अंकूर चाँद सुख , दुख भा मोरें बाँट[3] ।।

"पद्मावत" में नागमती और पद्मावती के मध्य विवाद कपटपूर्ण है। उनके हृदय में विरोध है किन्तु बातें मीठी हैं। वे साथ-साथ बैठी हुई भी कपटपूर्ण चतुराई से पक्षियों, पुष्पों, फलों आदि के गुणों की अपने- अपने शरीर में उद्भावना करके उनकी संगति एवं असंगति द्वारा गुण-दोषों की विवेचना प्रस्तुत करती हैं, यथा -

" अहा जो मधुकर कँवल पिरीती । लागेउ आइ करील की रीती[4] ।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 161.1-2
2- वही, कड़वक 96.5
3- वही, कड़वक 161
4- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 434.6

यहाँ मधुकर रत्नसेन, कमल पद्मावती और करील नागमती के रूप में उद्भावित हैं तथा काँटेदार कसैले रस वाली करील से कमल की असंगति प्रगट की गई है। इसी प्रकार नागमती तथा पद्मावती पर सूर्य, भ्रमर, हंस और सरोवर के प्रभाव को लेकर आगे विवाद छिड़ा है। ये सब विवेचन पहेलियों के उत्तर की भाँति सिद्ध किये हुए से प्रतीत होते हैं। इस प्रसंग के अन्तर्गत् कुछ पंक्तियाँ और उनके भाव भी "कन्हावत" और "पद्मावत" में समान रूप से मिलते हैं, यथा -

पद्मावत -

जाकर दैवस ताहि पै भावा । कारि रैनि कत देखै पावा[1] ।।

"कन्हावत"-

"अनु हौं चाँद जगत उजियारी । तूँ का बोलसि निसि अँधियारी[2]।।"

"पद्मावत" -

तूँ रे राहु हौं ससि उजियारी ।
दिनहि कि पूजै निसि अँधियारी[3]।।

"कन्हावत" -

हौं रे चाँद अस निरमल, छिटकि रहइ जग जोति ।
राती सोम न पावै, हीर- हार, मनि मोति[4] ।।

1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, छन्दक ~~438.6~~
2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, छन्दक 150.4
3- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, छन्दक ~~439.7~~ 440.7
4- "कन्हावत":: शिवसहाय पाठक, छन्दक 150. दो०

"पद्मावत"-

तू भुँजइलि हौं हँसिनि गोरी । मोहि तोहि मोति पोति के जोरी।[1]

"कन्हावत"-

तूँ रे कलंकी औ करमुही । सदा अकास डोंब रिन दुही[2] ।।

"पद्मावत"-

जौं उजियार चांद होइ उई । बदन कलंक डोवैं कै छुई[3] ।।

"कन्हावत" -

कहहिं कहा उन्ह जैन तूँ परसी । नत तूँ कत मो सेउं सरिकरसी[4]।।

"पद्मावत" -

काह कहौं ओहि पिय कहँ, मोहिं पर धरेसि अँगार ।
तेहि के खेल भरोसे, तुइँ जीता मोरि हार[5] ।।

"पद्मावत"-

नागमती नागिनि जिमि गही[6] ।

"कन्हावत"-

उ भ्वाल जिमि राही गही[7] ।

1-"पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 440.5
2-"कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 151.2
3-"पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 441.6
4-"कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 151.7
5-"पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 441।दो०
6- वही, कड़वक 444.1
7- "कन्हावत": शिवसहाय पाठक, कड़वक 158.2

"कन्हावत"-

ओहि ओकहँ ओहि ओकहँ गहे[1] ।

"पद्मावत"-

ओइ ओहि कहँ ओइँ ओहि कहँ गहा[2] ।

"कन्हावत"-

लटपटाहिं भर जोबन मोती[3] ।

"पद्मावत"-

दुओ नवल भर जोबन गाजीं[4] ।

"कन्हावत"-

और करै को धरहरि,[5]

"पद्मावत"-

रहा न कोइ धरहरिया,[6]

"पद्मावत" कड़क 442 और 443 में क्रमशः पद्मावती और नागमती ने अपने अंगों का जो सौन्दर्य प्रकृति से जीतकर ले लेने की बात[7] कही है उन्हें "कन्हावत" में राही द्वारा बुरा लेना बताया गया है। रत्नसेन ने नागमती और पद्मावती को अपना प्रेमसम्बन्ध-निर्वाह बड़े तार्किक ढंग से

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 160.2
2- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 444.2
3- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 160.3
4- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 444.3
5- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 160 दो.
6- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 444 दो.
7- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 256

समझाया है। वे कहते हैं कि धूप- छाँह और रात-दिन दोनों प्रिय के रूप हैं। अतः दोनों गंगा रूप गोरी पद्मावती और यमुना रूप साँवली नागमती समान भाव से मिलकर सेवा करें। इसी से कुछ उपलब्ध हो सकता है:-

" एक बार जिन्ह पिउ मन बूझा । काहे कों दोसरे सों जूझा ।।
ऐस ग्यान मन जान न कोई । कबहुँ रात कबहुँ दिन होई।।
धूप छाँह दुइ पिय के रंगा । दूनों मिलो रहहु एक संगा।।
जूझब छाँड़हु बूझहु दोऊ । सेव करहु सेवाँ कछु होऊ ।।

तुम्ह गंगा जमुना दोइ नारी, लिखा मुहम्मद जोग ।
सेव करहु मिलि दुनहुँ औ मानहु सुख भोग[1] ।।"

यहाँ ईश्वर की अनेकरूपता और उसका सबसे अभेद प्रेम की ओर संकेत किया गया है। सेवा-भाव से परस्पर सौहार्द प्रेम स्थापित करते हुए आपसी ईर्ष्या द्वेष समाप्ति के पश्चात् ही ईश्वर का सहज प्रेम पाया जा सकता है। साथ ही योग का प्रतीकवाद भी समेट लिया गया है। बौद्ध सिद्धों, नाथ-योगियों और निर्गुण सन्तों में समान रूप से संसार के समस्त द्वन्द्वों को इड़ा-पिंगला नामक दो नाड़ियों में समाहित कर लिया गया है। उदाहरणतया हर्ष- शोक, धूप- छाँह, सूर्य-चन्द्र, दिन-रात, विद्या- अविद्या, अधः-ऊर्ध्व, द्वैत कायासाधना में इड़ा- पिंगला रूप में माने गये हैं और मन की समरसता तब होती है जब इड़ा- पिंगला का द्वैत मिटा दिया जाय अर्थात् उनमें समरसता ला दी जाय। जायसी आदि सूफी कवियों ने भी मन:साधना के इस सिद्धान्त को यथावत स्वीकार किया है। "पद्मावत" में रत्नसेन के उपर्युक्त कथन में मन: साधना के इन्हीं रहस्यों का संकेत किया गया है।

1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 445.4-दो०

"कन्हावत" में सोलह सहस्त्र हाथियों के बल वाले दैत्य चाणूर के वध की प्रसन्नता से नाचते-गाते, ग्वालों के साथ कन्ह जब गोकुल पहुँचते हैं तो उनके अपरिमित बल, यश और गोकुल की मर्यादा की रक्षा करने के गुणों से आकृष्ट षोडश कलापूर्ण चन्द्रावली अपनी धाय अगस्त से ऐसे पुरुष का दर्शन कराने का अनुरोध करती है। वह धवलगृह पर चन्द्रमा के समान विराजमान होती हुई सहस्त्र कलायुक्त सूर्य रूप कन्ह को बारात के मध्य सिर पर मौर बाँधे दूलह की भाँति दर्शन करती है। वे सुन्दर रूप, कान्ति और कोमलता से पूर्ण, देवरचित, कनक-चक्र पर आरूढ़, किशोर और जगत को मोहने वाले मदन मुरारि हैं।

"सोरह करा दई सो गढ़ी । सो दोवे धौराहर चढ़ी ।।
हँसि के धाइ अगस्त हँकारी। पूछे कौन सो कन्ह मुरारी।।"[1]

" देखहि चाँद सुरुज के करा । सबसों भाँति जोति निरमरा ।।
मदन मुरारि दई सो गढ़ा। आवे कनक चक्र रथ चढ़ा ।।

ओ मउर सिर बाँधैं, चन्दन खेवरैं गात ।
जस बरात महँ दूलह, देखहि औ विहसात।।"[2]

शशि रूप पद्मावती भी धवलगृह पर स्थित होकर सिर की बाजी लगाकर प्रेम से खेल करने वाले, एकमात्र सिद्धपुरुष, सूर्य, बारात के मध्य दूलह रूप में सिर पर मौर बाँधे, स्वर्ण रूप पथ पर सवार रत्नसेन योगी के दर्शन की अभिलाषा सखियों से प्रकट करती हैं -

" पदुमावती धौराहर चढ़ी । दहुँ कस रबि जाकहँ ससि गढ़ी ।।
देखि बरात सखिन्ह सौं कहा। इन्ह महँ कौनु सो जोगी अहा ।।"[3]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 205.3-4
2- वही, कड़वक - 206.1,3, दो.
3- "पदमावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 278.1-2

" सहसों करों रूप विधि गढ़ा । सोने के रथ आवै चढ़ा[1] ।।"

चन्द्रावली और पद्मावती दोनों चाँद रूप प्रेमिकाएँ हैं और उनके पति सूर्य रूप प्रेमी हैं। चन्द्र- सूर्य भी योगसाधना के पारिभाषिक शब्द हैं। गोरखनाथ द्वारा प्रतिपादित हठयोग में सूर्य की स्थिति नीचे मूलाधार चक्र में और चन्द्र की स्थिति ऊपर सहस्रार में मानी गई है। विभिन्न क्रियाओं द्वारा कुण्डलिनी जागरण कर सूर्य को ऊपर चढ़ाकर चन्द्र से मिलाया जाता है। यही "हठ" शब्द में "ह" अक्षर सूर्य का और "ठ" अक्षर चन्द्र का बोधक है। दोनों के योग की बात कहने के कारण इस साधना को "हठ योग" कहा गया है। "पद्मावत" में रत्नसेन में पारलौकिक गुणों का सम्निवेश है किन्तु "कन्हावत" में कन्ह का लोक-विलक्षण सौन्दर्य भी ऊभर पाया है। वह

" वह उजियार जगत उपराहीं । जग उजियार सो तेहि परछाहीं[2] ।।"

" अबहीं मसि भीजै लेइ रेखा । जगत बिमोहि गयउ जेन देखा[3] ।।"

रत्नसेन को देखते ही पद्मावती पर काम के आठ सात्विक भावों स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वर, विकार, वेपथु, वर्णविकार, अश्रु और प्रलय ने आक्रमण कर दिया। उसके शरीर के प्रत्येक अंग अपने स्थान में नहीं समा पाए। वह मूर्छित हो गई। सखियों ने जल से मूर्छा दूर किया।

" देखा चाँद सुरुज जस साजा । अष्टौ भाउ मदन तन गाजा ।।

* * * *

अंग अंग सब हुलसे, केउ कतहूँ न समाइ ।
ठावहिं ठाँव बिमोहा, गइ मुरछा ततिआइ[4] ।।"

1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 279.6
2- वही कड़वक 279.3
3- "कन्हावत": शिवसहाय पाठक, कड़वक 206.5
4- "पद्मावत": माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 280.1, दो.

इधर चन्द्रावली भी कन्ह-दर्शन से काम- कलाओं द्वारा व्याकुल और मूर्च्छित होने पर धाय अगस्त द्वारा जलाभिषिक्त करके चेतना में लाई गई वर्णित है :-

" चाँदहि कुन्ज परा जो चीन्हीं । देखि विमोही जनु हरि (लीन्हीं)।।
जनु उर लाग धाम कै धारा । काम करा धनि गै (किरारा)।।
काम लुबुध धनि औ सुकुवारा । भइ अचेत मन कछु न सँभारा[1] ।।"

" धाइ अगस्त नीर लै आई ।. कै सीतल तन तपत बुझाई ।।"[2]

चन्द्रावली और पद्मावती की पति-दर्शन से मूर्च्छा भिन्न- भिन्न कारणों से उद्भूत हुई है। चन्द्रावली अपूर्व पुरुष की दिव्य सौन्दर्य माधुरी से अभिभूत होकर अपने स्वप्निल भावी पति की अनुरूपता की प्रेम कल्पना में विभोर हुई चेतना गवाँ बैठती है जबकि पद्मावती गमनागमन रूप संसार से मुक्ति और ऐकान्तिक प्रेमानन्द की कल्पना में सराबोर होकर अचेत हो जाती है। पद्मावती के हृदय में पति-सौन्दर्य रूप आलम्बन से जो प्रेमोचित भाव उदय हुए वे काम- कटक बनकर उसके हृदय में पूर्वस्थित विरह से संग्राम करने लगे। फलस्वरूप आक्रमण होने पर विरह- दग्ध अंगों की विरसता समाप्त हो गई और काम भावों के विजय से अंगों की सरसता इतनी विकसित हुई कि सीमा लाँघ गए।[3]

धन्य है जायसी की असीम प्रतिभा, बेजोड़ कल्पना, अत्यन्त सूक्ष्म भावों को भी मूर्त रूप देने का भाषा और भाव का चमत्कार जिसने प्रसाद गुणयुक्त करके समस्त भावों को उड़ेल कर रसिकों के हृदय को आन्दोलित कर दिया है। शृंगार रस की निष्पत्ति के ऐसे समन्वित और सुखकारी सौन्दर्य के उदाहरण खोजने से ही प्राप्त होते हैं।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 207.
2- वही, कड़वक 208.।
3- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 280.

"कन्हावत" में कन्ह- दर्शन से चन्द्रावली को परम्परा-प्रचलित दीपक पर पतंगा बनने और रक्त और घाव के बिना प्राण चले जाने आदि उपमानों के प्रयोग द्वारा कामपीड़ित प्रदर्शित करके तीव्र अनुभूति का चित्रात्मक वर्णन किया गया है। यहाँ प्रेम- मद में मतवाली चन्द्रावली में प्रेम- विष से विषाक्त होने पर प्रियतम की प्राप्ति के लिए तीव्र आकुलता और उसके प्रभावों की मार्मिक अभिव्यक्ति जीवन्त हो उठी है। विष से प्रभावित व्यक्ति जिस प्रकार प्राणों के लिए छटपटाता है, अपनी पीड़ा को अव्यक्त शब्दों में प्रकट करने का प्रयत्न करता है और "मरे- मरे" कहकर चिल्लाता है उसी प्रकार चन्द्रावली की प्रेमावस्था हो गई थी। प्रेम का विष से तादात्म्य स्थापित करके जायसी ने दोनों के प्रभावों का समानान्तर चित्रण करके सूक्ष्म प्रेमभाव को मूर्त रूप दे दिया है :-

सहसैं करां विरह रितु नई । सोरह करां छीन ‖ भसमई ‖[1]।

सहस्र किरण रूप उष्ण विरह की ऋतु के आने पर सोलह कला रूप शीत के क्षीण होकर भस्म हो जाने का भाव भी मौलिक काव्यमय सौंदर्य के रूप में उपस्थित हुआ है। यहाँ सामर्थ्यवान के समक्ष आवक्त का विनाश होने की तीव्र व्यंजना प्रकट करके कन्ह के प्रेम का चन्द्रावली पर प्रभाव भी ध्वनित हुआ है। यहाँ सांगरूपक द्वारा अमूर्त प्रेमभाव का मूर्त रूप दर्शनीय है। इसी प्रसंग में मुरारि का मदन रूप नहीं निखर पाया है :-
"मदन मुरारि दई सोवह गहा" सूर्य रूप कन्ह या रत्नसेन के प्रति चाँद या कमल रूप चन्द्रावली अथवा पद्मावती में हर्ष या विषाद प्रकट करने के लिए "कन्हावत" और "पद्मावत" दोनों में सूर्य, चन्द्र और कमल के प्रतीकों का निरंग रूपक युक्त योजना का समान रूप से निर्वाह हुआ है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं ।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 207.3

"कन्हावत" -

भा वियोग दिन- रैनि तुलाई ।
सूर गएउ बटि चाँद दिपाई[1] ।।"

"पद्मावत" -

छपा न रहै सूरुज परगासू । देखि कँवल मन भएउ हुलासू[2] ।।

कुछ अन्य समानताएँ भी दृष्टिगत है :-

"कन्हावत" -

हँसि चन्द्रावलि सखिन हँकारी । आवहिं जाहिं तवा के बारी[3] ।।

"पद्मावत"-

पदुमावति सब सखी हँकारी । जावत सिंघलदीप की बारी[4] ।।

"कन्हावत" -

"छवि दुख सकौं न परगट होई । नैन जो देखि जाइ मरि सोई ।।
वह वह सकौं न काजर देई । जगत मरे हत्या को लेई[5] ।।

"पद्मावत"-

"जासौं [illegible] वह हेरौं सोइ ठाउँ जिउ देइ ।
एहि दुख कबहुँ न निसरौं को हत्या असि लेइ[6]।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 209.1
2- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 279.2
3- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 109.2
4- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 183.3
5- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 114.3-4
6- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त,

"कन्हावत" -

कत आएउँ देखै बैरागी । ठाढ़ तभौं जो हत्या लागी[1] ।।

"पद्मावत" -

भए बलि सबै देवता बलो । हत्यारिनि हत्या लै चली[2] ।।

"कन्हावत" -

दरस आस बैठि होइ तपा । लेइ- लेइ नाउँ चाँद कर जपा[3] ।।

"पद्मावत"-

बैठ सिंघ छाला होइ तपा । पदुमावति पदुमावति जपा[4] ।।

"कन्हावत"-

गुपुत रहै सोऊ बरै, परगट मारा जाइ[5] ।

गुपुत जो रहै सो ग्यान बिचारा । परगट होइ जाइ सो मारा[6] ।।

"पद्मावत"-

गुपुत जो रहै चोर सो साँचा ।
परगट होइ जीव नहिं बाँचा[7] ।।

"कन्हावत"-

मुख[8] कँवल बिगसा मन हँसा ।

"पद्मावत"-

सहसहि करा भानु परगासा ।

"पद्मावत"- चाँद मिलन कहँ दीन्हेउ आसा ।
सहसौं करा सूर परगासा[9] ।।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 114•5
2- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 196•2
3- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 108•6
4- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 167•1
5- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 104 दो•
6- वही, कड़वक 118•3
7- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 217•5
8- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 106•2
9- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 237•3

नखशिख वर्णन :-

कवि ने स्वयं राही के सौन्दर्य की अहलादना में उन्हें एक से एक सुन्दर, सूर्य की किरणों से निसृत हुई-सी और षोडश कलाओं से युक्त चन्द्रमा से निर्मित-सी होकर प्रकट हुई सोलह सहस्र गोपियों में एक गोपिता कहा है। संसार में उसके रूपातिशय की सराहना होती है। वह सहस्र किरणों से युक्त होकर इस प्रकार दीप्त होती है कि उसकी ज्योति में समस्त ज्योति छिप जाती है। वह गोपी नक्षत्रों में चन्द्रमा की भाँति है जो मानो स्वर्ग से अदृष्ट होकर पृथ्वी पर अवतरित हुई है। वह कृष्ण के लिए उसी प्रकार जगत प्रशंसित अवतारिणी रूपवती है जैसे राम के लिए सीता ।

नखशिख वर्णन की परिपाटी संस्कृत से प्रारम्भ होकर प्राकृत, अपभ्रंश से होती हुई हिन्दी के काव्यों में भी अविरल छाई रही जिसमें दैवी पात्रों का चरण- नख से और मानवी पात्रों का शिखा से श्रृंगार- वर्णन की परम्परा प्रचलित रही। जायसी ने बिना विभेद के "पद्मावत" की नायिका पद्मावती और "कन्हावत" की नायिका राही का श्रृंगार-वर्णन शिखा से ही आरम्भ किया है। पद्मावती के शिख- नख वर्णन में वे सर्वप्रथम केश को विषय बनाते हैं और "कन्हावत" में माँग को। "पद्मावत" के कड़वक 296 से 300 तक जायसी ने बारह आभरणों तथा सोलह श्रृंगारों का विधान प्रस्तुत किया है।

"कन्हावत" में कड़वक 233 में वर्णन आया है -

राही आइ सिंगार बनावा ।
केस छोरि मुख माथन्हि तारे । ईंगुर पूरि कीन्ह रतना रे ।।
कुंकुहिं मरदन कै तन माँधा । कै अन्हान सब अभरन साजा।।

यहाँ श्रृंगार में पूर्वापर का ध्यान नहीं रखा गया है। राही के पूर्व ही केश- सज्जा, माँग में ईंगुर-कुमकुम से तन- मर्दन करती है। क्रम-

वैपरीत्य के साथ ही विवाह पूर्व माँग में सिन्दूर धारण कराकर जायसी ने भारतीय परम्परा का भी उल्लंघन किया है। "पद्मावत" में माँग का वर्णन करते हुए जायसी स्पष्ट कर देते हैं :-

बरनौं माँग सीस उपराहीं । सेंदुर अबहिं चढ़ा तेहि नाहीं ।।[1]

अवधेय है कि सुवा रत्नसेन से पद्मावती का यह श्रृंगार- वर्णन विवाह से पूर्व करता है। साथ ही जायसी "पद्मावत" में बरीक से लेकर विवाह के प्रत्येक विधान का विशद वर्णन करते हैं। यह माना जा सकता है कि राही- कन्ह-विवाह में उपर्युक्त विधानों का वर्णन विवक्षित न रहा हो तो भी विवाह-पूर्व सिन्दूर- धारण का वर्णन "कन्हावत" लिखते समय तक जायसी की अनभिज्ञता और अपरिपक्वता प्रकट करता है।

"पद्मावत" में पद्मावती का दो स्थलों पर विशेष रूप से नखशिख वर्णन किया गया है। प्रथम में हीरामन शुक रत्नसेन से उसके रूप-सौन्दर्य की प्रशंसा करता है। द्वितीय में राघव चेतन बादशाह अलाउद्दीन से उसकी रूप- माधुरी का वर्णन करता है। मध्यकालीन कवियों ने सीता-राम और राधाकृष्ण के अनुपम सौन्दर्य को काव्यात्मक अभिव्यक्ति दी थी। जायसी के ऐसे रूप-वर्णन भक्त कवियों के वर्णनों की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत और अत्युक्तिपूर्ण हुए क्योंकि भक्त कवियों के वर्णन मर्यादित और शिष्ट थे। वे प्रणम्य देवियों के रूप- वर्णन में दिव्यता के अतिरिक्त और कुछ न कहने को बाध्य थे। जायसी ने इनसे आगे बढ़कर मानवीय रूप में दिव्य सौन्दर्य की कलात्मक सृष्टि की। इस उद्भावना में उन्होंने बड़ी कुशलता के साथ लौकिक रूप को अलौकिक और निष्कलंक बनाने के लिए ऐसे अप्रस्तुत- विधान का आश्रय लिया जिससे मानवी रूप में भी आध्यात्मिकता की मधुर व्यंजना निखर उठी। पद्मावती के रूप-

---

1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 100.2

सौन्दर्य में उन्होंने ईश्वरीय सौन्दर्य की झाँकी देखी और तद्वत उसके सौन्दर्य के आदर्श रूप की प्रतिष्ठा कर दी। उन्होंने उसे "पारस रूप" दिया। पारस रूप ही अपनी प्रातिभासिक स्पर्श-दीप्ति से दृश्यमान जगत को अद्भुत रूप माधुरी का मूलभूत कारण है।

मध्यकाल की राधा और सीता ने भले ही रति को रंक रूप दिया हो किन्तु "कन्हावत" में राही लौकिक से अलौकिक नहीं बन सकी। "पद्मावत" में जिस तरह श्लिष्ट उपमानों द्वारा पद्मावती के सौन्दर्य में परोक्ष दिव्य सत्ता का संकेत है वैसा "कन्हावत" में कुछ भी नहीं है। यद्यपि राही के सौन्दर्य-वर्णन में दिव्य उपमानों का समायोजन है तथापि वे लोक से विलक्षण रूप वाली ही रह गईं। उनमें पारलौकिक अंश व्याप्त नहीं हो पाया। पद्मावती की भाँति राही के सौन्दर्य का सृष्टिव्यापी प्रभाव भी नहीं है -

राम रूप हुत सीता, कन्ह रूप तहं राहि ।
अस रूपवंती अवतरी, जगत सराहै ताहि ।।[1]

जो राम के लिए सीता स्वरूप थीं वही कन्ह हेतु राही रूप में रूपवन्ती होकर अवतरित हुई। इस प्रकार मानवी पद्मावती तो अलौकिक बन गई और अलौकिक राही लौकिक हो गई । पद्मावती की ज्योति से सभी ज्योतियाँ आलोकित होती हैं क्योंकि वह पारस रूप है किन्तु राही ऐसी नहीं है। केवल कड़वक 234 में ऐसी एक अस्पष्ट झलक ध्वनि देखने को मिलती है -

बिव- बिव रतन पदारथ, बिव-बिव मानिक मोति ।
जगमग दीसे जगत, पग तेहिं जोति ।।[2]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 59. दो.
2- वही, कड़वक 234. दो-

यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि जायसी ने नारी-शरीर के अंग-प्रत्यंगों के वर्णन में जिन उपमानों का विधान किया है वे तीन प्रकार के हैं - [1] परम्परा प्रचलित या रूढ़ उपमान, [2] फारसी प्रभाव से गृहीत, [3] लोकगृहीत और मौलिक उपमान।

कड़वक 55 में जायसी ने सांकेतिक प्रयोग द्वारा पद्मावती के अंग-प्रत्यंगों के सौन्दर्य में बारी की भी शोभा का आरोप किया है। इनसे भी परे अदृश्य ईश्वरीय सत्ता की ओर संकेत है जिसकी प्राप्ति के लिए साधना का विधान निरूपित है। ऐसा अनुपम सौन्दर्य ईश्वरीय है जो पद्मावती में केन्द्रित है और उसी से समस्त सृष्टि में। जायसी ने उस अलौकिक सौन्दर्य का सृष्टिव्यापी प्रभाव स्थान-स्थान पर पद्मावत में अभिव्यक्त किया है। पद्मावती के रूप सौन्दर्य की गूढ़ार्थ व्यंजक और सारगर्भित ये पंक्तियाँ विस्तृत काव्य के अन्तर्गत् प्रस्तावना रूप में होती हुई भी लक्ष्यपरक सूत्र बन गई है -

"भइ ओनन्त पदुमावती बारी। रूज ओरें सब करी सँवारी ।।

x x x x

जग कोइ दिस्टि न आवै आछहिं नैन अकास।
जोगी जती सन्यासी तप साधहि तेहि आस[1] ।।

स्त्री के आदर्श रूप अथवा पद्मावती के पारस रूप और उससे अलौकिक सत्ता की कल्पना और भावना अधोलिखित पंक्तियों में भी द्रष्टव्य है-

"जेहि दिन दसन जोति निरमई। बहुतन्ह जोति जोति ओहि भई।।
रवि ससि नखत दीन्हि ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती।।
जहँ जहँ बिहँसि सुभावहिं हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी[2] ।।

1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 55.
2- वही, कड़वक 107. 4-6

नैन जो देखा कँवल भए निरमर नीर सरीर ।
हँसत जो देखे हँस भए दसन जोति नग हीर[1] ।।

शिखनख-वर्णन में जायसी ने केवल प्रकृति से ही उपमान नहीं चुने हैं वरन् अन्य सांसारिक पदार्थों से भी उन्हें ग्रहण किया है। इनसे जायसी की मौलिक सूझ और कवित्व-शक्ति का परिचय मिलता है। "पद्मावत" में उनके कुछ मौलिक उपमान इस प्रकार हैं -

"घुँघुरवारि अलकैं विखभरी । सकरैं पेमचहैं गिउपरी[2] ।"

उसकी घुँघराली अलकें विषैली हैं। वे मानो प्रेम की जंजीरें हैं जो किसी के गले में पड़ना चाहती हैं। माँग के लिए उनकी अनूठी उद्भावना है -

"खाँडै धार रुहिर जनु भरा[3] ।"

अर्थात् माँग का सिन्दूर मानो तलवार की धारा में रुधिर बे हो ।

इसी प्रकार ग्रीवा के लिए गुराखी सांसारिक पदार्थों से गृहीत उपमान है। "पद्मावत" में अत्युक्तियाँ भी प्रयोग में आई हैं :-

पुनि तिहि ठाउँ परी तिरि रेखा । घूँटत पीक लीक सब देखा[4] ।।

पुनः उसी स्थान (ग्रीवा) में (एक) तिर्यक् रेखा पड़ी हुई है और जब वह पान का (लाल रस) गले से उतारती है तब उसकी लीक दिखाई पड़ती है। शरीर की कोमलता और पारदर्शिता की अनुपम ध्वनि दर्शनीय है।

"कन्हावत" में अत्युक्तियों का प्रयोग कहीं भी दृष्टिगत नहीं होता। अधिकतर उपमान शास्त्रीय या परम्परागत ही हैं। उनमें से कुछ लोकगृहीत

1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 65.
2- वही, कड़वक 99.7
3- वही, कड़वक 100.5
4- वही, कड़वक 111.6

है और कुछ प्रकृति-क्षेत्र से ग्रहण किए गए है। इनमें फारसी-उपमान दृष्टि-गत नहीं होते। मौलिक उपमानों में भाव-सहित नेत्रों से देखने के लिए "उलथि समुंद्र" का प्रयोग आया है। शेष उपमान या तो लोकगृहीत वस्तुगत उपमान हैं या प्राकृतिक। जैसे माँग में प्रयुक्त सिन्दुर की रेखा के लिए "उदीयमान सूर्य की किरण", "रेंगती बीर बहुटियाँ", और घुँघुची के प्राकृतिक उपमान दिए गए हैं। इसके लिए "कनक खम्भ विषधर चढ़ने" का सादृश्य मौलिक प्रयोग है।

मूर्त के साथ मूर्त का विधान तो "कन्हावत" में अधिकांश दृष्टिगत होता है किन्तु मूर्त के अमूर्त के साथ और अमूर्त के अमूर्त के साथ विधान इने-गिने ही हैं। भाव-सहित दृष्टिपात का उपमान समुद्र-मंथन के पश्चात् उसके उलट पड़ने से दिया गया है :-

भाव सहित जोहै वह गोरा।
उलथि समुंद्र गहि अबहिं बिलोरा[1]।।

यहाँ भाव-सहित दृष्टिपात अमूर्त उपमेय है और उसके सादृश्य में बिलोड़न के पश्चात् समुद्र के उमड़ पड़ने का उपमान अमूर्त ही है। यहाँ कवि ने एक साथ यौवन के मद, दृष्टिपात के सौन्दर्य और गाम्भीर्य की व्यंजना की है। इसी प्रकार मुख से बातों के निकलने को जायसी ने मोती चू पड़ने अथवा फूल झड़ने का सादृश्य प्रस्तुत किया है -

" बचन सीप मोती जनु चुवहिं[2]।
फूल परहिं जो जो कछु बोला।।"

मुख सो केवल जिमि बिगसै, फूल परहि जनु बात[3]।।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 236.4
2- वही, कड़वक 238.4,6
3- वही, कड़वक 237.

यद्यपि मुख से फूल झड़ना, रक्त अधरों के सादृश्य से और मोती चू पड़ना श्वेत दशन की समानता के कारण लोक में अधिक प्रचलित उपमान हैं तथापि जायसी ने इन्हें काव्यात्मक रूप देकर साहित्य में प्रतिष्ठित करने का श्रेय प्राप्त किया। नखशिख-वर्णन में "पद्मावत" और "कन्हावत" में कुछ समानताएँ भी दृष्टिगत होती हैं :-

<u>कन्हा०</u>- माँग झारि के पाटी पारी । रचि-रचि चित्र विचित्र सँवारी[1] ।।

<u>पद्मा०</u>- कै पत्रावलि पाटी पारी । औ रचि चित्र विचित्र सँवारी[2] ।।

<u>कन्हा०</u>- उगवत सूर किरन जस फूटी। रँगि चलीं जनु बीर बहूटी[3] ।।

<u>पद्मा०</u>- सेंदुर रेख सो ऊपर राती । बीर बहुटिन्ह की जनु पाती[4] ।।

<u>कन्हा०</u>- बदन सपूरन ससहर दीसा । जगत जोहारे देइ असीसा[5] ।।

<u>पद्मा०</u>- एहि नित दुइज जगत महँ दीसा। जगत जोहारे देइ असीसा[6] ।।

<u>कन्हा०</u>- तिलक बनाइ जो चुनी रची । चाँद सँग जानहु कचपची[7] ।।

<u>पद्मा०</u>- तिलक सँवारि जो चुनी रची। दुइज माँह जानहुँ कचपची[8] ।।

<u>कन्हा०</u>- मानिक खूँट दीप जनु बरे[9] ।

<u>पद्मा०</u>- तेहि पर खूँट दीप दुइ बारे[10] ।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 234.1
2- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 471.2
3- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 234.4
4- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 471.5
5- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 235.2
6- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 472.2
7- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 235.4
8- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 472.4
9- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 235.7
10- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 110.4

कन्हा०- दुहुँ दिसि कौंधा लोकै, जानहिं कै चमकार [1] ।।

पद्मा०- मनि कुंडल चमकहिं अति लोने । जनु कौंधा लौकहिं दुहुँ कोने [2] ।।

कन्हा०- नैन कुरंग सुरंगम दीठी । कँवल- पत्र जनु भँवर बईठी [3] ।।

पद्मा०- नैन चित्र वै रूप चितेरे । कँवल पत्र पर मधुकर फेरे [4] ।।

कन्हा०- सुरंग-विरंग सोप मुँदराते । डोलहि सहज जानु मदमाते [5] ।।

पद्मा०- समुँद तरंग उठहिं जनु राते। डोलहिं तस घूमहिं जनु माते [6] ।।

कन्हा०- चपल बिलोल पँखि औ बाँके। थिर न रहहिं लेहिं जिउ ताके [7] ।।

पद्मा०- चपल बिलोल डोल रहलागी। थिर न रहहि चंचल बैरागी [8] ।।

कन्हा०- भाव सहित जोहै चख मोरा। उलथि समुँद गाहि अबहिं बिलोरा [9] ।।

पद्मा०- नैन बाँक सरि पूजि न कोऊ। मान समुँद अस उलथहिं दोऊ [10] ।।

पद्मा०- अस वै नैन चक्र दुइ भँवर समुँद उलथहिं [11] ।।

कन्हा०- अँजन-रेख बनी अतिकारी । खँजन चाहि अधिक अनियारी [12] ।।

पद्मा०- बाँक नैन औ अँजन रेखा । खँजन जनहु सरद ऋतु देखा [13] ।।

कन्हा०- खात तँबोल अधिक रँग चढ़ा। का कहँ दई बदन अस गढ़ा [14] ।।

पद्मा०- मुख तँबोल रँग धारहि रसा। केहि मुख जोग सो अंब्रित बसा [15] ।।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 235• दो•
2- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 110•2
3- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 236•1
4- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 474•1
5- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 236•2
6- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 474•2
7- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 236•3
8- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 474•4
9- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 236•4
10-"पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 103•1
11- वही, कड़वक 474 दो•
12-"कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 236•5
13- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 298•1
14-"कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 236•1
15-" पद्मावत": माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 106•6

कन्हा०- अति रसाल अंब्रित भरि राखे । रहे अछूत न काहु चाखे[1] ।।

पद्मा०- अस कै अधर अमिअ भरि राखे । अबहिं अछूत न काहु चाखे[2] ।।

कन्हा०- दसन पाट जनु बैठे हीरा । तिल- तिल सोह खाब मुख बीरा[3] ।।

पद्मा०- दसन चौक बैठे जनु हीरा । औ बिच बिच रँग स्याम गँभीरा[4] ।।

कन्हा०- बिहँसत जानहु बीजु देखावे। हँसै तौ जग उजियर होइ आवै[5] ।।

पद्मा०- चमकै चौक बिहँसु जौ नारी। बीज चमक जस निसि अँधियारी[6] ।।

कन्हा०- फूल परहिं जो- जौ कह बोला। जनु अंम्रित जो सुरंग कपोला[7] ।।

पद्मा०- अंम्रित कौंप जीभ जनु लाई । पान फूल असि बात सुहाई[8] ।।

कन्हा०- जनु सोनार साँचें भरि काढ़ी। गीउँ पुकारि मोरति जनु ठाढ़ी[9] ।।

पद्मा०- कुँदै फेरि जानु गिउ काढ़ी । हरी पुकारि ठगी जनु ठाढ़ी[10] ।।

कन्हा०- कनक दण्ड जनु साँचे फिरे । औ कुँदेर फेरे निरमरे[11] ।।

पद्मा०- कनक दण्ड दुइ भुजा कलाई । जानहुँ फेरि कुँदेरे भाई[12] ।।

कन्हा०- हस्ति सिंघ {9} दुनिऊँ समतुला । अन्न न खाइ सुँघि रहि फूला[13] ।।

पद्मा०- खीर अहार न कर सुकुवाँरा । पान फूल के रहे अधारा[14] ।।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 237.6
2- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 106.5
3- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 238.1
4- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 107.1
5- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 238.3
6- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 477.3
7- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 238.6
8- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 473.2
9- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 239.2
10-"पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 111.2
11-"कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 241.2
12-"पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 112.1
13-"कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 243.4
14-"पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 114.2

कन्हा0- चूरा जइस चाँद उजियारा । पायल बोजु करहिं चमकारा[1] ।।
पद्मा0- चूरा चाँद सूरुज उजियारा । पायल बोजु करहिं चमकारा[2] ।।

कन्हा0- पातर लंक सिंहिनी छोनी । बरै लंक वाहि अति खोनी[3] ।।
पद्मा0- बसा लंक बरनै जग झीनी । तेहि ते अधिक लंक वह खीनी[4] ।।

षड्ऋतु- वर्णन :-

"पद्मावत" और "कन्हावत" में षड्ऋतु- वर्णन की तुलना करें तो स्पष्ट है कि "पद्मावत" का यह वर्णन उत्कृष्टतर है। "कन्हावत" में जहाँ ग्रीष्म ऋतु में शीतलता उत्पन्न करने वाली सामग्री जुटाए जाने का वर्णन है और पद्मिनी कुब्जा को स्वर्ग की अप्सरा कहकर संतोष किया गया है वहाँ "पद्मावत" में इन्हें शब्दों द्वारा उल्लिखित न करके इसमें भावों को भी उरेह दिया गया है। यह संयोग-श्रृंगार के उद्दीपन रूप में व्यक्त है। "पदुमावति तन सियर सुबासा"[5] से स्पष्ट है। उन नारियों को तपन नहीं जलती जिनका प्रिय उन दिनों उनके पास रहता है। यदि मिलन-संयोग व्यक्ति के अनुराग में घटित हो तो नारी की स्वतन्त्रता और आनन्द की सीमा नहीं रहती। अन्त में नायक को अन्योक्ति में सुवा बताकर भोग- सामग्रियों अधर आदि को दाड़िम आदि कहकर उसके अपार आनन्द और आनन्दस्थल को अंकित किया गया है। "पद्मावत" में प्रकृति के सौन्दर्य और माधुर्य के बीच जब दम्पत्ति के संयोग-सुख की विविध अनुभूतियों ,परिस्थितियों और अवस्थाओं के सजीव और संश्लिष्ट चित्रण के

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 245.5
2- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 113.5
3- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 244.1
4- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 116.2
5- वही, कड़वक 336.3

साथ आध्यात्मिकता की झलक रसिकों के लिए अत्यन्त मनोहारी रूप देती है। ग्रीष्म ऋतु के सम्बन्ध में "पद्मावत" और "कन्हावत" के अधो-लिखित कड़वक दोनों की अभिव्यक्ति का अन्तर स्पष्ट कर देते हैं :-

कहौं भोग ग्रीखम रितु आई । जेठ- असाढ़ तपन अस लाई[1] ।।

रितु ग्रीखम कै तपनि न तहाँ। जेठ असाढ़ कंत घर जहाँ[2] ।।

षड्ऋतु- वर्णन "कन्हावत" और "पद्मावत" दोनों में समान रूप से प्राप्त होते हैं जिनमें नायक- नायिका के मिलन- सुख का वर्णन किया गया है। "पद्मावत" में चैत- वैशाख से इसका प्रारम्भ है किन्तु "कन्हावत" में जेठ-आषाढ़ से। हेमन्त और शिशिर का जायसी ने दोनों काव्यों में विप-रीत क्रम से वर्णन किया है। शिशिर को हेमन्त तथा हेमन्त को शिशिर बना देने की त्रुटि की गई है। भारतीय परम्परा में चैत्र [मधुमास] और वैशाख वसन्तपर्व के महीने हैं। सम्भवतः यह पर्व इन्द्र के कामोत्सव से निरन्तर चला आ रहा है। चैत्र द्वितीय पक्ष से ही विक्रम सम्वत् का प्रारम्भ भी होता है। यह ऋतुराज है। "कन्हावत" में भी "भा बसन्त रितुराजा आवा[3]" घोषित किया गया है किन्तु वर्णन-क्रम में इसका छठाँ स्थान है। इस समय पादपों और बल्लरियों में नए कुसुम एवं नूतन किसलय लहलहाते हैं। पीले पुष्पों से परिपूर्ण पृथ्वी पीली साड़ी-सी धारण किए हुए प्रतीत होती है। यह शिशिर रूप वृद्धावस्था का प्रतीक-काल होता है।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 304.।
2- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 336.।
3- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 309.।

"पद्मावत" में स्त्री- पुरुषों के एक साथ मिलकर चाँचर खेलने के साथ भँवरों का पुष्पों से क्रीड़ा करने का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव प्रदर्शित है। यहाँ प्रिय- संयोग में विरह के भस्म हो जाने और दुःख के भुला दिए जाने की भी मूर्त कल्पना विद्यमान है। धनि रूप शशि और प्रिय रूप सूर्य के परस्पर प्रेम- कलह में रूपक द्वारा आभरण रूप नक्षत्रों के टूटने की उद्भावना भी अत्यंत उच्चकोटि की है।[1]

"कन्हावत" में मात्र परिधानों, शृंगारों तथा क्रीड़ाओं के उल्लेख तक ही उन्होंने अपने को सीमित रखा है। इसमें अर्थ- गाम्भीर्य या भावातिरेक के दर्शन नहीं होते। "कन्हावत" के प्रत्येक ऋतु- वर्णन में उल्लेख की ही प्रधानता है। वर्णनों का पिष्टपेषण अधिक हुआ है। यहाँ तक कि "मिले रहहिं एक पास" अर्द्धाली की प्रथम बार ऋतुओं के वर्णनों में आवृत्ति की गई है तथापि इसके षड्ऋतु- वर्णन की सहजता "पद्मावत" के संश्लिष्ट और अलौकिक चित्रणों से कम मनोहारी नहीं है। यहाँ एक ओर ग्राम्य वातावरण में जब दम्पति के सहज मिलन - सुख का यथार्थ चित्रण है वहीं ऋतुगत अनुकूल परिधान, आभूषण,प्राकृतिक वातावरण तथा एकान्त सुख में सहज क्रीड़ाओं का भी योगदान है। कुब्जा और पद्मावती के निवास-स्थान में निम्न प्रकार से कुछ समानतायें द्रष्टव्य हैं :-

<u>कन्हा०-</u> हीरा ईंट कपूर कै माटी[2] ।।

<u>पद्मा०-</u> हीरा ईंट कपूर गिलावा[3] ।।

<u>कन्हा०-</u> औ गच कीन्ह चून कै मोती[4] ।।

1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 335.
2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 304.3
3- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 289.2
4- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 304.4

पद्मा०- चूना कीन्ह अवटि गज मोती[1] ।

कन्हा०- कै खण्ड सात धौराहर पाटा ।

कन्हा०- तेहि ऊपर लइ सेज बिछाई[2] ।

कन्हा०- तहँ लेइ कन्ह कीन्ह सोनारा[3] ।

पद्मा०- सात खण्ड ऊपर कबिलासू । तहँ सोवनार सेज सुख बासू[4] ।

कन्हा०- सुरँग सेज जनु रचेउ बेवाना[5] ।

पद्मा०- कनक खम्भ जनु रचेउ हिंडोरा[6] ।

कन्हा०- सुरँग चँदोवा ऊपर ताना[7] ।

पद्मा०- ऊपर रात चँदोवा छावा[8] ।

कन्हा०- गेंडुवा सुरँग दुहूँ दिसि धरे[9] ।

पद्मा०- दुहुँ दिसि गेंडुवा औ गलसुई[10] ।

1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 289.4
2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 306.3-4
3- वही, कड़वक 305.4
4- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 291.1
5- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 307.6
6- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 289.6
7- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 307.6
8- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 291.4
9- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 307.7
10-"पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 291.6

आरम्भिका -

विरह अर्थात् रहस् "एकान्त" और वियोग अर्थात् योग (युगल-भाव) के विपरीत शब्द प्रेमी- प्रेमिकाओं के परस्पर बिलगाव और यदा-कदा निकट रहते हुए भी एक दूसरे से विमुख रहने के अनन्तर उत्पन्न होता है। परिणामस्वरूप पूर्वराग, क्रीड़ा, मिथुनानन्द, मिलन की उत्कण्ठा, व्याकुलता आदि के स्मरण से प्रेमी का हृदय विचित्र और महती पीड़ा से बेचैन रहने लगता है। इसकी पराकाष्ठा तब होती है जब विरही को समस्त दृष्ट- अदृष्ट जगत ही विरह के दु:ख में डूबा दिखाई देता है। साधनात्मक प्रेम में विरही अपने को प्रेमी में लय कर चुका होता है। विरह एकनिष्ठ न रहकर सर्व जनसाधारण में व्याप्त दिखाई देता है।

आचार्य मम्मट ने विप्रलम्भ अथवा विरह या वियोग को पाँच प्रकार का माना है। उनके अनुसार- अपरस्तु अभिलाष- विरहेर्ष्या- प्रवास - शापहेतुक इति पंचविध: । काव्यप्रकाश चतुर्थ उल्लास:। दूसरा अर्थात् संयोग श्रृंगार के अतिरिक्त विप्रलम्भ श्रृंगार वह है जो कि (1) अभिलाष (पूर्व राग या मिलन की उत्सुकता) (2) विरह (अनुराग में न्यूनता या अनुरक्ति में भी मिलन- बाधा अथवा संकोचादिवश मिलन का अभाव) (3) ईर्ष्या (मानवश), (4) प्रवास (अनुरक्ति में ही विभिन्न देशस्थिति) और (5) शाप (सिद्ध- पुरुष- वचन से मिलने की अवधि का अभाव) इन निमित्त भेदों से पाँच प्रकार का हुआ करता है।

उपर्युक्त पाँच निमित्तों से प्रेमियों के हृदय में संयोग की विपरीत अवस्था में विरह की अनुभूति होती है। ये प्रेम की कसौटियाँ है। डॉ० वासु

अनुमान द्वारा चकोर कहते हैं "वियोग ही तो प्रेम का वास्तविक परीक्षा है, जिसके प्रश्नोत्तर के पश्चात् सच्चा परिणाम प्राप्त होता है। सच्चा प्रेम वह तप्त स्वर्ण है जो अग्नि में पड़ने के पश्चात् मूल्यवान बनता है।[1]

हिन्दी के भक्तिकाल में भी सूर, कबीर, तुलसी आदि कवियों ने भक्ति की विभिन्न कोटियों के आश्रय से जो अपनी रचनाएँ की उनमें भी विरह को प्रेम की कसौटी के रूप में चित्रित किया गया। नारद भक्तिसूत्र, शांडिल्य भक्तिसूत्र, मीमांसा- दर्शन आदि ग्रन्थों में भी विरह को भक्ति-मार्ग का प्रमुख तत्त्व बताया गया। श्रीमद्भागवत जहाँ से "कन्हावत" की कथा उद्धृत है, गोपियों की भगवान कृष्ण में अनन्य भक्ति के अन्तर्गत भ्रमरगीत, गोपिकागीत आदि के माध्यम से विरह की उत्कट व्यंजना प्रस्तुत की गई है। एक स्थान पर विरहिणी गोपियों को सान्त्वना देने हेतु उद्धव जी द्वारा श्रीकृष्ण का संदेश बताया गया है :-

> यत् त्वहं भवतीनां वै दूरेवर्तेप्रियो दृशाम् ।
> मनसः संनिकर्षार्थं मदनुध्यान काम्यया ।।
> यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आविश्य वर्तते ।
> स्त्रीणां च न तथा चेतः संनिकृष्टेऽक्षिगोचरे।।[2]

अर्थात् हे गोपियों! इसमें सन्देह नहीं कि मैं तुम्हारे नयनों का ध्रुव-तारा हूँ। तुम्हारा जीवन- सर्वस्व हूँ, किन्तु मैं जो तुमसे इतना दूर रहता हूँ, उसका कारण है। तुम निरन्तर मेरा ध्यान कर सको, शरीर से दूर रहने पर भी मन से तुम मेरी सन्निधि का अनुभव करो, अपना मन मेरे पास रखो क्योंकि स्त्रियाँ और अन्यान्य प्रेमियों का चित्त अपने परदेशी

1- "सूफी कवि जायसी का प्रेमनिरूपण": निजामुद्दीन अंसारी, पृ0-125.
2- "श्रीमद्भागवत", स्कन्ध-10, अ0-47, श्लोक 34-35.

प्रियतम में जितना निरन्तर भाव से लगा रहता है, उतना आँखों के सामने, पास रहने वाले प्रियतम में नहीं लगता।" इस भक्ति-भावना में भी विरह को ही महत्ता प्रतिष्ठित की गई है। सूफियों ने साधनात्मक प्रेम में विरह-भावना को प्रतिष्ठित करके इसके आध्यात्मिक पक्ष पर विशेष बल दिया। जायसी ने भी कहा है -

"गुरु विरह चिनगी पै मेला ।
जो सुलगाइ लेइ सो चेला ।।"[1]

"मुहमद चिनगी अनँग की सुनि महि गँगन डेराइ ।
धनि बिरही औ धनि हिया जेहि सब आगि समाइ।।"[2]

"प्रीति बेलि सँग बिरह अपारा । सरग पतार जरे तेहि झारा।।"[3]

इस प्रकार जायसी ने प्रेम की पुष्टि के लिए विरह की विराट् कल्पना की। उनकी प्रेमसाधना में सबसे बड़ी विशेषता यही रही कि वह लौकिक से सदा अलौकिक की ओर उन्मुख रही है। यदि श्रीमद्-भागवत की भक्ति- भावना में गोपी- विरह की इससे तुलना करें तो दोनों की भावना एक सी ही है।अन्तर केवल इतना है कि जायसी ने अपने विरह-वर्णन में नाथपंथियों, हठयोग और सूफियों की साधनाओं का समावेश किया है तथा विरह की पराकाष्ठा व्यक्त करने के लिए अतिशयोक्तियों ही नहीं अत्युक्तियों का भी अत्यधिक प्रयोग किया है। उनका "पद्मावत" प्रेम का आकर ग्रंथ है। उसकी तुलना में पूर्ववर्ती कोई भी सूफी कवि नहीं ठहर पाया। "पद्मावत" से श्रीमद्भागवत की प्रेमा-भक्ति अधिक निकट प्रतीत होती है।

1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 125.
2- वही, कड़वक 205.
3- वही, कड़वक 254.5

शृंगार रस के संयोग का वर्णन जायसी ने षड्ऋतु- वर्णन के माध्यम से अत्यधिक स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त किया है और विप्रलम्भ का बारहमासों (बारहमासा) के अन्तर्गत् ।

"बारहमासा" के वर्णन की परम्परा के स्रोत के सम्बन्ध में निश्चय रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, तथापि इसका स्रोत अपभ्रंशकालीन जन-जातियों को माना जाता है। जैसाकि नाम से ज्ञात होता है कि बारह-मासा प्रियतम के लम्बे प्रवास अर्थात् बारहमासों में उत्पन्न विर-हिणी की व्यथा का वर्णन है, कवि वर्षपर्यन्त, प्रतिमास प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव वियोगिनी के शरीर, मन और उसके व्यवहार में भी दर्शाता है। संयोगकाल में प्रकृति के जो उपादान अथवा वस्तुएँ संयोगिनी को आनन्द-वृद्धि में उद्दीपक सिद्ध हुई होती हैं उन्हीं को कवि द्वारा वियोगिनी को व्याकुल कर देने वाली चित्रित किया जाता है। यहाँ प्रत्येक मास में परिवर्तित प्रकृति के वातावरण में संयोगकाल का प्रिय-संग उसे स्मरण आ जाता है और तभी समागम- सुख का अभाव उसे सताने लगता है। चाँदनी भी विरहिणी को नागिन बनकर डसने लगती है, धूप अग्नि बनकर भूँजने लगती है और घन- गर्जना वज्र बरसाती है। इस प्रकार परिवर्तित प्राकृतिक रूप के साथ उद्भूत क्रियाएँ- प्रतिक्रियाएँ परिवर्तनशील मानव की अनुभूतियों और संवेदनाओं को जन्म देती हैं जिनके कारण विरह- व्यथा भी देश-काल- भेद से परिवर्तित रूपों में होती रहती है। काव्यों में बारहमासा के अन्तर्गत् इनके वर्णन की परंपरा रही है। बारहमासा-वर्णन प्रकृति और विरही या विरहिणी के सम्बन्ध से उत्पन्न भावों और अनुभावों की मार्मिकता व्यक्त करने की कामना का परिणाम है।

हिन्दी के आदिकाल में बारहमासा-वर्णन हमें नरपतिनाल्ह कृत "बीसलदेवरासो" के रानी राजमती के वियोग वर्णन में मिलता है। विद्यापति ने भी इसकी परम्परा ग्रहण की और वियोग का मार्मिक

वर्णन किया। अब्दुर्रहमान, मंझन, उसमान, दुखहरनदास, बोधा आदि कवियों ने भी इसे प्रतिपाद्य बनाया। जायसी ने तो भावनात्मक और साधनात्मक प्रेम के आश्रय से इसमें पारलौकिक व्यंजना का पुट देकर इतना विशद वर्णन किया कि वह हिन्दी साहित्य की अनुपम- निधि बन गई । वास्तव में यदि सूर वात्सल्य का कोना- कोना झाँक आए थे तो जायसी विप्रलम्भ वर्णन की इति कर चुके प्रतीत होते हैं। इस विषय में अद्यावधि उनका कोई सानी कवि नहीं हुआ।

"पद्मावत" में जायसी ने वियोग का सांगोपांग चित्रण किया है जिसमें नागमती और पद्मावती दोनों विरहिणी नारियों का अलग-अलग चित्रण है किन्तु "कन्हावत" में किसी एक का नहीं अपितु सेवा-परायणा राधी, प्रियतमा चन्द्रावली सहित समस्त प्रिय गोपियों के समन्वित विरह का चित्रण है। नागमती परित्यक्ता थी और उसकी गोद भी सूनी थी, पद्मावती कामिनी, राजकुमारी और प्रेम दीवानी थी। अत: नागमती का विरह पद्मावती की अपेक्षा कुछ अधिक वेदना की टीस से पूरित है। यह हिन्दू विरहिणी के जीवन की विराट् पवित्र तथा मार्मिक व्यथा- कथा है जो साधारणीकरण की स्थिति पाकर विश्व-व्यापिनी बन गई। इनमें विरहिणी की शारीरिक, मानसिक और व्यवहारिक तीनों की प्रभाव-दशाओं का हृदयस्पर्शी निरूपण है। कवि ने शारीरिक व्यथाओं के चित्रण में आठों शास्त्रीय सात्त्विक एवं अनुभावों- स्तम्भ, प्रलय, रोमान्च, स्वेद, वैवर्ण्य, वेपथु, अश्रु और वैस्वर्य को भी स्थान दिया है। कुछ प्रयोग शास्त्रेतर किन्तु विचित्र और प्रभावशाली भी हैं । किन्तु "कन्हावत" में इन सात्त्विक भावों का लक्षण बारहमासा में स्पष्ट नहीं मिलता। जो भाव प्राप्त भी होते हैं वे स्पष्ट नहीं हैं या अन्य भावों के साथ मिश्र हो गए हैं। स्तम्भ,प्रलय, वैवर्ण्य, वेपथु, अश्रु आदि शारीरिक सात्त्विक भावों के उदाहरण "कन्हावत" में इस प्रकार हैं -

स्तम्भ :- क्या ब कुंछ पिंजर जस रेवा ।
कहे न रहैं परान परेवा[1] ।।

प्रलय :- "हम जलवारि करे को पारा । जाजर नाव थाकि मंझारा।।
खेवक नाव नवरिया, लोभि रहा अदराहिं ।
सोरह सहस गोपिता, बूड़त हैं अवगाहि[2] ।।"

वैवर्ण्य :- बिरह अंगोठी दाधे देहा ।
सुलुगि- सुलुगि तन भा जरि खेहा[3]।।

वेपथु :- "हिय थर- थर कांपे बिनु साईं ।
सब तन डोल बाव कै नाईं[4] ।।"
"झिरकै पवन कांप उठि हिया ।
एहिं बियोग धौं को अब जिया[5]।।"

अश्रु :- भरे नैन जलहर अतिवानो ।
बरनैं कुवरिहिं वान दरबानी[6]।।

"पद्मावत" में विप्रलम्भ के अभिलाष,विरह, ईर्ष्या,प्रवास और शाप- पाँचों निमित्त उपस्थित हैं। "कन्हावत" में केवल शाप ही विप्रलम्भ का कारण नहीं बन सका है। अभिलाष, पूर्वराग अथवा मिलन की उत्सुकता निम्न दोहे में द्रष्टव्य है :-

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 318.7
2- वही, कड़वक 314.7- दो.
3- वही, कड़वक 318.3
4- वही, कड़वक 318.2
5- वही, कड़वक 320.2
6- वही, कड़वक 313.3

"आवहु कन्ह मया कै, गोपिन्ह प्रान अधार ।
ऊजर हिया बसावहु, करहु हमारइ सार ।।"

"सोऊहि लागै नोक बसन्तू । जो रे जियसि घर आवै कंतू ।।[1]

गोपियाँ अपनी रक्षा के लिए और उजड़े हृदय को बसाने के लिए प्राणाधार कन्ह की आगमन- कृपा के लिए व्यग्र हैं। इसी प्रकार-

"मधु तहँ जाइ अधिक सुख पावा ।
तो एहि दुख कहँ बहुरि न आवा[2]।।"

कन्ह का गोपियों से अनुराग का अभाव भी विरह का कारण बना है क्योंकि गोपियाँ सम्भावना व्यक्त करती हैं कि सम्भवत: कन्ह को मधुबन में अधिक सुख मिला हो जिससे गोपियों के प्रति उनके अनुराग में कमी आ गई। सौत कुब्जा के प्रति ईर्ष्याभाव और गोकुल छोड़कर मधुबन प्रवास तो मूल कारण ही है -

"को कुदिष्टि जानै हरि केरी । सोत कीन्ह जी कुबजा वेरी[3]।।"
""सुख कुबजा दुख गोपिन्ह बाँटि । सेजवाँ अगिन फूल जस काँटि ।।
जानहु मदन सर लागहिं, सौर सौत करसाल ।
सब दिन बैठि गँवावत, रैनि आव जनु काल ।।"
" कै उजार गोकुल हरि गए । को बसाउ मिरगारन भए[4] ।।"

"कन्हावत" के बारहमासा में प्रत्येक मास का पहले प्रकृति-परिवर्तन उल्लिखित है जैसे आषाढ़ में वर्षा, मेघ, विद्युत कोकिल, दादुर। पुन: सुहागिनियों के समयानुसार वस्त्रालंकार धारण करके क्रीड़ा, हर्षोल्लास

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 318 दो० तथा 321-7
2- वही, कड़वक 314.6
3- वही, कड़वक 319.5
4- वही, कड़वक 321.5- दो०-6

का अंकन किया गया है। इन्हीं सुहागिनियों की क्रीड़ाओं तथा प्रिय-संयोग को देखकर विरहिणियों पर प्रभाव वर्णित किया गया है। अन्त में सौत कुब्जा के सौभाग्य और अपना दुर्भाग्य स्मरण कर गोपियाँ कन्ह के प्रति अपने प्रेम में की गई त्रुटि की सम्भावना से उद्विग्न होती हैं :-

हम दुहाग ओहि दीन्ह सुहागु ।
भए दिन ओछ फिरा अस भागु ।।[1]

किन्तु आशंकाएं जब क्षीण प्रतीत होती हैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि जिसे प्रिय चाहे वही रूपवती है "जेहि पिउ चाहै सोइ सरूपा।"[2] सर्वत्र उनकी विवशता प्रतिपादित है क्योंकि कन्ह के पास न कोई जाने वाला है और न कुशल संदेश लाने वाला ही है।

"बारहमासा"- वर्णन के पूर्व "कन्हावत" में कन्ह द्वारा कह कर भी पुनः न लौटने पर गोपियों की स्वाभाविक चिन्ता का उल्लेख किया गया है। इसके लिए वे अनेक सम्भावनाएं व्यक्त करती हैं। उनमें प्रथम, यह है कि सम्भवतः गोकुल की अपेक्षा कन्ह को मधुबन में अधिक सुख मिल रहा हो। दूसरे, वह किसी रूपवती नारी के प्रभाव में पड़कर भूल गए हों। तीसरे, सम्भव है गोपियों में अपेक्षाकृत गुणाभाव देखा हो। चौथे, गोपियाँ सेवा करने में कमी रखती हों जिससे क्रोधित होकर उसी स्थान पर रम गए। पाँचवें, कन्ह की किसी आज्ञा का पालन न किया हो। अतः उसी अनुरूप के कारण भेंट न करते हों। छठवें, बंदी बना लिए गए हों। उपर्युक्त छहों कारणों में गोपियों को किसी एक पर भी निश्चय नहीं हो पाया क्योंकि विवशता यह थी कि कोई गोकुल से मधुबन जाकर लौटा नहीं, इसलिए किससे पूछती ?

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 319.6
2- वही, कड़वक 311.6

इन कारणों की सम्भावनाओं में प्रथम दो पुरुषगत स्वार्थ प्रकट है। पर नारी पर मोह जाना पुरुष-स्वभाव की सामान्य कमजोरी व्यक्त की गई है। इसके साथ ही नारी द्वारा पुरुषों पर शंका करने का भी स्वाभाविक अवगुण वर्णित है। तीसरे से पाँचवें कारणों तक स्वयं में अवगुण ढूँढने का पतिव्रता नारी का लक्षण लक्षित है। सामान्य नारियों तथा सती महिलाओं की परस्पर विरोधी मनोवृत्तियों का यहाँ अत्यंत स्वाभाविक, सरस और ग्रामीण परिवेशयुक्त वर्णन दर्शनीय एवं हृदयग्राही है।[1]

"पद्मावत" में नागमती भी पुरुषों पर शंका करने के नारी-स्वभाव के कारण रत्नसेन पर किसी नागरी नारी के वश में हो जाने की संभावना करती हैं। वह भी पुरुष की इस कमजोर नस की ओर संकेत करती है।

"नागरि नारि काहु बस परा । तेइँ बिमोहि मोसौं चितु हरा।।[2]
इसके पश्चात् वह सारा दोषारोपण सुवा पर करती है। इस छल को वह राजा बलि, भर्तृहरि, कर्ण, गोपीचन्द्र, श्रीकृष्ण और स्वयं पर प्रयुक्त किया गया बताती हैं।[3] "कन्हावत" में भी अक्रूर के द्वारा कन्ह को छल से ले जाने की बात कही गई है -

कत अक्रूर आवा संसारा । जो पै गा हरि कहि पैसारा ।।[4]
"पद्मावत" में अधोलिखित वर्णन तुलनीय है :-
लै कान्हहि भा अक्रूर अलोपी । कठिन बिछोउ जिऐ किमि गोपी।।[5]

"पद्मावत" के दृष्टान्तों से इस तथ्य का पता चलता है कि राजघरानों में छल- छद्मकारी व्यक्ति अपनी कूटनीति से स्वार्थ सिद्ध करते हैं।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 310.
2- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 341.2
3- वही, कड़वक 341.
4- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 322.6
5- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 341.7

गोपियों ने जब सुना कि कन्ह कुब्जा के प्रेम में पड़े हैं तो उनके मन में बड़ा दु:ख हुआ। उन्हें बचपन में कन्ह द्वारा गाय चराते समय से अपनी प्रीति स्मरण आई। वे सोचने लगीं कि हमने तो सदा श्रीकृष्ण पर प्राण निछावर किया तब पर भी उन्होंने छल किया। वे कुब्जा द्वारा चन्दन दिए जाने पर कन्ह के प्रसन्न होने पर व्यंग्य करती हैं कि यदि चन्दन पर ही लट्टू होते हैं तो हमसे क्यों नहीं माँगा? पुनः वे कुब्जा पर टेढ़े होकर चलने की मीठी चुटकी लेती हैं कि यदि कन्ह को टेढ़ा चलना अच्छा लगता है तो हमसे बताए होते तो हम भी उसी चाल से बढ़िया चलतीं। अन्त में वे कन्ह की आदत पर खीझती हैं कि मिलन के निकट दिनों को गोपियाँ गिन कर जितना निकट समझ रही हैं उतनी ही दूरी बढ़ती जा रही है :-

" चन्दन जेह नीक तुम्ह लागा । हहहि काह न हमसों माँगा ।।
टेढ़ी चाल जो रे तुम्हँ लोभा। कहँहु हम चलहिं तेहिं सोभा ।।
कौन बानि हरि तूँ अब, रे लेहे दिन पूरि ।
जत कन-कन नियरावहिं, अवधि जाइ नित दूरि।।"[1]

"पद्मावत" में काम-दग्ध नागमती के विरह की अवस्था का अत्यंत मार्मिक चित्रण उपस्थित है। काम-बाण से आहत उसका शरीर रक्त से पसीज जाता है, प्राण अब तक निकलने वाले ही रहते हैं, वह सुबककर निश्वास छोड़ती हैं जिससे उसके तन में प्राण रूप हंस के पंख जल उठे। सखियाँ इसे प्रेम की कठिन साधना बताकर मधुर फल-प्राप्ति की आशा देती हैं। यहाँ मृगशिरा में तपने पर आर्द्रा में पल्लवित होने का दृष्टांत दिया गया है। यह लोक-जीवन का कटु सत्य अनुभव जायसी की नक्षत्रों

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 311, 4-5 दो.

तथा उसके प्रभावों से सम्बन्धित जानकारी भी प्रकट करता है। यह भाव रसिकों के नेत्रों के समक्ष काव्यात्मक चित्र का सौन्दर्य उपस्थित करता है।

कामज-मन से उत्पन्न काम का नाम है। इसमें हृदय का योग एक ओर वासनात्मक प्रेम का निरसन करता है दूसरी ओर प्रेम की प्रगाढ़ता, पवित्रता, अमरता का अभिषेक करता है। जायसी इसी भावना से प्रेम को स्वार्थपरता तथा शरीरासक्ति से दूर रखकर उदात्त और अलौकिक बना सके हैं। अत: स्पष्ट है कि मानसिक प्रभाव के कारण ही विरह शरीर और व्यवहार को भी प्रभावित करता है। इससे मानसिक प्रभाव की सर्वोच्चता सिद्ध होती है। आचार्यों ने इसे कामदशा कहकर अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, उद्वेग, गुण कथन, प्रलाप, उन्माद, जड़ता, व्याधि, मरण रूप में दशधा व्यक्त किया है।

"कन्हावत" के सम्पूर्ण "बारहमासा में वर्णनात्मकता की ही प्रमुखता है। भावात्मक प्रवाह की भी कमी नहीं है, सर्वत्र प्रसाद गुण की अधिकता है। "बारहमासा" के अन्तर्गत प्रत्येक मास के वर्णन में कहीं-कहीं एकाध उपमान आए हैं वे भी लोकगृहीत तथा पारम्परिक हैं जैसे :-
"बरनें चुवहिं बान दरसानी।"[1] इसमें समस्त गोपियों के बिरहोद्दीपन में जहाँ एक ओर प्रकृति कारक है वहीं दूसरी ओर सौत भी उनके हृदय में कम शूल नहीं उत्पन्न करती :-

"अति पुरवा बावै नित झेरीं । भा वियोग जियँ गोपिन्ह केरीं ।।
कन्त लोभाइ और संग रहा । सो दुख सौंवर जाइ नहिं (सहा)[2] ।।"

यहाँ यह भी कथनीय है कि गोपी-विरह में कन्ह आलम्बन हैं। "पद्मावत" की अपेक्षा "कन्हावत" में प्रकृति के तत्वों का उद्दीपन रूप अत्यल्प है। यहाँ गोपियाँ सामान्य स्त्रियों जैसा आचरण करती हैं।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 313.3
2- वही, कड़वक 312.5,7

उनका सोचना- विचारना भी सामान्य है तथा उनका वर्णन भी सरल, सुबोध और जनभाषा में सादे रूप में किया गया है जिसमें "पद्मावत" की भाँति न उपमानों का अधिक उपयोग है, न अतिशयोक्तियों की झड़ी और न विरह की तीव्र वेदना ।

> हमररखे अब निसि-दिन, भइ नहिं कन्हु सों भेंट ।
> अरि मानुस गा आनहर, साध रही सब पेट[1] ।।

यहाँ "रखे" शब्द ग्रामीणता का परिचायक है और "साध" एक साधारण स्त्री की शरीरासक्ति का।

> जग जल बूड़ि जहाँ लगि ताकी ।
> मोर नाव खेवक बिनु थाकी[2] ।।

"पद्मावत" की नागमती को समस्त संसार वियोग-जल में डूबा हुआ प्रतीत होता है जिसमें खेवक रूप पति के बिना जीवन रूपी नौका स्तम्भित है। वह चारों ओर परवशता से घिरी है जिससे पार होने का एकमात्र सहारा पति रूप ईश्वर ध्वनित होता है। "कन्हावत" में भी उपर्युक्त पंक्ति का आशय निम्न प्रकार अभिव्यक्त किया गया है:-

> हम जलवारि करै को पारा ।
> जाजर नाव थाकि मंझधारा।।
> खेवक नाव नवरिया लौभि रहा अदरारिहं ।
> सोरह सहस गोपिता, बूड़त हैं अगाहि[3] ।।

पूस मास के वर्णन में हृदय- कम्प, विरह-दाह से तन का वैवर्ण्य प्राणान्त की निकटता और शरीर के कंकाल हो जाने का स्वाभाविक वर्णन है। उपमा और रूपक के द्वारा विरह की पीड़ा और शारीरिक

~~1- कन्हावत: शिव सहाय पाठक, कड़वक 313 दोहा~~
1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 345.7
3- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 314.7 दोहा

अवस्था का भी काव्यमय चित्रण किया गया है। विरहिणी का तन और हृदय पति के बिना थर- थर कँप रहे हैं। शरीर तो वायु के झोंके से पत्ते के समान कम्पायमान हो रहा है -

हिय थर- थर काँपे बिनु साईं। सब तन डोल बाब के नाईं[1] ।।

उसका शरीर विरह रूपी अँगीठी से सुलग- सुलग कर छार हो चुका है। क्यों शीतलता में भी उसे ताप की क्या आवश्यकता? उसका शरीर तो स्वयं विरह को अँगीठी पर रखा हुआ है। जाड़े में अँगीठी " ताप-निवारण के लिए प्रयोग की जाती है और सूर्य के ताप का भी सेवन किया जाता है। किन्तु जब विरहिणी का शरीर अँगीठी में पड़ा हो तो सूर्य का ताप अँगीठी के ताप द्वारा छार होने से बचे- खुचे शरीर को भस्म में परिणत करने के काम में ही आ सकता है। इसी भाव की व्यंजना अधोलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

" विरह अँगीठी दाधै देहा ।
सुलगि-सुलगि तन भा जरि खेहा।।
अबहुँ जो रे सुरुज वलि आवै ।
भसम होइ तन वेगि न पावै ।।"[2]

=======

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 318.2
2- वही, कड़वक 318.3-4

अष्टम अध्याय

अष्टम अध्याय

"कन्हावत" का दर्शन

(क) "कन्हावत" की परमसत्ता सम्बन्धी विचारधारा -

"कन्हावत" की अपेक्षा "पद्मावत" में जायसी की दार्शनिक विचार-धारा अधिक स्फुट हुई है। कवित्व और दार्शनिकता का यह समन्वय जायसी को सच्चा रहस्यवादी सिद्ध करता है तथा उनका कवित्व दार्शनिकता पर आधारित प्रतीत होता है "क्योंकि कोई दार्शनिक हुए बिना सच्चा कवि हो ही नहीं सकता। जिस कवि की कविता बिना किसी दार्शनिक आधार के प्रस्तुत होती है, वह सूक्ति तो कही जा सकती है, किन्तु उसे कविता कदापि नहीं कह सकते।"[1] दार्शनिकता के इस रहस्य के कारण लोग जायसी को सूफी सन्तों और साधकों की पंक्ति में भी बैठाने लगे हैं। दूसरी ओर प्रो० विजयदेव नारायण साही का कहना है कि पद्मावत और पद्मावतकार को सूफी प्रभामण्डल से मुक्त करके देखा जाना चाहिए।[2] उनका विचार है कि जायसी का प्रस्थानबिन्दु अध्यात्म नहीं है।[3] यहाँ हमारे आलोच्य ग्रन्थ "कन्हावत" के परिप्रेक्ष्य में दार्शनिक तत्वों की विवेचना अभीष्ट है।

सूफी मत के अभीष्ट साध्य प्रेम की प्रतिष्ठा में जायसी को जहाँ कहीं से अनुकूल विचार मिले तथा जहाँ तक जायसी की पहुँच रही वहाँ से उन्होंने तत्वों का चयन कर अपने ग्रन्थों में गूँथ दिया। सूक्ष्म आत्म तत्व से सम्बन्धित समस्त गूढ़ और गम्भीर विषय तथा समस्याएँ अध्यात्म

1- "जायसी का पद्मावत काव्य और दर्शन" : डॉ० त्रिगुणायत गोविन्द पृ०- 137.
2- जायसी : प्रो० विजयदेव नारायण साही, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, पृ०- 75.
3- वही, पृ०- 65.

के अन्तर्गत् विचारणीय होती हैं। भारत में उपनिषद्, वेदान्त दर्शन एवं अध्यात्म- चिन्तन के मुख्य आधार हैं। इनमें आत्मद्वय के सिद्धान्त की मान्यता है जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सूफी मत में भी स्वीकृत है। सूफी कवि रूमी ने आत्मद्वय के सिद्धान्त की स्पष्ट विवेचना करते हुए कहा है कि "आत्मा अपने कुछ ही संस्कारों के कारण परमात्मा से अलग हो जाती है और जगत में आकर अपने उस मूल स्रोत से मिलने के लिए तड़पती रहती है और वहाँ तक पहुँचने के लिए साधना करती रहती है। साधकात्मा की साधना जब अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है तभी वह साध्य रूप हो जाती है।[1]" वेदान्त में भी माया को ब्रह्म और जीव के मध्य व्यवधान माना गया है। योग- दर्शन की सूर्य- चन्द्र- साधना, कुल- कुण्डलिनी योग, नाद- बिन्दु- योग, सभी आत्म- द्वय के सिद्धान्त को ही प्रतिपादित करते हैं। इस साधना का विवेचन हमें सर्वप्रथम मुण्डकोपनिषद् में उपलब्ध होता है। "यथा

" प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ।।[2]"

अर्थात् साधक को प्रणवरूपी धनुष और जीवात्मा रूपी बाण से, ब्रह्मात्मा रूपी लक्ष्य को बड़े अप्रमत्त भाव से वेधना चाहिए। कठोपनिषद् में प्राप्त और प्राप्तव्य भेद है, श्वेताश्वेतर उपनिषद् में दो पक्षियों के रूपक से तथा माण्डूक्योपनिषद् में आत्मद्वय के सिद्धान्त की व्यंजना प्रणव-योग के प्रसंग से की गई है।

1- "जायसी का पद्मावत काव्य और दर्शन" : डॉ० त्रिगुणायत गोविन्द पृ०- 188.
2- मुण्डकोपनिषद् द्वितीय मुण्डक, खण्ड - 2, श्लोक - 4.

"कन्हावत" भी आत्मैक्य के सिद्धान्त पर आधारित है। श्रीकृष्ण षोडशकलामण्डित विष्णु के अवतार हैं तथा गोपियाँ जीवात्मायें हैं। अज्ञान दोनों के मिलन में व्यवधान है। श्रीकृष्ण राधा को उपदेश करके स्पष्ट करते हैं कि मायारहित होने पर उन्हें परमात्मा का साक्षात्कार सम्भव होगा। वे उन्हें यह भी समझाते हैं कि जीवात्मा और परमात्मा के मध्य कोई अन्तर नहीं है, दोनों एक हैं। परमात्मा का साक्षात्कार केवल हृदयस्थ नेत्र से ही हो सकता है, बाह्य चक्षुओं से नहीं[1]। उपर्युक्त आशय की निम्न पंक्तियाँ दर्शनीय हैं -

" औ तुम्ह कारण बन- कुण्ड लीन्हेउँ ।
सबै गुपुत गुन परगट कीन्हेउँ ।।
अब कस सखिन्ह ओट भए बोलहु ।
दूरि करहु अँतरपट खोलहु ।।"[2]

" पिंजर माहिं पंखि जस परौं ।
तुम्ह मुकतैं हम गोड़ बाँधरीं।।"[3]

" मोहि- तोहि राधो अँतर नाहीं ।
जइस दोउ पिण्ड परछाहीं ।।"[4]

जायसी का दर्शन द्वैत को प्रेम से नष्ट करके अद्वैतभाव स्थापित करना है। आत्मैक्य की कला का नाम अद्वैतवाद है।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 112.6
2- वही, कड़वक 258.2-3
3- वही, कड़वक 259.2
4- वही, कड़वक 260.1

सूफियों का मार्ग आरम्भ से ही "प्रेममार्ग" रहा है। साधन प्रेम था और लक्ष्य प्रेम प्रभु की प्राप्ति। इस लक्ष्य की पूर्ति में गुरु का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान रहता था। जायसी के शब्दों में -

"जो गुरु चेलहि चहै चढ़ावा। सरग काह सिव-लोक लौ पावा।।"[1]

अर्थात् यदि गुरु शिष्य को ऊँचा उठाना चाहे तो वह स्वर्ग क्या शिव लोक भी पा सकता है। "गुरु शिष्य के हृदय में प्रेम का दीपक जलाकर दिव्य आलोक प्रकाशित करता है।"[2] यह दिव्य ज्योति ही प्रेम-ज्योति या ब्रह्मज्योति अथवा ज्ञानज्योति है जिससे ब्रह्म की सौन्दर्यानुभूति होती है और 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' का ज्ञान होता है। हृदय निर्मल हो जाता है अर्थात् अहं नष्ट हो जाता है जिसके साथ काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार लुप्त हो जाते हैं और तब सोऽहम् की अनुभूति से जीव और ब्रह्म तथा ब्रह्म- जगत की एकता का ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार जीव और परमात्मा की एकता अर्थात् अद्वैतवाद की स्थापना हो जाती है।

जायसी किसी दर्शन विशेष से प्रभावित न थे और न दर्शन का प्रतिपादन करना उनका ध्येय ही था। वे ऐसा व्यावहारिक जीवन दर्शन प्रस्तुत करना चाहते थे जिसमें सर्वसाधारण की रुचि हो। मध्य-काल के अनेक साम्प्रदायिक कवियों अथवा सन्तों ने गृहस्थ आश्रम की निन्दा की और उसे त्यागने पर बल दिया। भारतीय दर्शन में संसार को विनश्वरता दिखाकर उसके प्रति विराग और घृणा का भाव उत्पन्न किया गया। संसार को मायाजाल, गोरखधंधा आदि कहकर

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 103.2

2- " लेसा हिए पेम कर दिया। उठी जोति भा निरमल हिया।
मारग हुत अँधियार असूझा। भा अँजोर सब जाना बूझा।।"
"पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 18.2-3

ज्ञान द्वारा मुक्ति का उपदेश दिया गया। सांसारिक भोगों को सर्वथा त्याज्य कहा गया तथापि उनका उद्देश्य अनासक्त भाव से भोगों को थोड़ा भोगने का था। जायसी भी कहते हैं कि वही सन्यासी तथा शिवलोकवासी है जो गेही होकर भी उदासीन रहे -

"सोइ तपा औ सो कैलासी ।
गिरहों महँ जो रहे उदासी।।"[1]

श्रीमद्भगवद्गीता में भी राजा जनक की प्रशंसा में कहा गया है कि -

" कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि[2] ।।"

अर्थात् जनकादि ज्ञानीजन भी आसक्तिरहित कर्म द्वारा ही परमसिद्धि को प्राप्त हुए हैं। इसलिए लोकसंग्रह को देखता हुआ भी हे अर्जुन! तू कर्म करने के लिये ही योग्य है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जनक गृहस्थ रहकर भी महान आत्मज्ञानी, वीतराग और परमहंस थे। पूर्ण पुरुष श्रीकृष्ण भी ऐसे ही योगेश्वर थे जो गृहस्थ रहकर भी कर्म करते थे और कर्मफल अर्थात् भोग से असंपृक्त रहते थे। "कन्हावत" में वे कहते हैं कि -

"जगत रहौं सबन के ठाऊँ। गुपुत जीउ परमेसुर नाऊँ।।
ग्यान सबहिं गोपिन्ह अनुराऊँ। ध्यान गुसाईं सौं मन लाऊँ।।
दत्त सत्त दुहुँ आगर, देत न राखौं आप।
करम करौं नित- नित औहिं, निअर न आवै पाप[3] ।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 350.5
2- "श्रीमद्भगवद्गीता", अध्याय- 3, श्लोक- 20.
3- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 350.6-7दो0

भारतीय ऋषि-मुनि और सूफी सन्त दोनों गार्हस्थ्य जीवन या दाम्पत्य जीवन व्यतीत करते थे किन्तु दोनों में मूल अन्तर यह था कि भारतीय ऋषि- मुनि आश्रम धर्म के पालक थे । वे गृहस्थ जीवन को जो 25 से 50 वर्षों के मध्य होना शास्त्र-प्रतिपादित था, व्यतीत करके वानप्रस्थ तत्पश्चात् सन्यास जीवन बिताते थे । इन आश्रमों में वे भोगों से बिलकुल असंपृक्त रहकर आत्मोपासना करते थे । किन्तु सूफी साधक या सन्त भोगपूर्ण दाम्पत्य जीवन व्यतीत करते थे । सौन्दर्य में वे खुदा का "नूर" देखते थे । अतः लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की ओर सतत उन्मुख रहते थे ।

सूफियों का जीवन-लक्ष्य प्रेममय एवं आनन्दमय जीवन था। इसीलिए उन्होंने इस्लामी "नूरवाद" की प्रेममयी व्याख्या की। उनके अनुसार अल्लाह ने सृष्टि से पूर्व "नूर" उत्पन्न किया, "नूर" से मुहम्मद साहब को प्रकट किया और मुहम्मद साहब के प्रीत्यर्थ जगत की सृष्टि की। यह "नूर" दिव्यज्योति या ब्रह्मज्योति अथवा प्रेमज्योतिस्वरूपा थी।"कन्हा-वत" में जायसी का कथन है -

" पहिलें दीन सौं सिरजा नूरू ।
तौ सिरिटी कर भौं अंकूरू ।।
जौ न होत प्रेम वह जोती ।
तौ नाँ सरग न धरती होती।।
तौ उपजत न यह संसारा ।
होत न चांद सूरज उजियारा।।
ओहि कैं प्रीति सबै जग बान्ध साजा।
बरन- बरन सब कछु उपराजा ।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 2-2-5.

यही ज्योति सृष्टि का बीज बनी। अतः प्रेम की सत्ता मानव से लेकर परमात्मा तक को एक सूत्र में बाँधने का साधन है। यह मानव-मानव में प्रेम-भाव उत्पन्न करने, उनमें एकता स्थापित करने, अद्वैतभाव जगाने और प्रेमप्रभु को प्राप्त करने का सरल उपाय है। जिस प्रकार एक दीपक से असंख्य दीपक जलाए जाते हैं उसी प्रकार मनुष्य के हृदय में प्रेम की ज्योति जगाकर समस्त मानव में अद्वैतभाव उत्पन्न किया जा सकता है। यह एक प्रकार से आत्मविस्तार की प्रक्रिया है अर्थात् अद्वैतभाव है क्योंकि इससे अन्य वस्तुओं में अपने को तथा अपने में समस्त को देखा जाता है। प्रेम के माधुर्य से इसकी सहज प्रतीति सुकर है। इसी सिद्धान्त के आधार पर जायसी ने हिन्दू- मुसलमान के समन्वय का स्तुत्य# प्रयास किया और बताया कि -

परगट भेस गोपाल- गोविन्दू ।
कपट गियान न तुरुक न हिन्दू ।।
अपने रंग सो रूप मुरारी ।
कतहुँ राजा कतहुँ भिखारी ।।
कतहुँ सो पंडित कतहुँ मूरुख ।
कतहुँ ब्रह्मचारी कतहुँ मूरुख ।।
सो अपने रस कारन, खेल औंत सब खेल ।
होइ नानां परकारन, सब रस लेइ अकेल।।"[1]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक ।।7.5 दो०

वही परमात्मा सबमें समान रूप से व्याप्त है। यह उसकी गुप्त सत्ता का रहस्य है तथा उसने जो संसार में नाना रूप धारण कर रखा है, यह उसकी प्रकट सत्ता है। संसार में उससे पृथक् कुछ नहीं है। जो कुछ प्रकट दिखाई दे रहा है वह उसकी क्रीड़ा मात्र है और वह स्वयं खिलाड़ी भी है।

जायसी ने अपनी रचनाओं में सर्वत्र इस्लामी एकेश्वरवाद और उसके निर्गुण स्वरूप का वर्णन किया है। उन्होंने कुरान का अनुसरण करते हुए यह भी लिखा है कि परमात्मा ने मुहम्मद साहब की प्रीति के लिए ही जगत की सृष्टि की। मुहम्मद साहब पूर्ण पुरुष थे। कुरान-आयतें उन पर नाज़िल होती थीं। उन्हीं आयतों के अनुसार जगत-व्यवहार चलता था-

"जो आयत उन्ह लिखी बनाई।
उहैं तंत जग चलेउ चलाई[1]।।"

श्रीकृष्ण को भी जायसी ने पूर्ण पुरुष कहा है[2]। भागवतपुराण में वर्णन है कि भगवान कृष्ण की प्रीति के लिए ही जगत की सृष्टि हुई है। जायसी ने उनके अवतार का कारण सोलह सहस्र पद्मिनी स्त्रियों के साथ भोग का लोभ कहा -

" सोरह सहस गोपिता साजीं।
ते सब मैं तो कहि उपराजीं।।
गेह करौं लै तोहि सम जोगू।
औतरि जगत मान रस भोगू।।
देखि रूप बस्तरौं, पुनि माया लिपटान।
पाछिल दुख सो बिसरिगा, जग औतरा आन।।"[3]

1- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 2.6
2- वही, कड़वक 58.2, 332.4
3- वही, कड़वक 43.5-6 दो0

ईश्वर ने विष्णु को कंस के गर्व-हरण के लिए जगत में अवतरित होने का आदेश दिया था। साथ में उन्हें शत्रु से निश्चिंत रहने का वरदान भी दिया था। जायसी जीवन को अनासक्त भाव से आनन्द-मय अथवा भोगपूर्ण यापन करने के पक्षपाती थे। इसीलिए श्रीराम के रूप में तपपूर्ण जीवन के प्रति आपत्ति प्रस्तुत कराई है तथा भोगपूर्ण जीवन को स्वीकार कराया है।[1]

जायसी ने यह भी दर्शाया है कि पूर्ण पुरुष रूप में श्रीकृष्ण ने गृहस्थ जीवनयापन करते हुए उदासीन रहकर भोग किया। उन्होंने सहस्र सूर्य किरणवत् सहस्र कलाओं से सूर्य की भाँति स्त्रियों की षोडश कलाओं अथवा चन्द्र कलाओं से संयुक्त होकर सोलह सहस्र गोपियों के साथ रमण किया अर्थात् दिन-रात्रि की ज्योति का समन्वय किया था। इसके समन्वय में उन्होंने श्वेत- श्याम, दिन- रात, सूर्य-चन्द्र आदि की एकता की योजना की। बौद्ध सिद्धों और नाथयोगियों में ये प्रतीक काफी समय से प्रचलित थे। जायसी ने वहीं से इन प्रतीकों को ग्रहण किया। उपर्युक्त प्रतीकों द्वारा उन्होंने प्रकट किया कि सर्वत्र परम दिव्य ज्योति तो उसी एक परमात्मा की है। यह दिव्य ज्योति प्रेम रूप में प्रकट हुई और इसने एक से अनेक रूप धारण किया। श्रीकृष्ण की उपर्युक्त प्रेमकथा का रहस्य जायसी ने भागवत पुराण सुनकर, समझकर और गुनकर प्राप्त किया था। मानव- मानव को एक सूत्र में बाँधने और जीवन को आनन्दमय बनाने का उपदेश करने वाली ऐसी सरस कथा जिसमें ज्ञान और भक्ति रस का पूर्ण विलास चित्रित हो, उन्हें अरबी, फारसी, तुर्की आदि किसी भी भाषा के साहित्य में नहीं प्राप्त हुई। उन्होंने यह प्रेरणा उपर्युक्त

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 42-43.

भाषा-साहित्य के अवगाहन के पश्चात् निष्कपट भाव से की। प्रेम - स्थापन के लिए जायसी ने सम्पूर्ण जगत को ईश्वर का खेल बताया। उन्होंने कहा कि वही एक परमात्मा कर्ता, द्रष्टा, भोक्ता, दृश्य सब कुछ है। अतः मनुष्य को बिना भेदभाव के ईश्वर की इच्छानुसार भोग-पूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिए। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारों से दूर रहकर भोगों में लिप्त नहीं होना चाहिए क्योंकि जीव ने भोग के लिए ही शरीर धारण किया है। भोगपूर्ण अल्प जीवन भी सुन्दर है और अत्यधिक भोगपूर्ण लम्बा जीवन फीका है।[1] जायसी के जीवन का आदर्श श्रीकृष्ण के शब्दों में "कन्हावत" की निम्न पंक्तियाँ प्रकट करती हैं -

" सोइ तपा औ सो कैलासी ।
गिरहीं महँ जो रहै उदासी।।
परगट रहौं सबन के ठाऊँ ।
गुपुत जीउँ परमेसुर नाऊँ ।।
ग्यान सबहिं गोपिन्ह समुझाऊँ ।
ध्यान गुसाईं सौं मन लाऊँ ।।
दत्त सत्त दुहुँ आगर, देत न राखौं आप ।
धरम करौं नित- नित ओहिं, नियर न आवैं पाप ।।[2]"

इस प्रकार जायसी ने अवतारवाद के आधार पर निर्गुण ब्रह्म को जगत से पृथक रखकर भी सगुण रूप श्रीकृष्ण के माध्यम से ब्रह्म-जगत की एकता का प्रतिपादन किया। उन्होंने निर्गुण परमात्मा को करतार, सिरजनहार, विधि, देव, गुसाईं शब्दों से सम्बोधित किया है।अल्लाह,

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 352.1-5
2- वही, कड़वक 350.5- दो०

खुदा आदि शब्द पूरे "पद्मावत" में कहीं भी प्रयुक्त नहीं किया है। कारण यह कि जायसी हिन्दू, मुसलमान में भेद नहीं मानते थे, सबको एक ही परमात्मा को संतान समझते थे। दूसरे यह कि वे मानव-मानव में प्रेमभाव जागृत कर जीवन को आनन्दपूर्ण बनाना चाहते थे। तीसरे यह कि वे कट्टरपंथी, साम्प्रदायिक लोगों को सन्मार्ग अर्थात् प्रेमपंथ पर लाकर कट्टरपंथियों का कोपभाजन नहीं बनना चाहते थे और साधुजनों, उदारवादियों के हृदय में शान्ति और आनन्द उत्पन्न करना चाहते थे। चौथे यह कि उन्हें व्यावहारिक जीवन-दर्शन प्रस्तुत करना अभीष्ट था जिसमें किसी प्रकार का विवाद न हो और समस्त जन उसे अपनाकर आनन्दपूर्ण जीवन व्यतीत कर सके। पाँचवें यह कि वे भारतीय थे। जहाँ अनेक सम्प्रदाय के लोग मतभेदों को भुलाकर एक साथ रहते हैं। इसी का यथार्थ चित्रण जायसी ने "पद्मावत" में प्रस्तुत किया। इसीलिए वे लोक कवि और महाकवि के पद के अधिकारी हुए। छठाँ कारण यह है कि उनका काव्य लोकभाषा के माधुर्य से ओतप्रोत है। क्लिष्ट-सम्प्रदायगत शब्दों को रखकर वे इसे दुर्बोध नहीं बनाना चाहते थे।

जायसी के आध्यात्मिक विचारों का पूर्ववर्ती विचारों से प्रभावित होना स्वाभाविक है। इस दृष्टि से जायसी का परमतत्व ईश्वर या ब्रह्म निर्गुण सगुण दोनों है। "जायसी मुसलमान थे इससे उनकी उपासना निराकारोपासना कही जायगी। पर सूफी मत की ओर पूरी तरह झुकी होने के कारण उनकी उपासना में साकारोपासना की सी ही सहृदयता थी।"[1] सगुणोपासना के प्रति सूफियों की प्रवृत्ति उनके व्यापक और उदार दृष्टिकोण का फल थी। वे हिन्दुओं की अग्नि, जलवायु आदि रूप में प्रतीकोपासना तथा प्रतिमा - पूजन के प्रति समात्मक कट्टर इस्लामियों के और

1- जायसी ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, भूमिका 135.

ैक्भाव को अनुचित तथा अनिवार्य समझते थे। कट्टरपंथियों को भुलावा देने के लिए उन्होंने काव्य के माध्यम से ऐसा प्रेम का मद चढ़ाया कि उद्धव की भाँति प्रेम-मद में छककर वे निर्गुण भूल गए और सूफियों को गर्म लोहे पर चोट करने का अवसर मिल गया। वे अपने उपास्य प्रियतम की भावना "बुत" (प्रतिमा) के रूप में करने लगे। वे बराबर "खुदा" के "नूर" को "हुस्नेबुता" के परदे में देखते रहे। प्रेम- मदिरा में मदमत्त कट्टरपंथियों को "बुत" का विरोध केवल भूल ही नहीं गया अपितु वे फारसी- शायरी के माध्यम से "खुदा- खुदा करना" तथा बुतों के आगे सिजदः करना समान मानने लगे।

पुनश्च, सूफी ब्रह्म-निरूपण-सम्बन्धिनी कुरान की आयतों की कुछ इस प्रकार व्याख्या करने लगे कि कट्टरपंथियों को निर्गुणोपासना में बाधा भी न पड़े तथा मन के गोचर गुणों के लिए आवश्यक आलम्बन स्वरूप आकार को आश्रय भी प्राप्त हो जाए। सूफियों को "अनलहक" (मैं ब्रह्म हूँ) की घोषणा करने वाले मंसूर को कट्टर शासकों द्वारा सूली पर चढ़ाया जाना भूला नहीं था। अतः वे शासकों के त्रास से सगुणोपासना की ओर बड़े आहिस्ता- आहिस्ता कदम बढ़ाते थे। पर वह पदन्यास भी सुदृढ़ भूमिका पर आधारित होता था।

इस्लामी एकेश्वरवाद को मानने में प्रेमी सूफी साधकों के समक्ष सबसे बड़ी बाधा यह थी कि निर्गुण ज्ञान साध्य है, ज्ञान शुष्क, नीरस, कठिन और निराधार साधन है तथा ज्ञान मार्ग पर चलना कृपाण-धारा पर चलने के समान है। निर्गुण देश- काल- सम्बन्ध- शून्य- भावनापरक है। "ज्ञानकाण्ड के निर्गुण ब्रह्म को यदि उपासना के क्षेत्र में ले जाएंगे, तो उसे सगुण करना ही पड़ेगा।"[1] निर्गुण ब्रह्म की उपासना में सूर की आपत्ति द्रष्टव्य है। सूरदास जी कहते हैं -

1- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, पृ- 76.

" रूप- रेख- गुन- जाति जुगुति बिनु निरालम्ब कित धावै ।
सब बिधि अगम बिचारैं ताते सूर सगुन पद गावै ।।"[1]

यह भी विचारणीय है कि कुरान के अनुसार खुदा का समाज के भिन्न समुदायों के बीच उपस्थित होना और उनका कर्तृत्व अव्यक्त और निर्गुण में कथंचित भी उपपन्न नहीं हो सकता। " निरिन्द्रिय गोचर आकार के बिना चाहे किसी प्रकार काम चल भी जाए पर मन को गोचर गुणों के बिना तो किसी दशा में काम नहीं चल सकता। अतः मूर्तामूर्त तथा उस ब्रह्म का अव्यक्ताव्यक्त मानने वाले सूफी यदि उस ब्रह्म की भावना अनन्त सौन्दर्य, अनन्त गुणों से सम्पन्न प्रियतम के रूप में करें, तो उनके सिद्धान्त में कोई विरोध आ नहीं सकता। उपनिषदों में भी उपासना के लिए ब्रह्म की सगुण भावना की गई है। सूफी लोग ब्रह्मानन्द का वर्णन अलौकिक आनन्द के रूप में करते हैं और शराब, मद आदि को भी लाते हैं।[2]" भागवत में भगवान कृष्ण की साकार और निराकार रूप और दोनों के अधिष्ठान स्वरूप परब्रह्म परमात्मा के रूप में स्तुति की गई है -

"ब्रह्म ते हृदयं शुक्लं तपः स्वाध्यायसंयमैः ।
यत्रोपलब्धं सद्व्यक्तमव्यक्तं च ततः परम् ।।"[3]

"कन्हावत" में श्रीकृष्ण ने यद्यपि मनुज सगुन रूप धारण किया है और अनेक स्थलों पर स्वयं बताया है कि वे श्रीविष्णु के अवतार हैं तथापि नागिन को आत्म-परिचय देते हुए अपने को अवर्ण, अरूप, सृजनहार, निष्कलंक, सर्वनिर्मल, ज्योतिस्वरूप, राजाओं के राजा, ब्रह्म का अंश

1- सूरसागर
2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, पृ०- 76.
3- "श्रीमद्भागवत", स्कन्ध- 10, अध्याय-34, श्लोक - 19.

कहा जो समुद्र में बिन्दु के समान है। अन्यत्र गोपियों को विराट्स्वरूप का दर्शन कराकर यह प्रत्यक्ष करा देते हैं कि तीनों लोक में कृष्ण ही सोलह कलाएँ प्रकाशित करके स्वामी बने बैठे हैं। नागिन के समक्ष श्रीकृष्ण निर्गुण ब्रह्म के अंश हैं किन्तु गोपियों के समक्ष व्यक्त रहते हुए भी तीनों लोक में सूक्ष्म रूप से व्याप्त निर्गुण और सगुण से परे परब्रह्म सिद्ध होते हैं।

"कन्हावत" में पूर्णतः अवतारवाद की कथा है जिसके कारण पूरे काव्य में अनेक स्थलों पर ईश्वर तथा जीव और जगत की एकता का प्रतिपादन है। इसकी प्रतिष्ठा के लिए जायसी ने वेदान्त के प्रतिबिम्ब-वाद का आश्रय लिया है। उन्होंने जगत को दर्पण बताया है जिसमें ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ता है। ब्रह्म के ही रूप का सारा जगत प्रोद्भास है अर्थात् वही परमात्मा जगत के नाना रूपों में प्रकट है। इस व्यक्त और अव्यक्त अथवा प्रकट तथा गुप्त रूप को जायसी ने निर्गुण तथा सगुण रूप दे दिया जिसमें इस्लामी एकेश्वरवाद की निर्गुण भावना और भारतीय अवतारवाद की सगुण भावना का सुन्दर समन्वय हो गया। प्रेमपंथ का आदर्श सगुण और निर्गुण एवं ब्रह्म तथा जीवत्व की एकता को स्थापित करने वाला मधुमय मार्ग बन गया। जायसी ने उपासना के व्यवहार के लिए सगुण ब्रह्म के स्वरूप की अनिवार्यता स्वीकार की है। कन्हावत में ऋषि अगस्त चन्द्रावली को सगुण भक्ति की नीकता श्रीकृष्ण के सुन्दर रूप के माध्यम से व्यक्त करती है -

"सबहि भाँति सो दरसन सोहा ।
इहै भगति पै जगत बिमोहा ।।"[1]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 112.2

"श्रीकृष्ण का दर्शन सब भाँति शोभायमान है। इसी (सगुण) भक्ति पर जगत विमुग्ध है।" इस उक्ति से जायसी का सगुणोपासना के प्रति झुकाव प्रकट होता है।

किन्तु भारतीय कवियों की भाँति ग्रंथारम्भ के अवसर पर उन्होंने काव्य के आरम्भ में निर्गुण परमात्मा की स्तुति मसनवी पद्धति से किया है। यद्यपि "हम्द" का प्रयोजन ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए होता है तथापि परम्परा-पालन के अतिरिक्त जायसी ने स्वभावतः प्रत्येक रचना के आदि में इसे महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। रहस्यवाद अथवा अध्यात्म निरूपण का तो यह अनिवार्य अंग ही है। "कन्हावत" के प्रारम्भ में वह निर्गुण परमात्मा की महिमा व्यक्त करते हुए कहते हैं -

" ताकर असतुति कीन्हत न जाई । कौन जीह अस करौं बड़ाई ।।
जौं तन (रोवें- मुखहि) बोलै । सहस जीह एक- एक एक बोलै ।।
सतयौं लिखी सिष्टि सब आई । सब लै ही लेइ लिखि फिराई।।
का बरनौं सो अइस समुँदु । भा संसार न मुख माँ बुँदु ।।
सात सरग औ धरती साता । जग उपजै औ जाइ हिराता ।।
ओकर आस सबकै सब कहई । वह न आस काहु कै वहई ।।

जेत अहे जित होई जैति गा संसार ।
सबहि खियलि औ देवहि तौ ओहि भरा भण्डार ।।"[1]

"उस निर्गुण परमात्मा की स्तुति की की नहीं जा सकती अर्थात् उसकी महिमा वर्णनातीत है। वह वाणी का विषय भी नहीं बन सकती क्योंकि शेषनाग अपनी द्विसहस्र जिह्वाओं से निरन्तर वर्णन करते रहने पर भी उसकी महिमा का पार नहीं पाते । उसने शब्द रूप पूरी सृष्टि लिखी। स्वयं वह मसि रूप है। उसने अपने आपको सृष्टि के रूप में विस्तृत किया। ऐसे समुद्र का क्या वर्णन करूँ जिसमें सम्पूर्ण जगत मात्र एक बिन्दु के

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 1 से दोहा तक

समान है। सात स्वर्ग और सात धरती रूप यह जगत उत्पन्न होता है और नष्ट हो जाता है। सबके सब उस ईश्वर के आश्रय की आशा लगाए रखते हैं किन्तु वह किसी की आशा नहीं करता। संसार में जितना कुछ भी विद्यमान है, भविष्य में जितना कुछ होगा और जो कुछ हो चुका है सब उसी का दिया हुआ है। वह पुनः पुनः देता भी रहेगा तो भी उसका भण्डार रिक्त न होगा।"

जायसी श्रीकृष्ण द्वारा नागिन को परब्रह्म परमात्मा के निर्गुण स्वरूप का बोध कराते हैं -

"जो जग सिरजै सिरजनहारू ।
सो कि लेइ मानुस औतारू ।।
न वह काहुक जरमा होई ।
ना वै केहु जरमा कोई ।।
ना काहु अस जोति रूपा ।
ना कोइ अछ्न बैस अनूपा ।।
निहअंक निरमल सब मांहां ।
जह लगि परै धूप औ छांहा ।।
सब कहि दिवसि जरम औ जासह ।
आपु अबरन अरूप बिहासह ।।
अइस गोसाईं रानान कर राजा ।
भुवन मानुस ताकर उपराजा ।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, छन्द 302-7

" जो सिरजनहार जग की सृष्टि करता है वह कभी भी मनुष्य-रूप में अवतार नहीं ग्रहण करता । उसको किसी ने जन्म नहीं दिया और न उसी ने किसी को जन्म दिया। ऐसा ज्योतिस्वरूप कोई नहीं है। उसका जैसा अनूप वंश भी किसी का नहीं है। वह सबमें निष्कलंक और निर्मल है। जहाँ तक धूप और छाया पड़ती है वहाँ तक की सब वस्तुओं को उसी ने उत्पन्न किया है और जन्म देता भी है किन्तु स्वयं अवर्ण और अरूप हो कर विलास करता है। ऐसा ईश्वर राजाओं का भी राजा है। पृथ्वी-तल पर समस्त मनुष्य उसी के द्वारा उत्पन्न हैं ।"

उपर्युक्त वर्णन से यह अभिव्यक्त है कि निर्गुण परमात्मा अजन्मा, निष्कलंक, निर्मल, अवर्ण, अरूप, अनीतातीत और सृष्टि का रचयिता है।

कुरानशरीफ में भी अल्लाह के विषय में लिखा है कि "तुम्हारा ईश्वर एक है और उसके अतिरिक्त और कोई दूसरा ईश्वर नहीं है।"[1] "वही शाश्वत है। वह न स्वयं जन्मा है और न किसी को जन्म देता है।"[2] "परमात्मा प्रथम है और वही अन्तिम है। वही प्रकट है और वही छिपा हुआ है।"[3] "हम सब अक्षर हैं, करतार मसि है। हम सब उसी से बने हैं ।"[4] कुरान में दार्शनिक चिन्तन का व्यवस्थित रूप कहीं भी प्राप्त नहीं होता है तथापि ईश्वर, जीव और जगत सम्बन्धी कुछ विचारकण यत्र- तत्र बिखरे हुए प्राप्त हो जाते हैं । उनमें निर्गुण ईश्वर के रूप का परात्पर रूप कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। उसमें एकेश्वर के निर्गुण और

1- "कुरानशरीफ", 2/163.
2- वही, 3/ 492.
3- वही, 13/ 16.
4- "हिन्दी सूफी काव्य का समग्र अनुशीलन", : शिवसहाय पाठक, पृ०- 380.

सगुण उभय रूपों का चित्रण प्राप्त होता है। वह कहीं तत्व रूप में, कहीं सत्य और कहीं नूर रूप में। "कन्हावत" में जायसी ने परमात्मा को निर्गुण स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा है कि वह निष्कलंक, सबमें निर्मल, अवर्ण, अरूप, सर्वव्यापक, ज्योतिस्वरूप, अजन्मा, सृष्टिकर्ता, अनुपम, ईश्वर है।[1]

"पद्मावत" के आदि में भी इसी प्रकार का वर्णन उपलब्ध होता है -

" ना कोई है ओहि के रूपा ।
ना ओहि काहु अस तइस अनूपा ।।
ना ओहि ठाउँ न ओहि बिन ठाऊँ ।
रूप रेख बिनु निरमल नाऊँ ।।
ना वह मिला न बेहरा, अइस रहा भरपूरि ।
दिस्टिवंत कहँ नियरें, अंध मुरुख कहँ दूरि।।"[2]

कुरान में ईश्वर को स्वेच्छाचारी शासक भी कहा गया है। उसे कर्ता के साथ- साथ न्यायकर्ता भी बताया गया है। "वह कर्ता ही नहीं न्याय-कर्ता भी है। जैसा जो करता है उसे वह वैसा ही फल देता है।"[3] "कन्हावत" में उसके कर्तृत्व की स्वेच्छाचारिता का वर्णन निम्न पंक्तियों में दर्शनीय है -

" देखहु है करता बड़ राजा ।
जिसे आन आन कर काजा ।।
मुयहि जियावे जियतहि मारे ।
धनी के धन निधनिहि पै टारे।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक- 80.
2- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 8.6-दो०
3- "कुरानशरीफ", 13/16.

सेज- साजि मरहिं कर सन ।१।।
लेइ बड़ अनहिं जोरि नहिजा ।१।।
राजा केर छत्र भंग करई ।
लेइ सो छत्र रांक सिर धरई ।।
सँवरहु सोइ गोसाईं, जो अस कहँ कछु नाह ।"[1]

यहाँ श्रीकृष्ण ने कंस के अत्याचार से पीड़ित और उसके राज्य से अन्यत्र जाकर का निश्चय किए हुए लोगों को विधि अर्थात् परमात्मा की सर्वशक्तिमत्ता और स्वेच्छा का परिचय दिया है। वह कृपालु सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। उसके मन में जो कुछ आता है, कर डालता है। जो कुछ भी कर डाले, उसी को शोभा देता है। उसके कर्तृत्व में अन्य कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता -

" जो किरपार सबे वहु दोसब ।
का कर मन भोगा न करोसब।।
x x x
जो अस करे आवइ भोरा ।
तेरि रे करत नाहीं कछु थोरा ।।
मुवहिं जियावे जियतहि मारे ।
वहै तो सहस बार ओतारे ।।
ओहि कै हिरदै बाति, कहँ लगि करै बखान ।
जैत करै सब छाजे, करत न बरजे आन ।।"[2]

"परमात्मा आकाश और पृथ्वी की ज्योति है।"[3] यही ज्योति या नूर अलगज़ाली का प्रेरणास्रोत बना। जायसी ने भी पद्मावत की नायिका पद्मावती को परमज्योति रूप में प्रतिष्ठित करके अपने परम आराध्य की

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 166-4-दो0
2- वही, कड़वक 40-2 - दो0
3- "कुरानशरीफ", 24/32.

अभिमान भी है। यही ब परम ज्योति दिव्य सौन्दर्य के रूप में प्रकट हुई जिसे सच्चे साधक रत्नसेन ने कठिन साधनाओं के फलस्वरूप प्राप्त किया था। "कन्हावत" में निर्गुण परमात्मा के विषय में कहा गया है कि वह जैसा ज्योतिस्वरूप है वैसा कोई नहीं। वह सबके भीतर ज्योतिस्वरूप में विद्यमान रहता है। इसीलिए उसका निवास स्थान निर्मल हृदय है -

" ना काहु अस जोति सरूपा ।
ना ओहि अस्तन बंस अनूपा[1] ।।"

" सब महँ बरनै जोति सरूपा ।
जस जग पसरै सूरुज धूपा[2] ।।"
परगट - गुपुत देखु अस करा ।
वह सब महँ सब ओहि महँ भरा[2] ।।"

" छत्र - पाट हिरदैं महँ साजा ।
राज करै राजन्ह कर राजा[3] ।।"

" ओहि कैं हिरदै बासि, जहँ लगि करै बखान ।
जैत करै सब छाजै, करत न बरजै आन[4] ।।"

सूफी मानते हैं कि ईश्वर ने सर्वप्रथम नूरे मुहम्मदी अर्थात् मुहम्मद की ज्योति को बनाया और उसी की प्रीति-हेतु सृष्टि की रचना की। यदि वह प्रेमज्योति न होती तो सृष्टि का आविर्भाव न होता। यही प्रेम-ज्योति महामानव या पूर्णपुरुष मुहम्मद साहब के रूप में परिणत हुई। मुहम्मद साहब पूर्णिमा के चन्द्र-सदृश ज्योतिष्मान थे -

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 30.4
2- वही, कड़वक 344.4-5
3- वही, कड़वक 342.7
4- वही, कड़वक 40 दो0

"कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा ।
नाउं मुहम्मद पूनिउं करा ।।
प्रथम जोति बिधि तेहि कै साजी ।
ओ तेहि प्रीति सिरिस्टि उपराजी ।।"[1]

"कन्हावत" में भी जायसी मुहम्मद साहब की महिमा के वर्णन में कहते हैं -

" कहौं मुहम्मद दोसरे ठाऊं ।
जेहि निसान लेत मुख नाऊं ।।
पहिलैं दीन सो सिरजा नूरू ।
तौ सिरजी कर मो अंकूरू ।।
जो न होत प्रेम वह जोती ।
तो नां सरग न धरती होती ।।
तो उपजत न यह संसारा ।
होत न चाँद सूरज उजियारा ।।
जेहि कैं प्रीति सबै जग साजा ।
बरन- बरन सब कछु उपराजा[2] ।।"

"सूफी लोग परमात्मा को ही सृष्टि का आदि कारण मानते हैं। कुछ ज्योतिवादी सूफी उसे ज्योतिरूप मानते हैं।"[3] "कुछ का विश्वास है कि वह प्रेमस्वरूपी है।"[4] "कुछ सूफियों ने उसे प्रेम-सौन्दर्य कहा है।"[5] "वे परमात्मा के दो पक्ष मानते हैं - विशुद्धात्मा और नफस सभी विकारों की जड़ है[6] और शुद्धात्मा इस शरीर में आने से पहले परमात्मा या ईश्वर रूप था।"

1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 11.1-2
2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 2.1-5
3- सूफी मत साधना और साहित्य : रामपूजन तिवारी, पृ०-263
पृ- 249.
4- वही, पृ- 315.
5- वही, पृ- 317.
6- वही, पृ- 329.

सूफियों की भाँति जायसी का भी मत है कि परमात्मा का दर्शन बाह्य नेत्र से असम्भव है। उसे केवल अन्तर्नेत्र से देखा जा सकता है, क्योंकि वह तो संसार में उसी प्रकार व्याप्त है जैसे काया के भीतर प्राण। अतः उसका कोई मूर्त रूप नहीं है और न कोई निश्चित स्थान । जायसी इस मत पर इतने दृढ़ हैं कि वे चुनौती देते हुए कहते हैं कि यदि कोई उसे किसी निश्चित स्थान पर दिखा दें तो मैं उसे चोर बखानूं -

"जस कायाँ जिउ रहै समाई ।
सब संसार रहा तस छाई ।।
पाए खोजि न ढूँढें , सब है सकल सरीर ।
जो लइ ठाँउ देखावहिं, तो तहिं जाने चोर[1] ।।"

नेत्रेन्द्रिय केवल बाह्य विषयों को ग्रहण करती है। इससे वस्तु के विषय में भ्रान्ति भी सम्भव है किन्तु निर्मल हृदय रूप दर्पण में अन्तर्नेत्र से देखा गया विषय स्वरूप का बोध कराता है। राधा की सखियों ने परमात्मा से प्रेम और मिलन के लिए हृदय- नेत्र से देखने पर बल दिया। उन्होंने राधा से कहा -

"सोरति होवहि मरम बिसेखा ।
हिय के आँखिन्ह कर हसि देखा ।।"[2]

श्रीकृष्ण ने अनेक बार राधा, चन्द्रावली तथा गोपियों को अन्तर्नेत्र खोलकर परमात्मा की सर्वव्यापकता का बोध करने का उपदेश दिया है। अपने मुख में विराट रूप का दर्शन कराने के पूर्व उन्होंने गोपियों से यही कहा है -

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 344.7- दो0
2- वही, कड़वक 232.7

" कन्ह कहा अब देखहु बारी ।
सबे अंतर पट देहु उघारी ।।
हौ अंतर ओछे के नाईं ।
भोग करै सब आपु गुसाईं ।।"[1]

गोकुल गलियों की ओट में खड़ो होकर बातें करती हुई राधा से कहते हैं कि बाह्य माया- मोह-अज्ञान को दूर अन्तर नेत्र को खोल कर देखो कि परमात्मा के ही समस्त गुप्त गुन किस प्रकार संसार में प्रकट है -

"ओ तुम्ह कारण जग-कुछ कीन्हेउँ ।
सबे गुपुत गुन परगट कीन्हेउ ।।
अब कस सखिन्ह ओट भए बोलहु ।
दूरि करहु अंतर पट खोलहु[2] ।।"

सगुण रूप श्रीकृष्ण की ज्योति की तुलना जायसी ने सहस्र कला मण्डित उदित सूर्य से की है। ऐसी निर्मल उज्ज्वलता की ओर देखना बाह्य नेत्र से परे है। जायसी कहते हैं -

" नैन दिष्टि सौं जाइ न छुआ ।
सहस करां सूरुज जनु ऊआ[3] ।।"

अन्तर्नेत्र से देखे जाने का कारण परमात्मा का हृदय देश में निवास होना है। वही आलोक अथवा ज्ञान का उत्कृष्ट स्थल है। वहीं पर अनन्त सूर्य का आलोक प्रकाशित होता है जो नेत्रों में ज्योति उत्पन्न करता है। ज्योति का परमज्योति से मिल जाना ही आत्मसाक्षात्कार है। ज्योति

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 343.1-2
2- वही, कड़वक 258.2-3
3- वही, कड़वक 112.6

का भाव है प्रेम की ज्योति। जहाँ प्रेम है, वहाँ प्रकाश है। प्रेम-पूर्ण हृदय ही निर्मल हृदय है। इस प्रकार प्रेम के दीपक प्रज्वलित होने पर हृदय स्वच्छ और निर्मल बन जाता है। अन्धकार और अज्ञान विलुप्त हो जाते हैं। हृदय का, चित्त का, मन का परिशुद्ध होना तभी सम्भव है जब काम, क्रोध, मद, लोभ आदि विकार नष्ट हो जाएँ। इस अवस्था में रूप की परम ज्योति, उज्ज्वलता, निर्मलता आलोकित हो उठती है।

प्रेम तत्व पर, हृदय की निर्मलता पर और हृदय के आलोक पर उपनिषदों ने भी बहुत अधिक बल दिया है। श्रीमद्भगवतगीता में तो कहा गया है -

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया[1] ।।"

"हे अर्जुन! ईश्वर सभी जीवों के हृदयस्थल में स्थित रहता है। वह उन जीवों को माया के द्वारा यंत्रवत् घुमाता रहता है। "कन्हावत" में राधा श्रीकृष्ण के साथ इसी रहस्य को प्रकट करती है -

" तुम्ह हरि कहु न जानहु चोरी ।
जेन जग ढँका सुरग- सकोरी ।।
पिय छाँड़ि नौ खण्ड काहु ना जानैं ।
परगट दीठहिं रहहिं लुकानैं ।।
छिपइ बैठि सब करें डुलावहु ।
आपु करहु हम दोखन लावहु[2] ।।"

1- श्रीमद्भगवतगीता, अध्याय- 18, श्लोक सं0-61.
2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, छन्द 257.1-3

परमात्मा का दर्शन निर्मल हृदय में ही होता है। उस समय सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और धर्म प्राप्त होता है। जायसी शरीयत और सैयद अशरफ की प्रशंसा में लिखते हैं कि उन्हीं की कृपा से कवि को परमात्मा का दर्शन प्राप्त हुआ -

"भा दरसन हिय निरमल भयऊ ।
गयो धरम पाप सब गयऊ ॥
अब जो सेवे मन चित लाई ।
ढंगा पूजे आस लोलाई[1] ॥"

गोस्वामी तुलसीदास ने जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत को "सीय राममय" देखा उसी प्रकार जायसी ने सम्पूर्ण संसार को परमात्मा की ज्योति से, सौन्दर्य से आलोकित समझा । इसीलिए उन्होंने परम ज्योतिमान श्रीकृष्ण, ज्योतिष्मती श्रीराधा और चन्द्रावली का रूप सहस्र कला मण्डित सूर्य, षोडशकला पूर्ण चन्द्रमा और बारहबानी सोना के रूप में वर्णित किया है। उनके मिलन में कवि ने पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एकता को सिद्ध किया है। दिव्य ज्योति की प्राप्ति शरीर के भीतर ही सम्भव है क्योंकि वह जीव रूप में शरीर के भीतर स्थित है। यही जीव हृदय-कमल है जहाँ निर्गुणी सन्तों, सूफियों और जैनियों ने ब्रह्म का स्थान बताया है ।

हृदय चेतन्य का केन्द्र है, जीव है, प्राण है और समस्त भावनाओं का उत्पत्ति स्थान । हृदय की दिव्य ज्योति ही मनुष्य का सर्वस्व है।

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, अंक ~~257-1-3~~ 5·6-7

परमात्मा का दर्शन हृदय रूप दर्पण में होता है।[1] वह नयन-दृष्टि से अर्थात् बाह्य नेत्रों से देखा नहीं जा सकता। ब्रह्म की ज्योति, उज्ज्वलता, निर्मलता का दर्शन मात्र होता है। बाह्य जगत तो उसकी लीला है, उसी की अभिव्यक्ति है क्योंकि वही फल है, रक्षक और पालनहार है। वही जगत में पुष्प के रूप में प्रस्फुटित है, वही सुगन्धि के रूप में भ्रमर भी। उसने अपने आप को जब देखना चाहा तो गुप्त गुणों को प्रकट कर दिया। मैं या मन हृदय में धोखे के समान है क्योंकि भोग और भोक्ता स्वयं ब्रह्म ही है। अज्ञानवश मानव शरीर इसे अपने में आरोपित कर लेता है। इस तथ्य को श्रीकृष्ण ने अज्ञान में पड़ी गोपियों को अपने मुख में विराट् स्वरूप का दर्शन कराकर समझाया है -

" हौं अंतर धोखे के नाईं ।
भोग करै सब आपु गुसाईं ।।

x x x

आपुहि आपु चहसि जो देखा ।
गुपुत जगत सब कहसि बिसेखा ।।

आपुन भोग सो आपुहि करै ।
अस किय दोस आन सिर धरै।।

आपुहि जगत फूल होइ फूला ।
आपुहिं भँवर बास रस भूला ।।

आपुहि पर आपुहि रखवारा।
आपुहिं सब रस पालनहारा ।।"[2]

1- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक 401.2
2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 343.2-7

जायसी ने सम्पूर्ण जगत को ब्रह्म का प्रतिबिम्ब मात्र माना है। वही उसका बाह्य गुण कहा गया है अथवा उसकी परम दिव्य ज्योति की कला है। जिस प्रकार सूर्य अपनी सहस्त्र कलाओं से अथवा किरणों से सम्पूर्ण संसार को प्रकाश करता है किन्तु स्वयं एक स्थल में केन्द्रित रहता है। उसी प्रकार ब्रह्म चेतन्य- केन्द्र- हृदय में स्थित रहकर एक स्थान पर केन्द्रित रहते हुए दिव्य ज्योति की कला से समस्त सृष्टि को व्याप्त करता है। उसकी यह कला चतुराई भी कही जा सकती है अथवा कलाकारी भी। इस प्रकार भौतिक जगत में जो कुछ परिलक्षित दृश्यमान है वह उसकी कला है या प्रकट रूप है और जो कुछ भी अदृश्य है वह उसका गुप्त रूप है। बाह्य नेत्र से बाह्य जगत का प्रत्यक्ष करके उसका आभास किया जा सकता है किन्तु उसके गुप्त रूप का साक्षात्कार हृदय में अन्तर्नेत्र से किया जाना सम्भव है। जगत में एकमात्र ब्रह्म के सिवाय अन्य कोई भी नहीं है। जहाँ तक सृष्टि (दृष्टि) पहुँचती है अथवा सृष्टि का विस्तार है, समस्त उसी "गोसाई" की है। उसने जैसी इच्छा की वैसी ही लीला की। चौदहों भुवन उसी से भरे-पूरे हैं। समस्त सृष्टि में उसकी सत्ता ज्योति रूप में है। इस कला को देखने से आभास मिलता है कि वह सबमें है और सब उसमें समाए हुए हैं। संसार में उसकी स्थिति उसी प्रकार है जिस प्रकार प्राणी के शरीर में जीव है -

" एक छाड़ि दूसर सो नाहीं ।
सबै जगत ताकर परछाहीं ।।
जहँ- जहँ दिस्टि पसारै हेरी।
सो सब कला गुसाईं केरी ।।

ओन्हेसि खेल जइस हुत कहा ।
चौदह भुवन पूरि भरि रहा ।।
सब महँ बरनै जोति सरूपा ।
जस जग सारे कुन्ज धूपा ।।
परगट-गुपुत देखु अस करा ।
वह सब महँ सब ओहि महँ भरा ।।
जो सो डोलावै जोयन डोलै ।
ओहि बिनु कोइउ मुख न बोलै ।।
जस छायाँ जिउ रहै समाई ।
सब औतार रहा तस गाई ।।"[1]

ब्रह्म की गुप्त स्थिति का रहस्य प्रकट करते हुए आचार्यों ने उसे फूल में गंध, दर्पण में परछाईं के सदृश निरूपित किया है। वह सबमें ज्योति रूप से अनुस्यूत है। श्रीकृष्ण द्वारा विराट् स्वरूप का दर्शन कराने पर गोपियों ने अपने भीतरी आवरण को उघार कर वही ज्ञान प्राप्त किया -

" फूल माँझ जइस रह बासा ।
दूध माँझि जिउ जइस अवासा ।।
गाभे माँझि आगि जस अहै ।
काया माँझि जइसें जिउ रहै ।।
दरपन माँझि जस रहैं छाहीं ।
उनहिं माँझि पुनि बिहसैं माँही ।।"[2]

ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए यह आवश्यक है कि हृदय में सत्य भाव रहे, सदाचार का पालन किया जाय जिससे सात्त्विक भावों का उदय हो

1- "इन्द्रावती" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 344.1-7
2- वही, कड़वक 345.2-4

क्योंकि ब्रह्म अथवा दिव्य ज्योति सतोगुणी है, उज्ज्वल है, निर्मल है, कामादि विकारों से रहित है। ऐसी स्थिति तभी प्राप्त हो सकती है जब मनुष्य अहं, गर्व, मैं, मम का भाव नष्ट करे, अपने आपमें ही खो जाए। कबीरदास जी कहते हैं कि अपनत्व को मिटाकर जो जीवन्मुक्त रहता है उसी की करतार से भेंट होती है -

"आपा मेटि जीवत मरै, तो पावै करतार ।"[1]

दुर्वासा ने ऐसी ही साधना की थी। उन्होंने माया का त्याग करके काया के भीतर घट लगाया था। धन, वय आदि का सर्वथा न्यौछावर कर दिया था। ब्रह्म को खोजते- खोजते स्वयं को खो दिया था। जिस प्रकार जल-बिन्दु समुद्र में विलीन हो जाता है उसी प्रकार जीव रूप दुर्वासा ने अपने को ब्रह्म रूप समुद्र में लीन कर लिया। ज्ञानी जन अहं को खोकर ही ब्रह्म का ज्ञान करते हैं, तभी उन्हें ज्ञात होता है कि ब्रह्म ही प्रकट और गुप्त रूप में सर्वत्र व्याप्त है। जायसी कहते हैं -

"तजि माया काया घट लीन्हाँ ।
औ धन - स न्यउर कीन्हाँ ।।
हेरत- हेरत आपु हिराना ।
बूंद मनहु सब समुँद समाना ।।
बुध पहिचानहि आपुहि खोई ।
परगट गुपुत रहा होय सोई[2] ।।"

1- "साखी" : कबीरदास जी

2- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 334.5-7

मनुष्य अज्ञान के वशीभूत होकर अपने को ही कर्ता, भोक्ता आदि समझ कर गर्व करने लगता है जो उसे वास्तविक पथ से, प्रेम पंथ से और सन्मार्ग से भ्रष्ट कर देता है। अहंकार में चूर व्यक्ति को सर्वत्र भ्रान्ति होती है, उसे तथ्य का ज्ञान कभी भी नहीं होता। प्रेम प्रभु या परमात्मा की प्राप्ति में गर्व सबसे बड़ी बाधा है। [illegible] "चन्दावत" की प्रथम पंक्ति में ही सचेत कर देते हैं कि "झूठा गर्व मत करो"। ऐसा करने से विनाश हो जाता है। मृत्युकाल में मनुष्य को इसलिए पछताना पड़ता है कि वह हाँ- हाँ करके धन- धाम बटोरता है किन्तु मृत्यु के समय कुछ भी साथ नहीं जाता। मनुष्य को खाली हाथ जाना पड़ता है -

"झूठा गरब कीन्ह जिन, तजिहु अब, सुन संसार ।
हो हउँ कह पछताए , जबरे परे मुँह छार ।।"

कंस ने झूठा गर्व किया जिसका अन्त करने के लिए क्रोधित होकर परमेश्वर ने विष्णु को उत्पन्न किया। अन्त में विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण ने उसका गर्व भंग किया, उसे मार डाला तथा लोक का कल्याण किया। गर्व प्रेम का प्रबल विरोधी है। [illegible] ने अपने को "अति रूप उजियार जानो।[1]" कहा और चन्द्रावली पर अनेक आक्षेप किया। अन्त में उससे हाथापाई भी की। इस प्रकार उस प्रेम को प्रकट कर दिया जो हृदय की वस्तु है, गोप्य है। इसका कारण जन्म- जन्म से विष्णु के अवतारों के साथ पत्नी रूप में उनका अवतरित होना था। इस पर श्रीकृष्ण ने अपने क्रोध को उसके समक्ष बड़ी मधुरता से प्रकट करते हुए कहा -

---

1- "चन्दावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 1-दो0

" दुख हो कथा कहा होई, बहु विधि जायें काट ।
लीन्ह अकूर चाँद कुछ , दुउ भा मोरें आँट[1] ।।"

सूफियों ने इस अहं को समस्त पापों का मूल कहा है। इसीलिए सूफी साधकों को अधिकतम अहं के विनाश की ही साधना कराई जाती है। इसी नफ़्स के खिलाफ़ जिहाद कहते हैं। श्रीकृष्ण ने कई स्थानों पर स्पष्ट कहा है कि अहं हृदय में थोथे के समान है। अंतर्भाव में यही सबसे बड़ी बाधा है।

निर्गुण परमात्मा सबका कर्ता है। उसके कर्तृत्व की इच्छा ही सर्वोपरि है। "वह मरे को जीवित कर देता है और जीवित को मार डालता है। वह किसी को सहस्रों बार भी पृथ्वी पर अवतरित करता है। फिर भी वह भोला है। वह जो कुछ कर डाले, थोड़ा ही है। सब कुछ कर डालना उसी को शोभा देता है। कर्म करते हुए उसे कोई रोक नहीं सकता।"[2] श्रीकृष्ण से परमेश्वर की स्पष्ट उक्ति है कि "जो मैं करना चाहता हूँ, वह मेरा चरित है, तुम्हारा [illegible] उसमें कोई दोष नहीं है।"[3]

सृजनहार यदि प्रिय करना चाहे तो चाहे सम्पूर्ण जगत विरुद्ध हो जाए, कुछ बिगाड़ नहीं सकता -

" अभिलाखे पिय सिरजनहारू ।
लागे जगत न मागे बारू[4] ।।"

परमेश्वर की इच्छा होनी के रूप में जीवन में प्रकट होती है। उसके. उसके जो भी आदेश हैं अथवा इच्छाएँ हैं, वे सब कुरान की आयतों में लिपिबद्ध हैं। ईश्वर के इन्हीं वचनों के अनुसार जगत का व्यवहार होता है।[5] उसका लिखा हुआ कोई मिटा नहीं सकता। उसने जो लिख दिया, वही होगा, उससे अतिरिक्त कुछ भी न होगा-

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 161.दो०
2- वही, कड़वक 40. दो.
3- वही, कड़वक 43.1
4- वही, कड़वक 52.7
5- वही, कड़वक 2.6

"ताकर आयसु मेटि न कोई ।
जो तैं लिखा सो आन न होई [1] ।।"

यही होनी है जिसकी प्रबलता जायसी ने अनेक स्थलों पर प्रकट की है। उदाहरणार्थ -

" दई लिखा तुम्हहि सो होई ।" [2]

" तहिऊँ हाथ नाचु डोरि लिखो।" [3]

" मेटि न जाइ बात जो होनी ।" [4]

" भावी कछु जो भएउ पुनि अहा।" [5]

" सोहि सुक औ नारद कहा । भा कछु जो सो हो तै अहा ।।" [6]

परमेश्वर कृपालु भी है। उनकी कृपा से कुछ का कुछ हो सकता है। उनके कृष्ण जी तो कंस के कारागार में जन्मोत्तर मुक्त हो गए -

"अति सु विशिष्ट परमेसुर केरा ।
बंदि मोख भा सबहीं केरा [7] ।।"

उसकी कृपा से मुख में पड़ा विष अमृत भी बन जाता है। कहाँ तो पूतना स्तनों में विष लगाकर कृष्ण के वध का उद्यम करने गई थी, कहाँ उसे ही प्राणों से हाथ धोना पड़ा । कृष्ण के मुख में पड़ा विष अमृत बन गया-

"पितिआ केर चरित अस भएऊ । [8]
बिख मुख महँ अम्रित होइ गएऊ ।।"

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 133.2
2- वही, कड़वक 36.4
3- वही, कड़वक 36.7
4- वही, कड़वक 59.3
5- वही, कड़वक 63.1
6- वही, कड़वक 163.2
7- वही, कड़वक 49 .5
8- वही, कड़वक 64.6

ईश्वर की अनुकूलता को व्यक्त करने के लिए जायसी ने "दाहिन भयउ दयाल।" की उक्ति का आश्रय लिया है। ईश्वर अनुकूल रहे तो प्रतिकूल भी अनुकूल बन जाता है। यह ईश्वर की कृपा का परिणाम है। कवि ने इसका भी उल्लेख अनेक स्थलों पर किया है। अधोलिखित पंक्तियों में कवि ने भगवान की अनुकम्पा तथा अनुकूलता का वर्णन किया है -

" सो यह कीन्ह गोविन्द गोपालू ।
तुम्ह कहँ दाहिन भयउ दयालू[1] ।।"

" ओकहँ दाहिन अजहिं दयालू ।
मारैं पर होय कुठि कालू[2] ।।"

" दाहिन भयउ सिरी भगवंतू ।
भुजा आइ बैठेउ हनुवंतू[3] ।।"

" भयँ सो नु गोविन्द गोपालू ।
अब प्रसन्न मोहि भयउ दयालू[4] ।।"

" भा सोहाग राधो कर, मिला गोबिन्द गोपाल ।
बहुरे भोग-भगति दिन, दाहिन भयउ दयाल[5] ।।"

" कदम होहिं जो दाहिन, पिउ आवहिं घरि नारि ।
नतु निसि सेज अकेली, बिरह होत जरि छार[6] ।।"

"पद्मावत" में जायसी की ब्रह्म सम्बन्धी विचारधारा इस्लाम तथा सूफी मत के साथ भारतीय दर्शन से भी प्रभावित है।

1- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 58.6
2- वही, कड़वक 88.4
3- वही, कड़वक 197.2
4- वही, कड़वक 222.7
5- वही, कड़वक 268-दो0
6- वही, कड़वक 317-दो0

(3) परमात्मा तथा जगत का सम्बन्ध -

तसव्वुफ अथवा सूफी मत का गम्भीर अनुशीलन करने वाले विद्वानों का इधर विचार होता जा रहा है कि इस सम्बन्ध में पूर्व और पश्चिम के लोगों ने जो कुछ लिखा है वह उनके अपने- अपने दार्शनिक संस्कारों का घोलमेल है। उससे कुरानसमर्थित तसव्वुफ का उपस्थापन वस्तुनिष्ठ ढंग से नहीं हो पाता। मूलतः मतभेद इस बिन्दु पर है कि परमात्मा और जगत् (जीव) के बीच में सम्बन्ध भेद का है या अभेद का। आगम वह सम्बन्ध भेदाभेद का मानता है। चिन्तन के इस दौर में विश्व स्तर पर प्रवाहित रहस्यसाधना और तत्समर्थित आगम साहित्य के आलोक में इस पर अभी तक वैसा विचार नहीं किया गया और जैसा किया जाना चाहिए था। म0 म0 पं0 गोपीनाथ कविराज ने सर्वप्रथम इस बात की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया जिससे प्रेरणा प्राप्त कर प्रो0 राममूर्ति त्रिपाठी[1] ने हाल ही में अपने एक ग्रन्थ में इस पर विस्तार से विचार किया है। जायसी ने अन्यत्र कहा है -

आपुहि आपु जो देखन चहा । आपन प्रभुत आपु सौं कहा ।
सबै जगत दरपन के लेखा । आपुहि दरपन आपुहि देखा।...

दरपन बालक हाथ, मुख देखै दूसर गनै ।
तस भा दुइ एक साथ, मुहमद एकै जानिए ।।
आपुहि आपुहि चाह देखावा । आदम रूप भेस धरि आवा[2]।।

1- देखिए - प्रो0 राममूर्ति त्रिपाठी - तन्त्र और तसव्वुफ, राका प्रकाशन, 1989 ई0

2- जायसी - ग्रन्थावली, पृ0- 305.

स्पष्ट ही इन पंक्तियों से यह कहा जा रहा है कि उसने जब अपने से अपने को अर्थात् अपने प्रसुप्त वैभव को देखना चाहा तब उसने विश्वात्म दर्शन की रचना की और उसके माध्यम से भी जब अपना पूरा वैभव न देख सका तब अपने प्रतिरूप आदम की सृष्टि की। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इन पंक्तियों का आशय स्पष्ट करते हुए जब कहा- "अपनी ही शक्ति की लीला का विस्तार जब देखना चाहा", तब अनायास बड़ी सटीक व्याख्या कर गये, पर शांकर अद्वैत के प्रभाव में जब इसी का सायास पल्लवन किया तब उन्होंने "शक्ति" को शांकरसम्मत "माया" बता दिया और ऐसा करने से बात बनने की जगह उलझ गई। शांकर मत में परमसत्ता क्रियाशून्य है, निष्क्रिय है। वह इच्छाहीन या निरीह है। उस मत में आरोपित उपाधि माया उसकी स्वरूप शक्ति नहीं है। वह ब्रह्माश्रित तो है। पर ब्रह्मात्मक नहीं है। शांकर अद्वैत ब्रह्म को निर्विशेष मानता है, इसलिए ब्रह्माश्रित अनादि माया को निवर्त्य भी मानता है। वह अज्ञानरूपा अथवा ज्ञान-विरोधिनी भी है, जड़ है। परिणामस्वरूप उसकी परिणति जगत् भी वैसा ही जड़ और अन्ततः ज्ञान-निवर्त्य है। आगम मानता है कि स्वरूप शक्ति ही स्वरूपबोध कराती है, वह चेतना की चेतना है। जायसी ने जिस तरह की बात की है, वैसी धारणा भारत में चिरपरिचित है। वस्तुतः सूफी लोग मानते हैं कि परमसत्ता सौन्दर्यमय है, आनन्दमय है। वे आदम रूप में इसी की पराकाष्ठा देखते हैं। इसलिए सूफी लोग सुन्दर नर मूर्ति की उपासना परमानन्द-प्राप्ति का साधन मानते हैं। इतना ही नहीं, उनकी यह भी धारणा है कि यदि मूर्ति किशोरावस्था की हो तो वह रसस्फूर्ति में और सहायक होती है। यह बात भिन्न है कि किसी के मत से पुरुष मूर्ति श्रेष्ठ है और किसी के मत से रमणी मूर्ति। इसीलिए वस्तुतः उस

परमसत्ता में स्त्री- पुरुष जैसा कोई लिंग-भेद नहीं है। जायसी की पंक्तियों से सुस्पष्ट है कि वह मानो अपने में ही अपने स्वरूप के प्रतिबिम्ब को अपने आप ही देखता है। यह प्रतिबिम्ब ही विश्व है। यहाँ का सारा सौन्दर्य उसी पूर्ण सौन्दर्य का प्रतिफलन है। आगम भी मानता है कि परम शिव के स्वांग से परा-शक्ति का स्वान्तःस्थ प्रयत्न निर्गत होता है। उसी का नाम विश्व है। सूफी परमसत्ता को सौन्दर्य स्वभाव मानते हैं और सौन्दर्यमय का यह स्वभाव है कि वह अपने ही रूप को देखना चाहता है और देखकर अपने आप पर ही मुग्ध हो जाता है। यह स्वाधीन आत्मशक्ति ही है जिसके कारण उसे अपनी पूर्णता का बोध होता है। इसी आगमसम्मत धारणा की उत्तम अभिव्यक्ति गौड़ी भक्ति वालों ने बड़ी ही स्पष्ट की है और लगता है कि एक ही धारणा एक ओर सूफियों में और दूसरी ओर गौड़ी धारा में प्रवाहित है। "चैतन्यचरितामृत" में कहा है -

रूप हेरि आपनार कृष्णेर लागे चमत्कार
आलिंगिते मने उठे काम ।

यह चमत्कार ही पूर्णाहंता का चमत्कार है। काम या प्रेम इसी का प्रकाश है। यही शिवशक्ति-सम्मिलन का प्रयोजक और परिणाम है- आदि रस या श्रृंगार रस है। विश्व सृष्टि के मूल में यही रस तत्व प्रतिष्ठित है। प्रत्यभिज्ञा के शिवशक्ति, कामेश्वर- कामेश्वरी तथा राधा- कृष्ण तीनों एक ही धारणा के विभिन्न रूप हैं। त्रिपुरा मत की त्रिपुर सुन्दरी का सौन्दर्य ही शंकराचार्य की "सौन्दर्य लहरी" में वर्णित है। वामकेश्वर तंत्र की चतुःशती में भी यही है। सूफियों की भी यही धारणा है। सूफी मानते हैं कि गोपन स्थिति में अकेले न रह सकने के कारण परमसत्ता ने आत्मप्रकाश के लिए सृष्टि की। फिर पर विरोध के बिना आत्मप्रकाश हो कैसे? अतः भावमय परमसत्ता ने अभावमय दर्पण की सृष्टि की और उसमें अपने आप को प्रतिबिम्बित देखा। यह अभाव प्रतिबिम्बित भाव ही विश्व है। इन्सान इस विश्वात्मक प्रतिबिम्ब की आँख है। प्रतिबिम्बस्थ आँख की पुतली में जिस प्रकार द्रष्टा [बिम्ब] की पूर्ण प्रति-छवि देखी जाती है, उसी प्रकार इस अनन्त विश्व में एक मात्र मनुष्य में ही परमसत्ता की पूर्ण प्रतिच्छवि वर्तमान है।

इस प्रकार आगमसम्मत विचारधारा के आलोक में जब हम सूफी सृष्टि-प्रक्रिया पर विचार करते हैं और पहली समस्या अर्थात् "पूर्ण" किस अभाव की पूर्ति के लिए सृजन किया करता है-पर दृष्टिपात करते हैं तो सहज ही उत्तर मिलता है- यह चिर सुन्दर का स्वभाव है। इसके लिए अभाव निमित्त नहीं है। आगमों में यही बिन्दु लीलावाद के रूप में प्रस्फुटित है- लीलाया: प्रयोजनं लीलैव । वहाँ भी सृष्टि के निमित्त पर विचार करते हुए जो उत्तर दिया गया वह यही कि सृष्टि परमसत्ता की स्वरूपभूत शक्ति का लीला-विलास है। शांकर मत में परमसत्ता का स्वरूप लक्षण सच्चिदानंदमयता है, पर विश्व कर्तृता तटस्थ लक्षण है। आगमसम्मत परमसत्ता चिदानन्दमय भी है और सृष्टा भी- दोनों उसका स्वरूप लक्षण है। आगम में परमसत्ता ही विश्व का मूल उपादान है, उससे भिन्न कुछ नहीं। इसीलिए कहा गया है -

निरुपादान संभारमभित्तावेव तन्वते ।
जगच्चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघ्याय शूलिने ।।

अर्थात् कलाकार परमसत्ता स्वातिरिक्त उपादान और फलक के बिना ही जगत् चित्र का निर्माण कर लेती है। शांकर मत में भी कहने को ब्रह्म या परमसत्ता को ही उपादान और निमित्त सब कुछ मान लिया जाता है, पर वास्तविकता यह है कि वहाँ उपादान का आशय आगमसम्मत आशय से भिन्न है। वहाँ उपादान का आशय है जगत् के अध्यास का अधिष्ठान अथवा जगदाकार परिणत होने वाली माया का अधिष्ठान। आगम में परमसत्ता अपनी एकता की प्रकृति में स्थिर रहती हुई अनेकता में स्वयं परिणत होती है। जैसे समुद्र अपनी अखण्ड एकता में प्रतिष्ठित रहकर भी तरंगों की अनेकता में लहराने लगता है, वैसे ही आगमसम्मत परमसत्ता अपनी एकता में अनेकता को छलकाता रहता है। सौन्दर्यस्वभाव, आनन्दमयस्वभाव परमसत्ता की छलकन ही तो सृष्टि है। शांकर मत में अविद्योपहित ब्रह्म अर्थात् "ईश्वर" सृष्टा है-

निरूपहित परमसत्ता नहीं । वह विश्वसर्जन के लिए एक तरफ माया की सहायता लेता है और दूसरी ओर सृज्यमान या सृक्ष्यमान प्राणियों के अनादि कर्म-वैचित्र्य की भी अपेक्षा करता है – अन्यथा विश्व दृष्ट वैषम्य का आक्षेप उस पर आएगा। आगमसम्मत विश्व में वैषम्य लीला है। अतः खेल में जैसे छोटे- बड़े का कोई अर्थ नहीं, वैसे ही वह केवल आनन्द के लिए आनन्द की अभिव्यक्ति का स्वभाव है, वहाँ कोई आक्षेप है ही नहीं। इस प्रकार पहली समस्या का सूफी जो समाधान देते हैं, उसकी संगत व्याख्या आगमसम्मत चिन्तन में ही होती है।

दूसरा बिन्दु आता है प्रक्रिया या तनवज्जुलात का, अभिव्यक्ति या क्रियात्मक परिणति के सन्दर्भ में अपेक्षित स्तरों का । मानना यह चाहिए कि परमसत्ता ने अपने स्वातन्त्र्य- बल से अ-सत्ता (Not-being) की उद्भावना की- ताकि वह भावनात्मक रूप में आत्मप्रकाश कर सके और "भावमय" अ-भावमय दर्पण में क्रियात्मना प्रतिबिम्बित हो सके ।

उपर्युक्त "प्रतिबिम्बवाद" की समानता या एकता शंकर "प्रतिबिम्बवाद" की अपेक्षा वेदान्तसम्मत "आभासवाद" से ही की जा सकती है। औपनिषद् धारा के शंकराचार्य के व्याख्याकारों ने "परमात्मा" और "जीवात्मा" के विवेचन के संदर्भ में "आभास" और "प्रतिबिम्ब" शब्दों का प्रयोग किया है। वैसे इन दोनों में सूक्ष्म अंतर है, पर कभी- कभी पर्याय रूप में भी प्रयोग हुआ है। प्रतिबिम्ब दो प्रकार का होता है- एक प्रत्यावृत्त रश्मियों में गृहीत बिम्बरूप प्रतिबिम्ब और दूसरा जलगत सूर्य-चन्द्र आदि का छाया-रूप प्रतिबिम्ब। यहाँ दूसरे प्रकार का ही प्रतिबिम्ब (सुरेश्वराचार्य का बृहदारण्यक भाष्य वार्तिक) ग्राह्य है। वस्तुतः प्रतिबिम्ब की प्रक्रिया तर्कसम्मत ही होती है। प्रकाश की किरणें बिम्ब से संपृक्त होकर किसी भी स्वच्छ पदार्थ पर प्रतिबिम्ब बनाती है और पुनः ग्राहक व्यक्ति की रेटिना पर। फिर स्नायविक प्रक्रिया से मस्तिष्क का स्नायुकेन्द्र उसे समझता है। सृष्टि में आत्मा के प्रवेश की व्याख्या में इसी आभास को शांकर वेदान्त में ग्रहण किया गया है। हाँ, आभास के लिए मर्करी के आवरण

के स्थान पर बुद्धि आदि [आविद्यक कार्य] भूतमालाओं का संसर्ग है [और शांकर वेदान्त में उसका भी कारण है - स्वरूप विवेक का अग्रहण] । एक बात और है । शांकर मत में बिंब भाव भी नैमित्तिक है और प्रतिबिम्ब भाव भी। कारणोपाधि से उपहित चैतन्य [ईशितव्य सापेक्ष] ईश्वर "बिम्ब" है और कार्योपाधि [अन्तःकरण] से उपहित चैतन्य प्रतिबिम्ब। परमसत्ता बिम्ब- प्रतिबिम्ब भाव से परे है। ठीक उसी प्रकार यहाँ भी परमसत्ता बिम्ब- प्रति प्रतिबिम्ब भाव से परे है- बिम्ब- प्रतिबिम्बभाव में आने के लिए उसने अपने को ही "सत्" तथा "असत्" रूप में द्विदल कर लिया है। अथवा "कुदिया" मत में भी "सत्ता" आलोकित होने के लिए "ज्ञान" को पृथक् कर लेती है - ठीक वैसे ही जैसे परमसत्ता आत्मपरामर्श के लिए "प्रकाश-विमर्शमय" हो जाती है। विमर्शात्मक दर्पण में प्रकाश प्रतिबिम्बित होता है अथवा "विमर्श" से "प्रकाश" आत्मवैभव का परामर्श करता है और आनन्द से भरकर छलक जाता है। उसकी यह छलकन सृष्टि बन जाती है। परन्तु शांकर मत में जीवेश्वर भाव परमसत्ता का आत्मपरामर्श नहीं है, जबकि सूफी मत में परमसत्ता का आत्मावलोकन है- अपने को जानने की इच्छा है। विश्व की सारी प्रक्रिया आत्मावलोकन की प्रक्रिया है। दूसरे, शांकर मत में बिम्ब-प्रतिबिम्ब अविद्या कार्य है, जहाँ आत्म-स्वातन्त्र्य का कार्य है। इस दृष्टि से सूफियों का यह बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव शैवागमसम्मत प्रतिबिम्बवाद के अधिक निकट है। तीसरे, जहाँ शांकर मत में बिंब-प्रतिबिम्ब की चर्चा केवल जीवेश्वर भाव के सम्बन्ध में है, वहाँ सूफियों और शैवागमिक "दर्पण-नगरी" का ही दृष्टान्त देते हैं- "जल-चन्द्र" की जगह, जबकि शांकर धारा "जल-चन्द्र" का दृष्टान्त देती है।

शैवागम में "आभासवाद" या आभास की अवधारणा क्या है, यह देख लें तो सूफियों की "तजल्ली" या "तनज्जुलात" की संगति उससे कहाँ तक स्वरूप बैठती है, यह स्पष्ट हो जाय। शैवागम में विश्व सृष्टि के सम्बन्ध में "स्वातन्त्र्यवाद" शब्द तो चलता ही है, "आभासवाद" शब्द भी चलता है। परमसत्ता की सर्वनिरपेक्षता की निरपेक्ष स्थिति को दृष्टिगत कर "स्वातन्त्र्यवाद" का प्रयोग किया जाता है और उसकी अभिव्यक्ति या आविर्भाव की दृष्टि से "आभासवाद" का। जिस प्रकार सूफियों में "तजल्ली" और "तनज्जुल" की प्रक्रिया है, वैसे ही आगमों में "अभिव्यक्ति" और "आभास" की।

(ग) "कन्हावत" में मोक्ष सम्बन्धी विचारधारा -

जायसी के मोक्ष सम्बन्धी विचार की गवेषणा से पूर्व हमें उनके प्रारम्भिक और मूलभूत विचारों की ओर दृष्टिपात करना आवश्यक है। ये विचारगाएँ "कन्हावत" के कड़वक ।4वें में खोजी जा सकती हैं। इसमें उन्होंने हरि के अनन्त होने तथैव हरिकथा के भी अनन्त होने की महिमा को भागवत, वेद और सन्तों द्वारा गाए जाने का उल्लेख किया है। इस कारण प्रथम दृष्टि में ही उक्त महाकाव्य में हरिकथा वर्णन की प्रधानता का उद्देश्य विदित हो जाता है। यह कथा विष्णु, पद्म, शिव, अग्नि तथा श्रीहरिवंश आदि पुराणों और महाभारत में विस्तार के साथ अनेक रूपों में वर्णित है जिसका सारा श्रेय महाकवि व्यास को है। जायसी ने बहुत आदरपूर्वक उनका स्मरण किया है। पद्मावत में भी व्यास जी को सम्मानपूर्वक स्मरण किए जाने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि जायसी अनेक कारणों से व्यास जी के ऋणी हैं। "कन्हावत" में तो उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि वे उन वेदव्यास जी के चरणों का स्मरण करते हैं जिन्होंने सहस्रों रूप में हरि चरित का वर्णन किया है। प्रस्तुत "कन्हावत" महाकाव्य में भी उन्हीं हरि की कथा का वर्णन है।

आगे जायसी यह भी स्वीकार करते हैं कि उपरोक्त पुराणों के अतिरिक्त उन्होंने श्रीकृष्णकथा के सम्यक् ज्ञान के लिए महाकवि व्यास द्वारा [illegible] ही रचित प्रसिद्ध और प्रामाणिक ग्रंथ श्रीमद्भागवत पढ़ा और सुना भी । इसी [illegible] कथामृतसागर से उन्होंने अपना लक्ष्य प्रेमपंथ प्राप्त किया। भागवत में ही उन्हें योग, भोग, तप, श्रृंगार, धर्म, कर्म और सत् के व्यवहार के भी दर्शन हुए। ये सभी तत्व ज्ञान और भक्ति में

सन्निविष्ट हैं। इस प्रकार भागवत में ज्ञान, भक्ति-रस से पूरित ऐसा कमल विकसित है जिससे आकृष्ट होकर दूर-दूर से भी रसिक भ्रमर आ-आकर मँडराते रहते हैं। इसमें ऐसी प्रेमकथा का चित्रण है जो जायसी को तुर्की, अरबी, फारसी आदि भाषा के साहित्य में यहाँ तक कि सारे जग में भी नहीं प्राप्त हुई। यह जायसी की चुनौती है, क्योंकि उन्होंने सबका अवगाहन करने के पश्चात् ही गम्भीरतापूर्वक ऐसा उद्गार प्रकट किया है। इससे स्पष्ट है कि भागवत में ज्ञान और भक्ति दोनों रस स्वभाव में भिन्न होते हुए भी पूर्ण सामरस्य के साथ विकसित हुए हैं। इसी कारण गोकृष्ण-कथा आकाश में अगणित नक्षत्र, तारिकाओं की भाँति अपरिसीम और असंख्येय है तथा श्रीकृष्ण एवं श्रीकृष्ण-कथा भारतीय साहित्य के इतिहास में और लोक में भी सर्वाधिक चर्चित और महिमान्वित है।

हिन्दी साहित्याकाश में श्रीकृष्ण महत्वपूर्ण प्रकाशपुंज और भक्तियुग में सर्वाधिक पूज्य आराध्यदेव हैं। प्रधान इतिहासपुरुष होने के साथ महान कर्मयोगी, पराक्रमी तथा राजनीति-विचक्षण हैं। उनके विराट् व्यक्तित्व में स्वरूप की इतनी विभिन्नता और विचित्रता का समावेश है कि प्रत्येक क्षेत्र में वे अनुकरणीय आदर्श बन गए हैं। वे योगेश्वर भी हैं, रसेश्वर भी तथा पुरुषोत्तम भी। हर क्षेत्र में वे दिव्य और महान हैं। इन्हीं महान गुणों ने मुसलमान कवि जायसी को भी आकृष्ट किया। "पद्मावत" की प्रेमकथा प्रधानरूपेण श्रीमद्भागवत से ग्रहण की गई है। इसीलिए योग-भोग आदि अन्तर्भूत धार्मिक तत्वों के विषय में भी भागवत के सर्वाधिक प्रभाव को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

दूसरी बात जो सर्वाधिक प्रभावकारिणी है वह यह कि "कन्हावत" अवतारवाद पर आधारित महाकाव्य है और अवतार भक्ति की आधार-शिला है। इसमें अवतारवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई है और उसके प्रति संदेह का निराकरण भी। श्रीकृष्ण स्थान- स्थान पर अपने अवतार ग्रहण के प्रसंग को बार- बार स्मरण कराते दिखाई देते हैं तथा इसका प्रयोजन सर्वदा तीनों लोकों से अधर्म का मूलोच्छेदन करना बताते हैं । जायसी के ये शब्द -

"जोतहि दीप परे अब होई । मारै कहँ औतारे सोई।।"[1]

श्रीकृष्ण के अवतार का प्रयोजन सिद्ध करते ही हैं। किन्तु उनका यह भी मत है कि यदि अवतार न होता तो कर्म, तप और भोग की प्रतिष्ठा न होती -

" जौ न होत अवतार, कहाँ करम, तप, भोग ।
झूठा सब संसार, साईं केरा खेल यह ।।"[2]

इसी कर्म, तप और भोग से समन्वित जायसी का मोक्ष सम्बन्धी विचार भी प्रकट हो जाता है। श्रीकृष्ण भी गृहस्थ रहकर उदासीन रहने के मत का समर्थन करते हैं। वे कहते हैं कि वही व्यक्ति तपस्वी है और शिव-लोकवासी भी जो गेही ह रहकर भी अगेह रहे -

"सोइ तपा औ सो कैलासी । गिरहीं महं जो रहै उदासी।।"[3]

जायसी के उपरोक्त कथन में गीता के कर्मयोग की पूर्ण ध्वनि है। भगवान कृष्ण ने कर्मपथ से विचलित अर्जुन को मुख्य रूप से कर्मयोग में नियुक्त करने का ही उपदेश दिया था। वह कर्म भी निष्काम हो। निष्काम कर्म का अर्थ है संसार के सभी कर्मों में ममता और आसक्ति का सर्वथा त्या

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 37.7
2- वही, कड़वक 344. सो0
3- वही, कड़वक 350. 5

अनासक्त होकर कर्म करने वाला योगी ही परमात्मा को प्राप्त करता है क्योंकि वह समस्त कर्म ईश्वर की पूजा और ईश्वर के लिए किया गया समझ कर करता है। इससे उसे शुभाशुभ फल-त्याग की भावना प्राप्त होती है। वह निर्भय होकर पाप- पुण्य के फलभोग से मुक्त हो जाता है एवं संसार बन्धन को काटता हुआ जन्म- मरण के चक्र को पार करके अंत में परमात्मा से मिल जाता है। इस प्रकार कर्मयोग ईश्वर से मिलन का साधन या मार्ग है। गीता में कर्मयोग के साथ ज्ञान और भक्तियोग की भी समान प्रतिष्ठा है जिसका आगे विवेचन किया जायेगा। यहाँ केवल इतना ही कथनीय है कि सूफी साधक भी परमात्मा के साथ ऐक्य प्राप्त करना साधना का लक्ष्य मानते हैं। उनकी दृष्टि में "प्रेम" ही एक अद्वितीय "पंथ" है।

जायसी की यह साधना अंत साधना के रूप में प्रसिद्ध हैं जो प्रेम के द्वारा सिद्ध होती है। काव्य में वे कहीं मुक्ति के सम्बन्ध में दार्शनिकों जैसा विवेचन नहीं प्रकट करते क्योंकि उनका यह उद्देश्य भी नहीं था। "कन्हावत" में भी उन्होंने मुक्ति सम्बन्धी धारणा का कहीं स्पष्ट विवेचन नहीं किया। उनकी कुछ सूक्तियाँ और जीवन पद्धति ही इसका निर्वचन करती प्रतीत होती हैं। उदाहरणार्थ श्रीकृष्ण नागिन से सहस्र दल कमल ग्रहण करने के बदले उसे मोक्ष या मुक्ति देने की प्रतिज्ञा करते हैं।[1] अन्यत्र राधा सखियाँ सहित श्रीकृष्ण को दिव्य शक्ति से निर्मित कनक दुर्ग के भीतर घिर जाने पर उनसे कहती हैं -

"पिंजर माहिं पंखि जस परीं। तुम्ह मुकतैं हम गोउ साकरीं।।"[2]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक- 75.दो०
2- वही, कड़वक 259.2

अर्थात् "हम सब कनक दुर्ग रूप पिंजड़े में फँसे पक्षी के समान फिर गई हैं, आप ही हमारी इस शृंखलाबद्ध ग्रीवा को मुक्त करने में समर्थ हैं।" संसार एक पिंजड़ा, बन्धनस्थल है, पक्षी रूप जीव इसमें कैद रहकर मुक्ति के लिए छटपटा रहा है। ईश्वर की कृपा से ही वह मुक्त हो सकता है इसीलिए उनकी शरण में जाता है, आत्मसमर्पण करता है।

जीव इस संसार में जन्म लेता है और आवश्यक रूप से कर्म करता है। कर्म करने के फलस्वरूप पाप- पुण्य रूप कर्मफल के अवश्य भोक्तव्य के कारण उसे पुनः जन्म-मृत्यु रूप बन्धन में बँधना पड़ता है। संसार में आवागमन के इसी चक्र से छुटकारा पाने को ही मुक्ति कहते हैं जिसके लिए जीव सतत आकुल रहता है। अतः जन्म- मृत्यु के बन्धन से छुटकारा पाना ही मुक्ति है। जन्म और मृत्यु दोनों के दुःख असहनीय होते हैं। जन्म-कष्ट से तात्पर्य जन्म-ग्रहण के समय तक और जीवनकाल के दुःख से है तथा मृत्यु-कष्ट का अर्थ मृत्यु के समय तथा उसके उत्तरकाल पुनर्जन्म धारण करने के दुःख से है। इससे पार लगाने वाले भगवान हैं क्योंकि जन्म मृत्यु के सागर से भक्त की नौका को भगवान ही पार लगाते हैं -

"तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ।।"[1]

जायसी ने इसी बात को गुरुमहिमा प्रसंग में इस प्रकार कहा है -

" समुँद माँझ बोहित अस सेवहिं ।
लागहिं पार आर जो सेवहिं ।।

1- श्रीमद्भगवतगीता, गीताप्रेस, अ0- 12, श्लोक- 7.

[1] नाँ खेवहिं खेवक बढ़ाई ।
समुंद देखि जल जिउ न डराई ।।

भा दरसन हिय निरमल भएऊ ।
x x x
जो पूजे आस तोलाई ।।"

गुरु समुद्र के मध्य शिष्यों की नौका को इस प्रकार खेते हैं कि वह पार हो जाती है। उनकी दरबार की सेवा का ही यह फल होता है। उन्होंने मुझे नौका पर चढ़ा लिया। मुझे उस समय अति विस्तृत अगाध समुद्र का जल देखकर भय नहीं लगा, उनकी कृपा और मार्गदर्शन से मेरा हृदय निर्मल हो गया, परमात्मा के दर्शन हो गए, धर्म की प्राप्ति हुई और पाप का नाश। इस प्रकार जो मन और चित्त से सेवा करता है उसकी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती है, समस्त आशाएँ निःशेष हो जाती हैं। संसार-सागर से जीवन-नौका के खिवैया गुरु की कृपा से पार हो जाने के माध्यम से लौकिक जीवन का सुखद अन्त होना ही अभिनिल है, अन्तिम फल परमात्म दर्शन से जन्म- मृत्यु के बन्धन से मुक्त होना परम्परया अभिनिल है। इसी के साथ जायसी ने गुरु द्वारा प्राप्त निश्चित पंथ "प्रेमपंथ" को भी व्यक्त कर दिया है। प्रेमपंथ का निरूपण मोक्ष के साधनों के प्रसंग के अवसर पर किया जायगा ।

अब प्रश्न यह है कि जायसी "पद्मावत" में किस प्रकार की मुक्ति का प्रतिपादन करते हैं, जीवन्मुक्ति का अथवा विदेह मुक्ति का ?

1- "पद्मावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 5-4-7

उपनिषदों में इसी को क्रमश: सद्योमुक्ति और विदेहमुक्ति के नाम से जाना जाता है। सद्योमुक्ति या जीवन्मुक्ति के विषय में शंकराचार्य जी का मत है कि मोक्ष अज्ञान की निवृत्ति मात्र है। ज्ञान से अज्ञान का उसी प्रकार नाश हो जाता है जैसे प्रकाश से अन्धकार का। अज्ञान के निवृत्त होते ही मोक्ष यहीं और अभी हो जाता है। प्रारब्ध कर्मानुसार मानव-शरीर विद्यमान तो रहता है किन्तु व्यक्ति संसार के प्रपंचों से दूर रहता है। मोह उसे सताता नहीं, शोक कभी अभिभूत नहीं करता, सांसारिक विषयों के लिए उसे तृष्णा नहीं होती। उस ज्ञानी को केवल संस्कारों की समाप्ति तक ही शारीरिक अवस्था में रहना पड़ता है। जैसे ही संस्कारों का विनाश होता है, मनुष्य का शरीर छूट जाता है, वह संसार में सर्वथा और सर्वदा के लिए आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार शरीर के रहते हुए भी उसे ज्ञान (ब्रह्मात्म) तथा अमृतत्व प्राप्त हो जाता है।

विदेह मुक्ति में ब्रह्मज्ञानी नाम, मान और रूप का त्याग कर दिव्य पुरुष से कैवल्य प्राप्त करता है।[1] पुन: आत्मा जो आन्तरिक हृदय में निवास करता है वस्तुत: ब्रह्म है। जब वह इस नश्वर शरीर को त्याग देता है तो सर्वदा के लिए ब्रह्म में लीन हो जाता है।[2]

उपनिषदों में आत्मा के शुद्ध स्वरूप के ज्ञान को मोक्ष कहा गया है। शुद्ध ज्ञान के प्राप्त होते ही साधक के समस्त बन्धन सर्वथा और सदा के लिए नष्ट हो जाते हैं।[3]

1- मुण्डकोपनिषद् 3/2/8

2- छान्दोग्योपनिषद् 3/14/4

3- श्वेताश्वेतरोपनिषद् 1/11

बौद्ध लोग दुःखों से आत्यन्तिक निवृत्ति को निर्वाण या मोक्ष कहते हैं। निर्वाण ऐसी अवस्था है जिसमें दुःख का पूर्ण विनाश हो जाता है और पुनर्जन्म की सम्भावना क्षीण हो जाती है। "कन्हावत" में राधा का स्वर दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति और ऐकान्तिक सुख की ओर प्रतिध्वनित करती हुई ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं -

" एहि सुख निसि- दिन निसोछे रहौं ।
जेहि दुख होइ सो बात न करौं ।।
मैं ऐसइं पुनि राखब, आपुन जिउ सकुचाइ ।
लौटि जो मिलि के बिछुरन, सो दुख सही न जाइ।।"[1]

मुक्ति की इन दोनों अवस्थाओं में जायसी को जीवन्मुक्ति ही काम्य थी क्योंकि वे योग और भोग तथा ज्ञान और भक्ति दोनों को जीवन का अनिवार्य अंग मानते हैं तथा इन्हें समान स्वीकार करते हैं। दूसरे वे पुनर्जन्म की विरोधी इस्लामी विचारधारा का विरोध नहीं कर सकते थे । तीसरे सूफियों की विचारधारा भावनात्मक थी जो जीवनकाल में ही परमानन्द की प्राप्ति की पोषक है। चौथे वे मृत्यु को सत्य मानते हैं। उसके परे कुछ नहीं है। उनका दृष्टिकोण है कि काल किसी को छोड़ता नहीं है, चाहे योगी हो या भोगी। अतः जब तक ईश्वर की कृपा हो और जीवन रहे तब तक तप करे[2]।

इस प्रकार जायसी के मत में "कन्हावत" के अन्तर्गत उस विदेह मुक्ति की कहीं भी चर्चा नहीं है जिसे मृत्यु-पश्चात् जन्म- मरण के बन्धन से मुक्त होने के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। वास्तव में वे एक सच्चे मनुष्य थे और यह चाहते थे कि मनुष्य का रहना ठीक हो,

---

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 259,7-दो०
2- वही, कड़वक 352 दो०

व्यवहार ठीक हो और ईश्वर के प्रति सच्ची निष्ठा हो। मनुष्य गेही रहकर भी अगेही भाव रखे। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सामरस्य हो। व्यष्टि और समष्टि में अभेद दर्शन का भाव रहे। यह सब प्रेम चषक का आस्वाद लेकर ही प्राप्त हो सकता है क्योंकि प्रेम ही धर्म का मूल है और सद्व्यवहार उसका रूप है। अतः मनुष्य सद्व्यवहार करके एक सच्चा मानव बने, चाहे वह योगी हो, उदासी अथवा दास[1]। "जायसी स्वयं भी मर्मी कवि थे। वे सच्चे अर्थों में मनुष्य बन रहे हैं, प्रयत्न कर रहे हैं- कवि, उदासी, दास, गेही होकर अगेही और प्रेमप्रभु के प्रेमामृत से छका हुआ महात्मा सच्चे अर्थों में मनुष्य बनने का प्रयास कर रहा है और यह सब वह "अपने नगर" -जायस- में रहकर कर रहा है।"[2] इसीलिए उन्होंने ज्ञान और भक्ति के रस में डुबकी लगाई और प्रेमामृत प्राप्त किया जिसे पीकर वे अमर हो गए। प्रेमामृत के छककर पीने के आनन्दानुभव को वे समस्त मानवों में बाँटना चाहते हैं जिससे संसार एक प्रेमसूत्र में बँधकर सामरस्य बन जाए। जीवन की यही आनन्ददायिनी अनुभूति ही उनकी जीवन्मुक्ति है।

हिन्दी के मध्यकालीन इतिहास पर दृष्टिपात करें तो हमें ज्ञात होता है कि तत्कालीन कवियों और सन्तों ने संसार को मायाजाल, असार और स्वप्नवत् मिथ्या बताकर वैराग्य की ओर लोगों को उन्मुख किया था और संसार के त्याग का उपदेश दिया था किन्तु सूफियों ने

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक- 15 सो०
2- वही, पृ०- 47.

लोक का यथार्थ रूप स्वीकार किया और उसमें प्रेम का पुट देकर इस जीवन को, जगत को रहने योग्य तथा आनन्ददायक सिद्ध किया है। जायसी ने रस- भाषा में कृष्ण- चरित का गान इसीलिए प्रेमकथा के माध्यम से किया है। वे कहते हैं, "यह संसार चलो- फिरती छाया है। इस जग में जन्म लेकर कोई सदा जीवित नहीं रहता फिर भी जितने भी दिन जीवित रहे इस जग को, व्यवहार को और रहने को सुन्दर और स्वच्छ बनाये -

" मुहम्मद कवि कन्हावत गाई ।
रस भाषा के सभी सोनाई ।।
यह संसार चलन कै छाँही ।
रहा न कोइ आए जग माँहा।।
[जो पै] रहनि होइ जग नीका।
[1] रहत मुहम्मद जो जग [नीका]।।"

इसीलिए उन्होंने "कन्हावत" की रचना की। यही जीवन का मूलमंत्र है और एक सच्चे मानव का आदर्श भी। कृष्ण जैसे विराट व्यक्तित्व में जायसी को एक सच्चे मानव का आदर्श प्राप्त ही हुआ। किसी भाषा के साहित्य में उन्हें ऐसा अनुपम व्यक्तित्व ढूढने से भी न मिला। ऐसा आदर्श जीवन योगसाधना मात्र से नहीं प्राप्त होता क्योंकि वह व्यावहारिक सत्य नहीं है। भोगों को न भोगना उनके प्रति अपराध है। अतः भोग करके इच्छा क्यों न पूरी करे। भोगपूर्ण दीर्घ जीवन नीरस होता है किन्तु भोग में अल्प जीवन भी सुन्दर होता है।[2] भोग करते हुए ही विधि को पहचाना जा सकता है।[3] श्रीकृष्ण भोगपूर्ण जीवन में भक्ति, सेवा, तप, योग, ध्यान, दान, सद्व्यवहार और धर्म करते हैं। किन्तु गृहस्थ रहकर

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 366.1-3
2- वही, कड़वक 352.1-5
3- वही, कड़वक 350.3

भी कर्मयोग से अनुकूल रहते हैं। इस प्रकार योगेश्वर कृष्ण गोरख को समझाते हैं कि देखो मेरी सोलह सहस्र गोपियाँ हाथ जोड़े हुए सदा सेवा के लिए तत्पर रहती हैं। वही सच्चा तपस्वी है, और वही शिवलोक-वासी, वैकुण्ठी है जो गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी उदास, तटस्थ रहे। वे आगे कहते हैं कि मैं उनके समक्ष यद्यपि प्रकट रूप में दिखाई पड़ता हूँ तथापि गुप्त रूप से परमेश्वर का नाम हृदय में धारण किए रहता हूँ। यही ज्ञान सभी गोपियों को सिखाता हूँ और मन को सदा ईश्वर के ध्यान में लगाए रखता हूँ। दान देना और सत्य की रक्षा करना मेरे श्रेष्ठ कर्म हैं। दान करता हुआ मैं तनिक भी अहंकार नहीं रखता। इसके निमित्त मैं सतत धर्म करता हूँ जिससे पाप कभी भी मेरे निकट नहीं आता।[1] ऐसी भक्ति देखकर सिद्ध गोरख आश्चर्यचकित हो जाते हैं। वे कृष्ण को ज्ञानी और धन्य पुरुष कहते हैं।[2]

सूफी सगुण- निर्गुण रूप उभयगुण विशिष्ट ब्रह्म के प्रति अपनी निष्ठा रख रहा है। उसके प्रति अपना पूर्ण आत्म समर्पण करके उसी में अपने अस्तित्व-अस्तित्व को मिला देता है। इस प्रकार सूफियों की साधना का लक्ष्य परमात्मा के साथ ऐक्य प्राप्त करना है। सूफी फना और बका के रूप में उसकी दो स्थितियाँ बताता है। फना में किसी वस्तु की अपूर्णता का ज्ञान और उसे पाने की इच्छा से विरत होने की स्थिति होती है। इसमें न प्रेम के लिए स्थान है और न घृणा के लिए ही। बका की स्थिति में संयोग और वियोग दोनों का ज्ञान नहीं रह जाता है। वास्तव में यही पूर्ण

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 350.4- दो0
2- वही, कड़वक 354.7

अद्वैतावस्था होती है। कुछ साधक जिनका कल्ब पूर्णरूपेण परिष्कृत नहीं हो पाता, पुनर्जन्म के चक्र में पड़ते हैं। साधना करते- करते जब आत्मा के समस्त कालुष्य नष्ट हो जाते हैं तो वह अपने मूलस्रोत परमात्मा से एकमेक हो जाता है। यह मिलन समुद्र में बिन्दु के मिलने के समान होता है। मिलन की प्रथम स्थिति में द्वैतयुक्त मिलन होता है। इस प्रारम्भिक स्थिति के पश्चात् आत्यन्तिक स्थिति होती है जो पूर्ण तादात्म्य की स्थिति अर्थात् अद्वैतावस्था होती है।

सूफी जामी भी कहते हैं -

> अक्ल गोयद शशहद अस्तव बाज बेरून राह नेस्त ।
> इश्क गोयद राह अस्त व रफ्तअम मन बारहा ।।

अर्थात् अक्ल कहती है कि कुल छह ही तो रास्ते हैं और इन सबसे चलकर वह परमात्मा तक नहीं पहुंच पाई। इन छहों से बाहर कोई रास्ता नहीं। प्रेम कहता है- हटो, तुम्हें क्या पता ? एक और [बुद्धि से परे] रास्ता है, मैं उसी से आता- जाता हूं। असल में यह बात की बात हो तब तो बुद्धि की कुछ चले। यह तो करके व अनुभव करने की बात है। यह "वाद" नहीं ~~क्रिया~~ "क्रिया" है, "अनुभव" है। यही कारण है कि सूफियों में "फना" और "बका" की अलग- अलग स्थितियाँ मिलती हैं, जिनमें से सभी सही हैं, पर पूर्ण रूप से कोई उस दशा को व्यक्त नहीं कर पाता। निष्कर्ष यह कि सृष्टि के मूल में परमात्मा आत्मलोभ का स्वभावतः साक्षात्कार ही है और विश्व- सृष्टि उस ~~का~~ यात्रा के बिंदुपथ है। बंदा उसका माध्यम है। जड़ जगत् के माध्यम से भी वह आत्मसाक्षात्कार ही करना चाहता है, पर प्रक्रिया पूरी हुई "जीव" या इन्सान की सृष्टि से। इन्सान के "कल्ब" में जब वह पूर्णरूप से प्रतिफलित हुआ, तभी वह अपने से अपना साक्षात्कार कर सका, पर "इन्सान" भी जब "इन्सानुलकामिल" हुआ, "मानव" पूर्णमानव हुआ। सवाल यह है कि प्रकृति ने अपनी नैसर्गिक

प्रक्रिया से "इन्सान" तो पैदा कर दिया, लेकिन उसकी सृष्टि के घटक रूप में जो विरोधी स्वभाव वाले तत्व निहित कर दिये हैं, अवतरण प्रक्रिया में निम्नाभिमुख यंत्र ऊर्ध्वमुखीन संभावनाओं को ढके हुए हैं। यह ढक्कन कैसे हटे? आवरण कैसे टूटे? औंधी पड़ी ऊर्ध्वगामिनी सम्भावनायें कैसे निसर्गसिद्ध राह पकड़े? सूफियों की ही नहीं, विश्व भर के रहस्यवादियों की धारणा है कि यदि यह सारी लीला उस परमसत्ता की स्वतन्त्र इच्छा की ही परिणति है अर्थात् विश्व और बंदे के रूप में यदि उस "तौहीद" की "तजल्ली" है अथवा "तनज्जुलात" है तो उसकी इच्छा अभी पूरी कहाँ हुई? प्रत्यावर्तन या ऊर्ध्वगामी "सुलूक" के लिए हर बन्दे को वह "सालिक" भी बनाएगा। यदि निम्नाभिमुख अवरोहणात्मक अर्द्धवृत्त उसकी इच्छा से है तो ऊर्ध्वाभिमुख अर्द्धवृत्त के बिना उसका संकल्प पूरा कैसे होगा? अतः इस प्रत्यावर्तन में, जिस क्रम से उतरा है उसी क्रम से व्युत्क्रमात्मक पद्धति से आरोहण में, रूहानी चढ़ाई में भी उसी की इच्छा निहित है। बंदे की व्यष्टि दृष्टि से यह अल्लाह की अकारण अनुकम्पा है और समष्टि से अवतरण में "निग्रह" तथा "आरोहण" में "अनुग्रह" शक्ति काम कर रही है। पहले में "जलाल" और दूसरे में "जमाल" सक्रिय है।

शांकर अद्वैत में परमसत्ता निर्विशेष है। उसकी ओर से न कुछ हुआ है और न कुछ होना है। जीव अनादि अविद्यावश स्वयं स्वरूप-च्युत है और अविद्या की आत्यंतिक निवृत्ति से स्वरूपस्थ हो जाता है। यहाँ परमसत्ता द्वारा आत्म-वैभव के साक्षात्कार का सवाल ही नहीं है, अतः वह न तो स्वेच्छया बंधता है और न ही स्वेच्छया मुक्त होता है। तत्वतः वह निरन्तर मुक्त ही है। अनादि अविद्यावश स्वरूपच्युत होने का उसे भ्रम है। उसकी सारी साधना इसी भ्रम को मिटाने के लिए है।

स्पष्ट है कि शांकर अद्वैत ज्ञान मार्ग है और सूफियों का राग मार्ग है। दोनों की प्रकृति भिन्न है। पहला रूक्ष प्रकृति का है और दूसरा द्रवशील प्रकृति का, फलतः दोनों मार्गों के अधिकारियों की प्रकृति भिन्न है। अधिकारी की तो प्रकृति भिन्न है ही, ज्ञान और भक्ति की भी प्रकृति भिन्न है। साधन की दृष्टि से भी देखें तो आराध्य के प्रति सर्वात्मना समर्पण भक्ति है, जबकि ज्ञान-

मार्ग में महावाक्य का श्रवण-मनन साधन है। फल भी पृथक्-पृथक् है। भक्ति का फल प्रेम का प्रकर्ष है, जबकि ज्ञानमार्ग का साध्य अविद्यानिवृत्ति ही है। भक्ति में प्राणिमात्र का अधिकार है, जबकि ज्ञान में सन्यासी का। इस प्रकार साधन की दृष्टि से भी शांकर अद्वैत से सूफीमत की संगति नहीं बैठती।

साधन के सन्दर्भ में आगमों में तीन बातें कही जाती हैं जिनकी समानांतर बातें सूफी मत में भी लगभग उसी रूप में चित्रित हैं -

(1) पारमेश्वर अनुग्रह या शक्तिपात (फज्ले हक)

(2) गुरु- दीक्षा (तवज्जह, जिक्र और मुराकबा)

(3) साधनगत उपाय (तरीकत)

निष्कर्ष यह कि इस "राग-मार्ग" में, जिसका संकेत भले ही "निगम" में हो, पर पल्लवन "आगम" में ही है। सूफी भी मानते हैं और प्रायः सभी रागमार्गी साधक मानते हैं कि साधक के हाथ में केवल "तलब" है, "अभीप्सा" है, "भाव सहित" पाने की बेचैनी है। इसी के भीतर से सब फूटता है। "फकीरों की सात मंजिलें" नक्शबंदिया सिलसिले की एक पुस्तक है, जिसके लेखक हैं संतवर डॉ॰ कृष्णस्वरूप जी महाराज, जो हजरत मौला शाह फज्ल अहमद खाँ रायपुरी की शिष्य- परम्परा में आते हैं। उसमें कहा गया है - "बगैर तलब के इश्क नहीं, बगैर इश्क के मारिफत नहीं, बगैर मारिफत के तौहीद नहीं, बगैर तौहीद के इस्तगना नहीं, बगैर इस्तगना के फना नहीं, बगैर फना के बका नहीं।"... हममें तलब (इच्छा) पैदा हुई, इश्क (प्रेम) आया। "इश्क" से इरफान (ज्ञान) पैदा हुआ, फिर तौहीद (एकमात्र) और वहदानियत (एकत्व) का ख्याल हमारे दिल के अन्दर ही पैदा हुआ। फिर हममें "इस्तगना" (उपराम) भी आई। उसी में फना (लय) भी हुए और उसी से बका (पुनर्जीवन) में कायम (स्थिति) हुए। बाहर से कुछ किया न धरा। कुछ न था न होगा सब में है।"

वास्तव में "बका" तो सदैव वर्तमान है, पर ख्याली पर्दों ने उसे ढँक रखा है। अमल और शग्ल से ये ही पर्दे तो हटाये जाते हैं। रूहानी चढ़ाई और कुछ नहीं, आवरणों का हट जाना ही है। "तालिब" को "मतलूब" की तलब होनी चाहिए। "तलब" होते ही "पीर" की खिदमत में तालिब पहुँचता है। पीर की ओर से तवज्जह की खुराक मिलती है- तालिब की तलब पीर के प्रति इश्क में बदल गई। ज्यों- ज्यों इश्क पक्का होता है तालिब मतलूब को पहचानने {मारिफत} लगता है और इस पहचान की परिणति तौहीद {सपने या तादात्म्य} में होती है। फिर वह "सपने" की स्थिति से ऊपर उठता {इस्तग्ना} है- खुदी छूट जाती है {फना} और असलियत {बका} उजागर हो जाती है। तालिब {बंदे} का मतलूब {पीर} में लय होना ही "फनाफिल शेख" के नाम से पुकारा जाता है। दिल जितना साफ होगा, तलब उतनी तेज होगी। इसलिए व्यवहार शुद्धि से मनः शुद्धि पहली मंजिल है। उपनिषद् भी कहती है - नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः । जिसमें ताकत नहीं, वह क्या आत्मा को पायेगा?

निष्कर्ष यह कि इश्क या प्रेम परमात्मा की सार सत्ता है। वह जिस हृदय में उपजता है, उसमें परमात्मा के और गुण भी साथ-साथ प्रकट होने लगते हैं। उसका कर्म निष्काम भाव से होने लगता है, जगद् रक्षण और रंजन के अनुकूल वृत्तियाँ बनने लगती है। मालिक की दुनिया के लिए अकारण करुणा उमड़ने लगती है, अहंकार गलने लगता है, जो सबसे बड़ा परदा है ।

"तलब" ही आराध्य की स्पष्टता होने पर "इश्क" नाम पा जाता है। जब सूफी यह कहकर अपनी बेचैनी व्यक्त करता है -

> बेहिजाबी यह कि हर जर्रे में जलवा आशिकार ।
> फिर भी पर्दा यह कि सूरत आज तक देखी नहीं।

1- प्रो० राममूर्ति त्रिपाठी, तन्त्र और सन्तमत, पृ०- 49 से 54 के आधार पर ।

"कन्हावत" में श्रीकृष्ण गोपियों को अपने जिस विराट् स्वरूप का दर्शन कराते हैं वह उनका विश्वरूप है। उन्होंने यह प्रकट किया है कि जो ब्रह्माण्ड में है वही पिण्ड अर्थात् शरीर में भी। अत्यंत अपार विस्तार वाले तीनों लोकों में जो कुछ दृश्यमान है उसमें श्रीकृष्ण ही पंचकर्मेन्द्रिय, पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच प्राण और मन रूप अपनी सोलह कलाओं का विस्तार करके समाविष्ट हैं।[1] इसके देखने, समझने और पहचानने के लिए उन्होंने गोपियों को दिव्य दृष्टि नहीं प्रदान की वरन् उनसे अपने भीतरी आवरण को उघार देने का आवाहन किया। उन्होंने उन्हें समझाया कि "अहम्" मनुष्य के हृदय में मिथ्या प्रतीति है जिसके कारण वह अपने सभी कर्मों का कर्त्ता मान बैठता है। वास्तव में कर्ता, भोक्ता सब ईश्वर ही है। उसने जब अपने आपको देखना चाहा तो जगत के रूप में अपना विशेष रूप प्रकट कर दिया है। इस प्रकार कर्ता, भोक्ता तो वह स्वयं है किन्तु कर्तृत्व, भोक्तृत्व का दोष दूसरे पर मढ़ देता है। यह जीव ही है जो अहंकार के कारण अपने को कर्ता, भोक्ता मानकर कर्म करता है और उसके शुभाशुभ कर्मफलों के भोग के कारण जन्म- मरण रूप बन्धन में पड़ता है।

समस्त भारतीय पुराण, शास्त्र, उपनिषद् इसी बात को दुहराते चले आ रहे हैं कि आत्मा और परमात्मा के बीच एक अज्ञान का पर्दा है जो दोनों की एकता में बाधक है।[2] श्रीकृष्ण गोपियों को इसी आवरण को हटा देने का आवाहन करते हैं। जायसी ने इस दर्शन को यथार्थ रूप

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 342-दो0 सो0
2- वही, कड़वक 345- दो0

प्रदान किया। उन्होंने ईश्वर के प्रति निर्गुण और सगुण रूप दो दृष्टियों का निरूपण किया है। निर्गुण के प्रति उनकी दृष्टि ज्ञानयोग की है और सगुण के प्रति भक्ति की। " गुपुत जो रहे सो ज्ञान विचारा । परगट होइ जाइ सो मारा ।।"[1] का यही आशय है कि निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति ज्ञानमार्ग से सम्भव है क्योंकि वह अवर्ण, अरूप, अलख, अजन्मा है और ज्योतिस्वरूप है। संसार में उसकी स्थिति पुष्पों में सुगन्धि आदि के रूप से सूक्ष्म है। मनुष्यों का हृदय उसका निवास है। अत: निर्मल हृदय के भीतर ही उसका दर्शन किया जा सकता है। इसलिए हृदयरूप दर्पण को माँजना अर्थात् निर्मल करना आवश्यक है। निर्मल हृदय के दर्पण में ही उसकी ज्योति स्वच्छ झलकती है।[2] "हिन्दी सूफी कवियों के यहाँ प्रेममार्ग में यह एक सर्वस्वीकृत सिद्धान्त था। वस्तुत: हृदय चैतन्य केन्द्र है, वहीं सारी भावनाएँ उपजती हैं, वही जीव है, वही प्राण केन्द्र है। यह हृदय या "कल्ब" [भौतिक अवयव हृदय नहीं] मानव में प्रतिबिम्बित ब्रह्म के साथ सम्बद्ध होने के कारण हमारा अन्तरंग केन्द्र है।"[3] हृदय की दिव्य ज्योति ही मनुष्य का सर्वस्व है।[4] इस दिव्य ज्योति का दर्शन अन्तर्नैन से सम्भव है। भौतिक नेत्र से कदापि नहीं हो सकता। जायसी कहते हैं कि -

"नैन दिष्टि सो जाइ न छुआ । सहस करां सूरुज जनु उआ।।"[5]

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 118.3
2- वही, कड़वक 104 सो0
3- वही, पृ0- 66
4- "पद्मावत" : माताप्रसाद गुप्त, कड़वक- 6, 150, 152, 173 आदि
5- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, कड़वक 112.6

"उन्मादवत" में ऋषि दुर्वासा की स्थिति अद्भुत ज्ञानी जैसी है। "वे कभी सत्य के मार्ग से विचलित नहीं हुए। यमुना नदी के किनारे रात-दिन ईश्वर का जप करते हुए अन्न त्याग कर और मात्र दूर्वा खाकर तप करते रहे। लोगों ने उन्हें पाषाण-हृदय का समझा क्योंकि युग बीत गया तथापि उन्होंने घर और गृहिणी का आयोजन नहीं किया। संसार रूप माया त्याग कर उन्होंने काया के भीतर ही संसार बसा लिया। इस प्रकार समस्त कामनाओं और वासनाओं का त्याग कर दिया। अपने भीतर ही समस्त संसार और प्राणियों का रूप देखा तथा उनमें ईश्वर का दर्शन किया। आत्मगत समत्व, वस्तुगत समत्व और गुणातीत समत्व में स्थित होकर, अहं को खोकर ईश्वर की खोज की। समुद्र में बूंद के समान ईश्वर में उनका लय हो गया। धन और वय को भेंट चढ़ा दी। अंत में उन्हें ज्ञान हुआ कि एक ही ईश्वर प्रकट और गुप्त रूप में सर्वत्र व्याप्त है। श्वेत- श्याम, दिन- रात्रि, सब उसी के रूप हैं। इनमें अभेद है। इस तरह जो एक ब्रह्म में निमग्न हो जाता है, वह निर्गुण ब्रह्म अवर्ण, अरूप होता हुआ भी नाना रूप में दृष्टिगत होता है। दुर्वासा की यह स्थिति योगसाधना के माध्यम से व्यक्त है। "जो ब्रह्मंडे सोई पिंडे।" अर्थात् जो कोष ब्रह्माण्ड में है वही (पिंड) (शरीर) में भी है, ब्रह्म की प्राप्ति के लिए दुर्वासा ने जो आत्मसाक्षात्कार की साधना की है उसके पीछे उपरोक्त अनुभव ही मूल है।

गोपियों ने दो सच्चाइयाँ अपनी आँखों से देखी थीं- प्रथम तो श्रीकृष्ण ने उनके साथ रमण किया था, दूसरे दुर्वासा ने गोपियों द्वारा खिलाए गए समस्त पकवानों को खा लिया था किन्तु श्रीकृष्ण और दुर्वासा ऋषि दोनों ने इसके विरुद्ध बातें कहकर यमुना पार होने का उपाय बताया था। गोपियाँ असत्य बोलकर यमुना पार हो गईं

थीं। इसलिए उन्होंने ये मान लिया था कि सारे जगत में झूठ का ही प्रचलन है। वे श्रीकृष्ण को नाऊन्हों समझकर रूठ गईं। वे अज्ञानी गोपियाँ इस रहस्य को नहीं समझ पाईं थीं कि "अहम्" जीव के भीतर मिथ्या प्रतीति है जो ईश्वर घट-घट में व्याप्त है वही भोग और भोक्ता दोनों है। जब उसने अपने रूप को देखना चाहा तो गुप्त और प्रकट रूप जगत की सृष्टि कर ली। प्रकट में वह पुष्प है तो गुप्त रूप में सुगन्धि। वही फल है, वही रखवाला और वही उसके रस का चखनेवाला भी। जीव अहंकारवश ही अपने को कर्ता और भोक्ता मानता है किन्तु यह उसका भ्रम है। भोग, भोक्ता ईश्वर ही है। वह स्वयं कर्ता भी है किन्तु कर्तृत्व का दोष जीव पर थोप देता है। इस प्रकार अन्तरात्मा के भीतर देखने से यह प्रकट होता है कि एक ईश्वर को छोड़कर दूसरा कुछ भी नहीं है। सारा जगत उसकी छायामात्र है। जहाँ- जहाँ देखो, खोजो, सब ईश्वर की कला, लीला ही दिखाई पड़ती है। सभी जीव इच्छानुसार कार्य करते हैं। वह यदा- कदा अवतार लेकर कर्म, तप और भोग का आदर्श प्रस्तुत करता है और उनकी प्रतिष्ठा करता है। इस प्रकार ईश्वर किसी स्थान विशेष में नहीं है। जायसी ब्रह्म की व्यापकता की सिद्धि के लिए चुनौती तक दे डालते हैं कि उसे कोई एक स्थान विशेष में दिखा दे तो मैं उसे चोर बताऊँ। कितने लोगों ने यावत् जीवन उसे ढूढ़ने का अथक प्रयत्न किया किन्तु उसे पा न सके।[1]

अज्ञानी गोपियों को उपदेश मात्र से विश्वास न होता इसीलिए श्रीकृष्ण ने अपने मुख के भीतर उन्हें विराट रूप का दर्शन कराया जिसमें तीनों लोक, नवों खण्ड, स्वर्ग, पाताल और मृत्युलोक समेत निखिल

1- "कन्हावत" : शिवसहाय पाठक, छन्दक 343, 344

ब्रह्माण्ड दिखाई पड़ा जिसके भीतर सुमेरु पर्वत, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, तारागण, महावन, सातों समुद्र, बहत्तर नदियों का श्रीकृष्ण के मुख के भीतर ही दर्शन हुआ। अपने आँखों से दर्शन कर लेने के पश्चात् उन्हें निश्चित ज्ञान हो गया कि जो कुछ ब्रह्माण्ड में है वही शरीर में भी है तथा इन सबके भीतर सोलह कलाओं का प्रसार करके श्रीकृष्ण ही परमेश्वर रूप में व्याप्त हैं।

बौद्धों, तान्त्रिकों, शैवों, शाक्तों तथा सूफियों आदि ने काम का तिरस्कार नहीं किया है। उसे दिव्यप्रेम की उदात्त भूमि पर प्रतिष्ठित किया और उसका पूरे समारोह के साथ उन्नयन करने का प्रयत्न किया। माधुर्य भक्ति में जिस प्रेम की स्वीकृति है वह न तो यौन सम्बन्ध से उद्भूत कामेच्छापरक प्रेम माना गया है और न इस प्रेम को साधारण सामाजिक बन्धन का आधार ही कहा जा सकता है। इस प्रेम के सम्बन्ध में स्पष्ट कहा गया है कि वासनाजन्य प्रेम में स्वसुख की कामना का प्राधान्य रहता है, उसमें प्रियतम के सुख से सुखी होना नहीं होता है। इस प्रेम को स्वसुख-विवर्जित स्वीकार किया गया है। माधुर्यभाव प्रधान भक्ति में परम्परा-प्राप्त मान्यताओं में पूरा परिवर्तन किया गया।

माधुर्यभाव, कान्ताभाव, दाम्पत्यभाव या शृंगारभाव तथा मधुर या उज्ज्वल रस सभी अपर पर्याय हैं। इसके वर्णन में किसी सम्प्रदाय ने स्वकीया भाव ग्रहण किया तो किसी ने परकीया भाव। सबमें विधि-निषेध के बाह्य प्रपन्चों से मुक्ति को विशेष रूप से उल्लिखित किया है क्योंकि इसके ग्रहण से बाह्याडम्बर उभर कर सामने आ जाता है और ...

और यदि इससे बढ़कर भक्ति का पथ प्रशस्त किया जाय तो निश्चय ही वह सर्वजन सुलभ और आकर्षक होगा। गृहस्थजीवन में रहने वालों के लिए तो इस मार्ग में और भी सुविधायें प्राप्त हैं। दैनन्दिन जीवन की अनुभूतियों को भक्ति पथ पर आरूढ़ करने की दिशा में भी इससे सहायता मिलना सम्भव है। राधा- कृष्ण का दाम्पत्य भाव अपने लौकिक जीवन के दाम्पत्य भाव के मूल में देखा जा सकता है और शनैः शैनः काम-वासनाओं का उन्नयन करते हुए भगवत्प्राप्ति के मार्ग पर बढ़ा जा सकता है किन्तु यदि इस मार्ग का रहस्य भलीभाँति हृदयंगम न किया गया तो विपरीत परिणाम होंगे। भागवतपुराण की नवधा भक्ति के मूल में इस भाव का अंश सबसे अधिक मात्रा में है। आलवारों, सिद्धों, सहजियों, सूफियों और निर्गुणियों तक में इस भाव की रेखायें मिलती हैं।

=======

नवम अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

"पद्मावत" के यशस्वी रचनाकार मलिक मुहम्मद जायसी से सम्बद्ध अनेक समस्याओं के समाधान में उनकी अन्य नवोपलब्ध रचना "कन्हावत" से पर्याप्त सहायता मिलती है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में 'कन्हावत" और जायसी की गुरु परम्परा' शीर्षक प्रथम अध्याय के अन्तर्गत जायसी की अधिकांश कृतियों के आधार पर सैयद अशरफ जहाँगीर को असंदिग्ध रूप से उनका पीर स्वीकृत किया गया है किन्तु गुरु परम्परा के अन्तर्गत उनके द्वारा अनेक सूफी सन्तों के नमन के कारण मानिकपुर कालपी शाखा के मुहीउद्दीन [मोहिदी] तथा शेख बुरहान एवमेव जायस शाखा के शेख मुबारक और शेख कमाल सम्भावित मुर्शिद- पीर की श्रेणी में सिद्ध होते हैं। जायसी की अत्यन्त प्रामाणिक, प्रौढ़ और विश्रुत कृति पद्मावत और सम्प्रति उनकी अन्य नवोपलब्ध रचना "चित्ररेखा" के प्रकाशन में शेख मुबारक तथा शेख कमाल का गुरु- वर्णन-साम्य देखकर "कन्हावत" के परिप्रेक्ष्य में जहाँ इन नामों की कहीं चर्चा तक नहीं है, स्थिति विलक्षण बन गई है ।

"कथानक का सारांश" नामक द्वितीय अध्याय में कृष्ण- कथा वर्णित है। मथुरा के महान ऐश्वर्यशाली और प्रतापी कंस के घोर अत्याचार, अनीति और झूठे अहंकार से क्रुद्ध परमेश्वर जगद्रक्षण और रंजन हेतु विष्णु को कृष्ण के रूप में पृथ्वी पर अवतरित करते हैं। भविष्यवक्ता नारद द्वारा इस सत्य का उद्घाटन किए जाने पर भी कंस उनके वध का अनेकविध निष्फल प्रयास करता है। बालक कृष्ण वृन्दावन रूप उपवन में भ्रमर सदृश विहार करते हुए परम सुन्दरी सोलह सहस्र गोपियों समेत राधा, चन्द्रावली तथा अनुगृहीत दासी कुब्जा के संग प्रेम में आनन्द भोग करते हैं। कंस ईर्ष्या, लोभ एवं दर्प में

के कारण छात्र् गोपियों की प्राप्ति की लालसा में व्याकुल होकर कपट-युद्ध चलाता है जिसमें अपार बलशाली दैत्यों समेत स्वयं नष्ट हो जाता है। कृष्ण एक सच्चे इन्सान की तरह निष्कामभाव से गृहस्थ- आश्रम- धर्म का पालन करते हुए दान, तप, व्रत, सेवा, सद्व्यवहार करते हैं तथा अन्त में संसार का मोह त्याग कर परमधाम चले जाते हैं ।

"तृतीय अध्याय" में "कन्हावत -- कथानक के स्रोत" का अनुसन्धान है। यद्यपि प्रेमाख्यानक परम्परा ऋग्वेद से लेकर पुराणों, प्राकृत- अपभ्रंश की रचनाओं, जैन चरित काव्यों, धर्मशास्त्र - ग्रन्थों और महाकाव्यों में सुरक्षित है तथा हिन्दी साहित्य में मौलाना दाऊद की "चन्दायन" इस कड़ी की सम्भवत: प्रथम रचना है तथापि "कन्हावत" श्रीमद्भागवत पर आधारित प्रथम कृष्णचरित काव्य के रूप में प्रणीत है । लोकजीवन में कृष्ण- कथा आकाश में ताराओं जैसी अनन्त है, अत: जायसी ने निस्सन्देह इससे भी प्रेरणा ग्रहण की है। इसकी आकृति में फारसी मसनवी आभासित है पर उपकरण- सज्जा के आवरण में भारतीयता की छाप भी सुस्पष्ट है।

चतुर्थ अध्याय में डॉ० शिवसहाय पाठक तथा डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त द्वारा पृथक्- पृथक् सम्पादित "कन्हावत" के कथाक्रम में अन्तर उद्घाटित किया गया है। पाठक जी की प्रति में 366 कड़वक सहित सात सोरठे दोहों के साथ संयुक्त हैं किन्तु गुप्त जी की "कन्हावत" में मात्र 362 कड़वक ही उपलब्ध है। पाठक जी की प्रति की मूल सिलाई कदाचित् टूट गई थी जिससे उसके पत्र अस्तव्यस्त हो गये और बाद में उसे व्यवस्थित करते समय

यत्किञ्चित् क्रम- भंग हो गया किन्तु पाँच खण्डों में विभक्त करने पर चतुर्थ खण्ड को द्वितीय तथा द्वितीय को चतुर्थ खण्ड के स्थान पर रख देने से कथा की संगति बैठ जाती है।

पंचम अध्याय "कन्हावत" की काव्यकला से सम्बन्धित है जिसके अन्तर्गत "कन्हावत" के महाकाव्यत्व, नायक, रसाभिव्यंजना, भाषा- शैली, वस्तु- वर्णन, रचना के नाम, रचना के उद्देश्य, रस- निष्पत्ति, प्रेम- प्रकार, प्रेम- चित्रण, संयोग श्रृंगार, चन्द्रावली- कृष्ण के संयोग- वर्णन, कुब्जा- कृष्ण- संयोग- वर्णन, विप्रलम्भ श्रृंगार, अनुषंगी रस, अलंकार और शब्दशक्ति पर विचार किया गया है ।

शैली और अभिव्यक्ति की प्रौढ़ता की दृष्टि से "कन्हावत" को मुक्त कण्ठ से महाकाव्य स्वीकार करने में कुछ संकोच होता है। कृष्ण इसके धीरोदात्त नायक हैं जिनकी गति लोकव्यापिनी है और मति लोकरंजनी। गृहस्थाश्रम में अनासक्त भाव से रहते हुए वे एक सच्चे मानव के व्यावहारिक जीवन का प्रेमादर्श स्थापित करते हैं। पारलौकिक प्रेम को लौकिक जीवन में मधुर अभिव्यक्ति होने के कारण यह श्रृंगार रस प्रधान काव्य है जो कड़वक छन्द में निबद्ध सरल और सरस ब्रजभाषा ठेठ अवधी की मनोरम कृति है और जिसमें प्रबन्ध काव्योचित समस्त वस्तुओं का हृदयग्राही वर्णन हुआ है ।

प्राचीन प्रेमाख्यानकों के नामानुकरण पर इसका "कन्हावत" नामकरण किया गया है। पावन प्रेमाचरण के माध्यम से जीवन में आनन्द प्राप्त करते हुए सच्चा मानव बनाना तथा परमात्मा से तादात्म्य स्थापित करना रचना का परमोद्देश्य है। इसमें रति की उत्तरोत्तर विकासावस्था के साथ संयोग और वियोग के चित्रांकनों द्वारा श्रृंगार रस की निष्पत्ति में प्रेम के भेदों तथा इसकी साधनाओं का भी निरूपण हो गया है। संयोग- श्रृंगार के अन्तर्गत षोडश- श्रृंगारों और द्वादश आभरणों सहित राधा के शिखनख वर्णन,

कुब्जा के साथ कृष्ण के विलास में षड्ऋतु वर्णन, गोपियों के संग नौका-विहार वर्णन और सुरम्य प्राकृतिक दृश्यों के वर्णनों में रति का उद्दीपन-कारी भाव सहजानन्द की पुष्टि करते हैं। चन्द्रावली, राधा और कुब्जा के साथ कृष्ण के संयोग- वर्णन प्रेमाख्यानक काव्य के पोषक सिद्ध हुए हैं। यहाँ प्रेम के प्रकर्ष की व्यंजना हेतु विप्रलम्भ के भी उद्दीपनकारी बारह-मासा वर्णन में फारसी तथा वैष्णवी मधुरोपासना के समन्वय से भावों की सम्प्रेषणीयता के साथ आध्यात्मिकता की व्यंजना दर्शनीय है। करुण, वीर, रौद्र, वात्सल्य आदि रस भी श्रृंगार रस की पुष्टि करते हुए प्रतीत हो रहे हैं ।

"कन्हावत" के महत्वपूर्ण पात्रों जैसे :- कृष्ण, राधा, चन्द्रावली और कंस की चारित्रिक विशेषताओं के वर्णन को छठें अध्याय में समाविष्ट किया गया है। श्रीकृष्ण "कन्हावत" काव्य के नायक हैं। विष्णु इनके आदि रूप हैं। व्यापनशील अर्थ में विष्णु ने ऋग्वेद से लेकर पुराणों तक सूर्य, चन्द्र, उपेन्द्र, ब्रह्म, नारायण, हरि, वासुदेव आदि अनेक अभिधान प्राप्त किया। वृष्णि वंश में उत्पन्न होने तथा विष्णु के अवतार रूप में उपस्थापित होने से कृष्ण में विष्णु के गुणगण संक्रमित हो गए हैं ।

श्रीकृष्ण का रूप- सौन्दर्य वैष्णवी मधुरोपासना का जन्मदाता है। जायसी ने उन्हें ब्रह्मज्योति निरूपित करके प्रेममूर्ति बना दिया है। पूर्व अवतारों की भाँति "कन्हावत" में भी कृष्णावतार का प्रयोजन लोकरक्षा तथा रंजन सिद्ध है। इसमें वे त्रिगुण निर्गुण ब्रह्म के सौन्दर्य के प्रतिरूप हैं। उनका अवतरण दिव्य है और अलौकिक कर्मों के कारण वे दिव्यकर्मा भी हैं।

ब्रह्म का अंश होने के सम्बन्ध से शरीरों में जीव रूप से स्थित रहने के कारण श्रीकृष्ण ही "पुरुष" हैं और जिन शरीरों में निवास करते हैं, सब नारी रूप हैं। संसार के समस्त क्रिया-कलाप उन्हीं के हैं। अतः भोग, भोक्ता और भोग्य-सब कुछ वही हैं। जो उन्हें जिस भाव से भजता है, वे उसे उसी रूप के दिखाई पड़ते हैं। समस्त सृष्टि- सम्प्रसार उन्हीं का है। अतः वे सर्वरूप और बहुरंगी हैं। वे सूर्यवत् सबको प्रेमालोक प्रदान करते हैं। इस रूप में वे भेदभाव से परे हैं।

राधा- कृष्ण का अभेद सम्बन्ध है जो बीज रूप में ऋग्वेद का वर्ण्य-विषय बनकर ईसा की प्रथम शती की कृति हाल- रचित "गाथासप्तशती" से होता हुआ पुराणों में पल्लवित हुआ है। इनका श्रृंगारिक स्वरूप जायसी से बहुत पूर्व काल से लोकजीवन के आख्यानों एवं गीतों में जीवन्त हो चुका था ।

पौराणिक इतिवृत्त के अनुसार वृषभानु पुत्री राधा "कन्हावत" में देवचन्द महर की पुत्री बताई गई हैं। यह ज्ञातव्य है कि अन्यत्र राधा के पिता रूप में देवचन्द का उल्लेख नहीं है जिससे जान पड़ता है कि जायसी को किसी लोक परम्परा से यह नाम मिला । कृष्ण की पत्नी रूप में वे विष्णु- पत्नी लक्ष्मी हैं। उनके अद्भुत और अलौकिक सौन्दर्य की मोहकता से देवता भी उन्हें पाने को लालायित रहते हैं। उनमें आदर्श स्वकीया नायिका और आभिजात्य कन्याओं के गुण विद्यमान हैं। परमात्म रूप प्रियतम की परीक्षा और पहिचान के बिना न वे समर्पण करती हैं और न तादात्म्य स्थापित करती हैं। उनके ऐक्य में परिपूर्णता है। रूप- सौन्दर्य और सात्विक गुणों की श्रेष्ठता के कारण वे दो लक्ष परमसुन्दरी गोपियों की स्वामिनी बन गईं। कृष्ण की सेवा में समर्पण एवं सतीत्व ने उन्हें नित्य-प्रिया बना दिया जिसकी परीक्षा कृष्ण से वियोग की अवस्था में हुई है।

भावनात्मक तथा स्वरूपवर्णनात्मक दृष्टि से चन्द्रावली चन्द्र- ज्योति है जो विधाता रचित सृष्टि के सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्य को प्रतीक है। अमावस्या की रात्रि में सूर्य- चन्द्र का मिलन सूर्य रूप कृष्ण तथा चन्द्रमा रूप चन्द्रावली की रति का प्रतीक है। चन्द्रमा स्त्रीलिंग है, अतः चन्द्रावली राधा की प्रति- नायिका रूप में चित्रित है क्योंकि राधा को दिवस- श्री कहा गया है। सूफियों में परमात्मा को सौन्दर्यमय माना गया है जिसकी पराकाष्ठा चन्द्रा- वली में अभिव्यक्त हुई है। परमात्मा से तादात्म्य हेतु विहित साधना की भाँति कृष्ण भी उससे मिलन के लिए साधना करते हैं। कृष्ण- चन्द्रावली-मिलन दो शरीर एक प्राण जैसा है। कृष्ण- प्रेम का प्याला पीते ही वह परमात्मा रूप प्रियतम को सर्वत्र अनुभव करने लगती है। वह कृष्ण की नित्यप्रिया, पत्नी और सती नारी है जिसमें अपने उस सौन्दर्य पर गर्व है जिससे वह परम सौंदर्य- मय से एक प्राण होती है।

"कन्हावत" के प्रतिनायक कंस के चरित्र में कपट, दम्भ, दर्प, वासना, भीरुता, क्रोध आदि दुर्गुणों के चित्रण के साथ उसके महान् ऐश्वर्य तथा प्रताप का वर्णन है। नश्वर वस्तुओं पर गर्व के कारण सृष्टि के मूल प्रेम की अवमानना उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता के रूप में चित्रित है। उसके प्रेम में उत्कट वासना है। वह सृष्टि के परम सत्य मृत्यु को असत्य मानकर कालजयी बनने की दुरभि- लाषा करता है। उसकी दृष्टि में कृष्ण का अवतार मिथ्या है। अतः उसे सृष्टि का विधान भी स्वीकार्य नहीं ।

सातवें अध्याय में भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से "कन्हावत" और "पद्मावत" की तुलना की गई है जिसमें यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि वस्तु- वर्णन के अन्तर्गत "कन्हावत" की भाषा, शैली और वर्णना- शक्ति "पद्मावत" की अपेक्षा हीन है। योग- साधना अथवा मनः साधना की

प्रतीक राधा- चन्द्रावली की सपत्नी- ईर्ष्या का वर्णन साधना का संकेत मात्र रह गया है। "पद्मावत" में इसकी पूर्णता विद्यमान है। नखशिख वर्णन में "पद्मावत" में पद्मावती का रूप पारस- रूप है, सौन्दर्य परोक्ष दिव्य सत्ता का है और प्रभाव सृष्टिव्यापी है किन्तु "कन्हावत" की दिव्य राधा में असाधारण नारी की रूप- सर्जना हो सकी है। षड्ऋतु वर्णन की दृष्टि से "पद्मावत" में प्राकृतिक सौन्दर्य और माधुर्य के बीच प्रेमी-प्रेमिका के संयोग- सुख की विविध अनुभूतियों, परिस्थितियों एवं अवस्थाओं के जीवन्त और संश्लिष्ट चित्रांकन के साथ आध्यात्मिकता की अभिव्यंजना सहृदयों को आनन्द- विभोर कर देती है जबकि "कन्हावत" में सहजता की वर्णना ही मुख्य है । प्रेम की कसौटी के रूप में विरह की अभिव्यक्ति पद्मावत की विशिष्टता है। इस दृष्टि से "कन्हावत" का बारहमासा- वर्णन उतना प्रभविष्णु नहीं बन पाया है।

"कन्हावत" के दर्शन पर आठवें अध्याय में दृष्टिपात किया गया है। परमसत्ता की सिद्धि के लिए जायसी ने वेदान्त के प्रतिबिम्बवाद का आश्रय लिया है जिसके मत से सारा जगत् ब्रह्म- दर्पण है जिसमें उसी का रूप प्रतिफलित है। अतः ईश्वर ही जगत् के नाना रूपों में प्रकट है। यह उसकी सत्ता का व्यक्त अथवा सगुण रूप है। सम्पूर्ण जगत् उसी में समाविष्ट है जो उसका अव्यक्त या निर्गुण रूप है। इस प्रकार यहाँ इस्लामी एकेश्वर- वाद की बद्ध निर्गुण तथा भारतीय अवतारवाद की सगुण भावना का सुंदर समन्वय हुआ है।

परमसत्ता तथा जगत् के सम्बन्ध में जायसी का विचार है कि यह जगत् परमसत्ता का प्रतिबिम्ब है। परमसत्ता सौन्दर्यमय है जिसने स्वभा- वतः स्वाधीन आत्माभिव्यक्ति से जब अपने प्रसुप्त वैभव को देखना चाहा तो

शिवात्म दर्शन की सृष्टि कर दी और उसके माध्यम से भी जब अपना पूरा वैभव न देख सका तब अपने प्रतिरूप आदम की सृष्टि की ।

गृहस्थी में अनासक्त भाव से कर्म करता हुआ मनुष्य प्रेम के द्वारा परमात्मा से एकमेक हो जाय, यही जायसी की अभीष्ट जीवन्मुक्ति सम्बन्धिनी विचारधारा है ।

सहायक - ग्रन्थ - सूची

सहायक - ग्रन्थ - सूची

हिन्दी -

1- अपभ्रंश साहित्य : प्रो० हरिवंश कोछड़

2- अष्टछाप

3- कन्हावत : डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त

4- कल्याण अंक वर्ष - 44 अग्निपुराण (गर्गसंहिता) : गीताप्रेस, गोरखपुर

5- कल्याण अंक वर्ष - 45 अग्निपुराण (गर्गसंहिता, नरसिंहपुराण) : गीताप्रेस, गोरखपुर

6- कल्याण अंक वर्ष - 21 ब्रह्मपुराण : गीताप्रेस, गोरखपुर

7- कल्याण अंक वर्ष - 37 संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराण : गीताप्रेस, गोरखपुर

8- कल्याण अंक वर्ष - 51 वाराह पुराण : गीताप्रेस, गोरखपुर

9- कल्याण अंक वर्ष - 25 स्कन्दपुराण : गीताप्रेस, गोरखपुर

10- कल्याण अंक वर्ष - 34 श्रीमद्देवीभागवत : गीताप्रेस, गोरखपुर

11- कहरानामा और मसलानामा : अमर बहादुर सिंह "अमरेश"

12- खड़ी बोली कविता में विरह-वर्णन : रामप्रसाद मिश्र

13- चन्दायन : डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त

14- चित्ररेखा : डॉ० शिवसहाय पाठक

15- जायसी : प्रो० विजयदेव नारायण साही

16- जायसी का पद्मावत काव्य और दर्शन : डॉ० त्रिगुणायत गोविन्द

17- जायसी ग्रन्थावली : सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त

18- जायसी ग्रन्थावली : सं० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

19- जायसी ग्रन्थावली "अखरावट" : सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त

20- जायसी ग्रन्थावली "आखिरी कलाम" : सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त

21- जायसी ग्रन्थावली "पद्मावत" : सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त

22- तंत्र और तसव्वुफ : प्रो० राममूर्ति त्रिपाठी राका प्रकाशन 1939

23- पद्मावत (संजीवनी भाष्य) : डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

24- ब्रजभाषा काव्य में राधा : उषापुरी

25- भारतीय साधना और सूर साहित्य : डॉ० मुंशीराम शर्मा

26- मध्यकालीन कृष्णकाव्य में रूप सौन्दर्य : डॉ० पुरुषोत्तम दास अग्रवाल

27- मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य : डॉ० शिवसहाय पाठक

28- महाराणा कुम्भा : रामवल्लभ सोमानी

29- राजस्थान का इतिहास : कर्नल जेम्स टॉड अनुवादक केशव कुमार ठाकुर (1962)

30- राधा का क्रमिक विकास : शशिभूषण दास गुप्त

31- रामचरितमानस : गोस्वामी तुलसीदास

32- विद्यापति एक तुलनात्मक समीक्षा : जयनाथ नलिन

33- विश्राम सागर : बाबा श्री रघुनाथ दास रामसनेही

34- संदेशरासक : सं० हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा विश्वनाथ त्रिपाठी

35- संक्षिप्त महाभारत : गीताप्रेस, गोरखपुर

36- साखी : कबीरदास जी

37- सूफी कवि जायसी का प्रेम निरूपण : निजामुद्दीन अंसारी
38- सूफीमत साधना और साहित्य : रामपूजन तिवारी
39- सूरसागर
40- सूर साहित्य : हजारी प्रसाद द्विवेदी
41- श्री राधा- माधव चिन्तन : हनुमान प्रसाद पोद्दार गीताप्रेस, गोरखपुर
42- हिन्दी अनुशीलन : डॉ० धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक 1960
43- हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग : डॉ० नामवर सिंह
44- हिन्दी साहित्य : श्यामसुन्दर दास
45- हिन्दी साहित्य कोश : सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
46- हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव : डॉ० सरनाम सिंह शर्मा "अरुण"
47- हिन्दी साहित्य में राधा : द्वारका प्रसाद मीतल
48- हिन्दी सूफी काव्य का समग्र अनुशीलन : डॉ० शिवसहाय पाठक
49- हिन्दू विश्व पत्रिका, मई 1984 : डॉ० गयाप्रसाद उपाध्याय

संस्कृत :-

50- ऋग्वेद
51- उत्तर पुराण : मूल, आचार्य गुणभद्र, सं० अनु० पं० पन्नालाल साहित्याचार्य
52- उत्तर रामचरितम् : भवभूति
53- छान्दोग्य उपनिषद् : गीताप्रेस, गोरखपुर
54- तैत्तरीय आरण्यक
55- तैत्तरीय उपनिषद् : गीताप्रेस, गोरखपुर
56- दुर्गा सप्तशती : गीताप्रेस, गोरखपुर
57- नाट्य शास्त्र : भरतमुनि
58- पद्मपुराण
59- ब्रह्मवैवर्तपुराण : सं० श्रीराम जी शर्मा आचार्य
60- मुण्डकोपनिषद् : गीताप्रेस, गोरखपुर

61- मनुस्मृति
62- महाभारत : गीताप्रेस, गोरखपुर
63- मेघदूतम् : कालिदास
64- विष्णुपुराण
65- श्वेताश्वेतरोपनिषद् : गीताप्रेस, गोरखपुर
66- शतपथ ब्राह्मण
67- शिवपुराण
68- शिवसंहिता
69- साहित्य दर्पण : आचार्य विश्वनाथ
70- हरिवंशपुराण : सं० पं० श्रीराम शर्मा, आचार्य
71- श्रीमद्भगवतगीता : गीताप्रेस, गोरखपुर
72- श्रीमद्भागवत : गीताप्रेस, गोरखपुर
73- शुक्ल यजुर्वेद

उर्दू -

74- उर्दू शब्द कोष
75- कुरानशरीफ